श्रमणराज आचार्य देशभूषण महाराज

—सुमेरुचन्द्र दिवाकर

श्रमणराज आचार्य देशभूषण महाराज

लेखक

विद्वत्‌रत्न धर्म दिवाकर पं० सुमेरुचन्द्र दिवाकर

शास्त्री, न्यायतीर्थ, B A. LL B., सिवनी (म प्र)

[जैन शासन, चारित्र चक्रवर्ती, तीर्थंकर, आध्यात्मिक ज्योति, महाश्रमण महावीर, अध्यात्मवाद की मर्यादा, तात्त्विक चिन्तन, सैद्धान्तिक चर्चा, निर्वाण भूमि सम्मेदशिखर, चपापुरी, विश्वतीर्थ श्रमण वेलगोला, Religon & Peace, Glimpses of Jainism Mahavira and Jain Thought। आदि के लेखक, महाबन्ध के सम्पादक तथा कषाय पाहुड सुत्त के अनुवादक, भूतपूर्व सम्पादक जैन गजट]

मंगल स्मरण

अनन्त सुख सम्पन्नं येनात्मायं क्षणादपि ।
नमस्तस्मै पवित्राय चारित्राय पुन पुन: ॥

मै उस पवित्र चारित्र को बारम्बार प्रणाम करता हूँ, जिसके द्वारा यह आत्मा क्षणमात्र में अनन्त सुख सम्पन्न हो जाता है ।

—०—

अज्ञान - तिमिरान्धानां ज्ञानांजन - शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

जिनके द्वारा अज्ञान रूपी अन्धकार से अन्धे जीवो के नेत्र ज्ञानाजन रूप शलाका के द्वारा उन्मीलित हुए उन गुरुदेव को नमस्कार है ।

—०—

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते ।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः ॥
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद् भवभृतां धर्मस्य मूलं दया ।
धर्मे चित्त महं दधे प्रतिदिन हे धर्म मां पालय ॥

धर्म सम्पूर्ण सुखो का आकार तथा कल्याणकारी है, ज्ञानी पुरुष धर्म का संचय करते है, धर्म के द्वारा मोक्ष सुख प्राप्त होता है, उस धर्म के लिए नमस्कार हो । ससारी प्राणी के लिए धर्म से बढकर अन्य मित्र नही है । धर्म का मूल दया है । मै प्रतिदिन अपने चित्त को धर्म मे धारण करता हूँ । हे धर्म मेरी रक्षा करो ।

प्रध्वस्त घाति कर्माणः केवलज्ञानभास्करा ।
कुर्वन्तु जगतः शान्ति वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥

सम्पूर्ण घातिया कर्मो का नाश करने वाले, केवलज्ञानरूप सूर्य से शोभायमान, भगवान् वृषभनाथ आदि जिनेश्वर जगत् को शान्ति प्रदानकरे ।

पावन स्मृति में

जिन परम श्रद्धेय, सर्वदा वन्दनीय, योगीन्द्र चूँडामणि, चारित्रचक्र. वर्ती साधुराज ने इस दुषमाकाल मे अत्यन्त कठिन, दुर्धर तथा जगत् को चमत्कृत करने वाली श्रेष्ठ तपस्या, आध्यात्मिक साधना और शास्त्र सिधु के अनवरत परिशीलन द्वारा स्वयं को दिव्यतापूर्ण तेजोमय बनाया;

जिन्होने अनेक निकट ससारी भव्य जीवो को सकल सयम की समाराधना के सर्वोच्च कार्य मे मार्गदर्शन करते हुए पावन प्रेरणा प्रदान की और अपनी जीवनी द्वारा मगलमयी योग साधना में प्रोत्साहित किया;

जो समस्त श्रमणसघ को अहिसा आदि की श्रेष्ठ साधना और मुनि जीवन के निर्दोष आचरण के लिए रत्नत्रय के ज्योतिर्धर तुल्य है;

जो आचार्यरत्न, धर्म प्रभावक, मुनिराज श्री देशभूषण महाराज क मनोमन्दिर में अपना आध्यात्मिक प्रकाश प्रदान करते हुए उनको सम्यक् चारित्र की आगमानुसार प्रवृत्ति के लिए प्रेरणा प्रदान करते रहे तथा जिनका पावन स्मरण आज भी उनके जीवन को विशुद्धिप्रदान कर रहा है।

उन सत शिरोमणि, आदर्श क्षपकराज, परम वीतराग, महर्षि, १०८ आचार्य शान्तिसागर महाराज की,

पावन स्मृति में

विनयानवत विनेय द्वारा समर्पित—

सुमेरुचन्द्र दिवाकर

आमुख

मानव समाज का कल्याण करने वाले साधनो मे संत समागम का सर्वोपरि स्थान है। प्रातः स्मरणीय आचार्य जिनसेन स्वामी ने महापुराण में कहा है कि :—

मुष्णाति दुरित दूरात्परं पुष्णाति योग्यताम्।
भूयः श्रेयो नु बध्नाति प्रायः साधुसमागम ॥

संत समागम द्वारा पापो का क्षय होता है, आत्मा की शक्ति विकसित होती है और जीव कल्याण के पथ मे प्रवृत्त होता है। तुलसीदासजी ने लिखा है कि :—

पुण्यपुंज विन मिलहि न संता।
सत्संगति संसृति कर अन्ता॥

विश्व गौरव

एक अग्रेज कवि ने लिखा है कि महापुरुषो के द्वारा हमारे अन्तःकरण को ऐसी दिव्य प्रेरणा प्राप्त होती है कि मनुष्य अपने जीवन को उन्नत बना सके। श्रीमती विजयलक्ष्मी पडित ने दिल्ली के क्षमावाणी महोत्सव पर अपने भाषण मे कहा था कि सतो के द्वारा जगत का महान् कल्याण होता है। सत का रूप धारण करनेवाले लोग बहुत पाये जाते है पर जिनके ज्ञान-चक्षु खुले हो ऐसी दिव्यता विभूषित सत पुरुषो की उपलब्धि बडे भाग्य से होती है। विश्व की ऐसी विभूतियो मे आचार्य रत्न बाल ब्रह्मचारी योगीन्द्र चूड़ामणि परम ज्ञानी तथा परमहस श्री १०८ ऋषिराज देशभूषणजी महाराज का महत्वपूर्ण स्थान है। यथार्थ मे ये भारत के ही नही विश्व के गौरव स्वरूप महात्मा है।

श्रेष्ठ साधुराज

मेरा यह महान् पुण्य रहा कि जब मैं नागपुर के ला कालेज मे सन् १९३३ मे एल० एल० बी० का अभ्यास कर रहा था उस समय पूज्य श्री तरुण तपस्वी के रूप मे मेरी निवास भूमि सिवनी (मध्य प्रदेश) मे पधारे थे। पूज्य श्री को आहार दान देने का सर्वप्रथम सौभाग्य मुझे तथा मेरे माता-पिता आदि को प्राप्त हुआ था। उस समय इनका अन्तः करण पवित्रता की ज्योति से दीप्तिमान हो रहा था। उस समय से मैं इनके अधिक निकट आया। मैंने इन्हे द्वितीया के प्रिय चन्द्रमा के रूप देखा था और अब ये अपनी साधना तथा रत्नत्रय की पुण्य आराधना के द्वारा पूर्ण चन्द्रमा के समान विश्व के नभोमण्डल मे शोभायमान हो रहे हैं। ये बड़े गम्भीर मनस्वी और उदात्त चरित्र ऋषि हैं। उन्होने अगणित जीवो को कल्याण मार्ग मे लगाया है। आज ये दिगम्बर जैन मुनीश्वरो मे तपस्या की दृष्टि से सबसे ज्येष्ठ है और आगम भक्त साधुओ के लिए पूजनीय तथा शिरसा वन्दनीय है।

सच्चे सन्त

मैं आचार्यरत्न श्री देशभूषणजी महाराज के समीप बहुत समय तक रहा हू और मैंने समालोचक की दृष्टि से इनके जीवन को देखा है। यथार्थ मे इनकी आत्मा महान् है। वास्तव मे ये सच्चे सन्त हैं, साधु हैं और सच्चे फकीर है। कहा भी है—

फिकर ही दुःख का मूल है, फिकर ही जग की पीर।
फिकरो का फांका करे, उसका नाम फकीर॥

ऐसे परमहस साधुराज सच्ची स्वाधीनता के पथिक है। ये वासनाओ के गुलाम नही है। इन्द्रिय और मन इनके अधीन है। आज सारा विश्व भोगो और विषयो को गुलामी के काल मे फसा है। उनके मध्य ये दिगम्बर मुनिराज दिव्य प्रकाश पुजरूप मे दिखाई पड़ते है। ये कुटुम्ब तथा दुनिया के चक्कर मे नही फसते। कहा भी है कि—

कनक कामिनी विषय वश दीसै सब संसार।
त्यागी वैरागी महा साधु सुगुण भण्डार॥

ऐसे महाव्रती मुनियो के सच्चे आनन्द की विषयों का गुलाम मानव कल्पना नही कर सकता। कवि ने कहा है—

न सुखं देवराजस्य न सुखं चक्रवर्तिनः।
यत्सुख वीतरागस्य मुनेरेकान्तवासिनः॥

दुनिया के भोगो मे फसने वाला जीव उसी प्रकार छटपटाता हुआ मरता है जिस प्रकार मक्खी शहद मे गिरकर मर जाया करती है। एक शायर ने कहा है—

फसे दुनिया में जो मूरख वही नाशाद होता है।
इसे जो छोड़ देता है वही आजाद होता है॥

संयम की प्रेरणा

पश्चिम देशो के विलासिता पूर्ण वातावरण से जिसकी दृष्टि विषय भोग को ही परम पदार्थ मान रही है और जो ऋण कृत्वा घृत पिवेत्,—'उधार लेकर भी माल खाते जाओ' के कुपथ मे गुमराह होता हुआ सदाचार और सयम को आत्मवचना मानता है उसे विश्व की विभूति गाधीजी का वह सयमशील जीवन विवेक पूर्ण पथ को उद्दीप्त करता है। बापू कहते थे—"मेरा जीवन तो व्रतो पर रचा हुआ है। इसलिए मैने व्रत लेने का निश्चय किया है। मैंने भोजन की वस्तुओ की सख्या मर्यादित करने का और शाम को अधेरे से पहले भोजन कर लेने का व्रत लेने का निश्चय किया है। मैंने चौबीस घटो मे पाच चीजो से अधिक नही खाने का और रात्रि भोजन त्यागने का व्रत ले लिया। इससे मे बहुत बार बीमारियो से बच गया हूँ।" (उ०प्र० मे गाधीजी सूचना विभाग पृ०३४)

सच्ची शान्ति की उपलब्धि हेतु सयम और आत्मदर्शन का जीवन मे सगम आवश्यक है। सन्त जीवन के प्रेमी पालब्रटन (Paul Brunton) ने अपने ग्रन्थ 'ए सर्च इन सिक्रेट इडिया' मे कहा है:—The price of peace will bee that you shall henceforth cast aside the idea that you are this body or this brain"

शान्ति की प्राप्ति का मूल्य यह है कि तुम इस कल्पना का पूर्णतया परित्याग कर दो कि मै शरीर हूं या मस्तिष्क हूं।

आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज के समीप रहते हुये तथा उनके महत्व को जानते हुये भी मै अनेक साधु विद्वेषी व्यक्तियो के सम्पर्क में आने के कारण आचार्य श्री के जीवन पर कुछ लिखने की बात नही सोचता था। मैने सोचा कि तुलसीदास ने राम के गीतरूप रामायण का निर्माण किया।

उसी प्रकार आचार्य शान्तिसागर-जी महाराज़ जैसे श्रेष्ठ साधुराज के जीवन का वर्णन करने वाले चारित्रचक्रवर्ती ग्रन्थ का जो सर्वप्रिय हुआ निर्माण करके आगे लिखने का मन नही हो रहा था।

पवित्र प्रेरणा

एक दिन दिल्ली से मेरे परम स्नेही वन्धु भद्र परिणामी श्री महताव सिंह जी जौहरी वी० ए० एल० एल० वी० प्रधानमन्त्री जैन मित्र मडल ने अपने पत्र मे लिखा था "पडितजी! अभी हम और आप आचार्य देश-भूषणजी महाराज की श्रेष्ठता तथा उच्चता का मूल्याकन पूर्णतया नही कर रहे है, लेकिन यह स्मरण रखिये, कि ऐसा प्रभावशाली महान् साधु अव आगे नही होगा।"

व्यक्तित्व

उस पत्र ने मेरे मानस पर गहरा असर डाला। मैंने सोचा कि जैन समाज मे अनेक तपस्वी परम धार्मिक साधु है, आगम की आज्ञा मे चलते है, किन्तु उनका जीवन एक छोटे कमरे मे रक्खे हुये दीपक के समान है, जिसका प्रकाश वाहर नही जाता। कोई २ ऐसे भी साधु है जो ढोल पीट-कर विज्ञापनवाजी के द्वारा धर्म पर भाषण देते है, वहुजन समुदाय उनके पास आते है और ताली पीट-पीटकर उनका गुणगान करते नही थकते। किन्तु उनके जीवन मे असत्य और अहकार की प्रचुरता के सिवाय सयम, वात्सल्य तथा सदाचार की पवित्र दृष्टि का दर्शन नही होता। इस परि-प्रेक्ष्य मे जव हम आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज को देखते है तव उनका चरित्र, उनकी वाणी, उनका व्यक्तित्व और पर्सनेलिटी (Persona-lity) अद्भुत लागती है।

अद्वितीय महात्मा

१९६५ मे जो विश्व धर्म सम्मेलन दिल्ली मे हुआ था, उसमे भारत तथा विदेश से आगत सैकड़ो सन्तो के मध्य मे ये साधुराज कोहनूर हीरे की तरह अपना दिव्य प्रकाश फैला रहे थे। सभी की निगाहे इनकी ओर थी। भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० जाकिरहुसेन ने इनके चरणो को प्रणाम किया था। भारत रत्न डा० राधाकृष्णन ने वेलगाम (दक्षिण) मे इनके पास जाकर

तथा आशीर्वाद को प्राप्तकर अपने को कृतार्थ किया था। स्व० प्रधानमंत्री साधुचेतस्क लालबहादुर शास्त्री का जीवन इनके सम्पर्क से आलोकित हो उठा था। इस प्रकार सूर्य के समान सर्वत्र चमकने वाले तेजस्वी साधु कहा है और कितने है, यथार्थ में ये अद्वितीय है।

पुण्य सम्पर्क

वास्तव मे इनका जीवन सयम की दृष्टि से विशुद्ध तथा उज्ज्वल होने का प्रमुख कारण यह है कि ये प्रात. स्मरणीय चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के निकट सम्पर्क में रहे है तथा उनके द्वारा इनके जीवन की प्रवृत्तियों मे विविध परिवर्तन तथा संशोधन हुये है। यथार्थ मे आचार्य शातिसागरजी महाराज के ये सर्वाधिक आशीर्वाद और कृपा के पात्र रहे है। जब ये बच्चे थे उस समय कोथली मे आचार्य श्री ने पधारकर इनके घर मे आहार लिया था और इन्हे अपना मगलमय आशीर्वाद दिया था। हमें यह भी ज्ञात हुआ है कि तपोमूर्ति आचार्य शातिसागरजी महाराज के साथ इनके पूर्वजो का कौटुम्बिक सम्बन्ध भी रहा है। उन महा मुनि के सम्पर्क और आशीर्वाद के कारण इनका जीवन सौरभ सम्पन्न बना है।

तपस्वी

आचार्य शातिसागर जी महाराज के समान इन साधुराज के द्वारा जन साधारण का कल्याण हुआ है। इन्होने अगणित अन्य धर्मियो को मास मदिरा, चोरी, शिकार आदि का परित्याग कराकर उन्हे सन्मार्ग पर लगाया है। ये बहुत बडे साधक भी है, पहले इन्होने महान् तप के द्वारा अपने तारुण्य काल मे इन्द्रियो का दमन कर उसे आत्मोन्मुख बनाया है। इन्होंने सर्वतोभद्र व्रत, त्रिलोकमंडल व्रत, मुक्तावली व्रत, रत्नावली व्रत, वज्रमध्यविधि, मृदगमध्यविधि आदि अनेको व्रत किये है। इन्होने ६०४ दिनो मे ४७१ उपवास किये थे। उस समय इनका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया था। इस तपश्चर्या के प्रतिफल स्वरूप इनका यश और प्रभाव आश्चर्य-प्रद रूप से वृद्धिगत होता गया। मुझे स्वयं बडा आश्चर्य हुआ कि बहुत सीमित ज्ञान वाले इन मुनिराज ने अनेक शास्त्रो का गम्भीर परिशीलन कर अपने जीवन को कितना ऊचा उठाया है। मैने इन्हे वटबीज के रूप मे देखा था। आज ये विशाल वटवृक्ष की तरह प्रवर्द्धमान हुये है। मै तो इन्हें

चन्दन के वृक्ष के समान मानना हू, जो अपने को काटनेवाले की कुल्हाडी के मुँह को भी सुरभि सम्पन्न बना देता है ।

आचार्यश्री मे चन्दन के सदृश अनेक विशेपताये हैं । चन्दन के वृक्ष पर बैठे हुये पक्षीगण मधुर गान करते है । इसी प्रकार लाखो करोडों व्यक्ति सारे भारतवर्ष में इन मनस्वी महात्मा की महिमा की प्रतिपादन करते हैं । चन्दन के वृक्ष के मूल मे बड़े-बडे भुजग लिपटे रहते हैं, इसी प्रकार अनेक दुष्ट जन इनके समीप मे रहते हुये अपने दुष्ट स्वभावानुसार डसने का कार्य भी जारी रखते हैं । कभी-कभी छद्म वेष धारण करनेवाले भी विषधर वृत्ति के मूर्तिमान स्वरूप लगते हैं । उन निकृष्ट व्यक्तियो के प्रति भी इनके विशाल अन्त करण मे प्रेम और करुणा का भाव रहता है । ये सोचते है कि बेचारा यह जीव पाप कर्म के उदय से विपरीत बुद्धि बन रहा है । इसका कल्याण हो और यह शाति पथ को पकड़े । दुष्ट साक्षरो और निरक्षरो अथवा दम्भी त्यागियो से इन्हे घेरा हुआ देखने का मुझे बहुत बार अवसर मिला, पर ये साधुराज शत्रु को भी अपना अमृतमय आश्रय प्रदान करते हैं ।

आलोचना का उत्तर

यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या इनका चरित्र चौथे काल के महामुनियो के समान स्वच्छ और निर्मल है ? यदि नही तो आप भक्त लोग इनका गुणगान करते क्यो नही थकते ?

ऐसे आलोचको से हमारा यही कहना है कि इस भोग प्रधान पाप प्रचुर पचम काल मे साधारण गृहस्थ जहाँ निर्दोष रीति से अष्ट मूल गुण पालन करने की प्रतिज्ञा लेते हुए डरता है व बहाने बनाता है, वहाँ ये आत्मबली महा मानव आत्मशक्ति को जागृत करते हुए महाव्रतो का पालन यथाशक्ति निर्दोप रूप मे कर रहे है । देवसेन आचार्य ने भाव सग्रह ग्रन्थ मे लिखा है:—

> वरिससहस्सेण पुरा जं कम्मं हणइ तेण काएण ।
> तं संपइ वरिसेण हु णिज्जर ये हीण संहणणे ॥१३१॥

चौथे काल मे एक हजार वर्ष तप के द्वारा जितना कर्म का क्षय होता था उतना इस पचम काल मे अल्प शक्तिधारी मुनि के एक वर्ष में होता है ।

यथार्थ बात

ऐसी स्थिति में ये दिगम्बर साधु जो महाव्रतों का पालन करते है वह बहुत बडी बात है। यह समझना कि आचार्य श्री में गुण ही भरे है और उनमें एक भी अपूर्णता नही है उचित नही है। जगत मे परमात्मा के सिवाय कोई भी निर्दोष अथवा बेऐब नही है। बुद्धिमान आदमी गुणदृष्टि बनकर गुणो को ग्रहण करते हुए अपने को उज्ज्वल बनाता है। एक अंग्रेजी विद्वान् ने कहा है :—

Be to their faults a little blind,
Be to their virtues very kind

दूसरे के दोषो को देखते समय कुछ आखें बन्द कर लिया करो तथा उनमे विद्यमान सद्‌गुणो के प्रति विशेष सद्‌भावनापूर्ण दृष्टि को धारण करो। चौबीस घटे में दिन के समय एक बार करपात्र मे आहार लेने वाले बाल ब्रह्मचारी इन तेजस्वी महात्मा के जीवन में विशेष सदाचार व सयम का सुवास भरा है। सज्जन पुरुष उस ओर दृष्टि देते हैं और अपने जीवन को उस प्रकाश में स्वच्छ बनाते है। इनके द्वारा अहिंसात्मक प्रवृत्तियो को असाधारण बल प्राप्त हुआ है तथा हो रहा है। वर्तमान युग की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि दुःखी और भ्रान्त जगत् मे ऐसे साधुओ से प्रेरणा प्राप्त करे। हिन्दू सन्त श्री विनोवा जी ने कहा है कि "आज के विज्ञान युग मे सबसे बड़ी जरूरत और चाह इस बात में है कि करुणा का झरना फूट पडे और अहिसा दासी न रहकर रानी बन जाय।" (गाधी-जैसा मैंने देखा-विनोबा पृ० ४३)

कल्याणदाता

यथार्थ मे महापुरुष अपनी मगलमय जीवनी के द्वारा जगत मे शाश्वतिक कल्याण का मार्ग बताते है। कवि कहता है :—

गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा।
पापं तापं च दैन्यं च हन्ति सन्तो महाशयाः॥

गंगा जल के शीतल जल मे स्नान करने वाला गगाभक्त मानता है कि उसका पाप नष्ट होता है, चन्द्रमा की किरणो का आश्रय लेने वाले व्यक्ति का सताप दूर होता है, कल्पवृक्ष के नीचे बैठने वाले व्यक्ति को मनोवाछित वस्तु प्राप्त होने से उसकी दीनता दूर होती है, किन्तु विशाल

हृदय वाले महापुरुषो की शरण में आने वाले का पापक्षय होता है, संताप दूर होता है और व्यक्ति समृद्धि का अधीश्वर बनता है। यहाँ एकत्र सभी बातो का सद्भाव पाया जाता है।

गुरु का महत्व

कबीर का यह कथन मार्मिक है :—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पायँ।
बलिहारी वा गुरु की गोविन्द दियो बताय॥

कारण

परमात्मा हमे प्रत्यक्ष नेत्रगोचर नही होते। उनकी मगलवाणी आगम रूप मे उपलब्ध होती है। वह आगम अचेतन होने से स्वय नही बोलता। अपने मनो मन्दिर मे भगवान् को विराजमान कर सर्वज्ञ प्रणीत शास्त्र के प्रकाश मे मुक्तिपथ की ओर प्रस्थान करने वाले साधु रूप पथिक की जिन्दगी मे हमे जीवित आध्यात्मिकता का दर्शन होता है, इसलिए सच्चे साधु का महत्व सारे विश्व मे माना गया हैं।

स्वाश्रयी जीवन

सच्चा साधु परावलम्बन का त्याग कर अधिक से अधिक स्वाश्रयी बनकर अपना उद्धार करता है। वह किसी दूसरे की कृपा, आशीर्वाद या वरदान को अपनी आश्रयभूमि न बनाकर सच्चा पुरुषार्थी बनता है। गीता मे कहा है —

उद्धरेदात्मनात्मान नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥५-६॥

अपनी आत्मा के द्वारा अपनी आत्मा को उन्नत बनाओ। अपनी आत्मा को नीचे न गिराओ। तुम्हारा आत्मा ही तुम्हारा बन्धु है और तुम्हारा आत्मा ही तुम्हारा शत्रू है।

इस स्वावलम्बन के पथ पर ये मनस्वी मुनिराजश्रेष्ठी अपरिग्रह वृत्ति को धारण करते हुए साम्य भाव की पुण्यधरा मे विचरण करते हैं तथा प्राणी मात्र पर समता की दृष्टि रखते हैं। श्री कृष्ण महाराज ने परमयोगी के विषय में इस प्रकार प्रकाश डाला है :—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःख स योगी परमो मतः ॥३२-६॥

हे अर्जुन ! वह श्रेष्ठ योगी है, जो सर्वत्र समताभाव को धारण कर अपनी आत्मा के समान देखता है तथा सुख और दुःख में समताभाव को अपनाता है ।

ये मुनिराज सासारिक चिन्ताओ को परित्याग कर जीवन शोधन के क्षेत्र मे दिन-रात प्रवृत्ति किया करते है । ये एक क्षण भी व्यर्थ नही गंवाते । श्री देशभूषण जी महाराज अप्रतिम प्रेम, पवित्रता तथा प्रशान्त भावना से परिपूर्ण है ।

मेरी अन्तरात्मा ने कहा कि इन साधुराज का जीवन भी लिखना चाहिए, ताकि जनसाधारण इन वृद्धि महामुनि के जीवन से लाभ उठावे ।

साधुगुण संकीर्तन

मेरा ध्यान आचार्य रविषेण रचित पद्म पुराण की इस पवित्रवाणी की ओर गया कि :—

वृद्धि व्रजति विज्ञानं यशश्चरित्र निर्मलम् ।
प्रयाति दुरितं दूर महापुरुषकीर्तनात् ॥ प्रथम पर्व ॥

महापुरुष का यशोगान करने से निर्मल ज्ञान की वृद्धि होती है, विशुद्ध कीर्ति का प्रसार होता है और पाप दूर भागता है ।

अल्पकालमिदं जन्तोः शरीर रोगनिर्भरम् ।
यशस्तु सत्कथा जन्म यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥२५॥

इस जीव की रोगभरी देह अल्प काल तक स्थिर रहने वाली है, किन्तु महापुरुष की गुणगाथा से उत्पन्न यश जब तक चन्द्र, सूर्य और तारे रहेगे तब तक विद्यमान रहेगा ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पुरुषेणात्मवेदिना ।
शरीर स्थास्नु कर्तव्यं महापुरुषकीर्तनम् ॥

अत. आत्मज्ञ पुरुष को पूर्ण प्रयत्न करके महापुरुष के कीर्तन द्वारा इस शरीर को स्थायी बनाना चाहिए ।

उक्त आगम के द्वारा मेरे मन को प्रेरणा मिली और मैंने श्रमणराज आचार्य देशभूषण महाराज ग्रन्थ का लिखना आरम्भ किया । परम मगलमय धर्म और धर्म के अधीश्वर श्री जिनराज के चरण प्रसाद से यह रचना वन

गई। सीमित साधनो और प्रेस की महान बाधाओं आदि के कारण मुझे इस चरित्र को जिस प्रकार समलंकृत करना चाहिए था, उस प्रकार करने मे मैं असमर्थ रहा। यदि इस रचना का नवीन सस्करण निकालने का सौभाग्य मिला, तो इसमे विद्यमान अपूर्णताओ के परिमार्जन का प्रयत्न किया जायेगा।

इस रचना के निर्माण मे मेरे छोटे भाई प्रोफेसर डा० सुशील कुमार दिवाकर एम० ए० एल० एल० बी० पी० एच० डी० डीन (dean) जबलपुर विश्वविद्यालय, भाई अभिनन्दन कुमार दिवाकर एम० ए० एल० एल० बी० एडवोकेट, उनके सुपुत्र चिरंजीव यशोधर दिवाकर, चिरजीव सुदर्शन कुमार दिवाकर तथा चिरजीव सुकुमाल दिवाकर बी० काम०, चिरजीव आनन्द कुमार तथा धन्यकुमार आदि ने श्रम उठाकर विशेष सहयोग दिया है। पडित रामशकर त्रिपाठी शास्त्री ने, जो आचार्य महाराज जी के पास बहुत समय तक रहे, लेखन प्रूफ सशोधन आदि कष्टप्रद कार्यों मे मेरा हाथ बटाया है। बाबू महतावसिह जी जौहरी, भाई आदीश्वर प्रसाद जैन एम० ए० ने महत्वपूर्ण सहयोग दिया है।

अनेक सत्पुरुषो ने आचार्य श्री के जीवन के सबन्ध मे उपयोगी सामग्री दी है। अपनी श्रद्धाजलिया श्रद्धा के सुमन रूप मे भेजी हैं, उनके उपकार से उऋण कैसे हुआ जा सकता है?

गुरुभक्त श्रीमान् लक्ष्मी चन्द्र जी जैन सिरोही (राजस्थान) ने आर्थिक सहायता देकर इस महगाई के जमाने मे रचना को प्रकाशित करने मे जो योग दिया है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। ऐसे सात्विक दान की कौन हृदय से सराहना नही करेगा?

अन्त में हम देवाधिदेव श्री जिनेन्द्र भगवान् को प्रणाम करते हैं, जिनके चरण प्रसाद से यह ज्ञान-दीप आलोकित हो रहा है।

सुमेरुचन्द्र दिवाकर

दिव्य जीवन पर विहंगम दृष्टि

प्रातः स्मरणीय आचार्यरत्न श्री १०८ देशभूषण जी महाराज ने अपने मगलमय तपोमय संयमी जीवन द्वारा मानव समाज का अकथनीय उपकार किया है। लाखो अजैनो ने आपके उपदेश से प्रभावित हो आत्मकल्याण के पथ मे प्रवृत्ति की है। मॉस, शराब, शिकार, जुआ आदि महा-पापो का त्याग किया है।

आज से ७० वर्ष पूर्व कोथलो (जि० बेलगाम) ग्राम मे क्षत्रिय परिवार में इन्होने जन्म धारण किया था। इनकी माता अक्कावती देवो थी और पिता श्री सत्यगौड पाटील थे। बाल्यकाल से ही इनका मन ससार के भोगो से उदास रहा करता था। इन्होने आत्म विकास की मूल प्रेरणा श्री १०८ चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शातिसागर जी महाराज से प्राप्त की थी। आचार्य शॉतिसागर जी महाराज जब क्षुल्लक थे तब इनके घर पर उनका शुभागमन हुआ था। महाराज श्री ने इनके घर मे आहार लिया था और इनके सिर पर पिच्छी रखकर मगलमय आशीर्वाद दिया था। उनके शिष्य आचार्य पायसागर जी महाराज थे तथा उनसे दीक्षा प्राप्त श्री जयकीर्ति मुनिराज थे। जयकीर्ति मुनिराज ने इन्हे कुन्थलगिरि क्षेत्र पर दिगम्बर मुनिदीक्षा दी थी।

आचार्य पायसागर जी से परामर्श कर सूरत की जैन समाज ने तथा अन्य धार्मिको ने मिलकर इन्हे आचार्य पद से समलकृत किया था।

अपने परिश्रम, सतत सरस्वती की समाराधना और अत्यन्त उज्ज्वल चरित्र होने के कारण इनका ज्ञान असाधारण रूप से विकसित हुआ। आचार्य श्री प्रतिभाशाली वक्ता, कुशल लेखक, विविध भाषाओ के वेत्ता तथा श्रेष्ठ श्रेणी के सन्तराज है। इनके समीप अनेक जगह शेर आया है। शाजापुर (मध्य प्रदेश) के समीप जगल मे काले सर्प ने भयकर रूप से इन्हे डस लिया था। उसके डेढ़ दात इनके शरीर मे घुस गये थे। बिना औषधि

लिए तप के प्रभाव से सर्प का विष उतर गया। ये महातास्त्री मुनिराज है।

इन्होने कन्नड, तमिल आदि अनेक भाषाओ के महत्वपूर्ण ग्रन्थो का हिन्दी मे अनुवाद कर हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि की है। लगभग १०० ग्रन्थो की रचना हुई होगी। इन्होने सारे भारत मे विहार करके अहिसा और अपरिग्रहत्व आदि सद्‌गुणो का महत्व अपनी वाणी, लेखनी और आचरण द्वारा जनमानस के अन्त करण मे अकित किया है।

इनका व्यक्तित्व बडा आकर्षक और दिव्यता सम्पन्न है।

प्रकाण्ड विद्वान् भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन्, सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस श्री वेकटरमण अय्यर, काग्रेस के अध्यक्ष श्री ढेवर भाई, निजलिगप्पा तथा सेठ जुगलकिशोर जी विडला आदि महान् जैनेतर व्यक्तियो ने इनके प्रति अपना आदर का भाव व्यक्त किया। इनकी दृष्टि मे विशिष्ट उदारता है।

आचार्यश्री की प्रेरणा से भगवान् ऋषभदेव की ३१ फुट ऊँची सुन्दर तथा नयनाभिराम प्रतिमा सन् १९६५ मे श्री रामगज, अयोध्या मे विराजमान हुई, जिनकी अद्‌भुत प्रभावशाली प्रतिष्ठा पूजा सम्पन्न हुई थी।

कोल्हापुर मे महाराज श्री के कारण २५ फोट ऊँची भगवान् ऋषभ देव की प्रतिमा विराजमान हुई।

जयपुर के समीप खानिया के पर्वत पर सुन्दर २४ तीर्थकरो की मूर्तिया विराजमान है। वह स्थान 'पार्श्वनाथ चूलगिरि तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया है।

सन् १९६५ के २८ नवम्बर को आचार्य श्री की जयन्ती लाल किले के मैदान मे वडे वैभव पूर्वक मनाई गई थी। स्वर्गीय प्रधानमत्री भारत शासन श्री लाल वहादुर जी शास्त्री ने भी उस उत्सव मे आकार आचार्य श्री का मगलमय आशीर्वाद प्राप्त किया था उनके द्वारा जिन शासन की अपूर्व प्रभावना हो रही है। वे कर्मवीर महान साधुराज है।

आचार्य रत्न श्री १०८ देश भूषण जी महाराज

आचार्य रत्न श्री १०८ देश भूषण जी महाराज

आचार्य श्री, आचार्य धर्मसागर जी महाराज एव सघ सहित, देहली
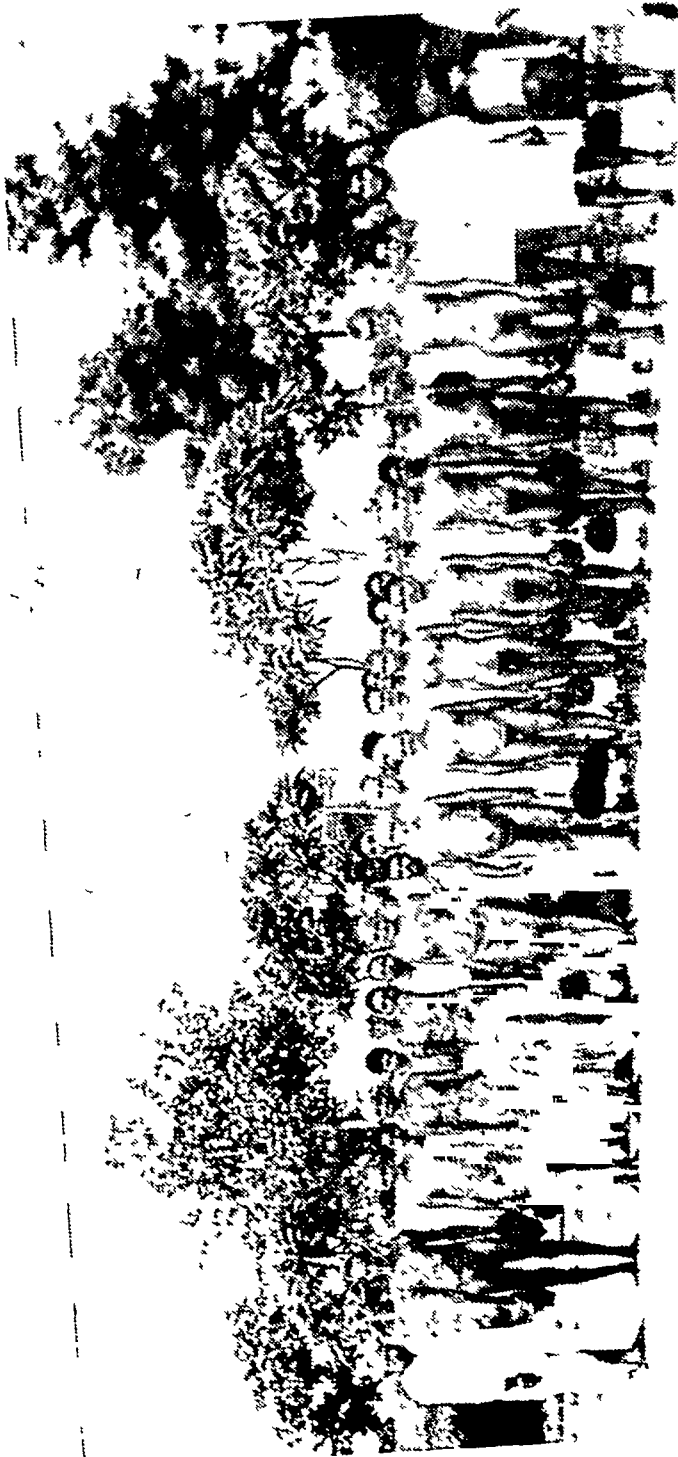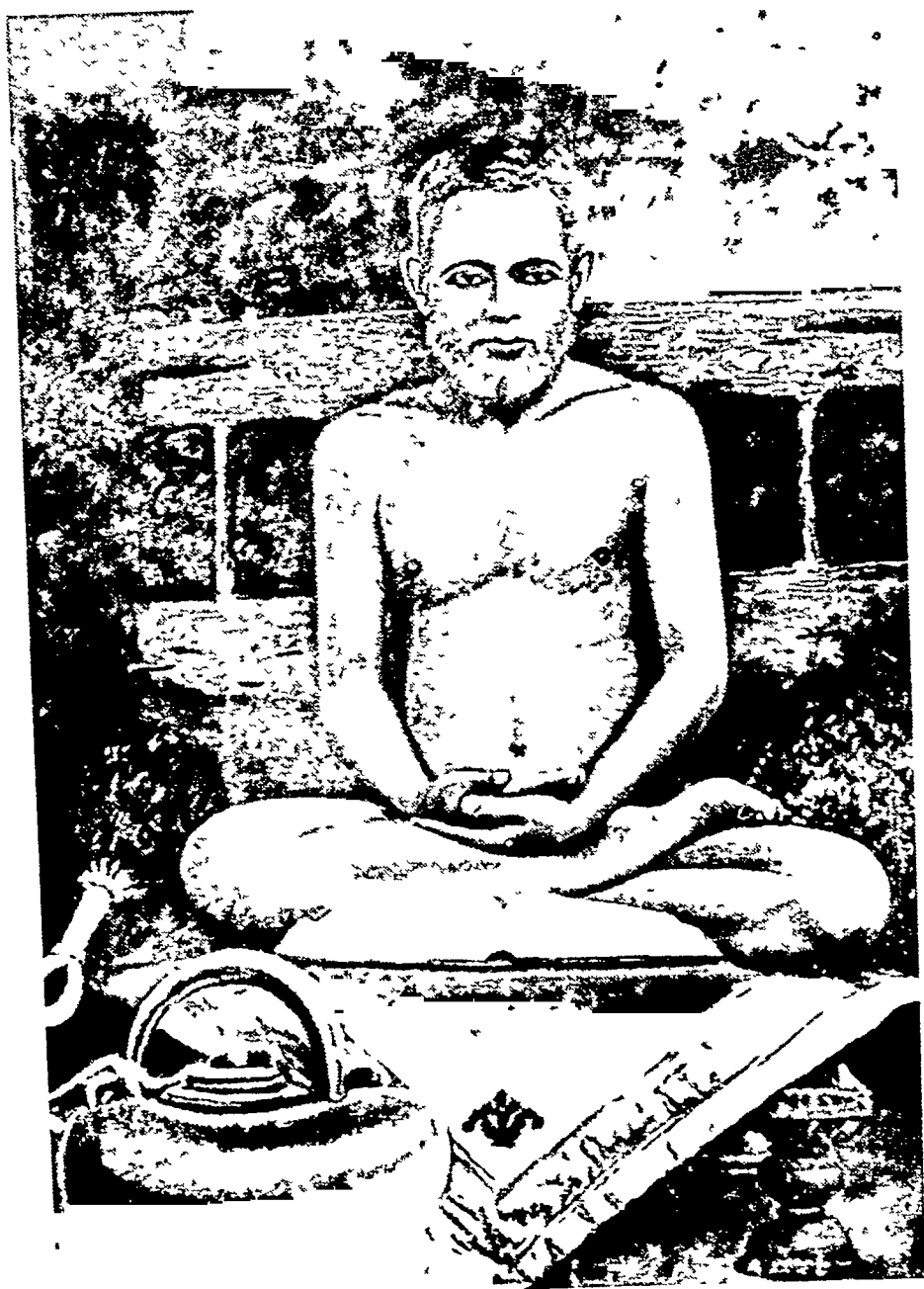
आचार्य श्री १०८ जयकीर्ति जी महाराज (आचार्य श्री के गुरुदेव)

॥ ॐ ॥

बाल्य-काल

•

धर्मभूमि भारत ने विश्व कल्याणकारी अगणित महापुरुषो को उत्पन्न किया है। उन साधुओ मे दिगम्बर जैन निर्ग्रन्थ श्रमणो का अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान है। वर्तमान भोग और विपयो मे आसक्त जगत के मध्य परिपूर्णतया दिगम्बर, जितेन्द्रिय, उज्ज्वल हृदय और उज्ज्वल आचार वाले निर्ग्रन्थ श्रमणो की कल्पना करना भी कठिन लग रहा था। ऐसी स्थिति में भी आज से १०० वर्ष पूर्व दक्षिण भारत मे १०८ चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्ति सागर जी महाराज जैसे मनस्वी, बाल ब्रह्मचारी, परमहस दिगम्बर साधुराज ने उत्पन्न होकर दिगम्बर श्रमण परम्परा के स्वरूप और गौरव को वृद्धिगत किया। उनके दिव्य जीवन से प्रेरणा और प्रकाश प्राप्त करके अनेक मनस्वी, मनोवली, जितेन्द्रिय सत्पुरुषो ने भी इस दिगम्बर साधु की अवस्था को प्राप्त कर जगत् के प्राणियो का कल्याण किया है और कर रहे है। इस प्रकार के तेज-पुञ्ज, परम कारुणिक बाल ब्रह्मचारी निस्पृही तथा ज्ञानी सन्तो के वीच आचार्यरत्न १०८ अध्यात्म विद्या के अलकरण पूज्य श्री देशभूपण जी महाराज का चरित्र और जीवन अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इन महर्पि ने अपने जीवन द्वारा देश और विदेश मे अहिसा, अनेकान्त, सत्य आदि सद्वृत्तियो की महत्ता जन मानव मे स्थापित की है।

बाल्य-काल

आज से ६९ वर्प पूर्व वेलगाव (मैसूर राज्य) कर्नाटक जिले के अन्तर्गत कोथली ग्राम मे आचार्य देशभूषण जी महाराज का जन्म मार्गशीर्ष (मगसिर) सुदी २ वि० स० १९६२ मे हुआ था। पूज्य पिता श्री सत्यगौड़ा

पाटिल और माता अक्का देवी ने अपने प्रिय पुत्र का नाम वालगौडा रखा था। इन्हे वालप्पा कहा करते थे।

इनके जीवन के वारे मे इनके काका ने जो वर्तमान समय मे क्षुल्लक जिनभूषण जी महाराज के रूप मे शोभायमान हो रहे है, इस प्रकार परिचय दिया था—"मैंने वचपन से इनको देखा है। यह वहुत वुद्धिमान, शान्त व गम्भीर स्वभाव के थे, किन्तु वचपन मे वाल-सुलभ खेल-कूद आदि मे इनका मन वहुत रहता था। शरीर से ये वहुत मजवूत थे। ये आज्ञा पालक रहे। जव वे तीन माह के थे तव इनकी माता का स्वर्गवास हो गया था तथा १२ वर्ष की अवस्था मे इनके पिता सत्यगौडा पाटिल का भी देहान्त हो गया था। वचपन मे ये रुचिपूर्वक विद्या अभ्यास करते थे।"

हमने कोथली जाकर अनेक व्यक्तियो से चर्चा चलाई तो आज भी वृद्ध पुरुष इनके प्रति मधुर स्मृतियुक्त पाये गये। तीन वर्ष पूर्व हमने एक सौ दस वर्ष के वृद्ध वावा भीमा से कोथली मे पूछा था, तव उन्होने देशभूषण महाराज की वहुत प्रशसा की थी।

मातृ सुख वचित वालक के पुण्योदय से इनकी नानी सत्यवती ने सात वर्ष तक वालगौडा को पाला।

आचार्य देशभूषण महाराज ने कहा था—"मेरी चाची पद्मावती मेरा वहुत सावधानी के साथ माता के सदृश ध्यान कर प्रेम से खिलाती-पिलाती थी।"

विद्या का अभ्यास प्रारम्भ करने से पूर्व सरस्वती (जिनवाणी) की पूजा की गई थी। स्लेट पट्टी पर चावल विछाकर सोने की अगूठी से मेरा हाथ पकड कर 'ॐ नम॰ सिद्धम्' लिखाया गया था। उस समय गुरुजी को एक नारियल और पाच पैसे भेट किये गये थे। दो वर्ष का कोर्स एक साल मे पूरा करने से अध्यापक हम पर वडा प्रेम रखते थे। पढने मे हम वहुत ध्यान देते थे। भूगोल तथा इतिहास मे रुचि थी। गणित मे कठिनाई पडती थी। ड्राईंग हमने अच्छी वनती थी। खेल-कूद मे हम नम्वर एक थे। सातवी कक्षा तक मराठी और कन्नडी पढी। अंग्रेजी का अभ्यास करना माता-पिता के दिवगत होने के कारण सभव नही था। परिस्थिति प्रतिकूल थी। अग्रेजी सीखने के लिए हमें चिकोडी जाकर पढना जरूरी था। उसके अनुकूल साधन नही थे।

बचपन में स्वच्छन्द प्रवृत्ति

मैने बचपन के जीवन के बारे में आचार्य श्री से पूछा तो उन्होने बतलाया—"पहले हम अपने साथियो के साथ खूब खाते-पीते थे। आम के मौसम मे बहुत से आमो को तोड़कर रात्रि को खाया करते थे। नारियल भी स्वय तोडकर बहुत खाते थे। हमारा आचार खान-पान के बारे में बचपन में अच्छा नही था। हम प्याज बहुत खाते थे, उसके बिना रोटी नही चलती थी। बैंगन, रतालू आदि भी खाया करते थे। तंदुरुस्ती अच्छी रहने से दिन मे तीन बार और रात को तीन बार खाते थे। सबेरे जाग कर भी तुरन्त खाये बिना नही रहा जाता था। रात-दिन का कोई भेद नही था। तीन बार मे कई सेर दूध पी जाया करते थे। हमसे कोई झगडा नही करता था। हमारा सबसे प्रेम रहता था। अन्यायपूर्ण स्थिति में हम दुष्टो की अच्छी ठुकाई किया करते थे। हमारे जीवन मे कोई व्यसन नही था। इतनी बात अवश्य है कि हमारे हाथ मे जैसे ही पैसा आता था वह साथी दोस्तों के साथ खाने-पीने मे समाप्त हो जाता था। सग्रह की आदत शुरू से नही थी।"

"बचपन में कई भूले भी हो जाया करती थी। एक दिन हमारे काका जिनगौडा (क्षुल्लक जिनभूषण) ने हमे २५) रुपये बैल खरीदने को दिये। हमने अपने दोस्तो के साथ रुपया खर्च कर दिया। वापिस आकर काका को कह दिया कि वह रुपया खर्च हो गया। काका जी ने हमे भविष्य मे ऐसा न करने के लिए हिदायत दी।"

एक दिन की विशेष घटना है—हमे मक्खन लाने को पांच रुपये दिये गये। बाजार मे चौपड का खेल चल रहा था उसमे दाव लगाने पर हम हार गये। दुबारा प्रयत्न करने पर फिर चार रुपये मिले। उनसे मक्खन लेकर जब मै घर पहुँचा तब काका ने पूछा—"इतना थोडा मक्खन कैसे लाये ?" मैने उनसे अपनी स्थिति स्पष्ट कह दी। उन्होने मेरी भूल को क्षमा किया। वे बडे दयालु स्वभाव के रहे है।"

शक्ति-सम्पन्न

महाराज ने यह भी बताया कि वे लोटा भर घी और आधा सेर गुड़ और कम से कम तीन सेर दूध तथा चार कच्चे नारियल खाया करते थे। वे बोझा उठाने (वेट लिफ्टिंग) में प्रवीण थे। तीन मन का बोरा एक हाथ

से उठाकर पीठ पर रख लेते थे। तीन गुण्डी पानी जिसमे आ जाये ऐसा घड़ा पीठ पर रख कर चलते थे।

वंश-परिचय

एक वार मैंने महाराज से उनकी वंश-परम्परा के वारे मे पूछा तव यह ज्ञात हुआ कि ये क्षत्रिय वर्ण की चतुर्थ जैन जाति मे उत्पन्न हुए। इनके पूर्वजो का वंश राज्य वंश था। आचार्य शान्तिसागर महाराज के परिवार के साथ इनका पारिवारिक सम्बन्ध रहा है।

वचपन से दीन दु.खी व्यक्तियो की सहायतार्थ जी खोलकर धन-धान्य देने की इनकी आदत थी। वचपन मे तथा किशोर अवस्था मे इनका वुद्धिमान तथा खिलाड़ी वालको मे प्रमुख स्थान था। कभी-कभी अन्याय और अत्याचार करने वाले गुण्डो की ठुकाई किया करते थे। इसलिए इनको देखते ही वदमाश लोग शान्त हो जाते थे।

एक दिन महाराज ने अपने वाल्य जीवन की एक मनोरंजक और महत्वपूर्ण घटना वताई।

शुकदेव मुनि का अभिनय

हमारी जन्मभूमि कोथली नगर मे एक नाटक मण्डली ने आकर खेल दिखाया। उसमे शुकदेव मुनि का अभिनय कौन करे यह समस्या थी। उस समय मैं पकड़ा गया। मैंने शुकदेव परमहस हिन्दू सन्यासी का अभिनय किया। मेरा वचपन मे किया हुआ अभिनय सभी जनता को वड़ा पसन्द आया। उसके वाद अन्य लोग मुझे देखकर प्राय. यह कहा करते थे कि देखो वह शुकदेव मुनि जा रहा है। कभी-कभी मैंने नारद मुनि का भी पार्ट किया है। मैं लिंगायत साधुओ का भी पार्ट किया करता था। इस प्रकार मेरे द्वारा वार-वार साधुओ का अभिनय होते देखकर मेरे फूफाजी ने नाटक मण्डली के संचालक को अपना रोष व्यक्त करते हुए कहा—"तुम हमारे लड़के को अभी से वैरागी वनाते हो। यदि वह घर मे ऐसा करेगा तो आगे चलकर घर छोड़कर एक दिन साधु वन जायेगा। फिर वह घर मे नही रहेगा।"

भविष्यवाणी

फूफाजी की कल्पना आज सत्य हो गई। महाराज के काका (वर्त-

मान क्षुल्लक (जिनभूषण महाराज) ने बताया कि जब ये शुकदेव व नारद मुनि का पार्ट करते थे तब सभी लोग इनके चरणो को आकर प्रणाम करते थे। आज ये आचार्यरत्न देशभूषण के रूप में हमारे समक्ष है और हम सभी लोग इनके चरणों को छूते हुए उनके आशीर्वाद द्वारा स्वय को कृतार्थ समझते है।"

यहाँ एक बात और मनोरजक है, कि जब दक्षिण यात्रा को आचार्य श्री गये तो लिगायत सम्प्रदाय के अनेक वृद्ध लोग इनको शुकदेव मुनि कह कर ही इनका स्मरण करते थे।
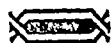
वैराग्य जागरण

•

वैराग्य का कारण

मैंने पूछा—"महाराज ! आप जैसे खिलाडी बालक का मन वैराग्य के रास्ते पर कैसे चला गया ?"

इस सम्बन्ध मे महाराज ने बताया—'हमारे एक दूसरे चाचा थे। उनकी दुकान मे घाटा हो गया। मैंने अपने हिस्से का रुपया उन्हे दे दिया। मेरे चाचा की स्त्री का मरण होने के बाद उन्होने दूसरी शादी की। हमारी चाची सुन्दर और रूपवती थी। दुर्दैव से उसने कुए मे गिरकर शादी के आठ दिन बाद ही प्राण त्याग दिये।

कुछ समय के बाद मुर्दा पानी के ऊपर आ गया। मैंने उस शव को देखा। डाक्टर ने सुन्दर शरीर का पोस्ट मार्टम (चीरा फाडी) किया। जो सुन्दर शरीर मित्रो को प्रिय लगता था, उसका मास, मज्जा, हड्डी आदि निकला हुआ देखकर मेरे मन को बड़ा धक्का लगा। उस शव को देखकर मै घबरा गया।

उससे हमारे मन मे बडी गहरी विरक्ति उत्पन्न हुई। मैंने अपने मन मे यही निश्चय किया कि मै कभी भी शादी नही करूगा। मेरे मन पर इतना धक्का लगा था कि मै चाची की दाह क्रिया मे भी नही गया। मै सोचा करता था ऊपर से सुन्दर दिखने वाला शरीर खून, मल, मूत्र, मासादि का भण्डार है। मूर्ख मानव ऊपरी सुन्दरता पर रीझता है। राग रूपी विप पीकर मानव जन्म को व्यर्थ गवाता है एक वर्ष तक वह करुणाजनक तथा भीपण दृश्य मेरी आंखो के सामने आ जाया करता था।

इस घटना ने मेरे जीवन मे बडा परिवर्तन कर दिया था। मेरा खाना पीना, आमोद-प्रमोद, मौज उडाना आदि अपने आप छूट गये। मैं सोचा

करता था कि यह जीवन इतना क्षणिक है। देखो, मेरे सामने यौवन काल मे इसका जीवन इस प्रकार नष्ट हो गया। सचमुच मे शरीर के भीतर खून, मास, हड्डी, मल, मूत्र आदि भरे पडे है। अज्ञानी और अविवेकी मानव झूठे सौन्दर्य पर रीझता है और मोह के बन्धन मे अपने को फसा कर मनुष्य जन्म को व्यर्थ करता है। उस समय मेरी अवस्था लगभग १६ वर्ष की थी।"

वैराग्य जागरण के लिए यथार्थ मे काल लब्धि बडा कारण है। भगवान ऋषभदेव की जब तक काल लब्धि नही आई थी, तब तक उन जैसा महान् ज्ञानी आत्मा जगत् के मोह जाल मे फंसी रही, किन्तु अप्सरा नीलाजना की मृत्यु देखकर उनके अतर्चक्षु विशेष रूप से खुल गए और क्षण भर मे हृदय मे वैराग्य का आलोक आ गया। उस समय विवेकी आत्मा वस्तु के स्वरूप पर गहरी निगाह डालने लगता है, उसे लगता है कि मै अशाश्वत भोगादि मे स्वय को कैदी बना रहा हू और शाश्वत निज स्वरूप का जरा भी विचार नही करता हू। जीवकचितामणि ग्रथ मे कहा कि महाराज जीवधर भगवान महावीर के समवशरण मे पहुचे। उन्होने कहा, हे परम ज्ञानियो मे श्रेष्ठ प्रभो! जन्म और मरण से घिरा हुआ यह जीवन मृत्यु का ग्रास होकर नष्ट हो जाता है। मैने सावधानी पूर्वक जीवन के स्वरूप का गहरा परीक्षण किया, उससे मेरे हृदय जगत् के प्रति निराशा तथा पीड़ा उत्पन्न हुई[1]। ऐसी हृदय की पीड़ा ही व्यक्ति को वीरागता के प्रशस्त पथ पर पहुचाती है।

महापुराण मे लिखा है चक्रवर्ती वज्रदत महाराज अनेक राजाओ से घिरे हुए सिहासन पर आनन्द पूर्वक विराजमान थे। वनपाल ने एक सुन्दर सौरभपूर्ण कमल महाराज को अर्पण किया। उसे देखकर महाराज बड़े हर्षित हो रहे थे। बार-बार कमल को सूंघ रहे थे। इतने मे उनकी दृष्टि कमल के भीतर भरे सौरभ लोलुपी भ्रमर पर पडी। उसे देखकर उनकी मनोभूमि मे अद्भुत परिवर्तन हो गया। वे सोचने लगे, "अहो! यह मदोन्मत्त

---

1. Oh king of the wise saints, life characterised by birth and death is gradually nibbled and digested by death After carefully examining the nature of life, I have a feeling of disgust and pain (Jain Antiquary p 21 Vol XXV-No 1)

भ्रमर इस पद्म की सुगन्धि से आकृष्ट होकर यहाँ आया था और रस पान करता रहा तथा सूर्यास्त हो जाने से घिर कर मर गया। वास्तव मे विषय प्रारम्भ मे मधुर लगते हैं किन्तु अन्त मे अनिष्ट फल देते हैं इन्हे धिक्कार है, इस शरीर को भी धिक्कार है, जो विषय भोगो का साधन है और शरद् ऋतु के मेघो के समान देखते-देखते विलीन हो जाता है। वे गभीर तत्त्व चिन्तन मे निमग्न हो गए। सारे विश्व के यथार्थ स्वरूप पर उनकी दृष्टि गई।" महापुराणकार चक्रवर्ती के मनोभावो का चित्रण करते हुए कहते हैं—

भोगान् भो गाढमीहन्ते कथमेतान्, मनस्विनः,
ये विलोभयितुं जन्तून् आयान्ति च वियन्ति च ।।६९।।
वपुरारोग्यमैश्वर्यं यौवनं सुखसम्पदः
वस्तु वाहनमन्यच्च सुरचापवदस्थिरम् ।।७०।।

हे मनस्वी मानवो! तुम इन भोगो को प्राप्त करने के लिए क्यो महान प्रयत्न किया करते हो, जो तुम्हे लुभाने के लिए आते है और शीघ्र लुभाकर चले जाते है।

यह शरीर, आरोग्य, वैभव, यौवन सुख-सम्पत्ति, पदार्थ, वाहन आदि सभी सामग्री इन्द्र धनुष के समान अस्थिर है।

सुखं दुखानुबंधीदं सदा सनिधनं धन।
संयोगा विप्रयोगान्ता विपदन्तश्च सम्पदः ।।७१।।

सुख दु ख का साथी है। धन सदा तप सहित है, सयोग का धर्मावसान वियोग मे है, सम्पत्ति के अनन्तर सकट घेरा करते हैं।

ऐसी पावन विचार धारा से वज्रदंत महाराज की मानसिक मलिनता दूर हो गई और उन्होने श्रेष्ठ त्याग मुक्त दिगम्बर रूपता स्वीकार कर ली।

इसने यह स्पष्ट होता है कि जिन जीवो की होनहार अच्छी है वे वस्तु के यथार्थ स्वरूप को विचार कर राग के अन्धकार से निकल वैराग्य के प्रकाशपूर्ण पथ मे प्रवृत्त होते हैं।

सन्त-समागम—

मैने पूछा—"क्या बचपन मे आप ने अपनी जन्म भूमि से पाच मील की दूरी पर स्थित भोज ग्राम की विभूति शान्ति सागर आचार्य महाराज का दर्शन किया था?"

महाराज ने बताया—'मेरी उम्र पाच-छः वर्ष की रही होगी, जब क्षुल्लक के रूप मे शान्ति सागर महाराज ने हमारे घर में आहार हेतु पदार्पण किया था। आहार के उपरान्त हमारी आजी मा (अम्मा जी) ने मेरी गर्दन पर हाथ रखकर मेरा सिर महाराज के चरणों में रख दिया और महाराज से कहा—'महाराज! यह बच्चा निराधार है। इसे आशीर्वाद दीजिए।'

शान्तिसागर महाराज ने मेरे सिर पर पीछी रख कर आशीर्वाद दिया और कन्नड़ भाषा मे कहा—'कल्याण बागाली'—तुम्हारा कल्याण हो।

उन महापुरुष के आशीर्वाद के फल स्वरूप मुझे दिगम्बरत्व की पदवी पाने का सौभाग्य मिला और आज मै दिगम्बर साधु का शान्तिदायी जीवन तथा आनन्द का अनुभव ले रहा हू।

आचार्य पायसागर जी का दर्शन लाभ

आचार्य पायसागर जी मेरी जन्म भूमि से चार मील दूरी पर स्थित गलतगा ग्राम में आये थे। मैंने उनका उपदेश सुना। उनकी वाणी का जनता पर वड़ा प्रभाव पडता था। उनके दिव्य उपदेश से मेरा विरक्त मन वहुत प्रभावित हुआ। मैंने अष्टमूलगुण धारण किये और अपने प्रिय पदार्थ प्याज, गाजर, वैगन, रतालु आदि का जीवन भर के लिए त्याग कर दिया। पायसागर महाराज अद्भुत प्रभावशाली साधु हो गये हैं। उनके स्वर्गारोहण पर लाखों लिंगायत, वीर, शैव आदि लोगों ने उनकी स्मृति में उपवास किया था क्योंकि वे पायसागर महाराज को अपनी आत्मा का गुरु मानते थे। पायसागर महाराज का व्यक्तित्व लोकोत्तर था।

गुरुदेव आचार्य जयकीर्ति महाराज

इसके अनन्तर जयकीर्ति नाम के शान्त, सौम्य, तेजस्वी तथा मनस्वी दिगम्बर गुरु महाराज का हमारे ग्राम में शुभागमन हुआ। उन्होंने मेरा तथा मेरे साथ में दो सौ बालकों का मौजी वन्धन (यज्ञोपवीत) सस्कार करवाया था। वे वाल ब्रह्मचारी साधु बडे आकर्षक थे। शरीर सुन्दर था, सुदृढ था और बाल ब्रह्मचारी होने के कारण उनका मुख तेज-पुञ्ज था। जब वह सामायिक के समय ध्यान करने बैठते थे तब ऐसा लगता था कि साक्षात् कोई दिव्य मूर्ति ध्यान में निमग्न है। उनके दर्शन से हृदय

प्रफुल्लित हो जाया करता था। उनके पास जाने पर वार-वार मन मे यही इच्छा होती थी कि इनके चरणो का मै शरण ग्रहण करूँ।

उन्होने कोथली से चलकर अतिशय क्षेत्र स्तवनिधि मे चातुर्मास किया। वहा मै उनके शरण मे पहुचा। मै प्रति रविवार को उनके पास जाया करता था। दो रविवार के वाद जब मै उनके पास गया तो फिर घर लौटने का मन ही नही किया। उनकी प्रेरणा से मैने जैनसिद्धान्तप्रवेशिका का अभ्यास शुरु किया। कुछ समय के वाद मैने उनसे ब्रह्मचर्य व्रत लिया और उनके सघ मे हो गया। मेरे प्रारम्भिक जीवन पर जयकीर्ति महाराज का वडा प्रभाव रहा।

एक दिन मैने आचार्य देशभूषण महाराज मे उनके गुरु की चर्चा चलाई, क्योकि एक वार मे उनके सभी सस्मरण प्राप्त कर लेना सम्भव नही है। यह भी वात है कि वे अपना सस्मरण लिखाने व जीवन चरित्र लिखने नही बैठते। यह निस्पृह और आत्मदर्शी पवित्र हृदय महापुरुप है। कभी लहर आ गई और कृपा हो गई तो कोई वात मिल जाती है जो जन साधारण के लिए अनमोल निधि सिद्ध होती है। मैने पूछा—"महाराज आपके गुरु जयकीर्ति महाराज के वारे मे कुछ और वताइये?"

उनको अपने ब्रह्मचारी जीवन की एक वात याद आ गई।

कठोर अनुशासन

उन्होने कहा—"जब मै ब्रह्मचारी था, तव गुरु का मुझ पर वडा प्रेम था लेकिन यह प्रेम कठोर अनुशासन से परिपूर्ण था। उनके कडे अनुशासन के कारण ही मै अपने जीवन मे पर्याप्त सशोधन और सुधार कर सका। वे मुझे आहार ग्रहण करने के लिए जाने की आज्ञा उस समय तक नही देते थे जब तक कि मै उनके द्वारा दिया गया पाठ अच्छी तरह से याद करके नही सुना दिया करता था। मै उनके चरणो के समीप ही सोता था। मुझे वहुत कम समय सोने को मिलता था। उनकी कडाई के कारण मै मजबूर होकर अभ्यास करता था। आज वह उनकी कडाई मुझे याद आती है कि वह मेरे लिए अमृत फल रूप मे परिणत हो गई। वे मेरा उठना-वैठना, चलना फिरना, बात करना सभी क्रियाओ पर कडी दृष्टि रखा करते थे।"

अपने गुरु जयकीर्तिजी महाराज के वारे मे महाराज ने कहा "कि वे महान् तपस्वी थे। बाल ब्रह्मचारी थे। वे बहुत उपवास करते थे। उस

तपस्या की अग्नि मे उनकी आत्मा ने अद्भुत् विशुद्धता प्राप्त की थी। उनका शरीर तप के तेज से बडा दिव्य लगता था। उन्होने सिह निष्क्रीडित तप को आरम्भ किया। उपवासो की परम्परा मे उनका शरीर अधिक क्षीण हो गया जिससे वे शीघ्र स्वर्गवासी हो गये। उनका आदर्श समाधिमरण शिखर जी के पास ईशरी मे हुआ था। मेरा यह दुर्भाग्य रहा कि मै उनकी सेवा करके अपने को कृतार्थ नही कर सका। वे उपवास करते-करते १५ उपवास तक बढाते गये। उसके बाद क्रम-क्रम से वे उपवास न्यून करते गये। इस कडी तपस्या के कारण उनके शरीर ने उनका साथ छोड दिया।"

उत्तराधिकारी

जब जयकीर्ति महाराज से लोगोने पूछा—कि "आप स्वर्गारोहण कर रहे है, आपका उत्तरदायित्व कौन सभालेगा ?"

उस समय उन्होने कहा "मेरा शिष्य देशभूषण नागपुर मे चातुर्मास कर रहा है वही मेरी सयमरूपी साधना का उत्तराधिकारी होगा।'

यह भी ज्ञात हुआ कि जयकीर्ति जी महाराज कोल्हापुर जिले के हेरले ग्राम के निवासी थे। उनके अक्षर अत्यन्त सुन्दर थे। एक पोस्टकार्ड मे वे तत्वार्थ सूत्र तथा भक्तामर स्तोत्र के ४८ काव्य लिख लेते थे। उनका उपदेश हृदयस्पर्शी, मधुर और मार्मिक हुआ करता था। ग्रन्थ लेखन मे उनकी विशेष रुचि थी।

आचार्य पद

देशभूषण महाराज को दीक्षा लिए हुए चालीस वर्ष से अधिक हो गया। इनका सूरत मे चातुर्मास था। सूरत की जैन समाज ने इन्हे सूरत के चातुर्मास मे आचार्य पद देना चाहा, तव इन्होने उसे लेने से इनकार किया और कहा कि मेरे गुरु जयकीर्ति महाराज का तो स्वर्गवास हो गया है, किन्तु उनके भी गुरु आचार्य पायसागर जी महाराज विद्यमान है जो दादा गुरु है। समाज की ओर से कुछ जिम्मेदार प्रतिनिधि आचार्य पायसागर जी महाराज की सेवा मे उपस्थित हुए। प्रतिनिधि मण्डल की वात सुनकर पायसागर जी महाराज प्रसन्न हुए।

उनकी स्वीकृति प्राप्त कर सूरत की जैन समाज ने देशभूषण महाराज को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया था।

आचार्य रत्न

इसके पश्चात् दिल्ली की विशाल जैन जनता ने आचार्य देशभूषण जी महाराज को आचार्य रत्न कहकर उनके प्रति विशेष आदर-भाव व्यक्त किया।

संयम का विकास

आचार्य देशभूषण महाराज के सयमी जीवन का कैसे विकास हुआ इस विषय मे उनसे जब मैने चर्चा की तब उन्होने कहा—"भौतिक शरीर की जन्म भूमि तो कोथली कोल्हापुर है किन्तु सयमी के रूप मे हमारा पुनर्जन्म नागपुर के समीपवर्ती अतिशय क्षेत्र रामटेक मे हुआ जहा भगवान शान्तिनाथ की विशाल और प्रभावशाली दिव्य मूर्ति शोभायमान है।

क्षुल्लक दीक्षा

रामटेक मे हमे क्षुल्लक दीक्षा मिली थी। हमनें सयम रूप में नव-जीवन प्राप्त किया था। उस समय दीक्षा के पूर्व मैनें शान्तिनाथ भगवान का पचामृत अभिषेक किया था। इसके पश्चात् हमे ऐलक दीक्षा मिली।

मुनि दीक्षा

दो माह बाद कुन्थलगिरि पहुचने पर हमे जैनेश्वरी दिगम्बर मुनि की दीक्षा परमपूज्य गुरुदेव जयकीर्ति महाराज के द्वारा प्राप्त हुई। वहाँ से देशभूषण और कुल भूषण भगवान मोक्ष गये थे इसलिए गुरुदेव ने मेरा नाम देशभूषण रखा। तीन चार दिन के बाद वहा धर्ममती माता जी को आर्यिका की दीक्षा दी गई थी।

अभिषेक के विषय मे आगम

कुछ भाइयो के मन मे पचामृत अभिषेक की बात सुनकर कल्पना उठा करती है कि यह कार्य विशुद्ध जैन धर्म और उसकी पवित्र परम्परा के अनुकूल नही है। मेरी भी पहले ऐसी समझ थी किन्तु प्रात. स्मरणीय आचार्य शान्तिसागर महाराज के निमित्त से मेरे विचारो मे परिवर्तन हुआ। बारामती मे दूध दही आदि से भगवान का अभिषेक हो रहा था। मैंने अभिषेक नही किया। आचार्य महाराज ने पूछा, पडित जी तुमने अभिषेक

क्यो नही किया ? मैने कहा—महाराज हम लोग तेरहपथी है। हमारे यहा पचामृत अभिषेक नही होता।

महाराज ने कहा "पंथ की क्या बात करते हो, आगम को तो मानते हो, उसकी जो आज्ञा हो उसे स्वीकार करना चाहिए।" मैने कहा, "आगम हमारा प्राण है, जिन वाणी की आज्ञा हमे शिरोधार्य है।" इसके पश्चात् पद्मपुराण, हरिवशपुराण आदि स्वर्गीय सेठ रावजी सखाराम दोसी सोलापुर ने हमारे सामने लाकर उपस्थित कर दिए। उनको पढकर मैने आचार्य महाराज से कहा—महाराज शास्त्र मे पचामृत अभिषेक का वर्णन आया है। मै आगम पथी हूँ, इसलिए शास्त्र की आज्ञा को स्वीकार करता हूँ। मेरे समक्ष पद्मपुराण का प्रमाण रखा गया था जिसका अनुवाद पडित दौलत राम जी ने हिन्दी टीका मे इस प्रकार किया है।

"जो नीर कर जिनेन्द्र का अभिषेक करै, सो देवोकर मनुष्यन कर सेवनीक चक्रवर्ती हो, जिसका राज्याभिषेक देव, विद्याधर करै और जो दुग्ध कर अरहत का अभिषेक करे सो क्षीरसागर के जल समान उज्ज्वल विमान के विषै परम काति धारक देव हो, फिर मनुष्य होय मोक्ष पावे और जो दधिकर सर्वज्ञ वीतराग का अभिषेक करे, जो दधि समान उज्ज्वल यश को पायकर भवोदधि को तरे और जो घृतकर जिननाथ का अभिषेक करै सो स्वर्ग विमान विषै महा बलवान देव हो परपराय अनन्त दीप्ति को धरै और जो इक्षुरस कर जिननाथ का अभिषेक करै, सो अमृत का आहारी सुरेश्वर पद पाय मुनीश्वर हो, अविनश्वर पद पावै।

अभिषेक के प्रभाव कर अनेक भव्य जीव देवो कर इन्द्रोकर अभिषेक पावते भये। जिनकी कथा पुराणो मे प्रसिद्ध है।"

मूल ग्रन्थ का प्रमाण इस प्रकार है—

अभिषेक जिनेन्द्राणां कृत्वा सुरभि वारिणा।
अभिषेकमवाप्नोति यत्र यत्रोपजायते ॥ १६५ ॥
अभिषेक जिनेन्द्राणां विधाय क्षीरधारया।
विमाने क्षीर धवले जायते परमद्युतिः ॥ १६६ ॥
दधिकुंभैर्जिनेन्द्राणा य. करोत्यभिषेचनम्।
दध्याकुट्टिमे स्वर्गे जायते स सुरोत्तमः ॥ १६७ ॥
सर्पिषा जिननाथानां कुरुते योऽभिषेचनम्।
कान्ति-द्युति-प्रभावाढ्यो विमानेश स जायते ॥ १६८ ॥

अभिषेकप्रभावेण श्रूयन्ते बहवो बुधाः।
पुराणेऽनंतवीर्याद्या द्यु-भू-लब्धाभिषेचना ॥ १६६ ॥

हरिवंश पुराण मे पचामृताभिषेक का कथन इस प्रकार पाया जाता है।

क्षीरेक्षुरस धारौघैर्घृत दध्युदकादिभिः।
अभिषिच्य जिनेन्द्रार्चामर्चितां नृसुरासुरैः ॥ २१ ॥ सर्ग २२ ॥

वसुदेव ने दूध, इक्षुरस, दही तथा जल आदि के द्वारा मानव, देव तथा असुरो के द्वारा पूजित जिनेन्द्र का अभिषेक किया।

महत्व की बात

अभिषेक पाठ संग्रह नाम के महत्त्वपूर्ण संग्रह ग्रन्थ मे पन्द्रह अभिषेक पाठो का संग्रह किया गया है। ये पाठ पाचवी शताब्दी से लेकर सोलहवी शताब्दी के ग्रन्थकारो द्वारा रचित है। प्रकाण्ड विद्वान् पन्नालाल जी सोनी ने प्रारंभिक वक्तव्य में लिखा है "इस संग्रह पर से उन शकाओ का निरसन हो जाता है जो पक्षपात वश किंवदन्ती के रूप मे चल पड़ी है कि पचामृत अभिषेक काष्ठासघ का है। पीछे से भट्टारको ने मूल सघ मे उसे स्थान दिया है और इससे वीतरागता नष्ट हो जाती है इत्यादि। पूज्यपाद-स्वामी रचित महाभिषेक काष्ठासघ की उत्पत्ति के तीन शताब्दी पहिले का है।"

इस संग्रह मे पूज्यपाद स्वामी, आचार्यगुणभद्र, सोमदेवसूरि, आचार्य अभयनदि, महाकविराजांकुश, प० आशाधर जी, अपप्पार्य कवि, आचार्य नेमिचन्द्र इंद्रनन्दी आचार्य, सकलकीर्ति आचार्य, शुभचन्द्र भट्टारक, आदि के द्वारा रचित अभिषेको का संग्रह किया गया है। इससे अभिषेक की मान्यता दि०जैन शास्त्रोक्त सिद्ध होती है। यह व्यक्तिगत रुचि का विषय हो सकता है कि कोई पचामृत अभिषेक करे या न करे, किन्तु उसकी प्रामाणिकता को अस्वीकार नही किया जा सकता है।

विचारणीय

जो लोग जल मात्र से ही अभिषेक को शास्त्र सम्मत मानते हैं वे लोग हजारो की संख्या मे विपुल-द्रव्य खर्च करने के उपरान्त श्रमण वेलगोला जाकर घी, दूध, केशर, चंदन आदि विविध द्रव्यो के द्वारा बाहु-

बली भगवान का अभिषेक देखकर अपने को कृतार्थ क्यो मानते हैं ? यदि उन्हें जल मात्र का अभिषेक देखना है तो प्रतिवर्ष वर्षा के समय मे वे वहां जाकर जलाभिपेक देख सकते है, इससे प्राकृतिक सौन्दर्य के दर्शन होगे। अर्थ का व्यय भी न होगा। वास्तव मे बात यह है कि हममे पथ मोह नही रहना चाहिए, आगम के कथन पर पूर्ण श्रद्धा चाहिए।

स्व० आचार्य शातिसागर महाराज की पूज्यता तथा श्रेष्ठता को सभी पथ वाले स्वीकार करते है। कुथलगिरि मे उन्होंने यम सल्लेखना ली थी। ३६ दिनो की सल्लेखना मे वे प्रति दिन पचामृत अभिषेक बड़े ध्यान से देखा करते थे, गधोदक लेते थे। यदि यह कार्य धर्म तथा सस्कृति विरुद्ध होता, तो वे अपनी महान तपस्या के काल मे अभिषेक देखने का कष्ट क्यो उठाते ? उनके इशारे मात्र से वह कार्य बन्द हो जाता।

एक दिन आचार्य महाराज ने मुझसे कहा था, "मेरा प्राण जिनागम है। मै उसकी आज्ञा को सर्वदा पूज्य मानता हूँ।" ऐसी ही हमारी श्रद्धा होनी चाहिए। हमने इस विषय मे इसलिए थोडा प्रकाश डाला, कि प्रायः अनेक लोग पचामृत अभिषेक देखकर शका किया करते है। हमारा कर्त्तव्य है कि हमे अपनी श्रद्धा आगमोक्त कथन की ओर ले जानी चाहिए। अपने विचारानुसार आगम को नही बदलना चाहिए। आगम के अनुसार श्रद्धा करना सम्यक्त्वी का परम कर्त्तव्य है।

धर्ममती माताजी का अनुभव

आर्यिका धर्ममती माताजी व्रत पालन मे बड़ी दृढ है। वे वर्धा मे थी तब उन्होने ३२ उपवास किये थे। उन्होने मागुर चातुर्मास मे चार माह पर्यन्त केवल चांवल का मांड ही लिया था। उपवास भी उनका चला करता था। वे वयोवृद्धा माताजी बड़ी सात्विक प्रकृति की है। आचार्य देशभूपण जी महाराज के वारे मे कहने लगी कि "महाराज वडे प्रेम और मृदुता से सघ का सचालन करते हैं। पडित जी ! क्या वताये महाराज हम लोगो को एक भी कडा शब्द नही वोलते। इनके गुरु जितने कड़े रहे हैं उतना ही मृदु इनका स्वभाव है।"

ज्ञानभूमि

देशभूषण महाराज ने १५ अगस्त १६७० की चर्चा के प्रसग में यह

कहा कि "मेरे ज्ञान की जन्म भूमि सिवनी है। पडित दिवाकर जी के पिता सिंघई कुवरसेन जी महान् शास्त्रज्ञ प्रभावशाली और ज्ञानी पुरुष थे। उनको देखकर मुझे डर लगता था। यद्यपि वे मुझ पर वड़ा प्रेम करते थे और वहुत उत्साह दिया करते थे। उनके द्वारा मेरा वड़ा उपकार हुआ। एक दिन मैं सिवनी के जैन मन्दिर से लगी हुई धर्मशाला मे वैठा हुआ था। धर्मशाला के नीचे के भाग मे कुछ स्त्रियाँ (जिनमे दिवाकर जी की परम धर्मात्मा भाभी इन्द्राणी वाई मुख्य थी) गोम्मटसार की सूक्ष्म चर्चा कर रही थी। वहाँ पास मे वैठे एक शास्त्री से उनके प्रश्न का उत्तर नही वन पड़ रहा था। यह दृश्य देखकर मेरे मन मे भय का सचार हुआ और मैंने सोचा यदि मैं यहाँ रहूंगा तो मेरे अज्ञान की कलाई खुल जायेगी। मैं सोच रहा था कि शीघ्र ही सिवनी से अन्यत्र चला जाऊ लेकिन पं० जी के पिता जी ने एक अनुभवी वृद्ध शिक्षक को मेरे पास भेजा। वे शिक्षक कहते थे कि आपको पाठ पढ़कर सुनाते हैं। यह नही कहते थे कि हम आपको पढ़ाते हैं। वड़ी चतुरता से उन्होने हमे हिन्दी भाषा का परिज्ञान कराया और वह अध्ययन मेरे विकास के लिए वड़ी पूँजी वन गया। पडित दिवाकर जी ने मेरे अध्ययन आदि मे जिस प्रकार का योग दिया, उसे मेरा अन्त.करण ही जानता है।" आचार्य श्री की यह वाणी सुनकर मैंने कहा—महाराज हम तो आपके चरणो के सेवक हैं। हमने कुछ नही किया। महाराज वोले—"पडित जी! तुमने जो कार्य किया है। उसे मैं कैसे भूल सकता हूं?'

आन्तरिक प्रकाश प्रदाता

•

आचार्य देशभूषण महाराज का जीवन आचार्य शातिसागर महाराज से बहुत प्रभावित हुआ है। वे उन्हे अपना आन्तरिक प्रकाश तथा प्रेरणा दाता कहा करते है। आचार्य महाराज के कारण इनका जीवन सयम के सौरभ से सपन्न हुआ है।

मैंने आचार्य शान्तिसागर जी के बारे मे कुछ बाते सुनाने की प्रार्थना की, तब देशभूषण महाराज ने कहा "मै आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के पास जाया करता था तथा अपने दोषो तथा दूषणो का प्रतिपादन कर उनसे प्रायश्चित्त मागा करता था क्योकि मैने उस समय प्रायश्चित्त ग्रन्थ नही पढे थे।"

प्रायश्चित्त चर्चा

एक दिन मैने आचार्य शान्तिसागर जी महाराज से पूछा "महाराज! मै आपके पास आकर प्रायश्चित्त ले लिया करता हू, किन्तु यदि गुरुदेव का समागम या आचार्य का सान्निध्य न मिले तो क्या करना चाहिये?"

उत्तर—आचार्य महाराज ने कहा, "ऐसी स्थिति मे भगवान् को साक्षी करके प्रायश्चित्त लेना चाहिये।"

प्रश्न—"भगवान् तो बोलते नही, किस पाप का क्या प्रायश्चित्त है, यह बात कैसे जानी जाय?"

उत्तर—"तुम प्रायश्चित्त शास्त्र का अच्छी तरह मनन करो। उसके द्वारा सब बाते स्पष्ट हो जाया करेगी किन्तु इतना अवश्य ध्यान रखो वि बात को ठीक तरह समझे बिना किसी को प्रायश्चित्त मत दो।" यह [illegible]

पुस्तक, रत्नकरण्ड, द्रव्य सग्रह, नाममाला, सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थो का अध्ययन किया है।"

प्रश्न—साधु के मूल गुण कितने है ? और चारित्र कितने प्रकार का है ? आवश्यक क्रियाएँ कितने प्रकार की है ?

उत्तर—मैने उत्तर दिया—"२८ मूल गुण होते है। तेरह प्रकार का चारित्र होता है और ६ प्रकार की आवश्यक क्रियाएँ होती है।"

प्रश्न—आवश्यक क्रियाएँ कितनी है यह तो तुमने बता दी। यह बताओ—आलोचना और प्रतिक्रमण के कितने भेद है। ऐसी ही कुछ बाते और पूछी ? उत्तर देने मे मै कुछ गड़बड बोल गया।

मार्मिक मार्गदर्शन

उन्होने कहा—"ग्रन्थ पढकर तुम तोता बनना चाहते हो। इन सब ग्रन्थो को पढकर क्या किया ? तुम्हे मुनि धर्म का ग्रन्थ मूलाचार बहुत गहराई से पढना चाहिए तथा मनन करना चाहिए। जब तुम्हारी जड ही मजबूत नही है, तव इष्ट फल की प्राप्ति कैसे होगी ?"

मैने कहा—"महाराज ! आप की सेवा मे इसीलिए आया हू। आपकी शरण लेने से मेरी भूल की जाच हो जाय और मेरा जीवन तथा सयम परिशुद्ध हो जाय।"

प्रश्न—तुम्हारे साथ कोई और साधु है या नही ? क्या तुम अकेले हो ?

उत्तर—महाराज मेरे साथ एक ब्रह्मचारी है।

साधु का अकेला रहना आगम विरुद्ध कार्य है

महाराज ने कहा "तुम अकेले क्यो घूमते हो ? स्वच्छन्द बनकर अकेले कभी नही फिरना चाहिए ? अकेले फिरने से स्वच्छन्दता आती है और मनुष्य अव्रती लौकिक जनो के सम्पर्क मे आकर अपने व्रत, नियम की परवाह न करके स्वच्छन्द बन जाया करता है। अकेले फिरने मे साधु मे अनेक दोप पैदा हो जाते है देखो शास्त्र मे यह कहा है कि शत्रु हो तो भी उसको अकेले नही फिरना चाहिये।"

देशभूषण महाराज ने कहा—"महाराज, मेरे साथ एक क्षुल्लक था, जो बीमार होने से दूसरे गाव मे रह गया है। इसलिए मैने एक ब्रह्मचारी

को साथ मे रख लिया। अब मैं आपकी आज्ञानुसार अकेला नही रहूगा।" वहा उनके पुण्य चरणो के समीप मेरे तीन-चार दिन व्यतीत हुए। मैंने देखा आचार्य महाराज की दृष्टि मे साधु का अकेला फिरना बडा दोषपूर्ण कार्य था। वह अकेले और स्वच्छन्द बनकर फिरते हुए उद्दण्ड वृत्ति को अगीकार करने के तीव्र विरोधी थे। यह दुर्भाग्य की बात है कि आजकल अनेक साधु अकेले रह कर आगम के विरुद्ध आचरण करते है।

प्रश्न—मैने आचार्य देशभूषण जी महाराज से कहा—"आचार्य महाराज शान्तिसागर जी मे आपको क्या विशेषता दिखी ?"

उत्तर—"आचार्य शान्तिसागर महाराज मे धार्मिक वात्सल्य अद्भुत था। छोटे त्यागी और साधु को देखकर भी वे बडा प्रेम करते थे।"

अद्भुत वात्सल्य

इस विषय को स्पष्ट करते हुए आचार्य देशभूषण महाराज ने बताया —"जब मैं नाद्रे से चलने लगा, तब आचार्य शान्तिसागर महाराज ने धार्मिक वात्सल्य से प्रेरित हो कुटी से बाहर आकर चलते समय थोडी दूर तक मेरा साथ दिया। मैंने प्रार्थना की—"महाराज! आप अपने स्थान पर ही विराजमान रहिये। मुझ जैसे छोटे व्यक्ति के लिए आप यह कष्ट क्यो करते है ?"

उन्होने कहा—"तुम हमारे छोटे भाई हो। तुम्हारे जाते समय हम तुम्हारे लिए बाहर आए है। तुम अच्छी तरह व्रत-नियम आदि शास्त्र के अनुसार पालन करना। सयम पालन करने मे कभी डरना नही। प्रमाद तथा झूठी लोक प्रतिष्ठा के कारण अपने सयम को दूषित नही करना। देखो देशभूषण! यह महाव्रती का जीवन बहुत बडी निधि है। इसको मिथ्यात्वियो के साथ रह कर मलिन नही करना। अपनी प्रशसा व पर की निंदा के कुचक्र मे अपने को बचाना। आत्मा का स्वरूप निन्दा और प्रशसा रूप बन्धनो से परे है। इसलिए प्रशसा, निन्दा, स्तुति आदि के कुचक्र से बचते रहना और बिना भय के महाव्रतो को निर्दोष पालना। धर्म की प्रभावना और आत्मा की प्रभावना करते रहना। इससे तुम्हारा कल्याण होगा और जगत् का भी हित होगा।

इतना कह कर महाराज वापिस हो गये और मैं आगे बढा, देशभूषण महाराज ने कहा—'आचार्य शान्तिसागर महाराज की मुझ पर बडी अनु-

कम्पा तथा कृपा और प्रेमपूर्ण दृष्टि थी। प्राय: आचार्य श्री अपने पास आने-जाने वाले लोगो से पूछा करते थे और मेरे वारे मे वस्तुस्थिति का पता लगाते थे। वे पूछते थे—"देशभूषण का क्या हाल है? कैसी धर्म प्रभावना करता है?" इसके वाद मेरा समाचार सुनकर वे सन्तुष्ट होते थे। ऐसा समाचार मुझे भी प्राप्त हुआ करता था।"

"जव उन्होने कुन्थलगिर मे सन् १९५५ मे यम सल्लेखना ली थी उस समय मै दिल्ली मे था क्योकि मेरा वहा चातुर्मास था। उस समय मैंने लोगों के द्वारा महाराज के पास सन्देश भेजकर यह आज्ञा चाही थी कि उनके सल्लेखना के समय मुझे उनके समीप पहुंचने की यदि आज्ञा मिल जाय तो मै अपने श्रेष्ठ गुरुदेव के चरणों की सेवा कर सकूँगा। उससे मेरे जीवन को प्रेरणा और प्रकाश मिलेगा।"

आचार्य शान्तिसागर महाराज ने लोगो से कहा था—"देशभूषण यहा आएगा तव तक मै यहां नही रहूगा। अव मेरा थोडा समय शेष है। मेरा जीवन दीप वुझने को है। देशभूषण को कह दो कि उसे ऐसा काम नही करना चाहिए जो शिथिलाचार का पोषण करे अथवा जिससे लोकापवाद हो। मै तो नही रहूगा, इस शरीर मे मेरे जाने के वाद लोगो को वस्तुस्थिति समझाकर समाधान कौन करेगा? चातुर्मास का समय है। देशभूषण को यह उचित है कि शान्ति धारण करते हुए धर्म पालन मे सदा सतर्क और सुदृढ रहे। जैसा मैने मुनि धर्म का पालन किया है ऐसा ही देशभूषण को करना चाहिए।"

महत्वपूर्ण मार्गदर्शन

"उनका सन्देश प्राप्त कर मैं उसके प्रकाश मे चला करता हूँ। उन्होने यह वात मुझसे अनेक वार कही थी—देखो जहा तुम्हारे सयम मे वाधा हो, और महाव्रतो मे दूषण लगता हो, जहा अधर्मी लोग अधिक हो, धर्म विद्वेषी साधु वर्ग के निन्दक अधिक हो, ऐसे सयम घातक और असयम पोषक वातावरण मे अपना अधिक समय नही देना चाहिए। ऐसी परिस्थिति मे सयम का रक्षण करने मे वाधा आती है। लोगो को खुश करने के लिए अपने सयम पालन मे परिवर्तन करना हितकारी नही है। वार-वार मूलाचार और अनगारधर्मामृत आदि सयमो के शास्त्रो को पढो। वे ही तुम्हारा मार्ग दर्शन करेगे।"

धर्म प्रभावना

"धर्म की प्रभावना होते हुए देखकर उनके हृदय मे ऐसा उल्लास और हर्ष होता था जैसे सूर्य को देखकर कमल खिल जाता है। वह मेरे वारे मे लोगो से समाचार सुनकर विशेष प्रसन्नता व्यक्त किया करते थे।"

स्मरणीय वात

मैने भी देखा है, कि श्राचार्य शातिसागर महाराज की श्राचार्यरत्न धर्म गौरव देशभूषण महाराज पर वडो कृपा थी। वे उन्हे तेजस्वी प्रभावक महान साधु मानते थे। वे वर्तमान साधुश्रो मे सबसे अधिक तप रूपी सपत्ति सपन्न है। ये ही श्रत्र प्रधान श्राचार्य (Senior most Saint) है। श्रतः सभी श्रागम भक्त साधुश्रो श्रादि के द्वारा प्रथम वदनीय है। श्रागम की श्राज्ञा है कि सयम सपन्न पुरातन साधु पश्चात्, सयम धारक साधुश्रो के द्वारा वदनीय है। श्राचार्य विमलसागर महाराज ने श्रगस्त १९७४ को शिखर जी से लिखे पत्र मे हमे सूचित किया था कि "श्राज सयम की दृष्टि से वरिष्ठ श्राचार्य देशभूषण महाराज हम सवकी प्रणामाजलि के पात्र है।" मोक्षाभिलाषी साधुश्रो को धर्म की श्राज्ञा को नही भूलना चाहिए। क्यो कि इससे सम्यकत्व को क्षति पहुँचती है। सम्यकत्व की रक्षा करना प्रथम कर्तव्य है।
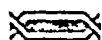
धैर्यमूर्ति

आचार्य देशभूषण महाराज का व्यक्तित्व अद्भुत है। उनकी शरीर सम्पत्ति देखकर लोग ऐसा सोचते है कि यह पहले कोई बहुत बडे पहलवान रहे है। यथार्थ मे आज यह मोह रूपी महा मल्ल के साथ कुश्ती खेलने के उद्योग मे लगे हुए है। भयकर उपसर्ग आने पर और विपत्ति के समय इनकी प्रतिभा, श्रद्धा और साहस का अद्भुत् सौन्दर्य देखने को मिलता है। जिस विपत्ति को देखकर कमजोर दिल आदमी घबराकर पथभ्रष्ट हो जाता है, वह विपत्ति उनके अन्दर अद्भुत साहस और आत्मबल को जगाया करती है। वे धैर्यमूर्ति है।

सर्पदंश

एक बार आचार्य श्री को दिल्ली की साधुभक्त जैन समाज के प्रतिनिधि लाला जग्गीमल कपडेवाले आदि दक्षिण (कोल्हापुर) से दिल्ली की ओर ला रहे थे। इस पुण्य कार्य मे दानवीर साहू शाति प्रसाद जी जैन का विशेष रूप से आर्थिक सहयोग था। सघ उज्जैन नगर से करीब चालीस मील आगे बढ चुका था। वह शाजापुर के समीप था। उस समय एक ग्राम मे वैशाख मास मे चार-पाच बजे शाम को एक विचित्र घटना हो गई। करीब दो हाथ लम्बा काला सर्प महाराज के पैर मे लिपट गया। इन्होने उनकी परवाह नही की और हाथ से उसे अलग किया। उस समय सर्प ने दाहिने पैर के तलवे को काट लिया। वह सर्प झटका देने से उल्टा हो गया था। उसके दात पैर मे फस जाने से टूट गये थे। सर्प के द्वारा काटे जाने पर पैर मे से थोड़ा खून निकला और पैर मे जलन आरम्भ हुई। विष चढना आरम्भ हो गया। उस समय आचार्य श्री ने अपने

कमण्डलु का पानी पैर पर डाल लिया। उन्होने कोई चर्चा नही की। वे आगे दो घटा और चले। उनके तप के प्रभाव से सर्प का विप तो नही चढा लेकिन पैर मे जलन होती रही। अनेक मन्त्रवादी आए। वे नीम, नीबू, मिर्च आदि सामग्री लेकर आये और उन्हे खाने को कहा। महाराज ने उनसे कहा—"हमे तुम्हारी दवाई नही चाहिए, हमारे पास दवाई मौजूद है।"

प्रश्न—मैंने पूछा—"महाराज! आपके पास कौन-सी दवाई थी?"

उत्तर—"भगवान के वचन रूप औपधि, उनका नाम स्मरण रूप श्रेष्ठ औपध ही हमारी दवाई थी। कुदकुंद स्वामी ने जिनवचनो को औषधि कहा है। उनके शब्द है। "जिणवयण मोसह—जिन वचन औपध।"

प्रश्न—उस दवा को आपने कहा लगाया?

उत्तर—जिन वचन रूप अमृत का रस हमेशा हम पिया करते हैं। वह अमृत रस हमारे हृदय मे भरा है। हमने उस समय जन्म, जरा, मरण रूप महा विप का नाश करने वाले भगवान देवाधिदेव जिनेन्द्र का ध्यान से स्मरण किया। उनकी स्मृति द्वारा वह विप हमारा कुछ नुकसान न कर सका।

प्रश्न—महाराज उस यम दूत से काटे जाने पर आपके मन मे मरण का भय उत्पन्न नही हुआ?

उत्तर—"हमे घबराने से क्या काम? डर की क्या बात है? हमारे पास सिद्ध-गारुडी मन्त्र था ही। इससे हम पूर्णतया निर्भय थे। हमने उस विष को उतारने के लिए कोई खास आराधना नही की। अपराजित महा-मन्त्र णमोकार मन्त्र का ही शरण लिया था, क्योकि वह सुर सम्पत्ति का आकर्षण करता है, मोक्ष लक्ष्मी को वश मे करता है, विपत्ति का उच्चा-टन करता है। यह आगम की वाणी सत्य है।"

हमने पता चलाया तो मालूम हुआ कि जब आचार्य श्री आगरे पहुँचे तब वहा लोगो ने मेडिकल कालेज के उच्च डाक्टरो को लाकर दिखाया। लोगो को डर था कि कही सर्प के विप द्वारा हम धर्म की अनुपम, अनमोल व अलभ्य निधि को सदा के लिए खो न दे।

मेडिकल कालेज के प्रधान डाक्टर के आने पर महाराज ने कहा—"हमारी चिन्ता मत करो। हमे कुछ नही होगा। उस सर्प की दवा कीजिए जिसके डेढ दाँत टूट गए है।" चिमटी से पैर मे घुसे हुए वे दात निकाले गए थे। महाराज के आध्यात्मिक बल, दृढता और आध्यात्मिक साधना का दर्शन

कर डाक्टर बहुत प्रभावित हुए।

महाराज से ज्ञात हुआ कि शिखर जी जाते समय भी सर्प का उपद्रव हुआ था। उन्होने कहा, "हम शिखर जी की वन्दना करके पावापुरी आये। पावापुरी के वाद राजगृही जा रहे थे। रास्ते मे विहारशरीफ नगर मिला। वहाँ से थोडी दूर आगे जाकर सध्या हो जाने से हम वहा रुक गये। गर्मी के दिन थे। अधेरी रात थी। बड़ी जोर की आधी आई, एकाएक जोर का पानी भी आ गया। उस तूफान से कई झाड़ टूट गए। मै काष्ठ के आसन पर बैठा हुआ। जिनेन्द्र भगवान का स्मरण कर रहा था। इतने मे एक सर्प हमारे जाघ पर चढकर उसके बगल से ऊपर चढने लगा। वह ठडा सा लगा। हमने उसे देखा। उसने हमारी अगुली को काट लिया। अगुली में कुछ समय तक दर्द रहा। उसके वाद हम पर उस विष का कोई असर नही हुआ।"

प्रश्न—महाराज कभी बिच्छू आदि की पीडा तो हुई होगी ?

उत्तर—"हमारे शरीर मे बिच्छू का विष असर नही करता।"

प्रश्न—ऐसा क्यो होता है ?

उत्तर—"क्या बताये ? जहर नही चढता। इतना ही कह सकते है।"

इस विषय मे यह बात शास्त्र के परिशीलन से ज्ञात होती है कि निर्दोष, सदाचार और शील से समलंकृत मानव को सब सिद्धिया प्राप्त होती है, इसलिए इस सम्बन्ध मे महाराज से कोई विशेष बात की चर्चा करना ठीक नही समझा कारण वे वालब्रह्मचारी तपोमुर्ति महामुनि है।

जंगल के राजा से भेंट

प्रश्न—महाराज कभी जगल का राजा (शेर) तो मिला होगा ? आप तो हमेशा जीवन भर जगलो मे विहार करते रहे है।

महाराज से ज्ञात हुआ कि वे हुम्मच पद्मावती क्षेत्र (दक्षिण कर्णाटक) की वन्दना के पश्चात् मूडबद्री की वन्दना हेतु जा रहे थे। रात्रि का आगमन होने को ही था उस समय महाराज सामायिक के पूर्व कुछ स्तोत्र पाठ कर रहे थे। महाराज ने बताया—"उस समय एक शेर हमारे पास आया वह करीब १५-२० मिनट हमारे पास बैठा रहा। वह जगल बड़ा भयकर था। वह शेर चुप चाप बैठा रहा। उस समय उसकी आँख चमक रही थी। यह घटना हमारे मुनि दीक्षा लेने के ४-५ वर्ष वाद की है।"

"महाराज ने पुन कहा कि सन् १९३३-३४ की बात है। हमने श्रवणवेलगोला मे चातुर्मास किया था। हम विन्ध्यगिरि पर्वत, जिस पर भगवान् बाहुवली की दिव्य और अद्भुत् प्रतिमा शोभायमान हो रही है। पर स्थित एक गुफा मे रहा करते थे। उस गुफा के पहले मुनि अनन्तकीर्ति निल्लीकार महाराज रहा करते थे। वहा हम पडित ब्रह्मसूरि शास्त्री से पुरानी कन्नड भाषा का अध्ययन करते थे। उस पवित्र प्रदेश मे अद्भुत् आनन्द और शान्ति का लाभ होता था। एक बार ११ बजे रात्रि के समय पर्वत से उपाध्याय, (पुजारी) मन्दिर मे चढाई गई पूजा आदि की सामग्री को लेकर नीचे उतर रहा था। अधेरी रात थी। जिस गुफा मे हम ध्यान करते थे, उसके सामने एक चट्टान थी। उस पर एक शेर ने आकर अपना आसन जमा लिया। उपाध्याय ने जिस समय शेर को देखा वह घबड़ा कर चिल्ला उठा। हमने दरवाजा खोला व देखा तो सामने शेर बैठा था। उसकी आखे चमक रही थी। कुछ देर के बाद वह शेर चला गया।"

मैने पूछा, महाराज! आप तो मुनि होने के कारण शान्त और निर्भीक रहे आये, पर उस बेचारे उपाध्याय का क्या हाल हुआ?

महाराज ने कहा कि "वह उपाध्याय भयभीत हो लुढक पड़ा था। उसके हाथ की सामग्री सब गिर पडी तथा वह लुढकता हुआ नीचे तक आया। उस बेचारे की बुरी हालत हो गई थी।"

दूसरी घटना

महाराज ने दूसरी घटना इस प्रकार बताई —

"श्रमण वेलगोला के पास हासन नामक नगर है। उसके समीप बडा भयकर जगल है। मैं आचार्य जयकीर्ति महाराज के साथ था। वे आगे बढ गये और मै पीछे रह गया, क्योकि मेरे पेट मे जोर का दर्द हो रहा था। हमारे साथ एक आदमी था। करीब १० बजे रात को उस जंगल मे एक चीता दिखाई पडा। उसे देखते ही हमारे साथ का गृहस्थ घबडा गया। उसने हमे पकड लिया। करीब पाच मिनट के पश्चात वह चीता शान्त भाव से हमे देखता हुआ आगे बढ गया।"

संकट निवारण

कुछ साधुता से द्वेप रखने वाले व्यक्तियो के कारण आचार्य

देशभूपण महाराज के कलकत्ता चातुर्मास के अवसर पर मुनि विहार के वारे मे रुकावट की स्थिति उत्पन्न,हो गई। सुना है कुछ दुप्ट साधुविद्वेषी वर्ग ने अधिकारियो से अनुरोध किया कि दिगम्बर साधु को आम सडक से नही जाना चाहिए।

महाराज श्री वेलगछिया के मन्दिर से निकल कर कार्तिक महोत्सव के वापिसी जुलूस मे शामिल होने को सघ सहित निकल ही रहे थे कि दरवाजे पर आकर पुलिस ने इन्हे आगे जाने से रोक दिया। उस समय मै भी वहा मौजूद था।

महाराज ने मुझ से कहा—"पडित जी। क्या करना ?"

मैने कहा—"महाराज। घवराने की क्या बात है। सारे जगत् को जीतने वाले और जिसे कोई जीत न सके ऐसे अपराजित मत्र का शरण ग्रहण करना चाहिए।" मन्दिर के परकोटे के वाहर सडक के बाजू से महाराज और सघ के अन्य जन बैठ गए।

मेरे पास भगवान पार्श्वनाथ की फोटो थी। उसे सामने रख कर णमोकार मत्र का जाप शुरू हुआ। करीब एक घण्टे तक तन्मय होकर भगवान का स्मरण चलता रहा। इतने मे एक सार्जेन्ट से मैने कहा— "आज के दैनिक पत्रो मे वंगाल के खाद्यमत्री प्रफुल्लसेन का चित्र छपा है। वे इन साधुराज को प्रणाम कर रहे है। इन्हे देखिए। आपके बगाल की राज्यपाल पद्मजा नायडू ने इन्हे भक्ति पूर्वक प्रणाम किया है—तथा उनपर पुप्प वर्पा की थी, जव स्वामी जी जैन रथोत्सव के साथ जा रहे थे। उनको वाहर जाने मे आपकी सरकार रुकावट डाल रही है। जिस बगाल देश ने वडे-वडे विद्वानो को पैदा किया उनकी मनोदशा मे ऐसा परिवर्तन कैसे हो गया ? उसके वाद बगाल शासन तथा केन्द्रीय शासन से सम्पर्क स्थापित हुए। धर्म के प्रसाद एव महाराज की तपश्चर्या के प्रभाव से वह महान् सकट क्षण भर मे दूर हो गया। सकट की वेला मे यथार्थ मे वे धैर्यमूर्ति रहे है।

जहा कठिन परिस्थिति देखकर लोग घबडा जाते है वहाँ ये मनस्वी साधु कठिनता की तनिक भी परवाह न कर विपत्ति की स्थिति मे अपना कदम आगे बढाते जाते है।

जवलपुर मे चन्द धर्मान्ध दुप्टो ने १६ फरवरी १६५६ को जैन कालेज के प्रागण मे स्थित जैन मन्दिर की प्रतिमाओ को खण्डित किया था। उस

समय का जबलपुर का वातावरण बडा भयंकर और विभीषिका मय था[१]। आचार्य श्री के सघ को लेकर कलकत्ते के परम धार्मिक मधुर प्रकृति

१. प्रधानमत्री पडित जवाहरलाल नेहरू ने २१ जून सन् १९५९ को जबलपुर के अपने सार्वजनिक भाषण मे जबलपुर की दिगबर जैन मूर्तियो के खडित हो जाने के विषय मे कडी आलोचना करते हुए कहा था—"धार्मिक सहिष्णुता हिन्दू धर्म की परपरागत खास बात रही है। किन्तु इन हिंसात्मक कार्यो ने उसे लज्जित कर दिया है। जबलपुर के जैन मन्दिर मे फरवरी माह मे किये गये ध्वसात्मक कार्य अविवेकपूर्ण जगली कार्य हैं। यह आश्चर्य की बात है कि कुछ हिन्दुओ ने अपने साम्प्रदायिक उन्मादवश कुछ समय पूर्व जबलपुर मे जैन मूर्तियो को खडित कर दिया है।" पडितजी ने कहा था—"यह कार्य असभ्यता की पराकाष्ठा है।" अग्रेजी दैनिक 'हितवाद' नागपुर २२ जून १९५९ मे पडितजी के शब्द इस प्रकार छपे थे—Toleration was traditional to Hinduism and these acts of violence had only brought shame to it. Prime Minister Nehru condemned the acts of Vandalism Committed in a Jain temple during February riots as "foolish and barbaric" It is amazing that some Hindus should in their communal frenzy break Jain images as happened recently in Jabalpur. This is the height of barbarism"

राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के सर सचालक श्री गोलवलकर गुरुजी ने मेरी प्रेरणा पर जब खडित की गई जैन प्रतिमाओ को देखा तो उनका हृदय अत्यत व्यथित हुआ तथा उन्होने कहा था—"जिन दुष्टो ने मूर्तियो को खण्ड-खण्ड किया है, उन्होने हिन्दू धर्म को कलकित किया है। उन्होने यह सस्कृत का श्लोक पढा था।"

एके सत्पुरुषा. परार्थघटका. स्वार्थं परित्यज्य ये।
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृता स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसा परहित स्वार्थाय निघ्नति ये।
ये तु घ्नति निरर्थकं परहित ते के न जानीमहे॥

कोई सज्जन पुरुष होते है 'जो अपने स्वार्थ का त्यागकर दूसरे का कार्य सम्पन्न करते है। सामान्य जन अपने स्वार्थ को क्षति न पहुचाते हुए परोपकार के लिए तत्पर रहते है। किन्तु जो अपने स्वार्थ के हेतु परहित का विनाश करते है वे मनुष्य राक्षस है। अर्थात वे मनुष्य रूपधारी राक्षस है तथा जो अपना कोई भी प्रयोजन सिद्ध न होते हुए भी व्यर्थ मे दूसरो के कार्यो का नाश करते है, उन्हे क्या कहा जाय यह हम नही जानते? उक्त क्रूर कृत्य को देख सहृदय हिन्दू समाज के नेताओ को महान दुख हुआ था।

वाले सेठ पारसमल जी कासलीवाल दक्षिण जा रहे थे। कटनी में आकर कुछ जैन नेताओ ने महाराज से नगर में न ठहरकर दूसरे मार्ग से बाहर चले जाने का सुझाव दिया। किन्तु महाराज ने लोगो की बात नही सुनी और अपने अडिग आत्म-विश्वास के कारण वे उस साम्प्रदायिक तनाव के अत्यन्त कठोर भीपण वातावरण मे नगर मे गए। करीब १५ हजार आदमियो की भीड मे इन्होने जो अपना सतुलित, मार्मिक और प्रेम की दृष्टि को जगाने वाला अपूर्व उपदेश दिया उससे उस नगर का वातावरण एकदम बदल गया और वह सख्यक समाज के अत्याचार से पीडित अल्प सख्यक जैनो को पर्याप्त मात्रा मे अभय और मानसिक स्थिरता प्राप्त हुई। वहा मैने देखा कि आचार्य महाराज जन-सम्पर्क मे आकर अपने व्यक्तित्व की छाप प्रत्येक के अन्त -करण मे सहज ही अकित कर दिया करते थे। नीतिकार ने धैर्य को महान् आत्माओ की स्वाभाविक विशेषता कही है। आचार्य श्री की आत्मा सच्ची साधुता के प्राण सदृश अनेक गुणो से सुस-ज्जित है। वे महान योगी है, योगिराज है।

उदार दृष्टि

•

आचार्य श्री का सन् १९६८ का चातुर्मास स्तवनिधि अतिशय क्षेत्र (वेलगाव जिला) मे हो रहा था। मेरी कुछ आदत है कि मैं वचपन से ही सन्त समागम का आनन्द लेता रहा हू। मुझे वडे-वड़े धनिको का वैभव तथा वैभवपूर्ण भवन वडे भयानक लगा करते हैं। सन्त समागम, उनके चरणो को प्रणाम करना और उनकी वाणी सुनने मे सदा से आनन्द आता रहा है। महान् आचार्य चारित्र चक्रवर्ती शान्तिसागर महाराज के चरणो के समीप वैठने से सन्त समागम की ओर और झुकाव हो गया इसलिए मै वडे-वडे स्थानो के श्रीमन्तो के निमन्त्रणो पर नकारात्मक उत्तर देकर स्तवनिधि पहुचा, जहा से निमन्त्रण नही आया था, किन्तु जहाँ निमन्त्रण प्रेमी नही किन्तु इन्द्रिय-नियन्त्रण-प्रेमी आचार्य देशभूपण महाराज वहुत से साधुओं के साथ परम आध्यात्मिक जीवन विताये हुए उस प्रशान्त आध्यात्मिक वातावरण मे एक अपूर्व आनन्द दे रहे थे और ले भी रहे थे। दक्षिण भारत के अनेक साधु अन्यधर्मी होते हुए भी इनके पास आते थे और आनन्दविभोर हो जाया करते थे। उनकी चर्चा कन्नडी भापा में चला करती थी। मै देखता था कि वे लोग हर्पित हो इन साधुराज के चरणो को वडे प्रेम से प्रणाम करते थे।

एक समय आचार्यश्री प्रसन्न मुद्रा मे वैठे थे, प्रकृति का सौन्दर्य भी आनन्द वरसा रहा था। मन मे एक विचार आया कि महाराज से एक वात पूछूँ, फिर कुछ सकोच होता था कि शायद मेरा प्रश्न मूर्खता का प्रतीक न माना जाय।

प्रश्न—थोडा साहस वटोरकर मैंने पूछ ही लिया —"महाराज ! आपके पास यह मोटर लारी खडी हुई है और उस पर आचार्य देशभूपण

सघ लिखा हुआ है । इसे देखकर अज्ञानी जन या जो अहकारवश अपने को महान् ज्ञानी सोचते है ऐसे व्यक्ति कहते है कि महाराज के पास यह परिग्रह नही होना चाहिए। इस मोटर का आपका क्या सम्बन्ध है ? इसे क्यो रखा गया ?"

उत्तर—महाराज ने कहा—"पडित जी ! आपको आश्चर्य होगा। हमने अपने जीवन मे एक ही बार रेल पर बैठकर दुर्ग से कोल्हापुर यात्रा की थी, क्योकि हम उस समय ब्रह्मचारी थे और हमारे गुरु जयकीर्ति महाराज ने विशेष कार्य के लिए हमे भेजा था । इसके वाद हम जीवन मे कभी दुबारा रेल मे नही बैठे। मोटर की बात तो यह है कि हम अपनी जिन्दगी मे मोटर मे कभी नही बैठे क्योकि हमने २१-२२ वर्ष की अवस्था मे दीक्षा ले ली थी। दीक्षा लेने के बाद मोटर मे बैठने का सदा के लिए परित्याग कर दिया। यह मोटर सघ मे रहने वाले गृहस्थो तथा अन्य श्रावको के आने-जाने मे सुविधा के लिए एक धर्मात्मा व्यक्ति ने दे दी है। यह मोटर यदि मेरी होती तो इसका टैक्स भी मेरे नाम से दिया जाता । जिसकी मोटर है वही उसका टैक्स देता है। ये सामने जो मोटर खडी है इसका टैक्स तो साहू (शातिप्रसाद जी) देता है । लोग अपने मन से तरह-तरह की विचित्र कल्पनाये किया करते है। इसका मेरे पास कोई इलाज नही है ।"

प्रभाव—इसी प्रसग मे महाराज ने यह बताया कि जब अपने गुरु के आदेश से वह दुर्ग से कोल्हापुर गये थे उस समय वह ब्रह्मचारी थे। दुर्ग मे मानस्तम्भ बना है उस मानस्तम्भ की भूमि मे खातिका पूर्ण करने का कार्य उनके द्वारा सम्पन्न हुआ था। उसकी नीव मे सोना, चादी आदि बहुमूल्य पदार्थ काफी मात्रा मे डाले गये थे। महाराज के पास उस समय विद्यमान वृद्धा, भद्र परिणामी धर्ममती माता जी ने बताया कि महाराज के द्वारा जो नीव भरी गई थी उसके अनन्तर वहा प्रतिष्ठा हुई। मानस्तम्भ वनने पर आकाश से केसर व पुष्पो की काफी वर्षा हुई थी। इसे पुराने लोग जानते हैं। आज भी पुराने भाई उक्त आश्चर्य की बात का समर्थन करते है।

आश्चर्य है कि कई पढे-लिखे लोग तक अकारण ही साधुता से विद्वेष वश धर्म के तत्त्व को न जानते हुए सच्चे साधुओ पर कीचड उछालते है और जिन साधुओ का जीवन उनकी लोक-रुचि के अनुकूल होता है उनकी शास्त्र विरुद्ध प्रवृत्तियाँ भी उनको अप्रिय नजर नही आया करती।

दर्शनमोह का खेल

एक वात मन मे आती है कि ऐसा क्यो होता है ? क्यो कुछ लोग काच को रत्न मानते है और कभी-कभी रत्न को काँच जानते हुए भी काच कहा करते है ? विचार करने पर प्रतीत होता है कि दर्शन मोहनीय कर्म के तीव्र उदय के साथ इसमे प्रेरक कुछ स्वार्थ और असद् बुद्धि हृदय मे रहा करती है। दूसरे का उत्कर्ष देखकर ईर्ष्यालु व्यक्ति तरह-तरह की झूठो कल्पनाओ का जाल रच दिया करते है। दुष्टो की लीला अद्भुत हुआ करती है।

अविवेक प्रेरित मिथ्या धारणा

कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि ऐसे दिगम्बर मुनियो के शील और सदाचार के विरुद्ध दुष्ट लोग मिथ्या प्रचार करते नही चूकते। एक वहका हुआ तरुण मुझे कोल्हापुर मे मिला और अच्छे साधुओ के शील धर्म के विरुद्ध कुछ वकवक करने लगा।

मैने कहा—"भाई ! अक्ल से दुश्मनी मत करो। तुम्हे मालूम है कि दिगम्बर मुनि को कोई स्त्री अपने हाथ से आहार देती है उस समय निकटता होते हुए भी उनमे वच्चे की तरह निर्मलता और निर्विकारता पाई जाती है, तव तुम क्या इनके शील के वारे मे मूर्खतापूर्ण कल्पना करते हो ?"

मुझे यह देखकर दु ख होता है कि कुछ धन सपन्न व्यक्तियो ने भी सच्चे साधुओ की निन्दा का वीडा उठा रखा है और आज के सदाचार भ्रष्ट वातावरण मे अविवेकी लोग उनकी वातो को वडे ध्यान से सुना करते है। "कौआ कान ले गया" इस वात को वे मान लेते है, पर अपना कान नही टटोला करते। धार्मिक पुरुषो का कर्तव्य है कि ऐसे दुष्टो के पापमय प्रचार के चक्कर मे न फसे और यदि वन सके तो उनके दिमाग को ठीक करने के लिए उचित उपाय करे। पैर मे जूता रहने से काँटे पैर मे चुभ कर पीडा नही दिया करते। इसी प्रकार दुष्टो पर नियत्रण जरूरी है। मैने अनेक सस्कृत के ऐसे पढे-लिखे व्यक्ति देखे है जो स्वय वगुला होते हुए अपने को हस वताते है और हस को वगुला कहने मे सकोच नही करते। इस विषय पर अधिक प्रकाश डालना आवश्यक नही लगता। हृदय मे विचार आये इसलिए धार्मिक जनो की दृष्टि को मोड देने के लिए उपरोक्त चर्चा की है।

अविवेकियो की प्रवृत्ति

एक बात और देखने मे आती है कि कुछ लोग शास्त्र-ज्ञाता नही रहते। थोड़ी-सी बात शास्त्र की पकड ली और अपने को महा पडित मान कर बडे-बडे पंडितो, ज्ञानी जनो, मुनियो के सामने उद्दण्ड होकर आगम के विषय मे फतवा देते रहते है। साथ मे वह भाषा भी उनके मुख से निकलती है—पडित जी ! हम कुछ समझते नही। ऐसे निन्दक दुष्ट इस युग मे बढ़ते जा रहे है।

सौभाग्य की बात

सौभाग्य की बात है कि जिन आचार्यरत्न देशभूषण महाराज के सद्गुणो की आचार्य शान्ति सागर जी महाराज जैसे महर्षि सदा प्रशसा किया करते थे और जिनकी धर्म प्रभावना के कार्य से वे हर्षित हुआ करते थे वे आज भी धर्म प्रभावना का मगल-ध्वज उठाते हुए आगे बढते जा रहे है। मैने उन्हे देखा कि वह सतत् शास्त्र अध्ययन, ग्रथ निर्माण, तत्व-चिन्तन, धर्मोपदेश आदि पुण्य-कार्यों मे निरन्तर लगे रहते है। ७० वर्ष के वृद्ध हो जाने पर भी उनका श्रम एक तरुण वय वाले को पीछे कर देता है।

लोकोपकारी महात्मा

आचार्य महाराज का हृदय बडा विशाल है इसलिये वे जिस जगह पहुचते है उस स्थान मे धार्मिकता रूपी वृक्ष को लगाने का और लगे हुए किन्तु जलाभाव से सूखनेवाले उन पौधो की उन्नति के लिए विशेष दिल-चस्पी लेते हुए समाज को इस विषय मे प्रेरणा और प्रोत्साहन प्रदान करते है।

मैने देखा कि स्तवनिधि क्षेत्र की स्थिति मे काफी सुधार वाछनीय था। अनेक प्रसिद्ध समर्थ धार्मिक गृहस्थ और मुनिजन भी वहा पधारे थे किन्तु क्षेत्र वैसा का वैसा ही रह आया। उदार हृदय आचार्यश्री ने चातुर्मास मे उसे देखा और तत्काल ही तेजी के साथ वहाँ विविध प्रकार के सुधारो की योजनाये बनी और क्षेत्र की रमणीयता बढ गई। इन्होने यह नही सोचा कि इस क्षेत्र की उन्नति से हमारा क्या प्रयोजन है। सभी धर्म क्षेत्रो की उन्नति वे हृदय से चाहते है। उनका हृदय विशाल है।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

कुम्भोज वाहुवली मे जव महाराज गये तो उनके मन मे ऐसी भावना नही आई कि इस क्षेत्र की उन्नति के लिए कुछ न किया जाय। अपने सहज उदार स्वभाव के अनुसार उन्होने उस क्षेत्र मे एक विशाल हाल निर्माण का विचार व्यक्त किया। महाराज के मुख से शब्द निकलते ही अनेक दातारो ने उस सत्कार्य मे दान देकर अपने को कृतार्थ किया।

कोल्हापुर मे आस-पास की लाखो की सख्यावाली ग्रामवासी जैन समाज के हितार्थ इनके दो शब्द कहने से वहाँ एक देशभूषण हाईस्कूल खुल गया और वह कालेज के रूप मे विकसित हो काम कर रहा है।

कोल्हापुर मे १९६३ अप्रैल मे आचार्यरत्न देशभूषण शिक्षण प्रसारक मण्डल नाम की सस्था स्थापित हुई है, जो पब्लिक सोसायटीज एण्ड ट्रस्ट एक्ट के अण्डर रजिस्टर्ड हुई है, अत. इस सस्था को दिया गया द्रव्य इनकम टैक्स मुक्त (Income tax Exempted) है। इस शिक्षण मण्डल के अन्तर्गत एकादश लोकोपकारी प्रवृत्तिया कार्यरत हैं, उनमे उल्लेखनीय देशभूषण विद्यामन्दिर हाईस्कूल, देशभूषण व्याख्यानमाला, देशभूषण ग्रन्थ भण्डार, देशभूषण मुद्रणालय, देशभूषण स्वाध्याय मन्दिर, देशभूषण धर्म शिक्षण केन्द्र, देशभूषण प्रकाशन मन्दिर, श्री सिद्धेश्वर हाई स्कूल, दी कोल्हापुर कालेज आदि है। कालेज के कामर्स विभाग को श्री गणपति रोटे, श्री नेमिनाथ रोटे वन्धुओ ने अपने स्वर्गीय धार्मिक वन्धु वावूराव मलप्पा रोटे की स्मृति मे एक लाख रुपया का दान दिया है। श्री गणपति रोटे ने लिखा है "कि आचार्य रत्न श्री देशभूषण शिक्षण प्रसारक मण्डल की ओर से सन् १९६३ से दो हाई स्कूल चल रहे है। अव तक ६ हजार विद्यार्थी वहाँ शिक्षा पूर्ण कर चुके हैं। उन पर अहिंसा का सस्कार पडा है। दो वर्ष से कालेज चल रहा है। उसके भवन के लिए जैन वोर्डिग के समीप तीन लाख मे जमीन खरीदी है। कालेज का नाम महावीर निर्वाण की स्मृति मे महावीर कालेज रखा है।"

आचार्य देशभूषण महाराज की जन्म भूमि कोथली नामक स्थान पर भी सुन्दर जिन मन्दिर मानस्तम्भ आदि धर्मायतनो के साथ शिक्षण हेतु हाई स्कूल चल रहा है। वास्तव मे मनुष्य कुटुम्व, परिवार आदि के छोटे कुटुम्व से पृथक् होकर जव विश्व वन्धुत्व की दृष्टि को स्वीकार करता है, तव

उसकी क्षमता, तथा कार्य शक्ति बहुत बढ जाती है और वह ऐसे महान् कार्य सपन्न करता है, कराता है, जिसे बड़े बडे वैभव शाली व्यक्ति भी सपन्न करने मे समर्थ नही हो पाते।

इन उदारचेता साधु राज द्वारा धर्म की महान् तथा सच्ची प्रभावना हुआ करता है। महाव्रतो से जीवन को निर्मल बनाते हुए इन्होने वडे-वड़े साधु साध्वियो का कल्याण किया। लाखो लोगो को पाप वृत्तियो से छुटाकर अहिसा के पथ पर लगाया तथा अनेक सस्थाओ का निर्माण कराया जिनसे जन कल्याण हो रहा है। इन गुरुदेव की यह विशेपता है कि महान् कार्य करते कराते हुए भी ये उनमे आसक्त नही होते। ये अपने 'स्व' तत्व पर दृष्टि रखते है। ये मोही साधु नही है, यह इनकी बहुत बड़ी विशेषता है। ये सच्चे निष्कपट साधु है। हृदय इनका स्वच्छ है। ये राजनीति का गदा खेल नही खेलते है। पर अहित का स्वप्न मे भी विचार नही करते है। आज जो महान् कार्य आचार्य रत्न साधुराज द्वारा हुए है, उनको सैकडो वर्ष तक को भावी पीढी याद करेगी। इनके द्वारा लगाए धर्म रूपी कल्पवृक्ष का फल बहुत समय तक भव्य जीव सेवन करते रहेंगे। जोक की प्रवृत्ति वाले दुष्ट व्यक्ति इनके जीवन की महानता, मधुरता और उच्चता का मूल्यॉकन करने मे असमर्थ है। यथार्थ मे ये उच्च कोटि के महात्मा है, इसी से सब धर्म वाले इनसे प्रकाश और प्रेरणा पाया करते है।

दयाभाव

आचार्य महाराज की गरीबो पर बडी दया रहती है। वे मजदूरो, कारीगरो को खूब भोजन खिलवाया करते है। स्तवनिधि मे मैंने देखा था कि वे अपने दानी शिष्यो द्वारा मजदूरो को भर पेट भोजन करवाते थे, अतः वे मजदूर भी हृदय खोलकर खूब काम करते थे।

सन् १९६५ फरवरी मे गोहाटी मे पचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव बडे वैभव के साथ हुआ था। वहा नागौर के विद्वान् भट्टारक स्व० श्री देवेन्द्रकीर्ति जी ने देशभूषण महाराज के बारे मे मुझ से कहा था, "दिवाकर जी! देशभूषण महाराज बहुत बडे धर्म प्रभावक और उच्च व्यक्तित्व वाले व्यक्ति है। उनके विचार सदा यही रहते है कि जैन धर्म की उन्नति हो और जन साहित्य का अधिक से अधिक प्रचार हो।" आचार्य श्री गहरे चिंतक और महान् साधक भी है।

शरीर धर्मशाला है

एक जगह मैं धर्मशाला में ठहरा था। यह बात महाराज को ज्ञात हुई। उन्होंने कहा—"पंडित जी! आप धर्मशाला मे ठहरे हैं। हम भी धर्मशाला में रहते है। शरीर धर्मशाला ही तो है। हमारा कोई निश्चित स्थान नही है।" उन्होंने यह बड़ा मधुर वाक्य कहा. "हम तो झाड़ की चिड़ियां हैं, चाहे जहाँ उड़ जाये। हमारा कोई घर नही है।"

भोगो में पागल

सुख दु:ख की चर्चा चलने पर वे साधु राज बोले—"धर्म को भूलकर भोग मे पागल बनने वाला दु:खी रहता है। भोगो के चक्कर मे तथा पांचों इन्द्रियों की सेवा में फंसा हुआ तथा उनको तृप्त करने के लिए गुलाम से भी अधिक दीन वृत्ति धारण करने वाला ऐसे भिखारी के समान है जो शराब पीकर उसके नशे मे अपने को बादशाह कहता फिरता है, यद्यपि वह भिक्षुक रहता है।' एक कवि की सूक्ति मार्मिक है—

सपने होय भिखारि नृप, रंक नाकपति होय।
जागत हानि न लाभ कछु, इमि प्रपंच जिय जोय॥

अध्यात्म चर्चा

आध्यात्मिक चर्चा करते हुए उन्होंने एक दिन कहा था, "तुम अनन्त चतुष्टय के धनी अपने को कहते हो, ज्ञाता द्रष्टा बोला करते हो, स्वयं को निर्विकार और शुद्ध सोचते हो, किन्तु तुम्हारे भीतर क्रोध, मान. माया. लोभ आदि विकार भरे पड़े हैं। तुम्हारा कैसा अध्यात्मवाद है? तुम क्रोध की मूर्ति हो। जरा कारण मिला तो आग बबूला हो जाते हो। उस समय तुम्हारा समयसार और उसका अध्ययन कहा जाता है? तुम अभिमान से यहाँ वहाँ सैर सपाटे लगाते हो और अपनी शान शौकत दिखाने मे लगे रहते हो। मायाचार करने मे, ठगने-ठगाने मे कदम बढाते हो। लोभ और लालच के कारण दुनिया भर के अनर्थ करते हो और अपने को शुद्ध और समयसारी, मोक्षाभिलाषी मुमुक्षु कहते हो। मोक्षाभिलाषी पुरुषो की पीठ विषय भोगो की ओर रहती है। सच्चा अध्यात्मवादी भोग-विषयो मे कुछ भी रस नही पाता। पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में कहा है—

यथा-यथा समायाति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम् ।
तथा-तथा न रोचन्ते विषया सुलभा अपि ॥३७॥

जैसे-जैसे आत्मज्ञान का श्रेष्ठ तत्त्व अनुभव गोचर होता है वैसे-वैसे अनायास प्राप्त विषय सुख की सामग्री रुचिप्रद नही लगती।

आज का नकली अध्यात्मवादी बाहरी ठाट बाट को खूब पसन्द करता है। हर प्रकार के इन्द्रिय जनित सुख मे तल्लीन होता हुआ आत्मा की चर्चा भी करता है। यथार्थ मे ऐसा व्यक्ति आत्म तत्त्व के ज्ञान से पूर्णतया शून्य रहता है। सच्चा आत्म तत्त्व का रसिक श्रावक जिनेन्द्र भगवान की भक्ति गगा मे निमग्न रहा आता है और उसके द्वारा वह अपने मलिन मन को स्वच्छ बनाया करता है।

जरा सोचो, तुम अपने को सिद्ध भगवान कहते हो। 'सिद्धोऽहम् बुद्धोऽहम्' यह बात द्रव्य दृष्टि से बिलकुल ठीक है किन्तु तुम अपने को पर्याय रूप में सिद्ध भगवान जो सोचा करते हो और विषय भोगो में तो गुरु बनते और धर्म कार्यो मे प्रमाद करके अपने को असमर्थ बताते हो, यह बात अच्छी नही है।

तनिक विचारो, जन्म, जरा, मरण से तुम घिरे हुए हो और चौरासी लाख योनियो मे भ्रमण कर रहे हो तो तुम सिद्ध हो या ससारी ? सिद्धो के जरा-मरण होते है क्या और क्या सिद्ध भगवान लोक के अग्र भाग से नीचे उतर करके आपके हिन्दुस्तान के अन्दर आकर रहने लगे है ? अरे भाई, वस्तु स्थिति को समझो। स्याद्वाद वाणी को समझो। तुम गुणो के बिना अपने को क्या सिद्ध राजा बना सकते हो ? पागल सनक मे आकर यदि खुद को राजा कहे तो उसे क्या कोई राजा मानेगा ? तुम अपने को सर्वज्ञ और परमात्मा कहते फिरते हो और अपनी कमजोरी पर दृष्टि नही डालते। तुम्हारी आत्मा आर्त ध्यान व रौद्र ध्यान की कीचड मे इतनी डूबी है कि पर पदार्थो की आसक्ति ने तुम्हारे गुणो को चौपट कर दिया है। इस वस्तु स्थिति को समझना प्रत्येक का कर्त्तव्य है।

अपना ध्येय, सर्वज्ञता और सिद्धत्व को बनाओ और बहिरात्म भाव को त्याग कर अन्तरात्मा बनते हुए परमात्म पद को अपने जीवन का केन्द्र बिन्दु बनाओ। यह तो बताओ तुम अपने को सर्वज्ञ कहते हो। क्या पचम काल मे भरत क्षेत्र मे सर्वज्ञ रहते है ? तुम बड़े-बड़े कारखानो का सचालन करते हो। व्यापार मे निमग्न हो। खूब धन इकट्ठा करते हो। न्याय अन्य

का विचार नही करते और सिद्धोहम् कहते फिरते हो, तो क्या सिद्ध भगवान भी रुपये पैसे का स्वामी रहते है ? फिर तुम्हारा अपरिग्रहत्व का सिद्धान्त कहा चला गया ?

तत्त्वदृष्टि तो कहती है कि सभी जीव सिद्ध है यदि यह एकान्त पकड़ लिया तो अभव्य भी सिद्ध है। तीन लोक के अनन्त जीव भी सिद्ध है। यह सारा जगत् सिद्ध भूमि हो गया। सातो नरक मे रहने वाले नारकी भी सिद्ध भगवान हो गये, तव फिर आगम का यह कथन मिथ्या नही हो जायेगा कि लोक के अग्र भाग मे सिद्ध भगवान शोभायमान होते है। यदि सिद्ध भगवान को प्रणाम किया जाय तो लोक के अग्र भाग मे विराजमान सिद्धो के वदले मे सामने खडे हुए घोडे का देख कर और उसे सिद्ध स्वरूप मानकर उसकी आराधना करोगे। विकारो का परित्याग कर मनुष्य वनकर रत्नत्रय की साधना द्वारा सिद्ध भगवान वन सकता है। भगवान पार्श्वनाथ के जीव गजराज ने, भगवान महावीर के जीव सिहराज ने विकास करके सिद्ध पद पाया है। गजेन्द्र तो भगवान पार्श्वनाथ हुआ और मृगेन्द्र महाश्रमण महावीर वनकर सिद्धि पद का अधीश्वर वना, किन्तु क्या पशु पर्याय वाले जीव को तुम सिद्ध रूप मे स्वीकार करोगे ?

अरे भाई! थोड़ी वुद्धि से काम लो। विवेक और विचार से सहायता लो। झूठे उडन खटोले मे वैठकर आकाश मे घूमने का तरीका मत पकडो। गहरी भग छानने वाले का दिमाग आसमान मे घूमा करता है और वह दुनिया को घूमता हुआ सोचता है। वास्तव मे दुनिया नही घूमती उसका दिमाग ही घूमा करता है, इसलिए जिनवाणी के इस तत्व को समझो पहले तुम जिनेन्द्र के दास वनो। जिन दास होने के वाद मे 'जिन' पर दृष्टि रक्खो। जिन दास ही जिनेन्द्र वनता है और अप्ट कर्मो का क्षय करके सिद्ध भगवान होता है। कवि वुधजन कहते है—

मुझमे तुझमे भेद यो और भेद कछु नाहि।
तुम तन तज पर ब्रह्म भए मै दुखिया तन माहि॥

सिद्धो के साथ कथचित् समानता है, कथचित् भिन्नता है। द्रव्य दृष्टि से समानता है। पर्याय दृष्टि से भिन्नता है, अध्यात्म शास्त्र का रहस्य सरल नही है। विशेष ज्ञानी ही उसका मर्म जानते है। किसी ने कहा है—

परख सकती नहीं रत्नो को हर इन्सान की आखें।
दिखाई ब्रह्म क्या देवे जो न हो ज्ञान की आंखें।

लोग लौकिक काम करने में श्रीमन्धर भगवान के ज्ञान का सहारा नही लेते। जब तुम्हे रेल से जाना है तो काफी समय पहले स्टेशन पर पहुच करके सावधानी के साथ अपने जगह की व्यवस्था करते फिरते हो और शिवपुरी जाने के लिए जो ट्रेन जाती है, उसमे बैठने के लिए आख बन्द करके लेट जाते हो और यह कहते हो—

जो जो देखी वीतराग ने सो सो होसी वीरा रे।
अनहोनी कबहु होहै नाही काहे होत अधीरा रे॥

थोडा सोचने पर इस कल्पना की सारहीनता समझ मे आ जायेगी। जरा इस दोहे को भी तो पढो और मनन करो। जिद्द मत करो। सत्य के आग्रही बनो और उसे शिरोधार्य करो। सोचो,

क्या क्या देखी वीतराग ने तू क्या जाने वीरा रे।
वीतराग की वाणी द्वारा दूर करो भव पीरा रे।

जब तुम्हे वीतराग के ज्ञान का पता नही है, तब उसकी ओट मे क्यों तुम अपने जीवन को विषय भोगो में लिप्त करते हो। वीतराग सर्वज्ञ देव ने जो सदाचार की शिक्षा दी है, उसके अनुसार आचरण कर स्वहित सम्पन्न करो। सदाचार का स्वरूप इस प्रकार ज्ञातव्य है।

सत्य, शील, अस्तेयता अल्प-परिग्रह, प्रेम।
सदाचार के बीज ये इन बिन कुशल न क्षेम॥

महाराज की जीवन आध्यात्मिकता से ओत प्रोत रहने के कारण उनके द्वारा आध्यात्मिक चर्चा मे आनन्द आता है। वे योग्य व्यक्ति को देखकर ही आध्यात्मिक चर्चा करते है। जन साधारण के रुचि के अनुरूप उनका उपदेश सर्व सामग्री समन्वित होता है।

उपनिषदो मे आत्म विद्या की काफी चर्चा है। मुडकोपनिषद मे कहा है, दो प्रकार की विद्या है, एक परा विद्या, दूसरी अपरा विद्या। वेदों का ज्ञान, व्याकरण, ज्योतिप, छन्द आदि का ज्ञान अपरा विद्या हे। जिसके द्वारा अविनाशी ब्रह्म का ज्ञान होता है, वह पराविद्या है। (सूत्र ५ अ १) इस सम्बन्ध मे छान्दोग्योपनिपद मे एक आख्यान है—नारद ने सनत्कुमार से कहा, हे भगवन्! मैंने वेद पुराण सब पढ लिए है। देव विद्या, नक्षत्रविद्या आदि का परिज्ञान कर लिया है, किन्तु क्या कारण है, मेरा शोक दूर नही होता। कहा है "तरति शोकमात्मवित्" आत्म ज्ञानी शोक से दूर होता है, किन्तु मैं शोक मे डूबा हूँ। तब सनत्कुमार ने आत्म विद्या की चर्चा की।

(खण्ड २६)। इससे इस वात की ओर दृष्टि जानी चाहिए कि लौकिक विद्या का पाण्डित्य होते हुए भी आध्यात्मिक क्षेत्र का रहस्य समझने की पात्रता नही आती जव तक आत्मा मे कषाय की तीव्रता दूर न होगी, आत्मा निर्मल न होगी, तव तक अध्यात्म ज्ञान ज्योति देदीप्यमान न होगी। भोगासक्त मानव अध्यात्म शास्त्र की ओट मे अपने पापी जीवन को समर्थन प्रदान करता है।

फ्रास के विद्वान् रोम्यारोला ने राम कृष्ण परमहस-चरित्र मे लिखा है कि राम कृष्ण परम हस का एक परम भक्त शिष्य काली वावू मछली मारा करता था। गुरु ने एक दिन कहा। तुम ऐसी क्रूरता का काम क्यो करते हो ?

काली वावू ने उत्तर दिया—"I am not doing anything wrong We are all Atman and Atman is immortal, so I do not really kill the fishes " मैं कोई गलत काम नही कर रहा हू। हम सभी आत्मा हैं। आत्मा (ब्रह्म) अविनाशी है। इससे मैं मछलियो को नही मारता हूं। इस पर राम कृष्ण परम हस ने कहा, तुम अपने आत्मा को धोखा देते हो। जिसके ब्रह्म तत्व की उपलब्धि हो चुकी है, वह दूसरो के प्रति क्रूर व्यवहार कदापि नही करेगा।" Life of Ramkrishna by Romain Roll and P 213)

आत्मा की गहराई न समझ विषयासक्त व्यक्ति जीवन को अधिक पतित वना डालते है। सस्कृत के एक कवि ने कहा है, एक दुराचारिणी स्त्री थी। उसने अध्यात्म शास्त्र पढ लिए। एक दिन वह कहने लगी, लोग मुझे व्यर्थ मे दुराचारिणी कहते है। „ब्रह्म जगत् भर मे व्याप्त है। मैं अपने पति और पर पुरुष मे भेद ही नही देखती। दोनो ही ब्रह्मरूप हैं।"

ब्रह्मैव सत्यमखिलं नहि किंचिदन्यत्।
तस्मान्नमे सखि परापर-भेद-बुद्धिः।
जारे तथा निजवरे सदृशोऽनुरागो।
व्यर्थं किमर्थमसतीति कदर्थयन्ति ॥

इसी प्रकार जैन शास्त्र के नयवाद का रहस्य न समझ कर विषय लोलुपी लोग अपने को भगवान मानकर पापाचार करते हैं और कहते हैं एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का क्या कर सकता है। यह कथन यथार्थ है—

विषयी सुख का लालची, सुन अध्यातमवाद।
त्याग धर्म को त्याग कर, करै साधु अपवाद ॥

शाश्वतिक धर्म प्रभावना

०

अयोध्या मे जो अत्यन्त दिव्य, मनोज्ञ और आकर्षक आदिनाथ भगवान की विशाल मूर्ति विराजमान हुई उसके सम्बन्ध मे मैने महाराज से पूछा आप के चित्त मे इतना विशाल बहु-व्यय साध्य और विचित्र वातावरण मे भगवान की बत्तीस फुट ऊँची शुभ्र वर्ण की मूर्ति विराजमान करने का विचार कैसे आया ? उसकी पृष्ठभूमि क्या थी ?

महाराज ने कहा—"जब हमने जयपुर मे चातुर्मास किया तब हमारे चित्त मे यह विचार आया कि जैन धर्म की शाश्वत प्रभावना के लिए चामुण्डराय ने श्रवणबेलगोला मे भगवान गोमटेश्वर बाहुबली की मूर्ति विराजमान की। यदि इस प्रकार उन्नत जिन बिम्ब अयोध्या मे विराजमान हो जाये तो यहाँ पर भी सब लोगो मे धर्म की प्रभावना होती रहेगी।"

अयोध्या का महत्व

जैन सस्कृति की दृष्टि से अयोध्या का अतीत बहुत महत्वपूर्ण है। महापुराणो मे लिखा है कि प्रथम तीर्थकर भगवान ऋषभदेव के जन्म के पूर्व इद्र की आज्ञानुसार देवो ने अयोध्या की रचना की थी। उसे साकेता, विनीता तथा सुकौशलापुरी भी कहते है। उस नगरी के मध्य में सर्वतोभद्र नाम का राजभवन बनाया गया था। उसके इक्यासी मजिले थे। वह अयोध्या बारह योजन विस्तार युक्त थी। इसके राजभवन मे भगवान ऋषभदेव के पिता महाराज नाभिराज तथा माता मरुदेवी ने शुभमुहूर्त, शुभलग्न तथा शुभ नक्षत्र मे अपना निवास प्रारम्भ किया था। अयोध्या को भगवान ऋषभदेव ने अपने जन्म द्वारा पवित्र किया था। वे इक्ष्वाकुवश के आदि पुरुष थे। समतभद्र स्वामी ने उन्हे "इक्ष्वाकुकुलादि प्रभु."

कहा है'। सम्राट भरत चक्रवर्ती की राजधानी भी अयोध्या थी।'

हिन्दू धर्म मे भी भगवान ऋषभदेव को वासुदेव का अश, विष्णु का अवतार, दिगम्बर मुद्राधारी तथा मोक्षमार्ग के उपदेष्टारूप मे स्वीकार किया गया है। उनके ज्येष्ठ पुत्र भरत के कारण यह देश भारतवर्ष कहलाता है, ऐसा भागवत के एकादश स्कध मे वर्णन आया है। ऐसा कथन अनेक हिन्दू पुराणो मे भी है। भागवत मे कहा है कि ऋषभनाथ भगवान के नौ पुत्र दिगम्बर साधु हो गये थे। वे आत्मविद्या के महान ज्ञानी थे। इस सम्वन्ध मे भागवत का यह पद्य महत्वपूण है।

नवाभवन् महाभागा मुनयो ह्यर्थशंसिन ।
श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदा ।। १-५-२०

भगवान ऋषभदेव ने दिगम्वर मुद्रा धारण की थी। उन्होने ज्ञान वराग्य तथा भक्ति लक्षण वाले परमहस धर्म का महामुनियो का उपदेश दिया था। उन्होने भरत को राज्य पद प्रदान कर दिगम्वर दीक्षा धारण की थी। भागवत के ये शब्द महत्व पूर्ण है, जिनसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि दिगम्बर जैन धर्म अत्यन्त प्राचीन है। जव जैन धर्म के सस्थापक ऋषभदेव दिगम्बर थे तव दिगम्बर धर्म की प्राचीनता को स्वीकार करने मे भी सन्देह नही रह जाता है—"परम सुहृद भगवान् ऋषभोपदेश उपशम शीलानामुपरतकर्मणा महामुनीना भक्तिज्ञानवेराग्यलक्षण परमहस्यधर्म मुपशिक्षमाण स्वतनय शतज्येष्ठ परमभागवत भगवज्जन परायण भरत धरणि पालनाय अभिपिच्य स्वय भवन गगनपरिधान. ब्रह्मावर्तात् प्रवव्राज—

(भागवत स्कन्ध ५, अ ५, पृ० (५६३)

इस भागवत कथन से यह वात उपयुक्त लगती है कि अवतार पुरुष भगवान ऋषभदेव के पुत्र होने के कारण भरत चक्रवर्ती को स्वयमेव महत्व प्राप्त होता है तथा उनके कारण इस देश का नाम भारतवर्ष पडा। दुष्यन्त राजा की स्वय की ऐसा महत्वपूर्ण स्थिति नही थी, जैसी ऋषभ भगवान की थी। दुष्यन्त पुत्र के कारण इस देश का नाम भारतवर्ष पडा यह कथन पौराणिक कल्पना है। अनेक हिन्दु पुराण भी भागवत का समर्थन करते हैं।

दिगम्बरत्व की प्राचीनता

भगवान ऋषभदेव को सभी जैन—दिगम्बर तथा श्वेताम्बर इस अवसर्पिणी काल मे जैन धर्म के सस्थापक महापुरुष स्वीकार करते है। भागवत

के जैनेतर अवतरण से जब भगवान ऋषभनाथ दिगम्बर ज्ञात होते है, तथा जब उपलब्ध प्राचीनतम जैन मूर्तिया दिगम्बर ही मिलती है, तब श्वेताम्बर मत की प्राचीनता की विचारधारा स्वयमेव अस्तगत हो जाती है। श्वेताम्बर ग्रथ उत्तराध्ययन के गोतम केशी सवाद के नाम पर पार्श्व-नाथ तेइसवे तीर्थकर को सवस्त्र सिद्ध किया जाता है, किन्तु यह बात आश्चर्य तथा विनोद प्रद है, कि ईसा पूर्व की पार्श्वनाथ की मूर्तिया सभी दिगम्बर मिलती है तब एक गन्थ की कल्पना के आधार पर उपलब्ध प्रामाणिक इतिहास को कैसे असत्य माना जाय ?

इस सदर्भ मे विद्या वारिधि बेरिप्टर चपतराय जैन का यह कथन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, "पहिले मेरी श्रद्धा के धर्म की ओर तनिक भी नही थी किन्तु पश्चात् मेरे अध्ययन और चिन्तन ने मुझे जैन धर्म की श्रेष्ठता स्पष्ट की। उस समय मै सोचने लगा कि मै दिगम्बर पथ को अपनाऊ या श्वेताम्बर पथ को स्वीकार करू ? मूल जैन धर्म कौन सा है तथा प्राचीनतम किसे मानना ? कुछ काल के अनतर मेरे चित्त में यह बात आई, वस्त्र मे से नग्नता नही निकल सकती। हा नग्नता से वस्त्र आ सकता है।" अर्थात् शिथिलाचार वश दिगम्बर पथ मे सवस्त्र पथ प्रवेश पा सकता है। सवस्त्र पथ क्यो कठोर दिगम्बर पंथ का कारण होगा ? सरलता की ओर मानव का सहज झुकाव होता है। सरलता से कठिनता की ओर जाना अस्वाभाविक है। एक कवि ने कहा है

अर्के चेन्मधु विन्देत किमर्थ पर्वत व्रजेत्।
इष्टस्यार्थस्य ससिद्धौ कः विद्वान् यत्नमाचरेत्॥

यदि घर के कोने मे ही मधु प्राप्त हो जाय, तो कोई पर्वत पर क्यो चढने का कष्ट उठावेगा ? इष्ट पदार्थ की सिद्धि हो जाने पर कौन व्यक्ति उसके लिए उद्योग करेगा ?

ऋषभ देव का जैन धर्म यदि सवस्त्र मुक्ति मानता, तो कौन दिगम्बर पथ को अगीकार करता ? जब स्वय ऋषभ देव दिगम्बर थे, उनकी मूर्ति दिगम्बर है, अन्य तीर्थकरो की भी प्राचीन से प्राचीन मूर्तिया वस्त्र रहित है, तब भगवान पार्श्वनाथ को सवस्त्र पथ का सस्थापक कहना और दिगम्बर पथ का जन्मदाता महावीर को कहना स्वस्थ चितन, अध्य-यन तथा युक्ति के पूर्णतया प्रतिकूल है। मोहन जोदडो हडप्पा[1] के उत्ख-

१ राष्ट्रकवि डा० रामधारीसिह 'दिनकर' का यह कथन महत्वपूर्ण है—

-नन प्राप्त दिगम्बर मूर्तियां दिगम्बर जैन धर्म की प्राचीनता को स्पष्ट करती हैं। सांप्रदायिकता का मोह बड़ा विचित्र होता है। सन् १९४० के लगभग मैंने एक गुजराती श्वेताम्बर जैन का लेख पढ़ा था, जो साक्षात् दिगम्बर मुद्रा युक्त श्रवणबेलगोला के भगवान बाहुबली की मूर्ति को श्वेताम्बर सिद्ध करने के हेतु लिखा गया था।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित है कि आत्मा के पूर्ण विकास के लिए क्रोधादि कषायों का विनाश आवश्यक है, किन्तु उन विकारों का क्षय करने के लिए बाहरी सामग्री का त्याग अनिवार्य है: क्योंकि बाह्य पदार्थ रागादि विकारों को उत्पन्न करते हैं। जब बाह्य वस्तुओं का विचार मात्र मानसिक मलिनता को उत्पन्न करता है, तब क्या उनका संपर्क आत्मा को विकारी न बनावेगा? गीता का यह कथन मनोवैज्ञानिक है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥६०॥
क्रोधाद्भवतिसंमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥६३॥ अ० २

हे अर्जुन! विषयों का अनुचिंतन करने वाले पुरुष के चित्त में उनके प्रति आसक्ति होती है। उससे कामना उत्पन्न होती है, उससे क्रोध भाव पैदा होता है, जिससे मूढता का भाव होता है। इससे स्मृति भ्रमित हो जाती है। उससे बुद्धि का नाश होता है। इससे पुरुष का विनाश हो जाता है।

विद्यावारिधि बैरिस्टर चंपतरायजी जैन ने १ जुलाई १९३१ को लंदन से महात्मा गांधी को भेजे गये पत्र में दिगम्बर मुनि की चर्चा करते हुए अंग्रेजी पत्र में लिखा था। "यह बात समझ लेनी चाहिए, कि परिग्रह के दो रूप हैं अंतरंग और बाह्य। जब तक आप बाह्य परिग्रह रखते हैं तब तक आंतरिक रूप से आपके भाव अपरिग्रही नहीं बन सकते।"

परिग्रह धारण करने पर मानसिक स्थिति क्या होती है, यह बहुत

मोहन-जो-दडो की खुदाई में योग के प्रमाण मिलते हैं और जैन मार्ग के आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव थे, जिनके साथ योग और वैराग्य की परम्परा उसी प्रकार लिपटी हुई है जैसे कालान्तर में वह शिव के साथ समन्वित हो गयी। इस दृष्टि से कई जैन विद्वानों का यह मानना अयुक्त नहीं दीखता, कि ऋषभदेव वेदोल्लिखित होने पर भी वेद-पूर्व हैं।"

की वस्तु नही है। इसके लिए परिग्रह के निकटवर्ती व्यक्ति की स्थिति को देखना चाहिए। यह सूक्ति शाश्वतिक सत्य को सूचित करती है"

काजर की कोठरी मे कैसो हू सयानो घुसे।
एक रेख काजर की लागे पै लागै ॥

इस प्रसग मे कालिदास के आभिज्ञान शाकुन्तल नाटक का कथानक प्रबोध प्रद है। शकुन्तला पति गृह को जारही है, उस समय उसका सरक्षक दाता ऋषि अश्रु युक्त हो अपनी मनोदशा इस प्रकार व्यक्त करते है—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदय सस्पृष्टमुत्कंठया।
कण्ठः स्तभित वाष्पवृत्ति कलुषश्चिन्ता जडं दर्शन।
वैक्लव्य मम तावदीदृशमिद स्नेहादरण्यौकसः।
पीड्यन्ते गृहिणः कथ नु तनया—विश्लेषदुःखैर्नवैः ॥ अक ४

पद्यानुवाद इस प्रकार है—

आज शकुन्तला जायेगी मन मेरा अकुलात।
रुधि आंसू गदगद गिरा आखिन कछु न लखात ॥
मोसे वनवासीन को जो इतो सतावत मोह।
वे गेही कैसे सहै दुहिता प्रथम विछोह ॥

तात्त्विक बात यह है, कि जितना परिग्रह से बचा जायेगा उतनी उतनी शाति तथा निराकुलता की उपलब्धि होती जायगी। ईसाई गुरु सत पीटर का यह कथन मार्मिक तथा अनुभव परिपूर्ण है—हमारी दृष्टि मे परिग्रह पाप रूप है। जिस किसी भी प्रकार से जितना भी परिग्रह का पिण्ड छूटे, उतना ही पाप का भार दूर होगा।

"To us all possessions are sins" "The deprivation of these in what way it may take place, is the removal of sins,"

(Clement Homli A. N C. L. Vol. XVII P. 240)

विवेकी विचार को इस पद्य पर गहराई से विचार करना चाहिए, कि उनमे कितना अनुभव पूर्ण कथन है—

उत्तम अकिचन गुण जानो परिग्रह चिन्ता दुख ही मानो।
फांस तनक सी तन मे सालै, चाह लंगोटी की दुःख भालै।
भालै न समता सुख कभी नर, बिना मुनि मुद्रा धरै।
धनि नगन[1] पर तन नगन ठाडे सुर असुर पायनि परै ॥

---

१ पर्वत

भर्तृहरि अपने वैराग्य शतक मे कहते हैं—

एकाकी निस्पृहो शान्त. पाणिपात्रो दिगम्बर ।
कदाहं संभविष्यामि कर्म-निर्मूलन-क्षमः ।।

प्रभो ! ऐसा सौभाग्य कब मिलेगा, जब मै एकाकी हो, शान्त, निस्पृह, कर पात्री दिगम्बर मुनि वनकर कर्मो का पूर्णतया क्षय करूगा । सच्चे साधुत्व की पराकाष्ठा दिगम्बरत्व है । कहा है—

फकीरी की इतिहां है तन की उरयानी ।
इसके जरिये ही बंदा खुदाई जलवा पाता है ।।

जैन आगम के अनुसार सभी तीर्थकरो की जन्म भूमि अयोध्या सदा से रही है तथा भविष्य मे भी रहेगी, किन्तु इस हुडाव सर्पिणी काल की विशेपता वश अनेक तीर्थकरो के जन्म स्थान दूसरे भी हो गए, जैसे वासु पूज्य भगवान का जन्म स्थान चपापुरी, महावीर भगवान की जन्मभूमि कुण्डलपुर, नेमिनाथ भगवान की द्वारिका चद्रप्रभु भगवान की जन्मभूमि चद्रपुरी, श्रेयासनाथ भगवान की सिहपुरी (सारनाथ), भगवान पार्श्वनाथ की वाराणसी ।

भगवान राम की जन्मभूमि होने के कारण वर्तमान अयोध्या मे सर्वत्र हिन्दू धर्मका वैभव दृष्टिगोचर होता है । जब से आचार्य रत्न देशभूषण महाराज की प्रेरणा से अयोध्या के प्राचीनतम इतिहास से सवधित भगवान ऋषभदेव की ३३ फीट उन्नत सफेद सगमरमर की सुन्दर मूर्ति भव्य जिनालय मे विराजमान हुई, तव से विस्मृत जैन सस्कृति के गौरव पूर्ण इतिहास को नव जीवन प्राप्त हुआ है । रायगज मे स्थित ऋपभ देव का दिव्य, भव्य तथा मनोहर मन्दिर प्रत्येक के आकर्षण का केन्द्र हो गया है ।

मूर्ति निर्माण के विषय मे

आचार्य श्री ने मूर्ति निर्माण के विपय मे इस प्रकार वात वताई थी । उन्होने कहा था—

"जव मैंने अपना विचार प्रकट किया तो अनेक लोगो ने मेरे विचार का समर्थन किया । भगवान की दया और उदार हृदय, धार्मिक व दानी व्यक्तियो तथा अन्य सज्जनो के निमित्त से यह महान् कार्य पूर्ण हो गया । इस कार्य मे साहू शान्तिप्रसाद जी आदि प्रमुख जैनो ने तथा धार्मिक समाज ने तन-मन-धन से सहायता दी । कलकत्ते के सेठ रामेश्वरदयाल अग्रवाल के

मन मे मूर्ति के प्रति ऐसा अद्भुत आकर्षण उत्पन्न हुआ कि उन्होनें सर्व प्रकार की सहायता दी और उनके कारण अयोध्या की प्रतिष्ठा मे हजारो साधुओ, पण्डो आदि ने पूर्ण सहयोग दिया था। वडे वैभव से प्रतिष्ठा हुई थी। सारे नगर की जनता को भोजन कराया गया था।"

वैभवपूर्ण प्रतिष्ठा

अयोध्या की प्रतिष्ठा के अवसर पर नगर भोज के लिए तैयारी की गई। विपुल खाद्य सामग्री को कहा रखा जाय, ऐसी समस्या को देख जमीन मे गड्ढे खोदकर उनमे पत्ते बिछाकर पुडी रखी गई थी। यथार्थ मे वह शाही प्रतिष्ठा थी, क्योकि प्रतिष्ठा के अधिनायक शाह-शाहो के द्वारा पूज्य भगवान ऋषभदेव थे। वहा का मदिर भी शाही मदिर सा दिखता है।

सन् १९७२ मे हम अपने भाई डाक्टर प्रोफेसर सुशीलचद दिवाकर के साथ शिखरजी यात्रार्थ जाते हुए अयोध्या गए थे। अद्भुत मदिर, उत्तुग आदीश्वर प्रभु की मूर्ति आदि का दर्शन कर अपार आनद आया। आस-पास की वहुत जमीन मदिर जी की है। यह वैभव देखकर बार बार मन देशभूषण महाराज को प्रणाम करता था। हृदय उन्हे धन्यधन्य कहता था।

एक विचार चित्त में आया कि कोथली ग्राम मे जन्म लेने वाले दक्षिण कर्णाटक के एक व्यक्ति ने रत्नत्रय धर्म की आराधना द्वारा ऐसा महान् कार्य सम्पन्न कर दिया था, जो सैकडो वर्षो तक भव्य जीवो को वीतरागता का अमृत रस पान करने को प्राप्त होगा। मेरा तो ऐसा ख्याल है, कि मुनि निदक इस स्थल का दर्शन करे तो शायद उसकी भी आख खुल जायगी, कि आचार्य देशभूषण महाराज की दिगम्बर जैन संस्कृति को चिरस्थायी कितनी बडी देन है। अभव्य प्राणी को नही समझाया जा सकेगा। हमारा तीर्थ यात्रा करने वाले व्यक्तियो से अनुरोध है कि अयोध्या जाकर भगवान आदीश्वर की सम्यक्त्व-जननी दिव्य मूर्नि तथा विशाल मनोज्ञ जिनालय का दर्शन करके स्वय को अवश्य कृतार्थ करें। सूक्ति है—

जिन प्रतिमा अरु जिन भवन कारन सम्यग्ज्ञान।
कृत्रिम और अकृत्रिम तिनहिं नमो धर ध्यान॥

कोल्हापुर की मूर्ति

मैंने पूछा-महाराज कोल्हापुर मे आपने २५ फीट ऊची आदिनाथ भगवान की खड्गासन मूर्ति विराजमान करवाई और उनकी बड़े वैभव से प्रतिष्ठा हुई। उस प्रतिष्ठा मे कोल्हापुर के नरेश साहू महाराज ने उपस्थित होकर भगवान की वन्दना की थी। उस मूर्ति के बारे मे आपके हृदय मे कैसे विचार उत्पन्न हुए?

महाराज ने बताया—"सन् १९६२ मे हमारा कलकत्ते मे चातुर्मास था। वेलगछिया मे हमारा आहार हुआ करता था। कलकत्ता शहर मे आकर सर्व प्रथम आहार देने का योग सेठ पारसमल कासलीवाल सरावगी को मिला। उससे पारसमल के मन मे बड़ी खुशी हुई। अपनी धार्मिक वृद्ध माताजी से सलाह कर उसने २१,०००) रुपये का दान घोषित किया। उस सम्बन्ध मे हमारे मन मे एकदम श्रवणबेलगोला का विचार आया। हमने सोचा-यदि कोल्हापुर के दिगम्बर जैन मठ मे भगवान आदिनाथ प्रभु की उन्नत प्रतिमा विराजमान हो जाती है, तो आस-पास के ग्रामो से आने वाले लाखो लोगो को भगवान का दर्शन होगा और किसान भाई प्रभु के दर्शन से धर्म मे लगे रहेगे। जैन मठ मे भगवान की मूर्ति विराजमान होने से धर्म प्रभावना के साथ मठ का सरक्षण भी रहेगा। उससे उस मठ की सम्पति आदि की पूर्णतया सुरक्षा रहेगी। पारसमल ने भक्ति पूर्वक वह मूर्ति कोल्हापुर मे विराजमान कराई और प्रतिष्ठा मे भी उदार हृदय से कार्य किया। आज वह दिव्य मूर्ति उस धर्मात्मा शिष्य के स्वर्गवासी होने पर भी उसका स्मरण कराती है। आज हमारे जैन श्रावक विपुल धन सग्रह कर रहे हैं, उसको उन्हे बहुत शीघ्र ही धर्म और समाज रक्षा के कार्यो मे जी खोल कर लगाना चाहिए। नही तो आगे का जमाना जो बडा खराब नजर आ रहा है, धन सग्रह करने वालो के लिए सकट का कारण बन जायेगा। यह समय है कि सचेत होकर जीर्णोद्धार कार्य, दीन तथा असमर्थ जैनो के सरक्षण आदि उपकारी धर्म कार्यो मे लोग अपने द्रव्य का उपयोग करे। ऐसा न करने वाले आगे आर्तध्यान को प्राप्त कर आगामी पर्याय मे कष्ट भोगेंगे।"

धनिको को यह सोचना जरूरी है कि समाजवादी शासन का ध्येय धनपतियो के मुटापे को कम करना है। भर्तृहरि ने कहा है—'वित्ते नृपालाद् भयम्', धन के होने पर शासन से भीति हुआ करती

है। अत साधर्मी श्रेष्ठिवर्ग को समझ से काम लेना चाहिए।

चूलगिरि जयपुर

प्रश्न—मैने महाराज से पूछा कि आप के निमित्त से कोल्हापुर और अयोध्या मे विशाल मूर्तियाँ विराजमान हुई। जयपुर नगर मे खानिया के समीपवर्ती पर्वत चूलगिरि पर जो अत्यन्त मनोहर, भव्य और शान्ति-दायी प्रतिमाओ को आपने विराजमान कराया, क्या इसका उद्देश्य यह था, कि लोग बहुत समय तक मेरा नाम लेगे। मेरी कीर्ति स्थायी हो जायगी, क्योकि आज प्रत्येक व्यक्ति अपने नाम के बारे मे अधिक सोचा करता है। यथार्थ मे देखा जाय तो इस सत्य को स्वीकार करना पड़ेगा कि आज का व्यक्ति प्रसिद्धि को चाहता है, विशुद्धि से डरता है और सिद्धि को आकाश मे अवतरित होते देखना चाहता है। आप तो साधुराज है। आपकी आन्तरिक भावना तो उच्चरूप की रही होगी। स्पष्टीकरण हेतु प्रार्थना है।

उत्तर—महाराज ने मुस्कराते हुए कहा,—"पण्डितजी ! देशभूषण को कीर्ति नही चाहिए। जब सब परिग्रह छोड़ा, तो उसके साथ यशो-लिप्सा की बीमारी भी छोड़ दी थी। हम तो जो काम करते है, कराते है उसके पीछे आत्म शान्ति, धर्मप्रभावना तथा लोक कल्याण का तत्त्व छिपा रहता है। मेरी ऐसी आदत हो गयी है कि जब तक इस शरीर मे प्राण है, तब तक कुछ न कुछ स्वकल्याण और भव्यात्माओ के कल्याणार्थ कार्य करता चला जाऊं।"

"मूर्ति निर्माण के बारे मे यथार्थ मे बात यह है कि श्रमण बेलगोला जाकर भगवान बाहुबली की दिव्य छवि के दर्शन करने से अवर्णनीय आनन्द मिला, शान्ति प्राप्त हुई। बाहुबली का चिन्तवन ध्यान मे सहायक रहा है, इसलिए आत्मध्यान के सहायतार्थ हमारा मन अत्यन्त उत्तुग और विशाल जिनबिम्बो के निर्माण की ओर गया।"

आत्मा का स्वरूप

प्रश्न—महाराज ! आप आत्मध्यान की बात करते है। उस आत्मा का स्वरूप क्या है ?

समाधान—महाराज ने कोई उत्तर शब्द द्वारा न दिया। मैंने देखा

कि महाराज चुपचाप निस्तब्ध हो ध्यानमुद्रा मे निमग्न हो गये। उससे मैं समझ गया कि महाराज इस बात की ओर संकेत कर रहे हैं कि अपने स्वरूप मे स्थित होकर प्रशान्त बन जाना यथार्थ मे आत्मा का निज रूप है। द्रव्य-सग्रह मे भी नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने कहा है कि :—

"अप्पा अप्पम्मि रओ इयमेव परं हवे झाण"

अर्थ—आत्मा का अपने स्वरूप मे निमग्न होना ही श्रेष्ठ ध्यान है। आचार्य श्री ने इस आत्मसम्बन्धी चर्चा से विशेष स्फूर्तियुक्त हो रत्नाकर-रचित अपने प्रिय ग्रथ रत्नाकर शतक की यह सुन्दर बात सुनाई—"अरे आत्मन्! तू शरीर से भिन्न है। यदि यह शरीर हीरा, सोना, चाँदी का होता तो यहाँ तेरा आसक्त होना या ममता धारण करना कदाचित् ठीक भी था। अरे आत्मदेव! यह शरीर तो माँस, मल, मूत्र तथा चमड़े का पिड है। यह तो बता कि इस गीले चमडे के भीतर कब तक आसक्त होता हुआ तू बैठा रहेगा? अरे! भैंसा, शूकर आदि पशु कीचड़ मे लोटा करते हैं। तू तो अपार ज्ञानराशि है, ज्योतिर्मय और चैतन्यपुज है। तेरी प्रवृत्ति तो विवेकपूर्ण होनी चाहिए। तू अपने चैतन्य स्वरूप का स्मरण कर। उस स्वरूप को भूलकर बाह्य पदार्थो मे क्यो चक्कर मारा करता है?।"

जयपुर मे चूलगिरि पर्वत पर स्थित मूर्तियो की बडे वैभव से प्रतिष्ठा जब हुई थी, तब मैं वहा मौजूद था। महाराज अद्भुत तेजपुंज साधुराज लगते थे। जयपुर राज्य की महारानी गायत्री देवी महाराज के पास आई। उन्होने महाराज के चरणो को सविनय प्रणाम करते हुए कहा था, "महाराज! आपके दिव्य प्रभाव से हमारे जयपुर की श्री वृद्धि हो गई।" मुख्य मन्त्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया (वर्तमान राज्यपाल कर्णाटक) ने महाराज श्री को प्रणाम किया। अपार जन समुदाय उपस्थित था। धर्म की पवित्र गंगा मे सभी जीव अपने मन को स्वच्छ कर रहे थे। मुख्य मन्त्री ने आचार्य श्री को क्षेत्र की उन्नति के लिए हर प्रकार का सहयोग देने का वचन दिया था तथा आगे पूर्ति भी की थी। आज चूलगिरि क्षेत्र नवीन तीर्थ हो गया है।

जिनेन्द्र मूर्ति का महत्व

शंका—जिनेन्द्र मूर्ति अचेतन है, उससे चैतन्यमयी आत्मा का क्या उपकार हो सकेगा? ऐसी शंका उत्तर पुराण मे आई है। भगवान पार्श्वनाथ पूर्व भव मे आनन्द नाम के प्रतापी राजा थे। उन्होने वसंत ऋतु के नंदीश्वर

पर्व मे महा पूजा कराई। उसे देखने को विपुलमति नाम के मुनिराज वहां पधारे। राजा ने मुनिराज से पूछा था "हे प्रभो ! भगवान की प्रतिमा अचेतन है। उसमे निग्रह, अनुग्रह करने की शक्ति नही है। फिर उसमे भक्ति करने व पूजा करने से सज्जनो को पुण्य कर्म की प्राप्ति किस प्रकार होती है ?"

समाधान—मुनिराज ने कहा था—"राजन् ! श्री जिनराज की प्रतिमा जिनालय के समान अचेतन है तथापि वह भव्य जीवो को पुण्यबध का कारण होती है, क्योकि वह शुभ परिणामो को उत्पन्न करने का कारण है।" उत्तर पुराण के ये शब्द मार्मिक है—

शृणु राजन् ! जिनेन्द्रस्य चैत्यं चैत्यालयादि वा ॥४८॥
भवत्यचेतनं किन्तु भव्यानां पुण्यबंधने ।
परिणामसमुत्पत्ति हेतुत्वात्कारणं भवेत् ॥४९॥ पर्व ७३॥

मुनिराज ने यह भी कहा था

जिनेन्द्रस्यालयास्तस्य प्रतिमाश्च प्रपश्यताम्,
भवेत् शुभाभिसंधान प्रकर्षो नान्यतस्तदा ॥ ५२
कारणद्वयसान्निध्यात्सर्वं कार्यसमुद्भवः ।
तस्मात्तत्साधु विज्ञेयं पुण्यकारणकारणम् ॥५३

जिनेन्द्र देव के मन्दिर और उनकी प्रतिमा के दर्शन करने से जैसी शुभ भावों की उत्कृष्टता होती है वैसी निर्मलता और किसी मे नही हो सकती, क्योकि अन्तरग तथा बहिरग दोनो कारणो के मिलने से सर्व कार्य उत्पन्न होते है। अत यह बात अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिए कि जिन मन्दिर तथा जिन प्रतिमा पुण्य बन्ध के कारण (भाव) के कारण है। अर्थात् उनसे शुभपरिणाम होते है तथा शुभपरिणामो से पुण्य का बध होता है। केवल उपादान कारण से कार्य सपन्न मानना अज्ञानीपना है।

शका—जिन प्रतिमा से पुण्य का बध होता है, उसका मोक्ष मार्ग से कोई सम्बन्ध नही है, अत. मुमुक्षु के लिए जिन बिम्ब का दर्शन उपकारी नही होगा।

समाधान—इस शका के निराकरण हेतु षट् खडागम सूत्र का यह कथन ध्यान देने योग्य है। आचार्य पुष्पदन्त भूतबलि स्वामी ने यह प्रश्न उठाया है ?

मणुस्सा मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहिं पढम सम्मत्तमुप्पादेंति ।२९।

मिथ्यादृष्टि मनुष्य कितने कारणो के द्वारा प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं। इस शंका के उत्तर मे आचार्य युगल यह सूत्र लिखते हैं—

तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति—केई जाइस्सरा, केई सोऊण केई जिणबिम्बं दट्ठूण ॥३० (जीवट्ठाण चूलिका मे प्रथम सम्यक्त्वोत्पत्ति प्ररूपणा) तीन कारणो से मिथ्यादृष्टि मनुष्य प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं, कोई जाति स्मरण से, कोई धर्मोपदेश को सुनकर, कोई मनुष्य जिन प्रतिमा का दर्शन करके सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं। षट् खंडागम ने कहा है कि पशुओ के भी जाति स्मरण, धर्मोपदेश श्रवण तथा जिन बिम्ब दर्शन से सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। (सूत्र २२)

उस परमागम मे कहा है सोलह स्वर्ग पर्यन्त के देव जाति स्मरण, धर्म श्रवण तथा जिन महिमा दर्शन द्वारा सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं। ग्रैवेयक वासी मिथ्यात्वी देव जाति स्मरण तथा धर्म श्रवण इन दो कारणो से सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं।

तीसरी पृथ्वी तक के नारकी जाति-स्मरण, धर्म श्रवण तथा वेदना से पीड़ित होने से सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं। चौथी पृथ्वी से सातवीं पृथ्वी में जाति स्मरण तथा वेदना से अभिभूत हो सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं।

यहाँ यह बात ध्यान मे रहनी चाहिए कि अन्तरग सामग्री होने पर बाह्य निमित्त कार्य साधक होता है। आचार्य देशभूषण महाराज की प्रेरणा से अयोध्या जी मे निर्मित मूर्ति सम्यक्त्व की उत्पादिका होने से अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है, जो मोक्ष प्राप्ति में सहायक सामग्री रूप है। महान ज्ञानी क्षायिक सम्यक्त्वी एक भवधारी सर्वार्थ सिद्धि के देव भी पुण्य दायिनी जिनेन्द्र भगवान की पूजा करते हैं। जिनपूजा द्वारा पापकर्म की निर्जरा होती है। कषाय का अभाव होनेसे निर्मल भावो के द्वारा पुण्य का बंध होता है। बंध का अभाव श्रमणो के सिवाय गृहस्थ या देव कभी भी नहीं कर सकते हैं। भगवान ऋषभदेव तीर्थंकर पूर्व भव मे सर्वार्थसिद्धि मे अहमिन्द्र थे। उस समय वे जिनेन्द्र की पूजा करते थे। महापुराण मे लिखा है—

संकल्पमात्र निर्वृत्तैः दिव्यैर्गन्धाक्षतादिभिः।
पुण्यानुबंधिनीं पूजां स जैनीं विधिवद् व्यधात् ॥१३५-११ पर्व०

सकल्प मात्र से उत्पन्न हुए दिव्य गध, दिव्य अक्षतादि द्रव्यों के द्वारा वह अहमिन्द्र विधि पूर्वक पुण्यानुबंधिनी जिनेन्द्र की पूजा करता था।

जिनार्चा-स्तुतिवादेषु वाग्वृत्तिं तद् गुणस्मृतौ ।
स्वं मनस्तन्नतौ कायं पुण्यधीः सन्त्ययोजयत् ॥ १३७ ॥ ११

उस पुण्य बुद्धि अहमिन्द्र ने अपनी वचन प्रवृत्ति जिनेन्द्र के स्तवन में लगाई थी अपना मन उनके गुण स्मरणो मे लगाया था और अपनी देह उनके नमस्कार करने मे लगाई थी।

जव क्षणिक सम्यक्त्वी महाज्ञानी अहमिन्द्र जिनेन्द्र पूजा को कल्याणकारी मानते हैं, तव वे गृहस्थ जिनके सम्यक्त्व का ठिकाना नही तथा जिनके भव्यपने का भी पता नही है जिन पूजा के विरुद्ध वचनालाप करे, तो यह ऐसा ही विवेकहीन कार्य है, जैसे कोई अन्ध व्यक्ति तेजपुंज सूर्य को श्यामवर्णीय कहता फिरे। समन्त भद्र स्वामी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है।

देवाधिदेव चरणे परिचरणं सर्व दुःखनिर्हरणम् ।
कामदुहि काम दाहिनि परिचिनुया दादृतो नित्यम् ॥

देवाधिदेव भगवान जिनेन्द्र के चरणो की पूजा समस्त दुःखों का नाश करती है, कामनाओ को पूर्ण करती है, तथा काम विकार का नाश करती है, अत विनय पूर्वक प्रतिदिन जिनेन्द्र की पूजा करनी चाहिए।

हिन्दू धर्म प्रेमी व्यक्ति को दिगम्वर जैन मूर्ति गीता को दैवी सपत्ति रूप मुद्रा का दर्शन कराती है। जैन मूर्ति में शांति, (क्रोधरहित) निर्विकार मुद्रा (काम रहित), परिग्रह रहित (लोभ विरहित) स्थिति का स्पष्टतया दर्शन होता है। काम, क्रोध तथा लोभ को गीता मे नरक द्वार कहा है। उनका त्याग मुक्ति का मार्ग माना है। गीता के सोलहवे अध्याय का यह पद्य मार्मिक है—

त्रिविधं नरकस्येद द्वारं नाशनमात्मनः,
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥२१॥
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचारत्यात्मन श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥२२॥

काम, क्रोध तथा लोभ ये नरक के तीन द्वार है, इनके द्वारा आत्मा की अधोगति होती है। अत इन तीनो का त्याग करना चाहिए। हे अर्जुन ! इन तीनो नरक के द्वारो से मुक्त हुआ पुरुष अपने कल्याण का आचरण करता है, उससे वह परम गति को प्राप्त करता है।

दिगम्वर मूर्ति की मुद्रा मे योगी की ध्यान मुद्रा का स्वरूप पाया

जाता है। गीता के छठवे अध्याय मे कहा है कि आसन पर बैठकर मन को एकाग्र करके आत्मविशुद्धि के लिए इस प्रकार की मुद्रा धारण करे—

सम कायशिरोग्रीवं धारयन्नचल स्थिरः।

सप्रेक्ष्य नासिकाग्र स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥१३॥

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।

मन संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीतमत्पर ॥१४॥

"शरीर, मस्तक तथा ग्रीवा को समान तथा अचल धारण किये हुए दृढ होकर अपनी नासिका के अग्रभाग को देखकर अन्य दिशाओ पर दृष्टि न दौडाता हुआ ब्रह्मचर्य व्रत मे स्थित रहता हुआ निर्भीक तथा प्रशान्त होता हुआ सावधानी पूर्वक मन को नियत्रण मे रखकर मेरी (ईश्वर) ओर चिन्ता लगाकर मेरे (ईश्वर) विषय मे तल्लीन हो।"

दिगम्बर जैन मूर्ति मे आत्म दर्शन निमग्न श्रेष्ठ योगी की मुद्रा परिलक्षित होती है। इस विषय मे हमे एक बात छिदवाडा के स्व० प० गोविन्दराम त्रिवेदी एडवोकेट की याद आती है। उन्होने कहा था, "मैं बच्चा था। मुझे सिखाया गया था, कि जैन मन्दिर मे कभी भी नही जाना चाहिए। मै समीपवर्ती जैन मन्दिर मे जाने से सकोच करता था। एक दिन सुदैववश जैन मन्दिर पर मेरी दृष्टि गई और मुझे गीता के वे श्लोक याद आ गए जिनमे दैवी सम्पत्ति का कथन आया है। भगवान महावीर की मूर्ति मे अहिंसा, सत्य, अक्रोध, शान्ति, त्याग, अपिशुनता अर्थात् चुगली न करना, जीव दया, अलोलुपता, कोमलता आदि गुणो का दर्शन हो रहा था।"

अहिसा सत्यमक्रोधस्त्याग. शान्तिरपैशुनम्।

दयाभूतेषुअलोलुपत्व मार्दव ह्रीरचापलम् ॥२॥

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।

भवन्ति सपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥३॥

दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।

मा शुच सपदं दैवीमभिजातोसि पाण्डव ॥५॥—अ० १६

उस समय से मेरी दृष्टि बदल गई। मेरे हृदय मे जैन धर्म के प्रति विरोध की कल्पना दूर हो गई और जैन धर्म तथा जैन मन्दिर मुझे प्रिय लगने लगे।"

दिगम्बर जैन मूर्तियो के माध्यम से आत्मा निर्मल विचारो को प्राप्त करता है। मूर्ति के आश्रय से उस आदर्श का विचार किया जाता है जो

प्राप्तव्य है। मूर्ति पूजा (Idol worship) यथार्थ में आदर्श पूजा (Ideal worship) है। इसी ध्येय को लक्ष्य मे रखकर आचार्य देशभूषण महाराज मन्दिर, मूर्ति निर्माण तथा जीर्णोद्धार आदि कार्यो के लिए दानी व्यक्ति को प्रेरित करते है। "जगा चा कल्याण सता ची विभूति"—सतो का वैभव लोक कल्याण ही है। जब जिन प्रतिमा सम्यक्त्व का कारण है, तब उसे अनुपयोगी मानना अनुचित है। इतनी बात अवश्य ध्यान मे रहनी चाहिए, कि जीर्णोद्धार आदि सत्कार्यो की ओर विशेष दृष्टि रखनी चाहिए। विवेक तथा सद्विचार के प्रकाश मे कार्य करना चाहिए। धर्म के अन्य आयतनो की उपेक्षा करने वाला विवेकी नही माना जायगा। एकान्त पक्ष लाभप्रद नही रहेगा। वर्तमान युग मे जीर्णोद्धार का कार्य सपन्न करना भी महत्वपूर्ण कार्य है।

संयम द्वारा सिद्धि लाभ

बम्बई में बोरीवली नाम का उपनगर है। बोरीवली (पोदनपुर) में स्थित भगवान आदीश्वर, बाहुबली और भरत चक्रवर्ती की तीन लगभग ३२ फुट ऊँची दिव्य मूर्तियाँ हैं। उनकी प्रतिष्ठा १९७१ में सम्पन्न हुई। उस महत्वपूर्ण प्रतिष्ठा मे भाग लेने का स्वर्गीय आचार्य नेमिसागर जी महाराज की कृपा से हमें सौभाग्य मिला था। वहां हमारा दक्षिण के जैन बन्धु श्री बी० बी० पाटील का निकट परिचय हुआ। सम्पन्न श्रीमान् होते हुए भी उनकी मुनि भक्ति, खासकर आचार्य देशभूषण जी महाराज के प्रति आदर और श्रद्धा अपूर्व है। श्री पाटील से हमने पूछा कि आचार्य देशभूषण के बारे मे कोई विशेष बात सुनाइये।

अद्भुत महात्मा

उन्होंने कहा था, "शास्त्री जी ! महाराज अद्भुत सिद्ध पुरुष हैं। उनके समीप रहने पर स्वच्छ हृदय व्यक्ति को उनकी महत्ता का पता मिलता है। मैं उनके निकट सम्पर्क मे बहुत आया। मैंने उनसे कोल्हापुर में बम्बई तरफ विहार की प्रार्थना की थी। जब बम्बई मे हम उनको लाये थे, तब लाखों आदमियो के बीच मे दिगम्बर जैन साधु की जो प्रभावना हुई वह अद्भुत तथा अभूतपूर्व थी। प्रमुख दैनिक आदि पत्रो ने भी बहुत प्रचार हुआ था।"

"महाराज को जयपुर की ओर जाना था। उन्होंने बड़े प्रेम से मुझसे कहा था, "पाटील ! तुमको कमण्डलु लेकर चलना होगा।" अनेक झंझटें और अगणित जिम्मेदारियां थी। मैं मातृ मन्दिर नामके पच्चीस मंजिला गगनचुम्बी भवन निर्माण कार्य मे बहुत व्यस्त था। अब वह भवन पूरा हो गया है।

फिर भी मै महाराज की बात नही टाल सका। मैने उनका कमण्डलु पकड़ा और पीछे-पोछे उनके साथ चला।

मई महीने की गर्मी भीषण थी, पृथ्वी आग उगलती थी, हम लोग आबू पहुँचे। आबू पहाड़ से हम लोग उतरकर नीचे आ रहे थे। सात आठ मील चलने से हम सब का कण्ठ सूख गया। वहा पानी का नाम निशान नही था। एक प्यासे व्यक्ति ने तो महाराज के कमण्डलु का पानी पीकर साफ कर दिया। सब लोगो ने महाराज से प्रार्थना की कि महाराज! प्यास की बडी वेदना हो रही है।

यह सुनकर महाराज कुछ क्षण चुप हो गये। ध्यान निमग्न होने के पश्चात् उनके मुह से सहज ही यह शब्द निकले कि "पाटील! यह दस कदम पर जो पत्थर पडा है इसे थोडा अलग तो करो।"

हम क्या बतायें, पत्थर अलग करते ही गगोत्तरी से गगा के प्रवाह की तरह पानी निकल आया। सबने खूब पानी पीने के साथ उष्णता का सताप भी दूर किया।"

मैने कहा—"पाटील जी, आप एक जिम्मेदार और विशिष्ट व्यक्ति है। मैं समझता हूं कि आपके कथन मे कोई अतिशयोक्ति नही होगी।"

उन्होने कहा—"शास्त्री जी! यह प्रत्यक्ष देखी गयी अनुभूत घटना है, मिथ्या नही है। हमारे सामने की यह बात है।"

यथार्थ मे तपस्या के माध्यम से इन तपस्वियो के पास ऐसी सिद्धिया स्वय आ जाती है, जिनका उनको पता नही चलता है। विष्णुकुमार मुनि को विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हो गई थी, किन्तु उनको परिज्ञान न था। अन्य जगत् तो इसे क्या जानेगा? आध्यात्मिकता से अपने जीवन को शुद्ध करने के बाद आत्मा के प्रभाव से प्रभावित पुद्गल अजीव तत्व भी अजाब करामात दिखाता है।

श्री पाटील ने एक दूसरा सस्मरण इस प्रकार सुनाया—"महाराज का सघ जब ब्यावर के समीप था तब आसपास मे मूसलाधार वर्षा हो रही थी। महाराज को लोगो ने रोका, लेकिन उनकी अन्तरात्मा ने प्रस्थान का ही समर्थन किया। वे रवाना हो गए। हमने देखा कि सघ के पीछे थोडी दूरी पर और सघ से आगे दो-तीन मील दूरी पर घनघोर वर्षा हो रही थी लेकिन, आचार्य श्री के गमन से सम्बन्धित क्षेत्र मे पानी की तनिक भी बाधा नही आई। इसे आप पडित लोग चाहे चमत्कार कहे या अन्य नाम दे, हम तो

इसे महाराज के निर्दोष ब्रह्मचर्य, पवित्र श्रद्धा और महान् साधना रूपी वृक्ष का सुमधुर फल मानते हैं। आचार्य देशभूषण महाराज साधारण श्रेणी के व्यक्ति नहीं हैं। वे उच्च श्रेणी के सन्त हैं।"

आचार्य महाराज के निकट सम्पर्क में आने वाले छोटे-बड़े स्तर के व्यक्ति मिले और मिलते रहते हैं। वे सब आचार्यजी के मधुर व्यक्तित्व और तेजोमय जीवन की बड़े प्रेम से चर्चा करते हैं। मेरा तो आचार्य जी से करीब पैंतालिस वर्ष से अत्यन्त निकट परिचय रहा है। उनके समीप आते ही हृदय में आनन्द आता है और उनके पास से जाते समय मन में यही लालसा रहती है कि कब इनके चरणों का दर्शन पुनः प्राप्त होगा।

मैं कोल्हापुर गया था तब मुझे लोगों ने बताया कि कोल्हापुर से तीस मील दूरी पर राधानगर ग्राम में भयंकर हैजा फैल गया था। लोग महाराज की शरण में आये। उन्होंने महाराज के कमण्डलु का जल लेना शुरू किया। वह जल उस महामारी को शान्त करने के लिये अमृत औषधि रूप परिणत हो गया। इसी प्रकार वहां सुना कि बहुत वर्ष पूर्व एक नगर में भयंकर प्लेग की बीमारी फैल गई थी। महाराज के वहां पहुंचते ही वह रोग जाता रहा। इस सम्बन्ध में यह बात स्वीकार करनी होगी कि अन्य धर्म के सात्विक प्रकृति वाले सच्चरित्र त्यागी तथा भद्र परिणामी साधकों को भी सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

स्वच्छ जीवन

आचार्य देशभूषण महाराज का मन न प्रसिद्धि की ओर है और न लौकिक चमत्कार सयुक्त सिद्धियों की ओर है। जिस प्रकार नभोमण्डल में प्रभात के आने पर कुछ काल के अनन्तर सूर्य का तेजोमय प्रकाश उपलब्ध होता है, उसी प्रकार जिनके अन्तःकरण में, आचार और वाणी में सत्य और अहिंसा प्रतिष्ठित हो जाती है वे बिना प्रयत्न के आध्यात्मिक और पारमार्थिक सिद्धि के शिखर पर पहुचते हैं। जैसे पतग का खिलाड़ी डोर को हाथ में रखकर गगनागण में अपने पतग के विविध परिवर्तनों का मजा लूटा करता है, उसी प्रकार महान् सन्त, परमात्मा तथा आत्मदेव से अपना सम्पर्क स्थापित कर विश्व में विहार करते हैं साथ ही साथ अपनी आत्मा को उन्नत भी बनाते जाते हैं।

वास्तव में बात यह है, कि जिन साधुओं के ज्ञान-चक्षु खुल जाते

हैं, वे ससार में रहते हुये भी उससे पृथक् अपना, मानसिक सतुलन बनाये रखते है। बिना ज्ञान नेत्रो के खुले साधु का वेष धारण लेने वाला व्यक्ति भी गृहस्थ तुल्य चक्कर मे फसा रहता है। इसीसे समतभद्र आचार्य ने ही साधु को गृहस्थ से भी लघु श्रेणी का कहा है। कबीर का यह कथन मार्मिक है।

साखी आंखी ज्ञान की समझु देखि मन मांहि।
बिन साखी संसार का झगड़ा टूटत नांहि॥

देशभूपण महाराज ज्ञान के नेत्रों से शोभायमान महापुरुप है, जो ससार के पक से स्वय को दूर रखते हुए स्वयं का कल्याण करने के साथ दूसरो का भी हित करते है। वे यथार्थ मे तरन-तारन साधु हैं। मोहांध पापी इनका यथार्थ दर्शन नही कर सकता। भाग्यवान इनसे लाभ लेता है पापी इनमे दोष ही खोजता रहता है।

दीर्घ संसारी आत्मा सत समागम को पाकर दुष्ट भावो को उत्पन्न कर अपना अहित करते हैं। एक ही वस्तु व्यक्ति की मनोवृत्ति के अनुसार भले-बुरे परिणाम का कारण बन जाती है।

एक समय की बात है। किसी नगर की वेश्या की मृत्यु हो गई। उसका शव श्मशान को जब ले जाया गया, तब वहाँ विद्यमान गीदड़ सोचता था कि यदि ये लोग इसे छोड़दे, तो मै इसका भक्षण कर लूं। एक विषयासक्त वेश्यागामी पछताता था, कि मै इसके जीवन काल मे इसके पास न जा पाया। वहाँ एक दिगम्बर महामुनि ध्यानार्थ विराजमान थे। वे सोचते थे, इस महिला ने अपना दुर्लभ मनुष्यभव व्यर्थ ही गवा दिया और परलोक के लिए उपयोगी पड़ने वाली धर्म रूप निधि इकट्ठी नही की। उनके मन मे करुणा का भाव उत्पन्न हुआ। इस प्रकार अपनी मानसिक पृष्ठभूमि के अनुसार जीवों के परिणाम हुआ करते है।

दोष सद्भाव

एक बार आचार्य शान्तिसागर महाराज ने कहा था, दुष्ट जन साधुओ के ऐब खोजा करते हैं, यह आश्चर्य की बात नहीं है, लोग तो भगवान को भी नही छोडते। सर्वज्ञ जिनेन्द्र के समवशरण के बाहर तीन सौ तिरेसठ कुवादी भगवान को निन्दा किया करते है।

सज्जन व्यक्ति साधु के गुणों का भण्डार सोचते हुए उनकी विशेष-

ताओ से लाभ लेकर आत्मकल्याण करते है। संसार मे परमात्मा के सिवाय ऐसा कौन है जिसमे दोष वा अपूर्णता न पाई जाय। गुणज्ञ गुणान्वेषण करता है। दुष्ट जोक की वृत्ति को अपनाता हुआ सडे खून को तरह दोष सग्रह करता है। सज्जन हस के समान गुण रूपी क्षीर का पान करता है। यह बात ज्ञातव्य है कि साधक जब निर्मल साधना मे निमग्न हो जाता है, तव अपूर्व सिद्धिया उसके पास आया करती है। क्षत्र चूडामणि मे कहा है—"पात्रता नीतमात्मान स्वय यातिहि सिद्धय" अपनी आत्मा को योग्य बनाने पर स्वयमेव सिद्धिया प्राप्त हो जाती है। जयधवला टीका मे कहा है कि इद्रभूति गौतम ने मुनि दीक्षा ली। उसके पश्चात् वे अणिमा आदि आठ प्रकार की लब्धियो से सम्पन्न हो गये थे। उन्होने सर्वार्थ सिद्धि मे निवास करने वाले देवो से अनन्त गुण वल प्राप्त कर लिया था। (सव्वट्ठसिद्धि-णिवासिदेवेहितो अनतगुणबलस्स)। वे अपने हाथ मे रखे गए आहार को अमृत रूप मे परिणत करने की क्षमता सपन्न थे। आहार तथा स्थान के विषय मे उन्होने अक्षीण ऋद्धि प्राप्त की थी, सर्वावधि ज्ञान के द्वारा पुद्गल द्रव्यमात्र का साक्षात् करने की क्षमता प्राप्त की थी, तथा वे विपुलमति मनः पर्ययज्ञान सपन्न हो गए थे।" (जयधवला भाग १, पृष्ठ ८३)।

मंत्र सम्बन्धी भ्रांत विचार

अपनी अज्ञानतावश लोग कह दिया करते है कि साधुओ को तो अपनी आत्मा की ही चिन्ता करना चाहिए। उन्हे मत्र तत्रो के चक्कर में नही पडना चाहिए। इस कल्पना का मिथ्यापना इससे सिद्ध हो जाता है कि समर्थ तथा तेजस्वी दिगम्बर जैन आचार्यो ने, जिनमे समतभद्र स्वामी अकलक स्वामी आदि का नाम प्रसिद्ध है, मत्र शक्ति आदि के द्वारा धर्म की प्रभावना की थी और मिथ्यात्वियो के समक्ष अनेकान्त शासन की वैजयन्ती फहराई थी। जिन स्वामो समंतभद्र के प्रभाव से पाषाण पिण्ड फटा था, तथा उसमे से चन्द्रप्रभ भगवान की मूर्ति की उपलब्धि हुई थी, वे आचार्य वहुत बडे मत्रवादी, तत्रवादी, ज्योतिषो, वैद्य शिरोमणि सिद्ध सारस्वत आदि थे। उन्होने अपना परिचय इस पद्य मे दिया है—

आचार्योह कविरहमह वादिराट् पडितोहम्।
दैवज्ञोहं, भिषगमह, मांत्रिक स्तान्त्रिकोहम्।

राजन्नस्यां जलधिवलयान्मेखलयामिलायाम् ।
आज्ञासिद्धः किमिति बहुना सिद्धसारस्वतोहम् ।।

वे विक्रम की दूसरी-तीसरी शताब्दी मे हुए है ।

धवला टीका मे कहा है कि महाज्ञानी मुनि धरसेन आचार्य ने पट्खडागम सूत्र के प्रमेय का उपदेश पुष्पदन्त तथा भूतबलि महामुनियो को दिया था । उन्होने मुनि युगल की परीक्षा हेतु उन्हे दो दिन के उपवास-पूर्वक दो विद्याए सिद्ध करने को दी थी । जब उनको विद्याए सिद्ध हुई, तो एक देवी कानी दिखी और दूसरी देवी के दॉत बाहर निकले हुए थे । दोनो विवेकी मुनियो ने मत्र सम्बन्धी व्याकरण के अनुसार मत्रो को सिद्ध करना प्रारम्भ किया तब सुन्दर रूप मे देवता दिखाई पडे ।

(धवला टीका भाग १, पृष्ठ ७०)

इस कथानक से धरसेनाचार्य की मत्र विद्या निपुणता के साथ पुष्पदत तथा भूतबलि मुनीद्रो की भी मत्र-शास्त्र सम्बन्धी प्रवीणता स्पष्ट हो जाती है । अन्य धर्मो के इतिहास पर दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है कि उनके प्रमुख आचार्यो ने विविध विद्याओ से अपने को सुसज्जित किया था । हरिषेण कृत बृहत्कथा कोष मे कहा है—

तपोबलेन तंत्रेण मत्रेणापि च सर्वथा ।
कर्तव्यं यतिना यत्नाज्जिनपूजा प्रवर्तनम् ।।१२१।। पृष्ठ २६

मुनि को तपोबल, तत्र तथा मत्र के द्वारा जिनेन्द्र भगवान की पूजा का कार्य सपन्न कराना चाहिए ।

सिद्धि सम्पन्न विवेकी साधु उसका उपयोग अहिसा धर्म की अभि-वृद्धि तथा अनेकान्त शासन की महिमा को प्रकाशित करने के पवित्र कार्य मे किया करते है । दक्षिण भारत मे अनेक मदिरो का ध्वंस, जैन धर्म के विनाश आदि का क्रूर कार्य अन्य धर्मी साधुओ ने मत्र तत्र शक्ति के बल पर किया था । जैनो के पास उसका मुकाबला करने की सामग्री नही रहने से अपार क्षति उठानी पडी । इतिहास इसका साक्षी है ।

अमृतचन्द्र सूरि ने पुरुषार्थ सिध्युपाय मे सम्यग्दर्शन के अगरूप प्रभावना पर इस प्रकार प्रकाश डाला है—

आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रयतेजसा सततमेव ।
दान तपो जिनपूजा-विद्यातिशयैश्च जिनधर्मः ।।३

रत्नत्रय के तेज द्वारा अपनी आत्मा को प्र ि

तपश्चर्या, जिन पूजा तथा विद्या के चमत्कार अर्थात् मन्त्र तंत्रादि के द्वारा जैन धर्म की प्रभावना करे ताकि स्याद्वाद शासन का प्रकाश एकान्तवाद के अन्धकार को दूर करे जिससे जीवो का हित हो।

जो अविवेकी अध्यात्म का यथार्थ स्वरूप न समझ धर्म प्रभावना को आत्म विकास का बाधक सोचता है, उसे उत्तर पुराण मे गुणभद्राचार्य की यह सूक्ति ध्यान से मनन करना चाहिए—

रुचिः प्रवर्तते यस्य जैनशासनभासने।
हस्ते तस्य स्थिता मुक्तिरिति सूत्रे निगद्यते ।।४२४—पर्व ७६

जिसकी जैन धर्म की प्रभावना के कार्यो मे रुचि है, उसके हाथ मे ही मुक्ति है, ऐसा जिनागम सूत्र का कथन है।

भासते च जगद्येन भासते जिनशासनम्।
तस्य पादाम्बुजद्वयं ध्रियतां मूर्ध्नि धार्मिकाः ।।४२५।।

जो जिनशासन की प्रभावना करता है उससे यह जगत् शोभायमान होता है। धार्मिक लोग उस महापुरुष के चरण कमलो को अपने मस्तक पर रखते है, अर्थात् उसको प्रणामाजलि अर्पित करते हैं।

सम्यक्त्वी जीव धर्म प्राण रहता है, इससे वह सदा धर्म की अभिवृद्धि चाहता है तथा इस कार्य हेतु सदा तत्पर रहता है। धर्म पर विपत्ति आने पर वह पूर्ण शक्ति लगाकर धर्म रक्षण हेतु प्रयत्नशील रहता है। गुणभद्र स्वामी कहते है—

धर्मध्वंसे सताध्वसस्तस्माद्धर्मद्रुहोघमान्।
निवारयंति ये सतो रक्षितं तै सतां जगत् ।।४१८।।

धर्म के नाश होने पर सज्जनो का नाश होता है। इससे जो धर्म द्रोही पापियो का निवारण करते है, ऐसे सत्पुरुषो के द्वारा सज्जनो के जगत् का रक्षण होता है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि भगवान जिनेश्वर के सर्वोदय तीर्थ की प्रवृत्ति हेतु जो व्यक्ति विशिष्ट साधना मे संलग्न रहता है तथा उपलब्धि होने पर उस विशिष्ट सिद्धि द्वारा प्रसिद्धि का विचार छोड़कर अहिंसा धर्म की महिमा जनमानस मे प्रतिष्ठित करता है, वह व्यक्ति जिनेन्द्र भक्तो द्वारा सर्वदा वदना का पात्र है।

आचार्य देशभूषण महाराज की शरीर सपत्ति, मधुरवाणी, तेजोमय मुखमण्डल, हितकारी तथा धर्मोपदेश आदि सामग्री द्वारा जैन धर्म की बहुत

प्रभावना होती है। अनेक साधुओ के समीप जाने का मुझे बहुधा सुअवसर मिला करता है। मैने देखा है, कि आचार्य रत्न देशभूषण महाराज का व्यक्तित्व बडा प्रभावक, मधुर तथा सरलता से शोभायमान है। उनकी साधना ने भी अनेक जीवो का कल्याण हो रहा है।

धर्म प्रभावना के अमर कार्यो के फलस्वरूप वे अमर होगे, अमर है तथा कर्मो का क्षयकर सिद्धि के अधीश्वर बनेगे, जो यथार्थ मे अमर है, जिन पर यमराज का जोर नही चल सकता है।

अब आचार्य महाराज विशेष स्वोन्मुख हो स्व समाधि को सम्यक्रूप मे सम्पन्न करने की सोचने लगे है। सयमी साधु का ध्यान समाधि मरण की ओर जाता है। उससे परलोक सुधरता है। आचार्य महाराज ने कहा था, "पंडित जी जैसे माला के एक दाने के टूटकर गिर जाने से अन्य सभी दाने गिर जाते है, इस प्रकार समाधि के बारे मे शिथिलता आने पर अबतक की सगृहीत सयम सपत्ति चली जाती है।" आचार्य शातिसागर महाराज के समान वे समाधि का विशेष विचार करने लगे है। मन मे वैराग्य भाव की वृद्धि हो रही है। आचार्य श्री के सघ की आर्यिका माता कृष्णमति का दिनाक एक अक्टूबर १९७४ को दिल्ली मे १९ दिन के उपवास के अनन्तर स्वर्गवास हो गया। उनके समाधि सहित मरण को देखकर आचार्य श्री ने कहा, "पडित जी, सघ के सभी त्यागियो के कारण ठीक समाधिमरण हो गया। बताओ, यदि वह अकेली सघ से बाहर रहती, तो उसकी क्या हाल होती? सचमुच मे साधु को अकेला नही रहने की आगम की आज्ञा मे अनेक तत्त्व छुपे है! क्या करे, आज साधु आगम को भूलकर स्वच्छद हो कुपथ मे जा रहे है?"
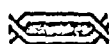
सजग विरागता

•

एक दिन मैने कहा--कि महाराज ! जयकीर्ति महाराज आपके गुरु थे। उनके गुरु थे पायसागरजी महाराज और पायसागरजी महाराज के गुरु आचार्य शान्तिसागरजी महाराज थे। ऐसी स्थिति मे आप आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के सयम की दृष्टि से प्रपौत्र कहलाये।

महाराज ने कहा—"ठीक कहते हो। आचार्य महाराज का हमारा सयम की दृष्टि से यही सम्बन्ध कहा जा सकता है, लेकिन (सांस लेते हुए कहा) पण्डितजी ! इस अनन्त ससार मे यह जीव परिभ्रमण किया करता है। इसके निज गुणो के सिवाय कोई भी वस्तु इसकी नही है।"

मैंने देखा कि उनका वैराग्य वडा स्थिर है। जरा सा भी प्रसग मिलने पर उनकी वैराग्य ज्योति प्रकाश देने लगती है।

आंतरिक वैराग्य

एक वार मै महाराज की जन्मभूमि कौथलपुर मे था। उस समय महाराज की जयन्ती मनाने हेतु अपरिमित जनसमुदाय एकत्रित था। जहा तक दृष्टि जाती थी आदमी ही आदमी नजर आता था। देहाती जनता इन साधुराज की जयन्ती मे भाग लेने आई थी। अ. भा काग्रेस के अध्यक्ष महान् नेतागण, हाईकोर्ट जज आदि वडे-वडे उच्च अधिकारी भी वहा उपस्थित थे। एक आध्यात्मिक सन्त को इस प्रकार गौरवान्वित देख-कर मेरे हृदय मे वडी प्रसन्नता हो रही थी। समारम्भ समाप्त होने पर महाराज ग्राम के जिनमन्दिर के दर्शन हेतु जा रहे थे। रास्ते मे श्मशान स्थल पड़ता था।

मैंने कहा कि 'महाराज ! आपके जन्मोत्सव मे वडा आनन्द आया।

महाराज बोले—"पण्डितजी ! हम जन्मोत्सव को नही देखते, इस उत्सव मे क्या धरा है ? हमारी निगाह तो इस श्मशानभूमि पर है, जहा मुर्दे जला करते है और प्रबल मृत्युराज छोटे-बडे सभी की लीला समाप्त कर उसे परलोक मे पहुचा देता है। हमे इस यमराज को जीतना है।"

दुष्टो की कल्पना

उपरोक्त शब्दो को जो उनके हृदय के सहज उद्भूत उद्गार थे सुनकर मुझे बडा प्रकाश मिला। मैने सोचा कि कभी-कभी ऐसे भी पढे लिखे अहकारी लोग होते है, जो सफेद रंग के बगुलो की पूजा करते हुए ऐसे राज हसो का मूल्याकन करने मे असमर्थ होते है। एक बार मै बंग देश की राजधानी कलकत्ता गया था। वहा एक ऐसा ही व्यक्ति मिला था जिसे दुर्जनो की पूजा पर नाज और अहकार होता था और जो साधु निन्दा से हर्षित होता था। यही कारण है कि रामायण मे कवि तुलसीदास ने बहुत विनय के साथ इन दुर्जनो को अपनी प्रणामाजलि अर्पित की है और कहा है कि :—

बहुरि बंदि खलगण सति भाये। जो बिनु काज दाहिने बांये।
परहित-हानि लाभ जिन केरे। उजरे हर्ष विषाद बसेरे ॥

मै सद्भावना पूर्वक दुष्टो के समुदाय की वन्दना करता हू, जो विना प्रयोजन के अर्थात् जिससे उनका कोई लाभ नही है दाहिने से बाये हो जाते है अर्थात् विघ्नकारी बन जाते है। ये खल पुरुष दूसरे का अहित हो जाने मे स्वय का लाभ मानते है और दूसरो का घर उजडने पर प्रसन्न होते है और बसने से दु खी होते है।

स्थिति-प्रज्ञ सत

आचार्य श्री बडे गम्भीर और स्थितप्रज्ञ महा पुरुष है। वे खलराज को भी उसी प्रकार अपना मगलमय आशीर्वाद देते है, जैसे अपने निकट रहने वाले परम भक्त को। मैने देखा है कोई कोई धनी सेठ महाराज के पास आये और सकट के समय बडी आवभगत दिखाई, अनुनय और विनय की और इनके प्रसाद से विपत्ति के बादल विघटित होने पर कृतघ्नतापूर्ण वृत्ति को दिखाते है जो भले आदमो को शोभा नही देती है।

एक बार मैने देखा, एक व्यक्ति महाराज की सदा निन्दा किया करता था। अपने कुटुम्ब पर भयकर सकट आने पर वह घबराता

हुआ महाराज के पास आया तथा अपनी मनोव्यथा उन्हे सुनाई। यह मेरा विरोधी रहा है, इस बात की कल्पना भी महाराज के मन मे नही आई और उन्होने उस व्यक्ति को सात्वना दी तथा सन्मार्ग दर्शन किया। वास्तव मे महाराज का हृदय बडा गम्भीर है। उनमे प्रतिशोध अर्थात् बदला लेने की भावना नही रहती। इसका फल यह होता है कि वह विरोधी जीव कुछ समय के बाद आ करके उनके चरणो को प्रणाम करता है।

यह बात कुछ समझ मे नही आती। जगत् के बन्धु अहिसात्मक आचरण करने वाले दयामूर्ति इन साधुओ का विरोध कोई कोई क्यो करते हैं? यथार्थ मे जिनकी होनहार अच्छी नही रहती वे इनके विरुद्ध होते है और मिथ्या प्रचार करते फिरते है। वास्तव मे जीवो के परिणाम विचित्र होते है। कहा है कि—

विविध भांति के जीव बहु, दीसत हैं जग माँहि।
एक कछू चाहै नही, एक तजे कछु नाँहि॥

शंका—इस प्रसंग मे एक प्रश्न उठता है कि साधु को 'शठे शाठ्य समाचरेत्'—शठ के प्रति शठता की वृत्ति धारण करना चाहिए। सज्जन के समान दुर्जन पर भी दृष्टि रखना न्याय नही है।

समाधान—यह शका विवेकमूलक नही है। यदि साधु शठता का आश्रय लेता है, तो वह भी साधुत्व को खोकर शठ रूपता प्राप्त करता है। कहते है,एक साधु ने एक बिच्छू को मरते हुए देखकर उसको बचाने के भाव से हाथ मे उठाया। बिच्छू ने डक मारा। वह हाथ मे गिर गया। साधुबाबा ने उसे काटने पर भी पुन उठाया। एक व्यक्ति ने पूछा, बाबा वह दुष्ट काटता है, तुम उसे क्यो बचाने के लिए उठाने का कष्ट भोग रहे हो? साधु बाबा ने कहा यदि बिच्छू अपनी आदत नही छोडता है तो मै भी अपनी आदत क्यो छोडू? उसका दुष्ट स्वभाव है, तो मेरा उसके विपरीत स्वभाव है, मेरा स्वभाव तो दुष्टता नही है। आचार्य सोमदेव ने लिखा है—

अज्ञान भावादशुभाशयाद्वा करोति चेत्कोपि जन खलत्वम्।
तथापि सद्भि. शुभमेव चिन्त्य न मथ्यमानेऽप्यमृते विष हि॥

यदि कोई अज्ञान वश या दुष्ट भावना के कारण सज्जन के प्रति दुष्ट भाव व्यक्त करता है, तो भी सज्जनो को उस दुष्ट की भलाई का ही विचार मन मे रखना चाहिए। अमृत के मथन करने पर विष नही प्राप्त

होता है। वास्तव मे सच्चे साधु में दुष्टता का सद्भाव ही नही है। अतः वे कल्याण का ही चिंतवन करते हैं।

प्रभावक व्यक्तित्व

एक दिन मैंने महाराज के तरुण वय वाले शिष्य भद्र परिणामी क्षुल्लक बाहुबली महाराज से पूछा – आपने यह दीक्षा कैसे ले ली ? उन्होंने बताया "आचार्य महाराज के व्यक्तिगत और पवित्र जीवन का बहुत समय तक बारीकी से निरीक्षण करने पर मेरे मन में इनके चरणो की शरण ग्रहण करने की भावना उत्पन्न हो गई। मैं तो कुम्भोज बाहुबली के आश्रम मे पढ़ता था। दसवी कक्षा तक मेरी पढ़ाई हुई। मेरे हृदय में साधुओं को देखकर घृणा होती थी। मै अनेक साधुओं के पास गया लेकिन मेरा मन इनके पास रहने का हुआ। इनके प्रेम पूर्ण व्यवहार, वात्सल्य और पितृ तुल्य दृष्टि के कारण मैने इनके पास ब्रह्मचर्य व्रत लिया, बाद में क्षुल्लक दीक्षा ली। अब मैं इनके चरणों के समीप बहुत शान्ति का अनुभव करता हूं। इनकी आत्मा महान् पवित्र है। इनका व्यक्तित्व अद्भुत है। अब मेरी इच्छा मुनि बनने की है।"

संयमपूर्ण साधना

कभी कभी वे लोग जिन्हे दिगम्बर जैन मुनि के जीवन की चर्या तथा संयम पूर्ण साधना का पता नही है कह दिया करते हैं इस मुनि पद में क्या रखा है। आत्मा का ज्ञान करो। आत्मा की बाते किया करो। आत्म प्रकाश की उपलब्धि मे संयम का शून्य सदृश स्थान है' किन्तु आचार्य श्री ऐसी आत्म साधना में निमग्न रहते हैं जहां कठोर संयम भी इन्द्रिय-निग्रह के लिए चला करता है। सन् १९५९ की बात है जब जबलपुर नगर के बाहर मढ़िया की क्षेत्र में महाराज ने मध्यान्ह की सामायिक की भयंकर गर्मी होते हुए भी उन्होने वहां से विहार किया। सूर्य संतप्त भूमि पर पैर रखते हुए वे महाराज जा रहे थे। मैं दो मील तक नंगे पैर इनके पीछे-पीछे गया। मेरे पैरों में फफोले उठ आये जो कई दिन तक जलते थे। उससे मुझे इस बात को समझने का मौका मिला कि ये महामुनि भोग और शरीरों से कितने निस्पृह रहते हैं। ये आत्म साधना के पथ पर कदम बढ़ाते हैं और अपने सुख दुःख की परवाह नही करते। यह साधु का अद्भुत

स्वभाव रहा करता है, कि वे अपने कष्ट की परवाह नही करते लेकिन दूसरे की थोडी पीडा भी देखकर इनका हृदय द्रवित हो जाया करता है। महापुराण मे कहा है—

स्वदुःखे निर्घृणारंभाः परदुःखेषु दुःखिताः।
निर्व्यपेक्ष परार्थेषु बद्धकक्ष्या मुमुक्षवः ॥१६४-९॥

ये मोक्षाभिलाषी मुनिगण अपने दुःख निवारणार्थ दया रहित होते है। दूसरो के दुःखो से दुःखी होते है। दूसरो के कार्य सिद्ध करने को विना स्वार्थ के सदा तैयार रहते है।

आचार्य श्री के व्यक्तित्व से प्रभावित हो हजारो लोग स्वयमेव इनके दर्शनार्थ आ करके लाभ उठाते हैं। आज के जमाने मे जिसके पास राजनीति का तत्त्व घुस गया है, वे विज्ञापनवाजी करके तथा अखवारो को खूव अर्थ प्रदान करके और अन्य भी अनेक तरह के उपाय करके अपना प्रभाव और रोव जनता मे जमाने का कार्य किया करते है। इस विषय मे आचार्य श्री विल्कुल स्वच्छ हैं। इनका व्यक्तित्व और चरित्र स्वयं इनके विज्ञापक हैं। वाहरी दभ की क्या जरूरत ?

भ्रान्त मूल्यांकन

कभी-कभी अखवारो के माध्यम से और जनता की वड़ी भीड़ के आधार पर अतत्वज्ञ लोग साधुत्व की महत्ता का मूल्याकन किया करते हैं। हजारो लाखो की तादाद मे श्रोताओ का एकत्र हो जाना साधु के जीवन की सफलता सोची जाती है। मैंने सुना था कि वम्वई प्रान्त मे एक ऐसा अजैन साधु है जिसके भाषण मे सहज ही वडा जनसमुदाय एकत्रित हो जाता था। जनता कथा कहानी आदि से सन्तुष्ट होकर प्रसन्नता के पुल वाधते हुए तारीफ के गीत गाती थी। लेकिन इससे परमार्थ का कोई सम्वन्ध नही है। साधु की वाणी सुनकर यदि सच्चरित्रता की ओर जनमानस न गया, तो केवल मनोरजन से क्या हित संपन्न हुआ ? यह वात गहराई से सोचने की है।

आ० देशभूषण महाराज का उपदेश जव होता है, तव हजारो लोगो की जीवन धारा मे परिवर्तन हो जाता है। अव तक अगणित लोगो ने मास, मदिरा आदि पापो का परित्याग उनके उपदेश से किया होगा।

इस वर्ष सन् १९७४ के अप्रैल मे दिल्ली मे महावीर जयती पर भाषण देने के उपरान्त हमने हापुड़ नाम के नगर मे जाकर आचार्य रत्न

देशभूषण महाराज का दर्शन किये जो अनेक स्थानों का विहार कर वहां के जिनालय में विराजमान थे। वहाँ हमे अनेक लोगो ने सुनाया कि आचार्य जी के प्रभाव से हजारो लोगो ने मास मदिरा का त्याग किया। हजारों मुसलमानो ने मास का त्याग किया। वे लोग इनको भक्ति पूर्वक इस प्रकार घेरे रहते थे मानो ये उन सब के गुरु हो। रामपुर राज्य के मुस्लिम नवाब ने महाराज के दर्शन करके अपने को कृतार्थ किया था। इस प्रकार इनका व्यक्तित्व और वाणी लोक जीवन को ऊचा उठाती है। इनका सपर्क जन-मानस को कृतित्व की ओर आकर्षित करता है।

विचारणीय

जिस उपदेश का जीवन पर कोई प्रभाव नही पड़ा और वह वाणी की मधुरता आदि सामग्री सम्पन्न होने के कारण यदि कर्ण को प्रिय और मन को पसन्द लगने वाला ही लगा तो उससे आत्मा का क्या हित होगा ? आज के विलासिता के युग मे अभिनय करने वाले अभिनेताओ और अभिनेत्रियो के दर्शन हेतु सहज ही इतना बडा जन समुदाय इकट्ठा हो जाता है कि जितना बड़े बडे राजनैतिक प्रभुता सम्पन्न नेताओ के आने पर नही होता। इसका यह अर्थ नही है कि बड़ी भीड होने से, बहुत लोगो के आने से, सेठ साहूकारो द्वारा स्तुति किये जाने से साधु का महत्त्व बढ गया या घट गया। साधुत्व का महा प्रासाद सच्चरित्रता तथा वीतरागता की नीव पर खडा होता है।

यथार्थ बात

यथार्थ बात यह है कि जिन साधु की वाणी से जीवन मे असद् प्रवृत्तियो का क्षय नही हुआ और पुण्य भावनाओ का उत्कर्ष नही हुआ क्या वह उपदेश वास्तव मे पत्थर के ऊपर पानी की वर्षा नही है ? आज-कल कुछ ऐसा रवैया देखने मे आता है कि लोग साधुओ मे भाषण आदि की कला को देखना चाहते है। सच्चा साधु सत्य तत्व का प्रतिपादन करता है, वह लोक प्रशंसा का लालची नही होता है।

साधुत्व

आचार्य शातिसागर महाराज कहा करते थे—"हमे लोक प्रशसा से

मतलब नही है तथा हमे लोक की निन्दा का भी भय नही है। हमे आगम की आज्ञा का भय है।" महा पुराणकार जिनसेन स्वामी की यह चेतावनी प्रत्येक मुनि तथा गृहस्थ के लिए चिर प्रकाशदायिनी है—

परे तुष्यन्तु वा मा वा कविः स्वार्थं प्रतीहताम्।
न पराराधनाच्छ्रेयः श्रेयः सन्मार्गदेशनात् ॥७६॥

अन्य लोग सतुष्ट हो अथवा वे सतुष्ट न हो, कवि को अपना तत्व कहना चाहिए। क्योकि दूसरो के प्रसन्न हो जाने से कल्याण की प्राप्ति नही होती है। सन्मार्ग की प्रतिपादना द्वारा कल्याण होता है।

कुशल वक्ता शास्त्रानुसार तत्त्व प्रतिपादन करते हुए अपनी मधुर शैली द्वारा जन मानस के हृदय मे भी अपना स्थान बनाता है। सम्यक्त्वी वक्ता का मुख्य ध्येय सर्वज्ञ जिनेश्वर की देशना के अनुसार तत्त्व प्रतिपादन रहा करता है। धर्मात्मा उपदेष्टा चाहे वह श्रमण हो या श्रावक हो रत्न-त्रय धर्म की प्रतिष्ठा का सदा ध्यान रखता है। जिनकी आत्मा परिपुष्ट है, जिन्होने सत्य तत्त्व का सौन्दर्य प्राप्त किया है, वे अपने कथन मे सत्यं, शिव, सुन्दर की प्रतिष्ठा का ध्यान रखते है।

कहते है किसी कलाकार ने दो सुन्दर मूर्तियाँ बनाई। एक का मूल्य दस रुपया रखा और दूसरी का हजार रुपया रखा। उनमे अन्तर इतना था कि एक मूर्ति के कर्ण के छिद्र का सम्बन्ध हृदय से था और दूसरी मूर्ति के कर्ण के छिद्र बन्द थे। एक विवेकी धनिक ने हजार रुपया देकर वह मूर्ति ली जिसके कर्ण का सम्बन्ध हृदय से था, कारण वह मूर्ति समझदार श्रोता का प्रतीक थी, जिनके कान मे गई वाणी हृदय तक पहुचती थी। इसने उसका मूल्य अधिक था। दूसरी मूर्ति विवेकशून्य श्रोता का प्रतीक थी। इस प्रकार जिस वाणी या उपदेश का अन्त करण से सम्बन्ध न हो, उसका मूल्याकन नही किया जाता।

सच्चा उपदेश

सच्चा उपदेश वह है जो श्रोता की आत्मा मे प्रवेश पाता है। पूज्य मुनिराज श्रुतसागर महाराजके ये विचार अत्यन्त गम्भीर तथा मार्मिक है; "स्वतन्त्र विचरण करने वाले तपस्वी वाक्पटुता के द्वारा लोकरंजना व धर्म की प्रभावना तो खूब कर सकते है, किन्तु आत्मकल्याण नही। रागद्वेष-रहित वैराग्य भाव को प्राप्त करने वाले साधु को ही शिवपुरी की प्राप्ति

होती है, वाक्पटुग्रो को नही। केचुली के छोड़ने से विषधर निर्विष नही हो जाता। उसी तरह साधु बाह्य परिग्रह के त्यागने से ससार रूपी विष से रहित नही होता, किन्तु उसके लिए अन्तरग से विकारी भावो का, स्वामित्व वा कर्तृत्व रूपी विष का त्याग करना पडेगा।

"हे साधो ! मात्सर्य, रागद्वेष और मायाचारी का त्याग करके सामूहिक व सघ मे रहकर धर्म साधन करो, एकाकी नही। यही भगवान का आदेश है क्योकि साधुओ के चरित्र का स्थान समान होने पर भी परिणामो के भेद से फल मे भिन्नता आ जाती है। इसलिए हमे अपने परिणामो को सम्हाले रखने के लिए प्रौढ साधुओ के साथ ही रहना उचित है। मनोगति बहुत चचल होती है, उस पर लगाम लगाने के लिए हमारे सामने आदर्श उत्कृष्ट होना चाहिए। उनके डर व लज्जा से हमारा सुधार होगा।"

उनके ये शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है—"नौका पानी मे तैरती रहती है, किन्तु यदि नौका मे पानी आ जावे—तो वह डूब जाती है, इसी प्रकार साधु भी ससार मे है लेकिन साधु के हृदय में ससार बस गया तो वह डूब जायगा। साधु होकर विषयो की लालसा रखने वाले और कुटुम्बियो का पोषण करने वाले अथवा अपनी ख्याति पूजा लाभ की इच्छा करने वाले मूर्ख जिनेन्द्र भगवान के मंगलमय भेष को कलकित करते हुए मोक्ष मार्ग से अति दूर हो जाते है। जो आगम मे बताए हुए संयम मार्ग पर चलते है वे ही साधु एव मुनि गुरु कहलाने योग्य है, असयमी नही।"

(पृष्ठ १२९-१३०—आ० श्री शिवसागर स्मृति ग्रन्थ)

यह बात सत्य है कि भाषण मे पटुता प्राप्त करना बड़े पुण्य और गौरव की बात है लेकिन सद्वक्तृत्व के साथ जीवन मे बकवृत्ति (बगुलापन) नही होनी चाहिए। क्योकि—

वक्ता मे बक्ता बसै होता जग अपकार।
वक्ता मे ऋजुता लसै होता जग उपकार॥

वास्तव मे जो दूसरे को उपदेश देने की ही सोचता है और जिसका स्वय का आध्यात्मिक जीवन (Inner Life) शून्य है वह आत्मदेव को प्रसन्न नही कर सकता। श्रोता भी आजकल ऐसा वक्ता चाहते है जो उनके दुष्ट आचरण पर कोई टीका-टिप्पणी न करे और उनके हीन आचरण को अपना समर्थन दे।

आचार्य सोमदेव सूरि ने यशस्तिलक मे इसे कलिकाल का प्रभाव

बताया है जब वक्ता श्रोताओ को खुश करने का उपदेश देता है, कल्याण की बात नही कहता है। अगर वैद्य या डाक्टर मरीज की रुचि के अनुसार उनको प्रिय लगने वाली दवा दे तो वह बीमार मरे बिना नही रहेगा। इसलिए लोगो को प्रिय लगे या न लगे धर्म का उपदेश देना चाहिए।

"बिन भेषज कडवी पिये मिटे न तन की ताप" इस सिद्धान्त के अनुसार मीठा-मीठा उपदेश जिसके द्वारा जीवन के उत्कर्ष का कोई सम्बन्ध न हो कल्याणकारी नही होता।

मानव जन्म

मनुष्य जन्म का एक-एक क्षण बीतता जा रहा है। वह आमोद और प्रमोद के लिए नही है, ताली पीटने और पिटवाने के लिए नही है। वह तो आत्म शोधन का अनमोल समय है। चौरासी लाख योनियो मे एक मनुष्य ही ऐसी योनि है, जिसमे यह नर वासनाओ से लड करके श्रेष्ठ तथा पूजनीय पद प्राप्त कर सकता है। आचार्य महाराज की वाणी को सुनकर बडे-बडे अनेक लोगो नें छोटे-मोटे व्रत नही महाव्रती दिगम्बर मुनि की दीक्षा ली है। अनेक महिलाओ ने श्रेष्ठ साध्वी की दीक्षा लेकर आर्यिका के रूप मे अपने जीवन को विकसित किया है।

समझदार व्यक्ति सदा मृत्यु का ध्यान रखता हुआ, कल्याण के कार्य मे विलम्ब नही लगाता है। पद्म पुराण मे कथानक आया है। सीता का भाई भामडल कल्पना क्षेत्र मे विचरण करता हुआ सोचता था कि मैं अभी कुछ काल लौकिक कार्यो मे लगाकर पश्चात् दिगम्बर मुद्रा धारण कर दीक्षा के हेतु उद्योग करूँगा। अपने मानवजीवन के क्षण वह व्यतीत कर रहा था, कि अचानक नभोमडल से बिजली गिरने के कारण भामण्डल की मृत्यु हो गई। यह आर्षवाणी यथार्थ है—

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वत ।
सन्निहित च सदा मृत्युः कर्तव्यो धर्मसग्रहः ।।

सभी देह अनित्य है, वैभव सदा टिकने वाला नही है, मृत्यु समीप ही है। अत. धर्म का सग्रह करना चाहिए। सघ मे न रहने वाले साधु को समाधि-मरण न होने का खतरा है। सघस्थ साधुओ द्वारा मरण समय मे सहायता प्राप्त होती है।

महत्वपूर्ण कथानक

तमिल भाषा के ग्रन्थ जीवकचिन्तामणि मे एक महत्वपूर्ण कथन आया है, जो यहां देना उचित प्रतीत होता है। महाराज जीवन्धर स्वामी का मन भोगो से उदास हो गया है और वे दिगम्बर मुनि दीक्षा लेने का मन में सकल्प कर चुके है। उनकी रानिया उनके मन को मोह के जाल मे फसाना चाहती है। किन्तु विरक्त महाराज जीवन्धर की आत्मा पर उसका कोई असर नही होता है। वे अपनी रानियो की मनोवृत्ति मे परिवर्तन के लिये कहते हैं—"देवियो ! तुम्हे विशाल विश्व के स्वरूप पर दृष्टि देनी चाहिये। मनुष्य का शरीर जन्म मृत्यु, विकास तथा विनाश के आधीन है। आकाश मे चन्द्रमा पूर्णत. लुप्त हो जाता है तथा पूर्णिमा को वह पूर्ण रूप मे दर्शन देता है। वह अज्ञानी जीवो को क्रमिक विनाश तथा विकास को सूचित करता है। चन्द्रमा के परिवर्तन को देखते हुए तथा उसके द्वारा घोपित सत्य को जानते हुए भी कुछ लोग ऐसे है जो इस बात की परवाह नही करते। शब्द उनके कानो तक पहुचते है, किन्तु हृदय का वे स्पर्श न कर बाहर आ जाते है। यथार्थ मे यह पाप कर्म का उपद्रव है। यह दुर्भाग्य का कुफल है। तुम्हे कभी भी धर्म को नही भूलना चाहिये—You must never forget Dharma"

"हम इस विश्व मे देखते है कि कोई-कोई मनुष्य समृद्धि और विपुलता युक्त स्थिति मे जन्म लेते है और मधुर भोजन किया करते है। किन्तु दुर्भाग्यवश उनकी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है और वे भिखारी हो जाते है। इसलिए मै ऐसी समृद्धि के प्रति अनुरक्त नही हू। मुझे तो यह राज्य वैभव अच्छा नही लगता है। मेरी ऐसी समृद्धि के प्रति कोई ममता नही है। मै तो सारे वेभव को तुच्छ वस्तु मानता हूँ। अव मै मुनि के जीवन को स्वीकार करूगा।"

स्वर्गीय प्रोफेसर ए० चक्रवर्ती ने अपने जीवकचिन्तामणि अग्रेजी निबन्ध मे जीवधर महाराज का उक्त सकल्प इन शब्दो मे निबद्ध किया है—"I have no attachment to that prosperity I detest even my royal glory I will cast away all these as worthless trash and pursue and adopt the life of an ascetic"

—(Jain Antiquary P 12, Vol XXV No I)

कृतज्ञता

आचार्य महाराज मे कृतज्ञता नाम का महान् गुण है। छोटे से छोटे भी उपकार को उनका कृतज्ञ हृदय सदा याद रखा करता है। वे अपने उपकारी लघु व्यक्ति को भी सदा महत्व प्रदान करते हैं। वे अपने गुरु और अन्य गुरुजनो की सदा चर्चा करते हैं। जहाँ इनमे इस प्रकार की लोकोत्तर कृतज्ञता है, वहाँ ऐसे भी व्यक्ति देखे जाते हैं जिनके हृदय मे कृतज्ञता का पौधा अकुरित भी नही हुआ और वे उपकारक को स्मरण करना अपने सम्मान और प्रतिष्ठा के लिए हानिकारक समझते हैं! जगत् मे जीवो की परिणति भिन्न-भिन्न हुआ करती है। यथार्थ मे 'यथा गतिः तथा मति.' जैसी जीव की आगे गति होती है उस प्रकार की उसकी बुद्धि भी चला करती है।

लोकानुरंजन

मैंने यह भी देखा है कि कुछ लौकिक प्रभाव वाले सपन्न किन्तु चरित्रहीन व्यक्ति साधुओ के गुरु वनकर उनसे कहा करते हैं- महाराज! आपको तो सबको खुश करने की बात करनी चाहिये। धार्मिक चर्चा मे क्या रखा है? आचार्यश्री ऐसे कथन से प्रभावित नही होते। वे आत्मा की भाषा बोलते हैं। उनको वाणी मे अमृत है। इनकी स्वाभाविक भाषा नली हृदय की आखें खोल देती है, क्योकि उसके पीछे स्वच्छ चरित्र का वल रहा करता है। उसमे मक्कारी जैसी वस्तु नहीं रहती है। इनकी वाणी साधारण जनता के समझ मे आने वाली सरल और हृदय मे प्रवेश करने वाली रहा करती है।

दीनवन्धु

महाराज के भक्त जहाँ वहुत वड़े व्यक्ति हैं, वहाँ वह छोटे भी हैं। यथार्थ मे ये दीन वन्धु हैं। महाराज की जन्म भूमि मे, भीमा नाम का एक हरिजन भक्त मिला। वह तम्वाखू का व्यापार करता है। उसे क्षय रोग हो गया था। महाराज के गुरु जयकीर्ति जी के गुरु पायसागर जी की प्रेरणा से भीमा के मन मे दया का भाव जम गया। उसने मास मदिरा का त्याग कर दिया था। आचार्य महाराज के काका क्षुल्लक जिनभूषण महाराज ने मुझे कोथली मे वताया था कि इस हरिजन को क्षय रोग हो

गया था। वह इतना अधिक बढ चुका था कि कोई भी डाक्टर उसका इलाज करने को तैयार नही था। फेफडो में छिद्र हो चुके थे। रोग तीसरे दर्जे पर पहुच चुका था। सबने कह दिया कि अब यह नही बचेगा। उस स्थिति में भी इस हरिजन ने मास के या खून के इजेक्शन नही लगवाये। कुटुम्बी जनो ने आग्रह किया, कि मास आदि से मिश्रित औषधि अभी ले लो अच्छे होने पर उसे छोड़ देना। ऐसी बात मोहवश बडे-बडे दया धर्म धारी भी अपने इष्ट जनो से किया करते है। उस हरिजन ने कहा— मै मर जाऊगा लेकिन अहिसा को नही छोडूगा। मैने उस हरिजन से बात की। उसने मुझसे कहा आ० देशभूषण महाराज के आशीर्वाद से व पायसागर महाराज की दया से मै मास मदिरा आदि का स्पर्श न करते हुए भी निरोग हो रहा हूँ। और अब मै १० मील तक पैदल चल सकता हूं। जब कि मुझ मे पहले खडे होने की भी ताकत नही थी। उस हरिजन का सारा परिवार अहिसा का पालन करता है। उसके घर में 'अहिसा परमोधर्म' लिखा हुआ है। ऐसा अद्भुत गहरा प्रभाव इन साधुराज का पडा करता है। हजारो ताली पीटने वाले और जय-जयकार करने वाले कोरे श्रोताओ से ऐसे उपदेश पर चलने वाले श्रोता की तुलना नही हो सकती।

महान् साहसी

आचार्य श्री वडे साहसी है। बग प्रदेश मे कभी भी दिगम्बर जैन साधु का विहार नही हुआ था। कुछ भक्तो के अनुरोध से इन्होने कलकत्ता मे चातुर्मास किया। कलकत्ते के श्रेष्ठ नागरिको, नेताओं तथा विद्वानो ने इनका अपूर्व स्वागत किया था। उस समय जैन धर्म की अभूतपूर्व प्रभावना हुई थी।

वहाँ मुझे एक खलराज मिले, जो साधुओ के दोषो का निरूपण करने मे या झूठे दोष लगाने मे निपुण थे। उसकी बातो को सुनकर मेरे मन को बड़ा धक्का लगा। उस दिन रविवार था। बडा जन समुदाय वेलगछिया जैन मदिर के प्रागण मे उपस्थिति था। मैने अपने भाषण मे कहा था कि केवलज्ञान के पूर्व तीर्थकर भी निर्दोष नही कहे जा सकते। जिन वीतराग मुनिराज के पवित्र व्यक्तित्व से प्रभावित होकर सॉप और मोर आदि जन्म विरोधी जीव भी प्रेम से निकट बैठे हो, वे भी निर्दोष नही कहे जा सकते

केवली भगवान को ही कहते हैं कि आप अष्टादश दोषो से विमुक्त हैं। 'अष्टादश दोप विमुक्त, धीर, स्वचतुष्टयमय राजत गम्भीर'। इस प्रकार दीक्षा लेने वाले तीर्थंकर भी, कैवल्य के पूर्व क्षुधा, तृष्णा, आदि से युक्त होने के कारण पूर्ण निर्दोष नही कहे जा सकते, तब पंचम काल के अत्यन्त कठिन और जहरीले वातावरण मे महाव्रतो को पालन करने में पूरी शक्ति लगाने वाले मनस्वी दिगम्बर मुनियो के ऐबो का देखना दिखाना अथवा अपनी कल्पना द्वारा ऐबो को गढना और उसे अपना पेशा सा बना लेना बड़े लज्जा और दु:ख की बात है।

आज अपने को अध्यात्मवादी कहने वाले वर्ग ने तो अपना यह कार्य-क्रम ही बना लिया है कि मुनि निन्दा उनका पहला कर्त्तव्य है। वे साधु निन्दा की भूमि के ऊपर आत्म मन्दिर का निर्माण करना चाहते हैं। यदि आगम के प्रकाश मे वे अपने चरित्र को देखे तो पता लगेगा कि ऐसी प्रवृत्ति वाले भले ही अपने को सम्यग्दृष्टि कहे और कहलावे किन्तु वे सच्चे सम्यक्त्व से बहुत दूर हैं। सम्यक्त्वी धर्मरक्षक होता है, जो लोग आगम की आज्ञा का लोप करके स्वच्छन्द मिथ्या निरूपण करते रहते हैं उनके सम्बन्ध मे आगम मे कहा कि—

पद्मक्खरं च एक्कं पि जो ण रोचेदि सुत्तणिद्दिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हु मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो॥

जो सूत्र अर्थात् परमागम के एक पद या एक अक्षर पर भी श्रद्धान नही करता है और शेष समस्त आगम पर श्रद्धान करता है, वह यथार्थ मे मिथ्यात्वी है।

कुन्द कुन्द स्वामी ने कहा है

जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहइ।
केवलि जिणेहिं भणियं सद्दहमाणस्स सम्मत्तं॥

जिसे करने की शक्ति है, उसे करो। जिसे नही कर सकते हो उसका श्रद्धान करो। केवली भगवान ने कहा है श्रद्धान करने वाले के सम्यक्त्व है।

सम्यक्त्वी सूत्र का पूर्णतया श्रद्धान करता है। सूत्र का स्वरूप इस गाथा मे कहा है—

सुत्तं गणहर कहियं तहेव पत्तेय - बुद्ध - कहियं च।
सुदकेवलिणा कहियं अभिण्णदस पुव्वि कहियं च॥

जो गणधर के द्वारा कहा गया है, जो प्रत्येक बुद्ध के द्वारा कहा गया है, जो श्रुत केवली के द्वारा कहा गया है अथवा जो अभिन्न दश पूर्वी के द्वारा कहा गया है, वह सूत्र है। (जय धवला भाग १) पृष्ठ १५३

भगवान सर्वज्ञ जिनदेव की वाणी सुनकर गणधर ने द्वादशागो की रचना की थी। सरस्वती पूजा मे यह पाठ पढा जाता है—

तीर्थंकर की धुनि गणधर ने सुन अगि रचे चुन ज्ञानमई।
सो जिन वर वाणी शिवसुख दानी, त्रिभुवन मानी पूज्यमई॥

आचार्य कुन्दकुन्द ने प्राकृत श्रुत भक्ति मे द्वादशाग वाणी को प्रणाम किया है—

आयारं सुद्दयडं समवाय विहाय पण्णत्ती।
णाणाधम्मकहाओ उवासयाण च अज्झयणं॥१॥
वदे अंतयडदसं अणुत्तरदस च पण्हवायरण॥
एयारसं च तहा विवायसुत्त णमसामि॥२॥
परियम्म सुत्त पढमाणुओ य पुव्वगया चूलिया चेव।
पवरवर दिट्ठिवादं त पंचविहं पडिवंदामि॥३॥
उप्पाय पुव्व मग्गायणीय विरिय-त्थिणत्थि य पवादं।
णाणा सच्च पवादं आदा-कम्म प्पवादं च॥४॥
पच्चक्खाण विज्जाणुवाय, कल्लाणणाम वर पुव्व।
पाणावायं किरिया विसाल मध-लोयबिन्दुसारसुदं॥५॥

इस द्वादशाग जिन वाणी को प्रणामाजलि अर्पित करते हुए महर्षि कुदकुद ने आचाराग, उपासकाध्ययनाग द्वारा चरणानुयोग की, ज्ञातृधर्म कथाग, अन्तकृद्दशाग, अनुत्तरोपपादिक दशाग, प्रथमानुयोग द्वारा प्रथमानुयोग की, ज्ञान प्रवाद, आत्म प्रवाद द्वारा द्रव्यानुयोग की तथा विपाक सूत्र, कर्म प्रवाद, लोक बिन्दुसार द्वारा करणानुयोग की वन्दना की है।

उन्होने मन्त्र शास्त्र के समुद्र तुल्य विद्यानुवाद को भी प्रणाम किया है। इससे यह स्पष्ट होता है, कि गणधर देव, श्रुत केवली, अभिन्न दश पूर्वी आदि महामुनि मन्त्र विद्या के पारदर्शी विद्वान् होते है। इस मन्त्र विद्या का पूर्ण परिज्ञान हुए बिना गणधर अथवा श्रुत केवली का पद नही प्राप्त होता है। कुन्दकुन्द स्वामी ने बोध पाहुड गाथा ६१ मे जिन श्रुत केवली भद्रबाहु को अपना गुरु कहा है, वे विद्यानुवाद पूर्व नामक मन्त्र विद्या के महान् शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता थे। इससे यह सोचना कि साधुओ को मन्त्र शास्त्र से क्या प्रयो-

जन है, उन्हे आत्म साधना करनी चाहिए आगम बाधित कल्पना है। द्वादशाग वाणी के ज्ञाता गणधर देव सर्व शास्त्रो के ज्ञाता होते हैं, उसमे अध्यात्म शास्त्र का भी समावेश है।

आज अपने को सम्यग्दृष्टि कहने वाले जो कुन्दकुन्द महर्षि को एक मात्र अपनी भक्ति का केन्द्र मानते है, वे विवेक पूर्वक यह सोचने का कष्ट करे कि उन कुन्दकुन्द ऋषिराज ने चारो अनुयोगों को पूज्यमान प्रणाम किया है, तब उनको भी अपनी एकान्त धारणा मे सुधारकर प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग को समान रूप से प्रणाम करना चाहिए। एकान्तवादी के सम्यक्त्व नही होता। एक अध्यात्मवादी वर्ग द्रव्यानुयोग के ग्रथ समयसार को छोडकर प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग रूप आगम को जीवन के लिए प्रेरणादायी न मानकर उन्हे अनुपयोगी श्रद्धान करता है। इसमे उस वर्ग का सर्वज्ञ वाणी के निर्मल प्रकाश मे सम्यक्त्व शून्य होना सुनिश्चित है। ऐसा वर्ग सम्यक्त्व के अंग निर्ग्रन्थ गुरु भक्ति को दोष लगाकर वस्त्रादि परिग्रह धारी जघन्य श्रेणी के गृहस्थ को श्रेष्ठ गुरुराज मानता है। साधु निन्दा करना, उसकी सामग्री एकत्रित करना इसका कर्त्तव्य हो जाता है। सदाचार हीनों को उनमे सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त होता है। इन लोगों ने सम्यक्त्व रूप महानिधि को तुच्छ वस्तु समझ लिया है। जिसे मन मे आया सम्यक्त्वी कह दिया और जिसने इनकी हा में हां मिलाना स्वीकार नही किया, उसे मिथ्यात्वी कह दिया। आज कल ऐसे लोग सगठित हो सम्यक्त्व के नाम पर मिथ्यात्व का प्रचार कर रहे हैं। यह बात सत्य है कि अध्यात्मवाद तथा उसकी चर्चा हितप्रद है। पूज्यपाद स्वामी ने समाधि शतक ने कहा है—

तद्ब्रूयात् तत्परान्पृच्छेत् तदिच्छेत् तत्परो भवेत्।
येनाविद्यामयं त्यक्त्वा येन विद्यामयं व्रजेत् ॥५३॥

जिसके द्वारा अविद्या का परित्याग कर विद्यामय जीवन (परमात्मा रूप) बने उसकी चर्चा करो, उस पर प्रश्न करो उसकी इच्छा करो और तन्मय बनने का उद्योग करो।

यह बात भी पूर्ण सत्य है,

विषयी, सुख का लालची सुन अध्यातमवाद।
त्याग धर्म को त्याग कर करै साधु अपवाद॥

निन्दा के शौकीन

आज ऐसे व्यक्ति उत्पन्न हो गये है जिन्हे साधु की निन्दा करने में मजा आया करता है। वे स्वय अपने कोयले और कौए से अधिक काले चरित्र को नही देखते तथा उन्हे राजहस बडा बुरा लगता है।

इस प्रसंग मे एक विनोदप्रद बात याद आती है। किसी नगरी में एक बेसुरा आदमी था। उसकी आवाज गर्दभ तुल्य थी। वहाँ एक बहुत बडे सगीत विद्या के पारगत आचार्य आये। उनका गीत चल रहा था। महान जन समुदाय नें उस गायन की प्रशसा की। किन्तु यह गर्दभ स्वर वाला अपने पक्ष का समर्थन करता हुआ कहता है—'विधाता ने हम पर बड़ी कृपा की जो हमारे गले मे मधुरता उत्पन्न नही की। अरे, हजारों आदमियो के बीच में बैठ करके अपनें मुँह को खोल कर आ आ करना भी क्या सभ्यता है ?

भली भई नीकी भई हमें न आवो गाय।
भरी सभा के बीच मे को बैठे मुह बाय ॥

पापियो का सगठन

जहाँ भ्रष्ट आचार, भ्रष्ट विचार और भ्रष्टता परिपूर्ण जीवन वालो का सगठन हो जाता है वहाँ वे असयमी और दुराचारियो की स्तुति करते हुए एक दूसरे की तारीफ का पुल बाधा करते है।

इस प्रसग मे हमे बचपन मे हमारे बाबा जी नें एक लघु कथा सुनाई थी। एक पिजारा (रुई धुननें वाला) धुनिया था। वह अपने कधे पर रुई धुननें का यन्त्र—पिजन रखकर जगल से जा रहा था। उसको देखकर एक गीदड़ ने उसकी प्रशसा करते हुए कहा—

कांधे धनुष हाथ लिए बाना, कहां चले दिल्ली सुलताना।

कन्धे पर पिजन रूपी धनुष को रखकर हे दिल्ली के सुलतान, आप कहा प्रस्थान कर रहे है ? वह अपनी तारीफ सुन कर बडा खुश हुआ। उसने अपनी प्रसन्नता से प्रेरित हो गीदड की तारीफ करने की सोची। उस समय गीदड़ झाड के नीचे बेर खा रहा था। उसको ध्यान मे रखकर पिजारा बोल उठा—

बन के राव, बेर का खाना, बड़े की बात बड़े पहचाना।

गीदड़ को जगल का राजा शब्द द्वारा ऊँचा उठाते हुए स्तुति की

गई और यह कहा कि वडे ही लोग वडे की वात समझते है, छोटे क्या समझे। आजकल यही रवैया चला है? सयम और सदाचार के प्रति शत्रुता धारण करके अत्यन्त विलास, आनन्द और वैभव पूर्ण दुराचार प्रचुर जीवन विताने वाले तो गुरु बन जाते है और चोरी, वेईमानी, धूर्तता आदि पाप कार्यो मे निपुण व्यक्ति भक्तराज होकर एक दूसरे की तारीफ के पुल वाधा करते है। इस प्रकार की अन्धाधुधी सयम के क्षेत्र मे नही चलती। सच्चे साधु मे रचमात्र भी दोप नही होता। यह सोचना सही नही है। आदमी दूसरे के दोष जिस कुशलता से देखा करता है, यदि उसका एक अश भी अपने को देखने मे लगा दे तो लज्जा से मस्तक झुक जावेगा।

महापुरुषो का स्वभाव

वडे पुरुप अपने ऐबो को ज्यादा देखा करते है। अपनी कमजोरी और असमर्थता पर उनकी दृष्टि रहती है। कहते है—नवाब साहव रहीम से एक सज्जन ने कहा कि आज थोडा भी दान देने वाला अभिमान के शिखर पर चढता है वहा महानदानी होते हुए भी आप नम्रता की मूर्ति कैसे वने है?

सीखे कहां नवाबजू ऐसी देनी दैन।
ज्यो ज्यो कर ऊचो करो त्यो त्यो नीचे नैन॥

रहीम साहब ने कहा—

देनहार कोई और है भेजत है दिन रैन।
लोग भरम हम पर करे याते नीचे नैन॥

जिस व्यक्ति मे गुणो का निवास होता है वह अपने स्वय के जीवन को स्वच्छ करने मे दत्तचित्त रहता है। जो दूसरे के चेहरे पर कालख पोतने की सोचा करता है, कम से कम उसके दिल और दिमाग मे कालिमा तो होनी चाहिए।

बुरा जो देखन मै चला बुरा न दीखा कोय।
जो घट खोजा आपना मुझ-सा बुरा न कोय॥

आत्म विकास का प्रथम सोपान—

आत्म विकास की पहली सीढ़ी अपनी अपूर्णताओ को देखना और अपने जीवन का सशोधन करना है। आज अध्यात्मवाद के नाम पर जो असयमियो की पल्टन बनाई जा रही है और जिसका मुख सयम और

सयमी की बुराई खोजने व करने की ओर लगा रहता है उन्हे गहराई के साथ विचार कर सच्चे कल्याण मे लगना चाहिए। उनका ध्यान इस शिक्षा पर जाना उचित है।

कार्य च कि ते परदोष दृष्ट्या कार्यञ्च किं ते परचिन्तया च।
वृथा कथं खिद्यसि बाल बुद्धे कुरु स्वकार्य त्यज सर्वमन्यत्॥

आत्मन्. दूसरो के दोषो को देखने से तुम्हारा क्या लाभ और दूसरो की चिन्ता से क्या प्रयोजन है ? अज्ञानी जीव तुम परकी चिन्ता करके व्यर्थ मे दु.खी क्यो हो रहे हो ? तुम सभी झझटो को छोड कर अपना कल्याण करो।

सुन्दर चितन

दूसरे के दोष देखने के सम्बन्ध मे श्री विनोबा ने गाधी जी का एक विचार पूर्ण सस्मरण दिया है। गाधी जी ने कहा था, दूसरो के गुण बढा कर देखे और अपने दोष बढा कर देखे। इस पर विनोबा जी ने कहा, "आप तो सत्यनिष्ठ है। सत्य को महत्व देते है तब क्यो बढा चढा कर देखना चाहिए ? जो है सो देखे। गणित मे बढाना चढाना बैठता नही। तो बोले, "तेरी बात ठीक है परन्तु सोचने की बात है, यह स्केल बढाने की बात है। अपने मे जो दोष होता है वह छोटा दीखता है इस लिए बढा कर देखे, तो (प्रापर परस्पेक्टिव) सही दर्शन आ जाता है। ऐसे ही दूसरो के गुणो की बात है वह कम दीखता है। उसे बढ़ाकर देखेगे तो ठीक परस्पेक्टिव आ जाता है"।

विनोवा जी ने चुम्बक वृत्ति गुण अपनाने को उपकारी माना है उनके शब्द है, "लोह चुम्बक होता है, वह क्या करता है ? मिट्टी के अनेक कणो मे लोहे के कण हो तो उनको खीच लेता है। उनका नाम है लोह चुम्बक। वैसे हमको बनना चाहिए गुण-चुम्बक। मनुष्य मे जो गुण दोप पडे होगे, उनमे से गुण एकदम खीच लेना चाहिये। (शिक्षा मडल वर्धा हीरक जयन्ती १९७४ पेज १६)।

सत्पुरुष गुणग्राही होकर अपने मे विद्यमान विकारो को दूर करने का पुरुषार्थ करते है। कोई-कोई इस भ्रान्ति की,भवर मे घूमा करते हे कि हमने अध्यात्म शास्त्र के रहस्य को पूर्ण समझ लिया है। अत विकारो को दूर करना जरूरी नही है।

ज्ञान समान न आन जगत् मे सुख को कारन ।
इह परमामृत जन्म-जरा-मृत रोग निवारन ॥

इस ज्ञान का समागम जब तक तप से नही होगा, तब तक मोक्ष की प्राप्ति आकाश के पुष्पो की प्राप्ति सदृश है । रयणसार मे कुदकुद स्वामी ने इस बात का निराकरण किया है, कि ज्ञान मात्र के द्वारा इष्ट सिद्धि हो जायेगी । आचार्य शिरोमणि कहते है—

णाणी खवेइ कम्मं णाण वलेणेदि सुवोलए अण्णाणी ।
विज्जो भेसज्ज मह जाणे इदि णस्सदे वाही ॥ ७२॥

ज्ञानवान व्यक्ति ज्ञान की सामर्थ्य से कर्मो का क्षय करता है, ऐसा कथन करने वाला अज्ञानी है । मै वैद्य हू । औपधि का मुझे परिज्ञान हे, क्या इतने मात्र से रोग नाश हो जाएगा ? कदापि नही ।
राजवार्तिक मे अकलक देव ने लिखा है—

न मोक्ष मार्ग ज्ञानादेव मोक्षेणाभिसबंधो, दर्शनचारित्राभावात् ।
न च श्रद्धानादेव मोक्षमार्गो ज्ञानपूर्व क्रियानुष्ठानाभावात् ।
न च क्रियामात्रादेव ज्ञानश्रद्धानाभावात् यतः क्रिया ज्ञान श्रद्धान रहिता निः फलेति ।
यदि च ज्ञानमात्रादेव क्वचिदर्थसिद्धिर्दृष्टा साभिधीयताम् ।
न च सावस्त्यतो मोक्षमार्ग त्रितय कल्पना ज्यायसीति ।
(पृष्ठ १० अ १ सूत्र १)

मोक्षमार्ग के ज्ञान मात्र से मोक्ष का सवन्ध नही होता है क्योकि दर्शन तथा चारित्र का अभाव है । श्रद्धान मात्र द्वारा भी मोक्ष मार्ग नही प्राप्त होता है, कारण ज्ञान पूर्वक क्रिया के अनुष्ठान का अभाव है । केवल क्रिया द्वारा मोक्ष मार्ग प्राप्त नही होता है, कारण ज्ञान तथा श्रद्धान का अभाव है, इससे ज्ञान तथा श्रद्धा विहीन त्रिया निष्फल है ।

यदि ज्ञान मात्र से कही अभीष्ट सिद्धि हुई हो तो वताओ । ज्ञान मात्र से इष्ट सिद्धि नही होती है, इससे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र रूप मोक्ष मार्ग की कल्पना श्रेष्ठ है ।

मोक्ष पाहुड मे कुदकुद स्वामी का यह कथन मनन करने योग्य है—

तवरहिय जं णाणं णाणविजुत्तो तवोवि अकयत्थो ।
तम्हा णाणतवेण संजुत्तो लहइ णिव्वाणं ॥५६॥

जो ज्ञान तपस्या रहित है अथवा जो तप ज्ञान रहित है, वह अकार्य-

कारी है अत तप से सयुक्त जो ज्ञान है, वह निर्वाण प्रद है ।

धुवसिद्धी तित्थयरो चउणाणजुदो करेइ तवयरणं ।
णाऊण धुवं कुज्जा तवयरण णाणजुत्तोवि ॥६०॥

जिन तीर्थकर भगवान का मोक्ष गमन निश्चित है वे मति, श्रुत, अवधि तथा मन पर्यय रूप चार ज्ञानो से सयुक्त होते हुए भी तपश्चरण करते है । इस बात को जानकर ज्ञानयुक्त होते हुए भी तपश्चरण करना चाहिए ।

महावीर भगवान ने दीक्षा लेने के उपरान्त चार ज्ञान के होते हुए भी द्वादशवर्ष पर्यन्त घोर तप किया था, "वीरस्य घोर तपो" अतः ज्ञान के साथ सयम का भी उचित मूल्यांकन करना चाहिए ।

अध्यात्म शास्त्र प्रेमियो को सोमदेव सूरि का यह मार्ग दर्शन स्मरण रखना चाहिए—

सम्यक्त्वात्सुगतिः प्रोक्ता, ज्ञानात्कीर्तिरुदाहृता ।
वृत्तात्पूजामवाप्नोति त्रयाच्च लभते शिवम् ॥

सम्यक्त्व के द्वारा देवादि सुगति प्राप्त होती है, ज्ञान के द्वारा कीर्ति मिलती है, चारित्र के द्वारा सम्मान मिलता है, तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनो के द्वारा शिवपद-निर्वाण प्राप्त होता है ।

शका—कोई-कोई व्यक्ति चारित्र के प्रति विपरीत भावना रखते हुए सोचा करते हैं, कि वीतराग विज्ञानता मात्र से काम संपन्न हो जायेगा ।

समाधान—चारित्र के धारण किए विना वीतरागता नही आती है । मोहनीय के भेद दर्शन मोह तथा चारित्र मोह कहे गये है । दर्शन मोह के अभाव मे सम्यग्दर्शन हो जाता है, किन्तु चारित्र मोह के भेद राग द्वेष का अभाव हुए विना वीतरागता नही हो सकती है । जब तक आत्मा चारित्र गुण से समलकृत नही होती, तब तक उसमे वीतरागता होना असभव है । समतभद्र स्वामी ने । रत्नकरण्ड श्रावकाचार मे कहा है—

राग-द्वेषनिवृत्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥४७॥

मुनि राग द्वेष की निवृत्ति के लिए अर्थात् वीतरागता की प्राप्ति के लिए चारित्र को स्वीकार करते है ।

इस आर्ष वाणी से यह स्पष्ट होता है, कि वीतरागता की प्राप्ति

के लिए चारित्र जरूरी है। कोई व्यक्ति चारित्र का तनिक भी पालन नही करके यह कहे कि मेरा किसी भी पदार्थ मे राग नही है, मैं तो वीतराग विज्ञानता से अपने आपको अलकृत करता हू, तो उसकी कल्पना उस कृपण के समान हे तो कुछ दान तो नही देता, किन्तु कहता है मैं दान करने वाले व्यक्ति के समान अपने पास के धन के विषय मे स्पृहा, इच्छा अथवा लालसा विमुक्त हू। यदि विकार जनक सामग्री का त्याग किए विना वीतरागता मिल जाती तो सर्वार्थ सिद्धि के देव वीतरागता की शरण लेकर अपने विमान से १२ योजन ऊचाई पर स्थित सिद्ध भूमि मे सीधे जाकर सिद्ध भगवान वन जाते।

शास्त्र के अभ्यास का अभिप्रेत तत्त्व राग द्वेप का त्याग है। राग द्वेष त्याग रूप वीतरागता युक्त जीव भव सिंधु के पार पहुच जाता है। पचास्तिकाय मे कुन्दकुन्द स्वामी ने कहाहै—

तम्हा णिव्वुदि कामो रागं सव्वत्थ कुणदि मा किंचि।

जो मुयदि रागदोसे सो गहदि दुक्ख परिमोक्ख ॥१०४॥

इससे मोक्ष की कामना करने वाले को सर्वत्र राग भाव का त्याग करना चाहिए। जो राग और द्वेप का त्याग करता है वह दु.ख का पूर्णतया क्षय करता है।

इस गाथा की टीका मे अमृतचद्र सूरि लिखते हैं—"अस्य खलु परमेश्वरस्य शास्त्रस्य परमार्थतो वीतरागत्वमेव तात्पर्यमिति"—इस सर्वज्ञोक्त शास्त्र का परमार्थ दृष्टि से तात्पर्य वीतरागता है। "तदिद वीतरागत्व व्यवहार-निश्चयाविरोधेनैवानुगम्यमाने भवति समीहित-सिद्धये, न पुनरन्यथा। (२४६ पृष्ठ)—यह वीतरागता व्यवहार तथा निश्चय नयो के द्वारा अविरोध रूप मे अगीकार करने पर अभिप्रेत वस्तु की सिद्धि के लिये होती है अन्यथा नही। इसी वीतरागता को मध्यस्थ वृत्ति भी कहा गया हे। आगम की देशना का फल वीतरागता है यह पचास्ति-काय टीका मे वताया है। उसी को 'मध्यस्थ' शब्द द्वारा पुरुषार्थ सिध्युपाय मे अमृतचद्र सूरि ने निरूपित किया है।

व्यवहार निश्चयौ यः प्रवुध्य तत्वेन भवति मध्यस्थ.।

प्राप्नोति देशनायाः स एव फलमविकल शिष्य·॥

जो व्यवहार तथा निश्चय को यथार्थ रूप से अवधारण कर मध्यस्थ वृत्ति—वीतराग भाव को प्राप्त होता है, वह शिष्य धर्म की प्रतिपादना

के परिपूर्ण फल को प्राप्त करना है।

विराग भाव मे वडी सामर्थ्य है, अल्पज्ञानी भी रागद्वेष का परित्याग कर मोक्ष प्राप्त करता है। कहते है, साधुत्व को प्राप्त करने वाला भोगो से विरक्त सत्पुरुष दीक्षा लेते समय जिस प्रकार की विरागता को प्राप्त होता है, उस काल की स्मृति भी उसे आत्मा के उत्थान की ओर ले जाती है। यदि विरागता का दीप हृदय मे प्रज्वलित है, तो आत्मा मे मोहान्धकार का प्रसार नही हो पाता।

जगत मूल यह राग है मुक्ति मूल वैराग।
मूल दुहन को यह कह्यो, जाग सके तो जाग॥
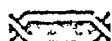
सुलझे हुए सन्त

•

आचार्य महाराज का हृदय विशाल है। जैन धर्म मे प्रगाढ श्रद्धा होते हुए अन्य धर्म के साधु-सन्तो के साथ भी इनका वडा सद्भावना पूर्ण व्यवहार रहता है। इनका व्यक्तित्व स्वय महान् है। देखा गया है कि सैकड़ो साधुओ के समुदाय मे ये तारिकाओ के मध्य चन्द्र के समान शोभायमान होते है। इनका व्यक्तित्व आकर्षण का केन्द्र रहता है।

विश्वधर्म सम्मेलन

सन् १९६५ मे दिल्ली के रामलीला मैदान मे एक विश्व धर्म सम्मेलन बडे विशाल पैमाने पर हुआ था। लाखो लोग उस महोत्सव मे सम्मिलित थे। उस धर्म सम्मेलन मे अनेक धर्मी साधु सन्त विराजमान थे। सिक्खो के गुरु सन्त कृपाल सिह आदि प्रमुख व्यक्ति भी थे। उस विशाल जन समुदाय मे सभी की दृष्टि दिगम्बर मुद्रा से शोभायमान स्वावलवी साधुराज आचार्य देशभूषण जी महाराज पर केन्द्रित हो रही थी। तत्कालीन राष्ट्रपति जाकिर हुसैन ने सभा मे आकर इन्हे सर्वप्रथम प्रणाम किया था। अन्य उच्च अधिकारी गण भी प्रणामाजलि अर्पित करते थे। बहुसख्यक विदेशी कैमरामैन मुख्यतया इनकी ही फोटो खीचते थे। 'नमस्ते महाराज' कहकर प्रणाम भी करते जाते थे। उनका ध्यान इन्ही साधुराज पर विशेष केन्द्रित था।

जब महाराज उस सम्मेलन के लिए लाल मन्दिर से चले थे, तव सिक्खो के गुरु सन्त कृपालसिह शहीदगज गुरुद्वारे से चलकर दि० जैन लाल मन्दिर के सामने आये थे और महाराज श्री को प्रणाम करने के अनन्तर साथ-साथ सभाभवन की ओर गये थे। बहुत से सिक्ख भाई सूर्य के प्रकाश मे चमच-

माती हुई नगी तलवारो को साथ मे ले कर चल रहे थे। दिगम्बर साधु के साथ उस समय तलवारे भी दिगम्बर थी। इस प्रकार सार्वजनिक दृष्टि से अन्य समाज पर अपनी उपस्थिति से, व्यक्तित्व (Personality), वाणी आदि के द्वारा अहिसा धर्म की प्रतिष्ठा को बढाना प्रकृति ने इन्हे वरदान रूप मे सौपा है।

हमे तो लगता है कि मुनिराज श्री जयकीर्ति महाराज को गुरु बनाकर इन्होने जय और कीर्ति को प्राप्त कर लिया है और लोग इनको 'भारत गौरव' पद द्वारा स्मरण करते है। देशभूषण शब्द का वाच्यार्थ भी देश गौरव है। उदार पुरुष किसी एक देश के नही होते। सम्पूर्ण वसुन्धरा और प्राणी मात्र उनके बन्धु और कुटुम्बी होते है, इसलिए वास्तव में विश्व के भूषण है। किसी कवि ने लिखा है कि:-

'भ्रातर: मनुजा: सर्वे स्वदेशं भुवनत्रयम्।'

सम्पूर्ण मानव समाज हमारा बन्धु है और त्रिभुवन हमारा स्वदेश है।

दार्शनिक सुकरात ने मरते समय कहा था, कि मै एथेन्सवासी अथवा ग्रीसदेश का नही हू। मै तो विश्व का नागरिक हूं[१]।

कोथली में कल्याण केन्द्र

महाराज की दृष्टि व्यापक है। सर्वत्र धर्म का दीप प्रदीप्त करके प्रेम का प्रकाश फैलाना उनका स्वभाव-सा हो गया है। गुरुदेव की जन्मभूमि कोथली (दक्षिण) मे महाराज के प्रभाव से एक सुन्दर जिन मन्दिर बन गया, जिसमे चौबीस तीर्थकरो की प्रतिमाये शोभायमान है। सुन्दर मानस्तम्भ भी बन गया है। एक हरिजन ने महाराज की भक्ति से प्रेरित हो एक हाई स्कूल के लिए बहुत सी जमीन भेट मे दी थी। वहा एक सुरम्य गुरुकुल भी हो गया जिसके द्वारा आस-पास के हजारो किसानो को बहुत लाभ पहुच रहा है। वहा मुनियो के निवास की भी व्यवस्था हो गई। क्षेत्र को अपने पैर पर खड़े होने के लिये दान रूप मे ऐसी बहुत सी जमीन मिल गई,

---

१. Socrates declared on his death-bed that he was not Anthenian or a Greek, but a citizen of the world.

Radhakrishnan's Speeches & writi

जिसकी आमदनी से आशा है सस्था का कार्य वरावर चलता रहेगा यदि मेघराज की कृपादृष्टि रही। जिस प्रकार नदी अपने उद्गम स्थान से निकल कर समुद्र मे पहुचने तक अपने किनारे पर रहने वाले लोगो को जल प्रदान करती हुई आगे वढती जाती है इसी प्रकार ये सावुराज सारे देश मे विहार करते हुए जन जागरण रूप पुण्य कार्य मे सलग्न रहते है।

महत्वपूर्ण शका—एक शका उठाई जाती है कि श्रमण को परोपकार करना वन्धन का कारण है। उसे तो स्व का अर्थात् आत्मा का उपकार करना चाहिये।

समाधान—यह शका उचित है किन्तु उसके साथ यह वात भी सोचने की है कि आत्मोपकार का साधन परोपकार है। परोपकार द्वारा शुभ भाव होता है जो धर्मध्यान रूप है इसलिये धर्मध्यान का सहायक और विपय-कषायो से मन को दूर करने का कार्य करना श्रमण के लिये अनुचित नही है। सर्व प्रथम परोपकार अर्थात् दूसरे का अपकार या हानि पहुचाने का दुष्कृत्य छोड़ करके सत्कार्य मे अपने को लगाना चाहिये।

परोपकार का महत्त्व

प्रभावशाली प्रमुख साधु आध्यात्मिक साधना मे सतत सलग्न रहते हुए भी दूसरो को सत्पथ मे लगाते है, इससे ऐसे पुरुप तरन तथा तारन कहे जाते हैं।

ते गुरु मेरे मन वसो जे भव जलधि जहाज।
आप तिरे पर तारही, ऐसे श्री ऋषिराज॥

यदि ये लोक कल्याण को सर्वथा छोड़ अपनी ही साधना मे लग जाय, तो जगत् में अगणित जीव मोह रोग से पीडित हो मरकर दुर्गतिगामी होगे। ये आध्यात्मिक वैद्य हैं, जिनके द्वारा जीव मात्र का मोह ज्वर दूर होता है। परोपकार करते समय मानसिक कलुपता का त्याग करके ये अपनी आत्मा को विशुद्धिपथ मे लगाते रहते हैं। सतो के पास कुछ धन-दौलत नही रहा करती। "जगां चा कल्याण संतां ची विभूति"—लोक कल्याण सतो की सम्पत्ति है। णमोकार मत्र मे आठ कर्मो का क्षय करने वाले सिद्ध भगवान को नमस्कार के पूर्व अरहन्तो को इसीलिए प्रणाम किया है, कि अरहन्त देव की दिव्यध्वनि द्वारा अगणित जीवो की प्रवृत्ति आत्म कल्याण मे होती है। इसीसे कुदकुद स्वामी ने दसण पाहुड में

अरहत भगवान को जीवो के कर्मक्षय में निमित्त कारण कहा है। उनके शब्द इस प्रकार है—

चउसट्ठि चमरसहिओ चउतीस अइसएहिसंजुत्तो।
अणवरबहुसत्तहिओ कम्मक्खयकारणणिमित्तो ॥२९॥

अरहत भगवान चौसठ चमरो से अलकृत, चौतीस अतिशयो से शोभायमान तथा निरन्तर बहुजीवो का हित करते हुए उनके कर्मक्षय मे निमित्त कारण है। अरहत को आदर्श मान आचार्य, उपाध्याय, साधु परमेष्ठी धर्म की देशना देते है।

अपाय विचय धर्म ध्यान में सच्चा मुमुक्षु ससार समुद्र मे डूबते हुए जीवो के हित की सोचता है। दर्शन विशुद्धि भावना मे जगत् के जीवों के कल्याण का चितन किया जाता है। गृहस्थ की दृष्टि परोपकार की सीमा के भीतर रहती है। पर का हित करने वाले के स्वयमेव स्व का हित होता है। साधर्मी भाइयो मे सच्चे वात्सल्यपने का अर्थ यही है, कि वह अपनी शक्ति भर साधर्मी भाइयो का कष्ट निवारण करे। उनकी सहायता करना कारुण्य भावना का क्रियात्मक रूप है। दु खी व्यक्तियो के दु खो को श्रावक के धर्मो में औषधि दान, अभयदानादि का भाव परोपकार वृत्ति ही है। इससे वह जीव दुर्गति से बचता है। सज्जन लोग परोपकार वृत्ति का समर्थन करते है। दुर्जनो को परोपकार जहर सरीखा लगता है। वे नरक मे जाकर दु खी नारकियो के दु·खो के बढाने वाले दुष्ट तथा पापी असुर कुमार देवो के चरणोपासक लगते है। परोपकार नाम का गुण सर्व धर्म मान्य है। गाधी जी ने इस विषय मे लिखा है—"इस नीति विपयक उपाय ने मेरे हृदय मे घर कर लिया। उपकार का बदला अपकार नही वरन उपकार चाहिये। यह वस्तु जीवन सूत्र बन गई। अपकारी का भला चाहना और करना इसका मै अनुरागी बन गया और अगणित प्रयोग किए। वह चमत्कारी छप्पय यह है—

प्राणी आपने पाय, भलुं भोजन तो दीजे।
आग नसामे शीश दण्डवत कोड़े कीजे।
आपण घासे दाम, काम महोरोनुं करीए।
आप उगारे प्राण ते तथा दु·खमां मरीए।
गुण केडे तो गुण दश गणो मन वाचा कर्मे करी।
अवगुण केड़े जे गुण करे, तो जग मा जीत्यो सही ॥

इनका हिन्दी अनुवाद यह है

जो हमको जलपान कराए उसको भोजन दीजे।
अपने को जो शीश नवाए, उसे दण्डवत कीजे।
पैसे जो दे हमे उसे मोहर दे देना।
और बचावे प्राण दु:ख मे उसके मरना
गुण के बदले दस गुना, जो मन, वाचा, कर्म से
अवगुण करते गुण करे जग जीता इस धर्म से॥

(सक्षिप्त आत्म कथा)

सुभाषितकार का कथन है—

वदनं प्रसाद सदनं सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः।
करणं परोपकरणं येषा केषां न ते वंद्याः।

जिनका मुख प्रसन्नता का भवन है, हृदय दयापूर्ण है, वाणी द्वारा जो अमृत वर्षाते है तथा जिनके भाव सदा दूसरे के उपकार करने के रहते है, वे सत्पुरुष किसके द्वारा वदनीय न होगे ?

उपाध्याय परमेष्ठी धर्मोपदेश देकर सदा परोपकार किया करते हैं। द्रव्यसग्रह मे कहा है—"णिच्च धम्मोवएसणे णिरदो" (५३) नित्य धर्मोपदेश देने मे वे उपाध्याय सलग्न रहा करते है। अनेकात के प्रकाश मे कोई उलझन नही रहती। एकात के अधकार मे ही विपरीत कल्पनाओं की उद्भूति हुआ करती है।

मोक्षाभिलाषी मुनिराज द्वादशविधि तप को करते है। अन्तरग तप का भेद स्वाध्याय है उसमे धर्मोपदेश शामिल है। धर्मोपदेश देना अतरग तप होने से निर्जरा का कारण है। तत्वार्थ सूत्र मे कहा है—

प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरम् ॥२०॥
वाचना-पृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशा.।२५। तपसा निर्जरा च ॥३६

भ्रमपूर्ण दृष्टि

हमे राग नही चाहिए, ऐसा चिल्लाने से तथा भाषण देने से राग नही रहेगा ऐसी दृष्टि भ्रमपूर्ण है। राग महाशत्रु है। उसे जीतने को प्रारम्भ मे अशुभ प्रवृत्तियो तथा दुर्भावो का त्याग आवश्यक है। अशुभ भावो की मलिनता मे यह जीव अनादिकाल से डूबा है। शुभ भाव को प्राप्त करना सरल नही है। अशुभ भाव का सम्बन्ध तीव्र कषाय से है।

मंदकषाय वाला ही शुभ भाव की क्षमता प्राप्त करता है। कार्तिकेयानुप्रेक्षा मे कहा है—

आदं तिव्व कसायं तिव्वतमकसायदो रुद्दं ॥४६६॥

तीव्रकषाय युक्त आर्त्त ध्यान है। तीव्रतम कषाय भाव रौद्र ध्यान है।

'मंदकसायं धम्म', मंदतमकसायदो हवे सुक्कं।
अकसाएवि सुयट्ठे केवलणाण वि तं होदि ॥४७०॥

मदकषाययुक्त धर्मध्यान है। मदतम कषाय मे, अकषाय की अवस्था मे तथा केवल ज्ञान मे शुक्ल ध्यान होता है।

हमारा कर्तव्य है कि तीव्र कषाय रूप परणति से अपनी आत्मा की रक्षा करे। तीव्रकषाय वाले का स्वरूप इस प्रकार कार्तिकेयानुप्रेक्षा मे कहा गया है—

अप्पपसंसणकरणं पुज्जेसु दोसगहणसीलत्तं।
वेरधरण च सुइरं तिव्वकसाययाण लिगांणि ॥

अपनी प्रशंसा करना, पूज्य पुरुषो के दोष ग्रहण करने का स्वभाव धारण करना, चिरकाल पर्यन्त वैर भाव धारण करना तीव्रकषाय के चिन्ह है। इस तीव्रकषाय के द्वारा नरक, तिर्यच पर्याय मे जीव का पतन हुआ करता है।

सव्वत्थवि पियवयण दुव्वयणे दुज्जणे वि खमकरणं।
सव्वेसि गुणगहणं मदकसायाण दिट्ठता ॥

सदा प्रिय वाणी बोलना, दुर्वचन बोलने वाले दुर्जन के प्रति क्षमा भाव रखना तथा सभी के गुण ग्रहण करना मद कषाय के उदाहरण है।

पुण्णं बंधदि जीवो मंदकसाएहि परिणदो संतो ॥४१२॥

मद कषाय से परिणत जीव पुण्य कर्म का बध करता है।

कर्त्तव्य

वर्तमान काल मे चारो ओर अशुभ भाव का पोषक वातावरण रहता है। चतुर व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि पूर्ण प्रयत्न कर शुभ भाव की ओर अपनी चित्तवृत्ति को लगावे। गृहस्थ के लिए तथा पचम काल के मुनियो के लिए धर्म ध्यान रूप शुभ भाव ही उपकारी है; कारण शुक्ल ध्यान रूप शुद्ध भाव की इस काल मे उपलब्धि असभव है; यह बात ध्यान मे रहनी चाहिये—

अशुभ भाव को त्यागकर सदा धरो शुभ भाव।
शुद्ध भाव आदर्श हो यह आगम का भाव॥

बुद्धि तीन प्रकार की होती है। कुधी, सुधी और स्वधी। कुधी—अर्थात् दुष्ट बुद्धि को छोड़ो और सुधी बनो। सद्बुद्धि को स्वीकार करो। जब सुधीपने की परीक्षा मे साधक उत्तीर्ण हो जाता है, तब वह स्वधी (आत्म-बुद्धि) बनने का अधिकारी होता है। आत्मा शब्द का उच्चारण तोते की तरह करने से तत्वज्ञान की उपलब्धि और शिव पद की प्राप्ति नही होती है।

आतम आतम रटन ते समकित कबहुं न होय।
वीतराग की भगति बिन समक्ति कहते होय॥
आतम की चर्चा करत नहि छाड़त अघ काम।
ऐसा मोही कुगति मे दुःख सहै अविराम॥

विचित्र भक्त

साधु जीवन मे कभी तो बडे सज्जन और भद्र पुरुष मिलते है और कभी विचित्र बुद्धि और विचार के व्यक्तियो से भेट होती है। महाराज ने बताया था कि एक बार वे गुजरात प्रान्त मे विहार कर रहे थे। एक बडे कांग्रेसी प्रमुख जैन नेता ने आहार के लिए महाराज को पडगाहा और कहा, "हे स्वामिन्! 'नमोस्तु-नमोस्तु-नमोस्तु' होटल से मगाया गया आहार जल शुद्ध है।" उस व्यक्ति को इस बात का भी ध्यान नही रहा कि होटल से मगाये गये दोषयुक्त भोजन को क्या कोई साधु कभी ग्रहण करेगा? महाराज शान्त रहे।

मधुर कण्ठ

आचार्यश्री जब तन्मय होकर भरतेश वैभव आदि कन्नड काव्यो के मगल पद्यो को पढते है तब सुननेवाले को यह पता नही चलता कि यह कठ की माधुरी बालक की है या ७० वर्ष के वृद्ध पुरुष की।

सरल शैली

महाराज मे एक विशेषता यह है कि वे अपने व्याख्यान को शुष्क चर्चा से पूर्ण न बनाकर अनेक रोचक उदाहरणो से उसे इस प्रकार सजाते

है कि मन्दबुद्धि व्यक्ति भी उनके भाव को समझ लेता है। उनकी भाषा शास्त्रीय जटिलताओ से जकड़ी नही रहती और उसमे कृत्रिमता भी नही दीखती जो प्रायः अन्य लोगो मे पायी जाती है।

हमारे आचार्यो ने शब्द जाल मे सत्य को छुपा कर प्रतिपादन करने की पद्धति को महत्व प्रदान नही किया। इन्होने लोक भाषा का आश्रय लेकर उस पद्धति का निरूपण किया है जिससे सब लोग समझ लेवे। तुलनात्मक धर्म के अभ्यासी विद्वान् बैरिस्टर चम्पतराय जैन कहा करते थे कि जनो ने अपने साहित्य को सब के समझने वाली वैज्ञानिक भाषा मे रचा है तथा अन्य लोगो न अनेक स्थला पर प्रतीको का (Symbols) प्रयोग करके ऐसी स्थिति ला दी है कि बहुधा जनसाधारण के लिए सत्य को समझना कठिन हो जाता है। भारतीय वाङ्मय का अध्ययन करने पर यह पता लगता है कि जैन आचार्यो ने लोक कल्याण को केन्द्र बिन्दु बनाकर सभी भाषाओ को अपनी धम देशना का माध्यम बनाया है। इसीलिए उन्होने पडितो की भाषा सस्कृत म रचना के साथ-साथ प्राकृत, अपभ्रश, कन्नड, तमिल आदि विविध भाषाओ मे भी ग्रन्थ निर्मित किये है। उनका उद्देश्य भाषा नही थी। उनका केन्द्र बिन्दु तत्व का प्रकाशन था। विचारो का वाहन भापा है। वह साधन है साध्य नही है।

उपयोगी दृष्टान्त

यह बात आचार्य देशभूषण महाराज मे है कि वे श्रोता रूप मरीज के अनुसार उसके हित करने वाली उपदेश रूप दवा देते है। बच्चे को वे चासनी मे दवा देते है और वयस्क को वे सीधी दवा देते है। उनके उदाहरण वड़े मार्मिक होते है। इस समय महाराज का एक उदाहरण वरवस मेरे मन के समक्ष आ जाता है। आचार्य श्री वर्तमान जगत्, देश, व्यक्ति और समाज आदि की उलझनो को दूर करने के वारे मे समाधान की चर्चा करते हुए कहने लगे—हम लोगो ने अपने-अपने कर्त्तव्यो का परित्याग कर दिया है और हमने दूसरो के अधिकारो और कर्तव्यों को अपना लिया है। इसलिए यह गडवडी हुई।

उन्होने कहा था—एक नाई और एक ज्योतिपी पडित अपना सामान अपने थैलो मे रख ट्रेन मे वैठकर साथ-साथ जा रहे थे। ज्योतिपी के थैले मे उसका पचाग, पोथी आदि थी, नाई के थैले मे हज्जामी का

सामान उस्तरा, कैंची आदि थी। नाई को एक शादी मे जाना था और पडित जी को एक बहुत बड़े धनी परिवार मे उत्पन्न हुए बच्चे की कुण्डली बनाने जाना था। दोनो सोच रहे थे कि हमे अपने काम मे काफी द्रव्य की प्राप्ति होगी। स्टेशन आने पर दोनो उतर गए। उस समय एक अद्भुत भूल हो गई। दोनो का थैला बदल गया। पचाग वाली थैली नाई महाशय के हाथ मे आ गई और उस्तरे-कैंची वाली थैली पडित जी के हाथ मे। दोनो उसे ले करके अपने-अपने स्थान पर गये। अपना कार्य आरम्भ करते समय नाई ने जब बाल बनाने की तैयारी की और थैले मे हाथ डाला तो हाथ में पचांग आया। वह यह देख करके चकित हो गया। उसकी अक्ल गायब हो गई कि मैं क्या करू ? उधर पडित जी लग्न आदि शुद्ध करने के लिए अपने थैले मे पचाग टटोलते हैं, तो उसमे से कैंची और उस्तरे निकले। उस घर वालो को यह बड़ा बुरा लगा। ऐसे मगल प्रसंग पर इन हथियारो की क्या जरूरत थी।

आचार्य महाराज ने कहा—इसी प्रकार तुम्हारी थैली बदल गई है। गृहस्थों ने मुनियो से ऊचे पद जैसी बाते करना आरम्भ कर दिया है। अब आप लोग अशुभोपयोग मे फसे है, शुभोपयोग की क्षमता नही है और शुद्धोपयोग के गगन में विचरण करना चाहते हैं। नतीजा यह होता है कि पाप की सछिद्र नौका मे वह डूबते जा रहे हैं। उधर हमारे त्यागी गण भी अपने कर्तव्यो को कम याद करके गृहस्थो जैसी दृष्टि की ओर झुक रहे हैं। इससे अकल्याण हो रहा है। अशुभोपयोग तथा शुद्धोपयोग के बीच का मार्ग (Middle Path) शुभोपयोग है। जैसे सयम और असयम के बीच का स्थान सयमासयम कहा गया है।

इस छोटे से उदाहरण के द्वारा कितने सुन्दर रूप में महाराज ने एक गम्भीर तत्व का निरूपण कर दिया।

अर्थ का श्रद्धान

एक दिन महाराज कहने लगे—शास्त्र मे कहा है—'तत्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शनम्, लेकिन आज के आदमी ने उसमे से 'तत्व' शब्द निकाल करके मान रखा है 'अर्थ श्रद्धानम् सम्यग्दर्शनं'। रुपयो का श्रद्धान सम्यक्त्व है। इसका अर्थ तो यही हुआ जो आज अमेरिका मे लोग कहते हैं—'डालर इज आलमाइटी' अमेरिका का सिक्का डालर सर्वशक्ति सम्पन्न है।' इस प्रकार

आज का मोह की शराब पिया हुआ मानव पागल बन कर तत्त्व को छोड़कर धन के पीछे दौड़ रहा है।

अध्यात्मशास्त्र पर्याय बुद्धि को त्यागकर द्रव्य दृष्टि बनने का उपदेश देता है। उसका लक्ष्य है कि आत्मद्रव्य पर अपनी दृष्टि डालो, किन्तु आज का नकली मुमुक्षु द्रव्य का अर्थ आत्मा को छोडकर नोटो के बडिल (ढेर) रूप द्रव्य पर दृष्टि रखकर नकली सम्यक्त्वी बन रहा है। वह 'अर्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' मानता है। तत्त्वार्थ को वह भूल गया।

दुःख का कारण

वर्तमान जगत में जो दु ख की वृद्धि हो रही है, उसका कारण महाराज ने कहा—रूप और रुपैया है। इस घृणित शरीर को सजाने वाले स्त्री और पुरुप 'विषय रूप' अग्नि मे स्वय को भस्म करते है। सुन्दरता के चक्कर मे सिनेमा आदि की तरफ लगे रहते है और अर्थ प्राप्त कर धनी बनने के लिए नीच से नीच कर्म करने मे नही चूकते।

भारतवर्ष १९४७ में स्वतन्त्र हुआ। स्वतन्त्रता की रजत जयन्ती मना भी ली गई किन्तु क्या हाल है? क्या बुरी स्थिति है, इसकी ओर ध्यान नही है। जहा यह गीत गाया जाता था, कि हमारा देश ऐसा है, जहा घी और दूध की नदिया बहती थी, वहा आज क्या स्थिति है? 'वन्दे मातरम्' गीत मे बकिमचन्द्र चटर्जी के शब्दो को दोहराते हुए करोडो भारतवासियो ने मधुर स्वर से 'वन्दे मातरम्' कहते हुए भारत को 'सुजला सुफला शस्यश्यामलाम्' कहा था। आज का क्या हाल है? फल और धान्य से शोभायमान भारत भूमि गरीबी, मुसीबतो और अभावो का केन्द्र है। कभी सूखा पड कर हमे सुखा देता है, तो कही जल प्रलय हाहाकार का दृश्य उपस्थित करता है। यह क्या बात? आज हो क्या गया है?' इस भीषण स्थिति का क्या इलाज है? महापुराण में दि० जैन आचार्य जिनसेन ने एक बडे महत्व की बात कही है—

सुकालश्च सुराजा च समं सन्निहितं द्वयम्।

सुराज्य

सुकाल और सुराज्य दोनों साथ-साथ रहते है। भारत देश ने गाधी जी के नेतृत्व मे स्वराज्य हेतु प्रयत्न किया था, वह तो मिल गया, लेकिन वह

कुराज्य ही स्वराज्य बन गया है। प्रश्न यह है कि सुराज्य कैसे प्राप्त हो ?

महावीर भगवान ने कहा था कि दुनिया के तमाम कष्टो का असली कारण है, 'हिसा प्रसूतानि सर्व दु.खानि' सर्व सकटो का कारण हिसात्मक जीवन है। उन्होने यह भी कहा था कि व्यक्ति अथवा समष्टि मे जितना अहिसा का अविर्भाव होगा उतनी ही सुख और शान्ति प्राप्त होगी।

आज यह देखकर आश्चर्य होता है कि पश्चिम के मासाहारी[1] देश मॉसाहार को छोडकर शाकाहार की ओर झुकते जा रहे है। पर हमारे देश मे अण्डे खाना, मास खाना आदि का गणतत्र शासन प्रचार करता फिरता है। वह हृदय पर हाथ रख कर सोचे कि यह शासन जनता का प्रतिनिधि है और वह सम्पूर्ण धर्मो के प्रति समान रूप से समादर भाव रखता है। यदि यह ठीक है तो क्या उसका मास खाने का प्रचार करना तथा कराना और कसाईखानो की वृद्धि करना अल्प सख्यक अहिसावादी जैन अथवा अहिसा प्रेमी बहुसख्यक हिन्दू आदि धर्म वालो के प्रति विश्वासघात नही है ? वर्तमान मे यदि अपने दु खो को दूर करना है तो हमारे शासको को गहराई से

---

१ हमारा देश हिसात्मक प्रवृत्तियो मे बढ रहा है। अग्रेजो ने जिन हिसात्मक कार्यो मे हाथ नही लगाता था, उन कार्यो मे काग्रेसी अहिसात्मक भक्त शासन सलग्न हो रहा है। केरलप्रान्तो मे मेढको केकडो आदिको मारकर उनकी टाँगे आदिअमेरिका भेजी जा रही है। वाणिज्य मत्री मनु भाई शाह ने बताया था कि सन् १९६३-६४ मे ४६० ६५ बन्दर अमेरिका को भेज कर धन प्राप्त किया गया था। धन की लालसा मे महान् मे महान् पाप करने को गणतत्र शासन तत्पर है। पापो की वृद्धि होने के कारण विपत्तियो ने देश को घेर लिया है। हिसा, झूठ, चोरी, कुशील और तीव्र लोभ मे फसा शासन देश को अवनति के गहरे गड्ढे मे गिरा रहा है और जनता को दोषी कह रहा है। यह कारण है जो महगाई, दुष्काल आदि विपत्तिया पिण्ड नही छोड रही है। सच्चे साधु पाप प्रवृत्तियो के परित्याग हेतु प्राणी मात्र को उपदेश दिया करते है। शासन को इनसे मार्ग दर्शन प्राप्त करना चाहिए।

दया प्रेमी श्रीमती रुक्मिणी देवी अरण्डेल मद्रास ने मेढक बन्दर आदि को मारकर विदेश भेजने के शासन के कार्यो की कडी आलोचना करते हुए कहा था, "भारत को दुनिया का कमाई खाना नही बनाना चाहिए। दूसरो का प्राणघात करके अर्जित धन हमे शाति नही देगा।" India need not be a butcher house for the world Money made from misery can not give peace

सोचना होगा। जहाँ कुछ वर्षो से पानी की एक बूद न पडने के कारण अकाल था वहाँ चारो ओर गगा नर्मदा आदि नदियो ने क्यो जल प्रलय मचा दिया है ? जनता घबड़ा गई है। ऐसे स्वराज्य की किसी ने कल्पना नही की थी। गाधी जी की सतोष, सयम तथा सदाचार की पद्धति का स्थान विलासिता, असत्य, मायाचार तथा हिसा ने ले लिया है।

शासन का दोष

प्राचीन भारतीय महान् सन्तो ने तथा ग्रन्थकारो ने इसे राजा का दोप बताया है। तुलसीदास जी ने कहा है—

जासु राज्य प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥

आचार्य श्री अपने जीवन, वाणी और आचरण द्वारा अहिसा की प्रतिष्ठा प्रत्येक के अन्त करण में प्रतिष्ठित करते है और उसे ही कल्याण प्रद बताते है।

दुर्जन की आदत

वर्तमान काल मे आदमी अपनी गलती समझता है, जानता है किन्तु अपने स्वार्थ वश वह अपना रवैया नही बदल सकता। वह मायावी बनकर दुष्ट प्रवृत्ति का अनेक रूप में प्रदर्शन करता है। एक दिन महाराज कहने लगे—दुष्ट अपना स्वभाव नही छोडता है। एक मेढक के ऊपर एक बिच्छू चढ गया और उसने उस मेढक को डक मारा। मेढक ने कहा ऐसा क्यो करता है ? बिच्छू ने कहा—अब मैं ऐसा नही करूगा। वह अपना डक मारता जाता था और यह भी कहता जाता था कि अब मैं ऐसा नही करूगा। इस प्रकार की दुष्टो की आदत रहा करती है।

धर्म की देशना होने पर दश धर्म का व्याख्यान होते समय सभी कहते है बिल्कुल ठीक बात है। धर्म, ईमानदारी, सयम, सत्य और शील आदि के द्वारा हमारा कल्याण होता है। व्रताचरण रूप पोगली मे डली हुई कुत्ते की पूंछ सदृश टेढी मनोवृत्ति सीधी नजर आती है, किन्तु व्रत रूपी पोगली निकलने के बाद दुराचार रूपी टेढापन दूर नही होता तथा पापाचरण प्रारम्भ हो जाता है।

एक बार किसी भद्र पुरुष ने मुझसे पूछा था। क्या कुत्ते की पूंछ

सीधी हो सकती है ?

मैंने कहा था,—हा सीधी हो सकती है ।

उन्होने कहा आप तो वडी अदभुत वात करते हो ।

मैंने कहा—मैं कोई अद्‌भुत बात नही कहता हूं । पोगली मे डाले जाने पर वह सीधी रहती है और यदि पोगली न निकाली जाए तो वह टेढी कैसे होगी ? इसलिए यह उचित होगा कि हम यदि सच्चा कल्याण चाहते हैं तो हमे व्रतो और नियमो के वन्धन मे अपने को सदा रखना चाहिए । व्रतो द्वारा नियन्त्रित आत्मा परम निर्वाण स्वरूप स्वाधीनता पाती है । विपय वासनाओ को निमत्रण देने वाला व्यक्ति सच्ची शान्ति से वचित हो अपार दु ख भोगा करता है । सयमी जीव को हार्दिक शाति मिलती है । पापी व्यक्ति का हृदय सच्ची शाति की परिकल्पना नही कर सकता ।

अनासक्ति पथ

एक वार महाराज ने कहा था—ससारी प्राणी भोग और विपयो मे अलिप्त नही रहता इसलिए उनके मन मे कभी हर्प होता है और कभी विपाद । किन्तु साधु उन पदार्थो के वीच मे रहते हुए भी मन मे ममता न रहने से हर्प और विपाद की व्यथा से व्यथित नही होता ।

नारियल से शिक्षा

उन्होने कहा "सच्चा साधु पके नारियल के समान है । वह नारियल के वाहरी भाग से चिपटा नहा रहता, इसलिए भीतर के हिस्मे को चोट नही पहुँचती परन्तु ऐसी स्थिति कच्चे नारियल मे नही पाई जाती है । कच्चे नारियल का अन्तर्भाग वहिर्भाग से चिपटा रहता है । मनुष्य यदि पके नारियल के समान अलिप्त हो जल से भिन्न कमल की दृष्टि को अपने अत: करण मे प्रतिष्ठित कर ले तो वह सुखी रहेगा । मनोवृत्ति की शुद्धता महत्वपूर्ण है । एक कवि कहता हे—

दुनिया मे रहता हूं दुनिया का तलवगार नहीं ।
वाजार से गुजरा हूं खरीददार नही ॥

भ्रान्त कल्पना

लोग पूछते है मन्दिर मे जाने मे क्या लाभ है ? मनोवृत्ति शुद्ध

होनी चाहिए।

एक व्यक्ति जिस पर नकली अध्यात्मवाद का नशा चढा था कहने लगा—मन निर्मल रहना चाहिए। मन्दिर जाने की जरूरत नही है। मेरी आत्मा मेरा देव है। मेरा शरीर मन्दिर है। उस शरीर रूपी मन्दिर मे विराजमान आत्म देव की मै पूजा करता हू। आप लोग मन्दिर मे घी, दूध, दही, जल आदि से भगवान का अभिषेक करते है। यह आप का अज्ञान है। आप अपने आत्म देव को भूले हो और बाहर भगवान मान बैठे हो। खरा और सच्चा देव तो आत्मा है। मै भी अपने घर मे प्रातःकाल चाय पीते समय अपनी आत्मा का अभिषेक करता हू।

मैने पूछा—आप का अभिषेक कैसा है ?

वह कहने लगा—जल, शक्कर, दूध आदि पदार्थ युक्त उस चाय कृत अभिषेक मे लिये जाते हैं। अगर इलायची आदि मिला दी जाय तो उसे सर्वोषधि द्वारा किया अपना अभिषेक भी मान लेते है। इस प्रकार हम शरीर मे स्थित आत्मदेव का प्रतिदिन अनेक बार अभिषेक करते है। हमे मन्दिर जाने की कोई आवश्यकता नही है।

कोई व्यक्ति कहते है हमें मन्दिर जाने का समय नही मिलता। उनके पास आधी रात तक चित्रपट दर्शन कार्य मे अपने समय खर्च को करने की गु जाइश रहती है। अखबार आदि पढने के लिए, विकथा के लिए समय की कमी अनुभव मे नही आती है। लौकिक कामो के लिए बहुत समय देते हैं, लेकिन मन्दिर जाने के लिए फुरसत नही मिला करती। मैने ऐसे कई सपन्न धनिक देखे है जो अपनी पोजिशन रक्षार्थ इन्टरव्यू—भेट लेने तथा देने मे अपना बहुत समय व्यय करते है, अधिकारियो के स्वागत सत्कार मे भी लगे रहते है, पर मन्दिर जाने के सब साधन होने पर भी आत्म कल्याणार्थ वे मन्दिर नही जा पाते। कवि ऐसो को कहता है—

प्रभु सुमरन को आलसी भोजन को तैयार।
ज्ञानी ऐसे नरन को बार-बार धिक्कार॥

एक शायर चेतावनी देता है।

सेठ जी को फिक्र थी एक-एक के दस कीजिए।
मौत आ पहुँची कि हजरत जान वापिस कीजिए॥

यदि ऐसा ही धर्म विमुख ढग चला तो जिन उन्नत जिनालयो को हमारे पूर्वजो ने बनाया था उनमे ताले लग जायेगे। कुछ तो ऐसा भी

सोचने लगे हैं कि मन्दिरों को यदि लायब्रेरी या क्लबो के रूप मे परिवर्तित कर दिया जाय, तो बहुत अच्छा होगा। मन्दिर उन्हे बेकार लगते है।

इनकी समझ मे यह बात नही आती, कि बाह्य सामग्री का अन्त -करण पर क्या प्रकाश पडता है ? भारतके प्रधान मन्त्री पडित जवाहर लाल नेहरू के साथ वर्तमान प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने श्रमणबेल-गोला जाकर भगवान बाहुबली के दर्शन किये थे, तब कहते है कि इन्दिरा जी ने पूछा था—"पापा ! हम स्वर्ग मे तो नही है ?" उन्हे अद्भुत शाति प्राप्त हुई थी उन दिगम्बर वीतराग प्रशान्त बाहुबली की मूर्ति का दर्शन करके क्या इससे यह सिद्ध नही होता कि हम यह कहने मे बहुत बड़ी भूल करते हैं कि मन्दिरो मे जाना बेकार है तथा वहाँ जाने के लिए समय नही है और उस नरभव के मगलमय समय को व्यर्थ की बातो मे बरबाद करते है।

एक बार उत्तर प्रदेश के एक प्रमुख नगर मे मुझे महावीर जयन्ती मे बुलाया गया था। मुझे एक ऐसे बड़े जैन वकील के यहा ठहराया गया था प्राय. जो मन्दिर नही जाते थे। मेरे स्नेह पूर्ण आग्रह पर उन्हे मन्दिर जाना पड़ा। मन्दिर से बाहर आने पर मैंने पूछा—वकील साहब, आप घर से चले थे और अब बाहर आ रहे हैं, इस बीच मे कुछ आप को अपने मन की स्थिति मे अन्तर मालूम पड़ा ?

वे कहने लगे—पडित जी ! महावीर भगवान की सुन्दर ध्यान मय मुद्रा का दर्शन करके प्रसन्नता हुई, शान्ति मिली।

मैंने कहा कि आप कम से कम रविवार को तो मन्दिर जा सकते है ?

प्रश्न—उन्होने मुझसे पूछा—रोज-रोज मन्दिर जाने की क्या जरूरत है ?

उत्तर—मैंने कहा—मोटर मे बैटरी का उपयोग होने के बाद जब वह डिस्चार्ज हो जाती है तब उसकी विद्युत् शक्ति को सक्रिय बनाने के लिए आप उसको पुन. चार्ज कराते है, इसी प्रकार दिन रात हमारा समय भोग और विषयो मे बीतता है और उसकी आध्यात्मिक उज्ज्वलता कम हो जाती है, इसलिए उसे सजग और वर्द्धमान बनाने के लिए प्रति दिन मदिर आना आध्यात्मिक दृष्टि से और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

आत्मा की पाठशाला

इस सन्दर्भ में आचार्य देशभूषण महाराज ने एक बार बडे महत्वपूर्ण शब्द कहे थे, "पाठशाला मे जाने से मनुष्य विद्या प्राप्त करता है। मन्दिर आत्मा की पाठशाला है। वहाँ आत्मा अपने को निर्मल बनाने की तथा विकसित करने की सामग्री पाती है। मन्दिर मे सारी सामग्री आत्मा की निर्मलता उत्पन्न करने योग्य रहती है।

विचित्र शंका—कोई-कोई लोग मन्दिर के वैभव आदि को देखकर ऐसा सोचते है कि वीतराग भगवान के मन्दिर मे सरागता का आक्रमण वैभव के माध्यम से नही होना चाहिए। अकिचन और अपरिग्रही भगवान के आस-पास सुन्दर-सुन्दर चित्र आदि नही होने चाहिए।

समाधान—यह भ्रान्त कल्पना सद्विचार द्वारा बाधित होती है। जिन मन्दिर भगवान के समवशरण का प्रतीक है। समवशरण मे श्रेष्ठ वैभव के मध्य होते हुए जिनेन्द्र भगवान उससे अलिप्त रहते है। इसी प्रकार की अलिप्तता का दिग्दर्शन मन्दिर से होता है। जो अपने निवास स्थान को वैभव प्रदर्शन का केन्द्र बनाते है तथा देव स्थान को दरिद्रतापूर्ण रखना सोचते है, उनके हृदय मे यथार्थ में अविवेक और दरिद्रता का निवास होता है, इससे उनकी दृष्टि विकृत हो जाती है।

आज का बुद्धिवादी व्यक्ति गुरु-परम्परा आदि की परवाह न कर ऐसा सोचता है कि हमारे पूर्वजो में कोई विचार नही था। हमने नवीन ज्ञान तथा दिव्य प्रकाश पाया है।

मिथ्या धारणा

एक राष्ट्रीय नेता को मैने यह कहते हुए सुना है कि जैनो को अपने मन्दिर मे ताला भी न लगाना चाहिए, क्योकि यह तो परिग्रह की गाँठ का सूचक है। भगवान को ताले मे क्यो कैद करते हो ?

समीक्षा—वह यह नही सोचते कि यदि मन्दिर खुला रहेगा तो चोरो आदि दुष्टो के उपद्रव की बात जाने दीजिए, उस जगह पर बिल्ली कुत्ता वगैरह जानवर घुसकर उस पुण्य भूमि को गन्दा तो बना सकते है। इसलिए अपरिग्रह और अहिसा के स्वरूप को बिना समझे बूझे अपने को प्रतिभा-पुज मानकर मनमाना कथन करते है। अहकार और अविद्या से मलिन हृदय यथार्थ बात नही सोचा करता।

शान्ति और आत्म विकास

प्रश्न—इस समय सुख, शान्ति और आत्मविकास की प्राप्ति का क्या उपाय है ?

उत्तर—इस चर्चा के सन्दर्भ मे आचार्य महाराज ने एक वात कही थी कि लोग किताबो को पढकर वौद्धिक सामग्री का दिमाग मे सचय करके उससे शान्ति की उपलब्धि सोचा करते हैं किन्तु ग्रन्थ आदि वाहरी सामग्री मे शान्ति नही है, शान्ति की उपादान शक्ति आत्मा मे ही है। वाहरी पदार्थ तत्वत आत्मा को शान्ति नही देते हैं। तुम कषाय रूपी आग को जव तक शान्त नही करोगे तव तक शान्ति नही मिलेगी। कोई व्यक्ति पढ लिखकर वडा दार्शनिक, कवि, विद्वान् व वक्ता वन सकता है किन्तु उससे उसकी आत्मा मे शान्ति आयेगी ही, ऐसा नही कहा जा सकता। शान्ति आत्मा का गुण है। जितना जितना आत्मा अपने दोपो का परिमार्जन करेगा उतना उतना वह विकार का त्याग कर आनन्द और शान्ति का रसास्वादन करेगा।

मार्मिक बात—इस प्रसग मे आचार्य शान्ति सागर जी महाराज की एक वात याद आती है। मैंने देखा कुछ परस्पर मे लड़नेवाले व्यक्ति महाराज के पास आये और आपस की शान्ति के लिए चर्चा करने लगे।

उस समय आचार्य महाराज ने कहा था "तुम लोग कषाय की तलवार दूर रखकर वात करो। कषाय की तलवार हाथ मे लेकर शान्ति का रास्ता नही खोजा जाता।"

विनय का महत्व—आचार्य रत्न देशभूपण महाराज की दृष्टि मे नम्रता और विनयका वडा मूल्य है। वे सत्पुरुपो का उचित आदर सदा किया करते है। एक वार उन्होने कहा था कि घडा कुए मे पानी लेने के लिए जाता है। जव तक वह झुकता नही है तव तक वह जल से परिपूर्ण नही होता। आज विनय गुण गायव होता जा रहा है। उसके स्थान मे अनेक प्रकार के अभिमानो की वीमारी वढ रही है। सत्कार्यो मे कुछ भी द्रव्य न व्यय करने वाले भोगी विलासी धनिक यदि धन के मद मे डूवे रहते हैं, तो यथार्थ मे कम ज्ञान होते हुये भी वर्तमान देश की पद्धति के अनुसार विद्या के वारिधि वनने का प्रमाण पत्र हाथ मे रखते हैं और ज्ञान के मद मे डूवे पाये जाते है। महान् ज्ञानी गौतम गणधर ने कहा है कि केवली प्रणीत धर्म का मूल विनय है—"केवलिपण्णत्तस्स विणयमूलस्स धम्मस्स।"

शास्त्र का रहस्य

धर्म के बारे मे समन्वयदृष्टि से विचार करते हुये महाराजश्री ने कहा था कि जो बात शास्त्र मे कही गई है उसका भावार्थ अथवा अभिप्राय समझना चाहिए। जैसे यदि कोई व्यक्ति दिन भर बक-बक करता है, अमर्यादित बोलता है तो उससे कहा जाता है, कि आप कृपा कर मुँह पर पट्टी लगाये तो ठीक रहेगा। इसका अर्थ और असली भाव दृष्टि मे न रख कर अपने मुख को पट्टी से ढाकने की बात चल पडी। अग्रेजी मे कहावत है कि—'होल्ड युवर टग'। इसका शाब्दिक अर्थ होता है 'अपनी जीभ को पकड़ो।' यदि इसके अनुसार कोई आदमी अपनी जीभ को पकड़ेगा तो वह समझदारो के आगे हंसी का पात्र होगा। इस सूक्ति का भावार्थ है कि वाणी पर सयम रखो। इस प्रकार विचारने पर कई धार्मिक उलझनो का समाधान खोजा जा सकता है। अगर मुह मे पट्टी लगाने का अर्थ सूक्ष्म जीवो की रक्षा करना है, तो जब बोलने का प्रसग नही है अथवा मौन धारण किया गया है तब तो सहज ही उसको अपने पर से दूर किया जा सकता है। घोडे को पानी दिखाओ का भाव है उसे पानी पिलाओ। शास्त्र के अन्तस्तत्त्व पर दृष्टि डाली जाय तो कल्याणप्रद अपूर्व सामग्री मिलेगी।

धर्म रक्षा और साधु

शका—तीर्थरक्षा और धर्म के आयतनो की देखभाल के काम मे साधुओ को ध्यान देने की कोई जरूरत नही है, उन्हे तो केवल अपनी आत्मा की बात सोचनी चाहिए, ऐसा कुछ लोगो का सोचना समझना है।

उत्तर–इस सम्बन्ध में चर्चा आने पर महाराज ने कहा था कि यदि साधु अधर्म से धर्म की रक्षा नही करेगा तो वह अपनी आत्मा की भी रक्षा कैसे कर पायेगा ? अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियो पर जब उपसर्ग आया था तब विष्णुकुमार मुनि ने उस धर्म सकट के समय संकट निवारण हेतु क्यो प्रयत्न किया था ? वे साधारण व्यक्ति नही थे। उन्होने मोक्ष प्राप्त किया है। इस लिए धर्मरक्षा के कार्य मे साधुओ का मार्गदर्शन अथवा कार्य करते रहना साधुत्व के लिए बाधक नही है किन्तु इतनी बात अवश्य है कि किसी सस्था को खोलकर उसके प्रति अपने मन मे ऐसी ममता रखना जैसे एक गृहस्थ की अपने धन वैभव की ओर रहा करती है, ठीक नही है।

धन संग्रह की आसक्ति

इस प्रसंग मे आचार्य शान्तिसागर महाराज के पवित्र जीवन की एक घटना देना महत्वपूर्ण बात होगी। बेलगाव जिले के अतर्गत शेडवाल नामक स्थान जैन धर्म का अच्छा केन्द्र है। वहां की जिनेन्द्र प्रतिमाए अनोखी तथा दिव्य हैं। आचार्य शान्तिसागर महाराज के उपदेश से प्रभावित होकर धार्मिक लोगो ने वहां "शान्तिसागर जैन अनाथाश्रम" सस्था खोली, तथा उसके द्वारा समाज का बहुत हित हुआ है। वर्तमान युग मे धर्म की महान् प्रभावना करने वाले दि० मुनि विद्यानद महाराज का उस सस्था से घनिष्ठ सबध रहा है। उस आश्रम के वे अधिष्ठाता रह चुके हैं। एक समय भादो माह मे आश्रम के [एक कुशल कार्यकर्ता आचार्य शान्तिसागर महाराज के पास पहुँचे। उस समय आचार्य श्री फलटण मे विराजमान थे महाराज से उस कार्यकर्ता ने कहा, 'महाराज मैं बबई पर्यूषण पर्व में जाकर शेडवाल आश्रम के लिए चदा इकट्ठा करने जाना चाहता हू, आपका एक पत्र बम्बई समाज को प्रेरणादायक मिल जाने पर हमारा काम बहुत सरल हो जाएगा।"

यह शब्द कान मे पड़ते ही आचार्य महाराज ने कहा "तुम जानते हो, हम महाव्रती परिग्रह त्यागी मुनि हैं। हम चन्दा के चक्कर मे नहीं हैं। सस्था नष्ट हो जाय उसका काम बन्द हो जाय, इससे हमारा कोई प्रयोजन नही है। हमारा नाम तुमने इस सस्था मे लगा दिया है, इस मोह से हम विपरीत मार्ग को नही पकड़ेंगे।' धन के प्रति, धनवानो के प्रति आचार्य शान्तिसागर महाराज के हृदय मे तनिक भी मोह या आसक्ति नही थी। इसी निस्पृहवृत्ति के कारण आज हमारे हृदय मे वे महापुरुप विराजमान हे। आचार्य श्री का उपरोक्त आदर्श आत्मकल्याण के प्रेमी स्वच्छ हृदय साधुओ के लिए दीप-स्तभ सदृश है। लोकोपकार के नाम पर शिथिलाचार तथा धनासक्ति और धनिको की प्रतिष्ठा का अतिरेक अहितकर है, उनसे साधुत्व को गहरा खतरा है। मर्यादा रहनी चाहिए।

अशान्ति को आमंत्रण

यह कलिकाल का प्रभाव है कि हमारे कई पूज्य गुरुजन अपनी सीमा का उल्लंघन कर कभी-कभी लोकोपकार के नाम पर व्यर्थ की चिन्ता सिर पर मोल लेते हुए प्रशान्त और सौम्य रस से परिपूर्ण आत्म को

गंगा में किनारे रहते हुए भी उसमे डुबकी नही लगा पाते। आध्यात्मिक दृष्टि से उनका वह जीवन मरुभूमि सदृश रहता है। साधु जीवन मे प्राथमिकता आत्मविकास की है। तत्वानुशासन में कहा है—"ध्यान-स्वाध्याय-संपत्या परमात्मा प्रकाशते" ध्यान तथा स्वाध्याय रूप सम्पत्ति के द्वारा परमात्मपद की प्राप्ति होती है। अत: सच्चे साधु को लोकोपकारी कार्यों को करते हुए ध्यान, स्वाध्याय को मुख्यता देना हितप्रद होगा। आत्मशान्ति, ध्यान समाधि आदि को अलग रखकर सच्चे साधुत्व की रक्षा हो सकेगी, ऐसा उनके भक्त कह सकते है, पर आगम इस कृत्य को उज्ज्वल नही कहेगा। यह विपय बहुत गहरा है और वर्तमान वातावरण मे अनेक सयमी वर्ग को वाह्य प्रवृत्तियो मे अधिक घिरा हुआ देखकर छोटे और बडे गुरुदेवो को प्रणामाजलि अर्पित करते हुए यह प्रार्थना करनी है कि अपरिग्रहत्व रूपी ऐरावत के ऊपर परिग्रह रूपी लाल बन्दर को न बैठने दीजिए। लोक कल्याण के दस्यु द्वारा अपनी रत्नमय निधि को न लुटने दीजिए।

क्रोधादि शूद्र है

महाराज विनोद मे कभी-कभी वडी मार्मिक बात कह देते है। महाराज के अनेक शिष्य हरिजन है। उनके भक्त मुसलमान अग्रेज आदि भी है, इसलिए उनका एक दिन यह कथन विद्वेषमूलक नही था कि हरिजनो से बचो। हरिजनो को पास मत आने दो। स्तवनिधि में उन्होंने कहा था कि तुम्हे दस दिन तक मन्दिर मे हरिजन को नही आने देना चाहिए। मैने सोचा कि आज महाराज, हरिजनो के राज्य मे ऐसी बात कैसे कह रहे है। मैने कहा कि महाराज! आपका हरिजन से क्या अभि-प्राय है?

उन्होने कहा "क्रोध, मान, माया और लोभ जीव को शूद्र बनाते है। उन दुष्ट विचार रूपी शूद्रो को अपनें मन मन्दिर मे कम से कम दश दिन तक तो जगह मत दो।"

मृदुता

ऐसा देखा जाता है कि कोई व्यक्ति त्यागी की श्रेणी मे प्रविष्ट हुआ कि उसमे गर्मी आ जाती है और वह शास्त्र को न जानते हुए भी बडे-बड़े पडितो तथा विद्वानो तक को डाट लगाता है, अक्ल देता है और धर्मात्मा

धनिको आदि को भी अपनी गर्म वाणी के द्वारा कृतार्थ करता है। ऐसे लोग सोचते है, कि हम अब साधु बन गए तो सर्व विद्याओ के भी अनायास पारगामी हो गए। हम जो कहते है वही ठीक है। कोई-कोई आगम की उपेक्षा कर अपने व्यक्तिगत विचारोको गृहस्थो पर लादते है। आगम विरुद्ध नियम दिलाते है। यह नही सोचते, कि ऐसा करने से हमारी क्या गति होगी ? जब लोग कहते है कि पूज्यवर! शान्त रहिए। तो वे कहते हैं हम तो शान्त है ही। धुआ निकलती हुई अग्नि को देख कर भला उसे कौन शान्त मानेगा ?

आचार्य श्री का यह कथन महत्त्वपूर्ण है—"त्यागी की कठोरता ठीक नही है उसकी वाणी मे मृदुता रहनी चाहिए"। यह बात महाराज स्वय अपने मे रखते है। मैने तो देखा कि जैसे चन्दन के वृक्ष मे सर्प लिपटे रहते है और चन्दन अपनी शीतलता नही छोडता, इसी प्रकार अनेक चालाक धूर्त कुटिल वृत्ति वाले व्यक्तियो के अपने पास आने पर भी आचार्य देशभूषण महाराज शान्त व गम्भीर बने रहते हैं। ये विष को भी अपनी ज्ञान की धारा द्वारा अमृत रूप मे परिणमन कर प्रसन्न रहते हैं। इसका फल प्राय देखा गया है कि विषवमन करने वाले व्यक्ति भी पश्चात्ताप करते हुए इनको प्रणाम करते हैं।

तेजोमय व्यक्तित्व

महाराज के सघ मे विद्यमान मुनि ज्ञानभूषण महाराज ने एक महत्व की बात बताई थी—"आचार्य देशभूषण जी महाराज का सघ दक्षिण मे हुबली नगर से आगे जा रहा था। सघ के मुनि भद्रबाहु महाराज कुछ आगे निकल गये थे। वहाँ एक दुष्ट व्यक्ति रास्ते मे सामने आ गया। उसने हमारा रास्ता रोका और वह लाठी मारने को तैयार ही था, कि इतने मे उसकी निगाह आचार्य देशभूषण महाराज पर गयी, जो सौ-कदम की दूरी पर थे। उन्हे देखते ही उसकी दुष्टता जाती रही और कुछ क्षणो के बाद उसके हृदय ने उसे इन्हे प्रणाम करने की प्रेरणा दी। फलत. उसने इनको प्रणाम किया"। ऐसा महान् व्यक्तित्व आचार्य देशभूषण महाराज का है। अनेक साधुओ के मध्य आचार्य रत्न साधुराज की दिव्यता स्पष्ट रूप से अनुभव गोचर होती है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि साधु जगत् मे उनकी क्या स्थिति है। यथार्थ मे वे महान् मुनीश्वर है तथा सुलझे हुए सन्त है।

विराट् व्यक्तित्व

०

विराट् व्यक्तित्व

महाराज का व्यक्तित्व विराट् है। वह सभी धर्म वालो को अपनी ओर आकर्षित करता है। हिन्दू समाज मे श्री जुगलकिशोर बिडला की धार्मिक व्यक्ति के रूप मे वडी प्रसिद्धि रही है। उन्होने आचार्य देश-भूषण महाराज के दर्शन किये। इनके आध्यात्मिक सम्पर्क से उनके हृदय मे इनके प्रति गुरु तुल्य भक्ति का जागरण हुआ।

बिरला जी की भक्ति

मैनें बिरला जी के वारे मे आचार्य देशभूषण महाराज से पूछा। तब उन्होनें बताया कि वे "प्राय: अकेले ही मेरे पास आया करते थे। कभी रात मे आकर चुपचाप बैठ जाते थे। मुझे देखकर वे कहते थे कि उनके हृदय मे बडी प्रसन्नता होती है। वे खाली हाथ नही आते थे। श्रेष्ठ शोभासम्पन्न सुवास युक्त कमल, गुलाव आदि के पुष्प चढाते थे। कभी थाली भर-भर कर मेवा फल चढा कर अपनी भक्ति व्यक्त करते थे। वे हमसे लौकिक चर्चा नही करते थे। हमारी आध्यात्मिक चर्चा उनको अधिक प्रिय लगती थी। सदाचार सरक्षण के बारे मे वे चिंतित होकर अनेक बार चर्चा किया करते थे और पूछा करते थे—महाराज ! धार्मिक राज्य अथवा राज्य मे धार्मिकता का कब दर्शन होगा ? अशुद्ध खानपान, भ्रष्टाचार, दुराचार के विरुद्ध ही वह चर्चा करते थे।"

"एक दिन हमारे पास आकर उन्होने दिल्ली के बिरला मन्दिर मे प्रवचन देने के लिए हमे आग्रह किया। हमारा कमण्डलु हाथ मे लेकर वे बिरला मन्दिर मे हमें ले गये थे।"

"जब हमारा कलकत्ते मे चातुर्मास था तब भी वे हमारे बारे मे बड़ा ध्यान रखते थे। अयोध्या जी मे भगवान आदिनाथ की जो बत्तीस फीट ऊची मूर्ति विराजमान हुई है। उस सम्बन्ध मे बिरला जी ने बड़ी दिलचस्पी ली और हर प्रकार का सहयोग दिया। वे कहा करते थे—"महाराज मेरा यह सौभाग्य नही है कि मैं आपको आहार देने का पुण्य लाभ ले सकूँ। भगवान मुझे ऐसा बल और निर्मलता प्रदान करे जिससे मैं अपने को इतना स्वच्छ बना लू कि अपने हाथो से आप जैसे निर्ग्रन्थ परमहस योगी को आहार दे सकू।"

"बिरला जी की माता काशी मे बहुत बीमार हुई। वे हमारे पास दूध लाते थे। हम उस पर अपनी पीछी रख देते थे। उसको लेकर हवाई जहाज से वे बनारस अपनी माता के पास औषधि रूप मे ग्रहण करने के लिए भेजवाया करते थे। उनका हमारे प्रति बड़ा प्रेम था, विश्वास था। उस सम्बन्ध मे हम क्या क्या बात उनकी बताये। इतना ही कहेगे कि उस व्यक्ति मे विपुल सम्पत्ति होते हुए भी अहकार नही था। वह प्रेम भरे हृदय से हमारे पास आते थे। बिरला जी ने कहा था—"महाराज! अपने कमरे मे मैं आपकी फोटो रखता हूं और सदा आपको प्रणाम करता हूं।" हमे ज्ञात हुआ कि परलोक प्रयाण करते समय हमारी फोटो उन्होने अपने सामने रखी थी।"

प्रधानमन्त्री शास्त्री जी

विनम्रता की मूर्ति श्री लालबहादुर शास्त्री प्रधान मन्त्री जब आचार्य देशभूषण महाराज के पास आए थे तब लाल किले के समीप कहते है करीब पचास हजार जनता थी। पन्द्रह हजार रुपया लगाकर सुन्दर मण्डप बनाया गया था। शास्त्री जी ने १५ मिनट रुकने का समय दिया था, किन्तु उस वातावरण मे वे स्वयं दो घण्टे ठहरे। आचार्य देशभूषण महाराज जी ने उनको आशीर्वाद देते हुए कहा था, "तुम जीवन भर प्रधानमन्त्री रहो।"

शास्त्री जी ने कहा था, "महाराज मुझे क्या आशीर्वाद दिया। क्या मैं आप जैसा नही बन सकता? क्या मुझे कुछ भी त्याग करने का मौका नही मिलेगा?' उन्होने आचार्य जी से कहा था, कि वे शीघ्र ही ताशकन्द (रूस) मे वापिस आकर आचार्य श्री की इच्छानुसार धार्मिक कार्यो को सम्पन्न कर देंगे, किन्तु यमराज ने सब कल्पनाओ को समाप्त कर

दिया। 'खेलत खेल खिलारि गयो। रह जाय रुपी शतरज की बाजी'। शास्त्री का प्राणान्त हो गया। वे आचार्य वाणी के अनुसार सदा के लिए प्रधान मन्त्री रूप मे ही स्मृति पथ मे आते है।

महत्व की बात

यह बात उल्लेखनीय है कि पाकिस्तान द्वारा भारत पर जो आक्रमण हुआ था, उस समय देश की सहायतार्थ जैन समाज ने दिल खोलकर धन दिया था। प्रधान मन्त्री को एक लाख से अधिक मूल्य का सोना, एक रजत निर्मित दण्ड, सात गिन्नी तथा अठारह हजार रुपये प्राप्त हुए थे। उस समय उपस्थित जनता चकित थी। धन की वर्षा हो रही थी। इस दृश्य ने प्रधान-मन्त्री के अन्तःकरण पर अद्भुत प्रभाव डाला था और उनका अन्तर्मन आचार्य देशभूषण महाराज को श्रेष्ठ साधुराज रूप मे देख रहा था उनकी श्रद्धा हो गई। भारत के दार्शनिक विद्वान् राष्ट्रपति डाक्टर राधाकृष्णन गुरुदेव के समीप बेलगॉव मे पधारे थे तथा उन्होने इन साधुराज को अपनी विनम्र प्रणामाजलि अर्पित की थी। सभी धर्मो के प्रमुख पुरुष इनकी विनय भक्ति करते है।

विदेशियो पर प्रभाव

विदेशी विद्वान् भी इनके प्रति सहज भाव से आकर्षित होते है। जब १९६४ के जनवरी मास मे दिल्ली मे प्राच्य विश्व परिषद (International Congress of Orientalists) हुई थी, तब विदेश के अनेक महान् विद्वान् भारत आये थे। प्रतिदिन अनेक विद्वान् इन साधुराज के दर्शनार्थ आते थे और इनको प्रणाम करते थे। मै भी उस परिषद का सदस्य था। एक दिन मेरे साथ[1] अमेरिकन भद्र पुरुष डाक्टर लूथर कोपलेड आचार्य श्री के दर्शनार्थ आए। महाराज का दर्शन कर वे कहने लगे "मेरा अद्भुत भाग्य है कि भारत मे आकर ऐसी महान् आत्मा का दर्शन कर मै अपने को कृतार्थ कर सका। मै स्वप्न मे भी नही सोचा था कि ऐसे सत के दर्शन होगे।" वह अपार हर्षित हुआ था।

---

१. डाक्टर कोपलेण्ड का अमेरिका से आगत आचार्य श्री के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाला पत्र हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे है।

एक दिन एक इटली के प्रोफेसर दम्पत्ति महाराज के पास धर्मपुरा दिल्ली की जैन धर्मशाला मे आये। उन्होनें मेरे समक्ष आचार्य श्री के व्यक्तित्व से प्रभावित हो रविवार को माँसाहार न करने की प्रतिज्ञा मेरे सुझाव पर सहर्ष ली थी। उक्त विद्वान ने यह भी कहा था कि अपने देश पहुच कर हम सर्वदा के लिए मास का त्याग करके अपने परिवार को भी वैसा बनावेंगे।

एक डच महिला लका के व्यापारी के साथ महाराज के पास लाल मदिर मे आया करती थी। उसने महाराज से णमोकार मन्त्र सीखा था। आचार्य श्री की आज्ञा से मैंने उस महिला को 'एसो पंचणमोयारो सव्व पावप्पणासणो' आदि गाथा अग्रेजी अक्षरो मे लिखकर पढ़वाई थी। उस बहिन ने अग्रेजी स्वर मे णमोकार मत्र को पढकर सुनाया था। वह महिला कहती थी, "मैं सदा आचार्य देशभूपण महाराज को स्मरण करती हूं और मेरे सब मनोरथ पूर्ण होते हैं तथा बाधाएँ दूर होती हैं।" सीलौन का व्यापारी भी अपनी अपूर्व श्रद्धा आचार्य श्री के प्रति व्यक्त करता था।

कम्बोडिया का साधु

एक बौद्ध साधु कबोडिया से भारत आया था। वह नालदा मे रहता था। कई श्वेताम्बर साधुओ से भी उसने भेट की थी। देशभूपण महाराज जी से वह प्रभावित हुआ। मेरे समक्ष उसने आचार्य श्री से दिल्ली मे कहा "महाराज आप हमारे देश चले, तो हमारे देशवासी आप के दर्शन से बहुत प्रसन्न होगे। यहा से आप कलकत्ता होकर ब्रह्म देश पहुचे। वहाँ से बैंकाक तथा कबोडिया पहुँच जायेगे।" इन उदाहरणो से यह बात स्पष्ट होती है कि आचार्य देशभूपण महाराज जी सचमुच मे असाधारण महापुरुष हैं। उनका विराट् व्यक्तित्व सब महात्माओ को आकर्पित करता है। उनके द्वारा दिगम्बर जैन धर्म की अपूर्व प्रभावना होती है।

यवन की भक्ति

आचार्य देशभूपण महाराज का सघ जब शिखरजी जाते हुए सिवनी आया, तब मैंने देखा कि महाराज के साथ मे एक मोटर है। उस समय यह ज्ञात हुआ था कि यह मोटर एक मुसलमान ने महाराज को सघ की सेवा के लिए भक्ति के सुमन रूप मे समर्पित की थी। इस विपय मे जानकारी प्राप्त

करने का कुतूहल उत्पन्न हुआ, तब एक बडी मधुर बात ज्ञात हुई, कि जिससे आचार्य श्री का आन्तरिक महत्व समझने की दृष्टि प्राप्त होती है। आचार्य श्री का सघ धुलिया (महाराष्ट्र) मे था। वहाँ एक मुसलमान था उसके कुटुम्बी पर एक मुकदमा सेशन जज के यहा चल रहा था। ऐसा सोचा जाता था कि उसे फासी की सजा मिले बिना न रहेगी। उस मुसलमान की निगाह महाराज पर पड़ी। वह इनके पास आकर बैठा। उसने कहा कि हमारे मजहब मे भी आपकी तरह पहुँचे हुए महात्मा फकीर हुआ करते है हम बडी मुसीबत मे है। हम आप से अर्ज करते है ऐसी दुआ दीजिए जिससे हमारी मुसीबत टल जाय।

महाराज ने कुछ क्षण एकाग्रमन होकर उस दु खी मुमलमान से कहा "अब तुम्हारी मुसीबत दूर हो जायेगी।" अदालत मे फैसला यह हुआ कि उसका वह रिस्तेदार बिल्कुल निर्दोष है। उसकी खुशी की सीमा नही रही और वह महाराज का हार्दिक भक्त बन गया। वह इन्हे सिद्ध पुरुप तुल्य सोचने लगा।

मुनि सघ को धुलिया से आगे जाना था। सघ व्यवस्थापक किराये की मोटर गाडी ढूढने के लिए बस्ती मे गया। सयोगवश उन्ही मियाजी से मोटर के बारे में बातचीत हुई। उसने २०-२५ रुपये रोज मे गाडी देना स्वीकार किया। दो घण्टे बाद गाडी तैयार होकर महाराज के सामने आ गई। उसने महाराज से अर्ज की "मै आप की खिदमत नही कर सकता। मै आपकी खिदमत मे (सेवा मे) आप के सघ के लोगो के सुभीते के लिए यह गाडी भेट करता हूँ।"

दूरदर्शिता

महाराज को इससे प्रसन्नता नही हुई, बल्कि उनके मन मे अनेक कल्पनाए उठी। सोचा कि समाज के साधु निन्दक लोग कही ऊधम न मचावे। सभव है कि यवन भी कभी उल्टा होकर परेशानी का कारण बन बैठे। उन्होने आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के समक्ष इस सम्बन्ध का पूरा वृत्तान्त पहुँचवाया ताकि मार्ग दर्शन मिले। आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ने कहा कि सघ के लिए इस गाडी को लेने मे कोई बुराई की बात नही है, लेकिन रजिस्ट्री कराके गाडी लेना चाहिए।

करीब बारह सौ रुपये रजिस्ट्री के जैनियो की ओर से उस मुस्लिम

मुनिभक्त व्यक्ति को दिये गये। उसका मन प्रगाढ भक्ति से भरा था। बड़ी मुश्किल से वह रुपये उसने लिये।

इसके बाद उसने बडी होशियारी से एक बात कही। उसने कहा महाराज, इस गाडी मे ड्राइवर एक साल तक मेरा रहेगा और उसका वेतन मै दूगा। इस प्रकार सघ को एक मुसलमान को भेट मे दी गई मोटर लारी की कहानी ज्ञात कर मै बड़ा आश्चर्ययुक्त हुआ। मेरी समझ मे आया कि जहा कुछ दुष्ट दुर्गतिगामी व्यक्ति जैन परिवार मे जन्म लेते हुए इन जैसे सन्त को दिन रात बुरा कहते है वहाँ एक मुसलमान के मन मे कितनी भक्ति और प्रेम जगा।

मेरे ध्यान मे दूसरी बात यह भी आई कि सच्चे साधु के आशीर्वाद मे कितनी बडी शक्ति है, कि फासी के तख्ते पर चढाये जाने वाले व्यक्ति को फासी से मुक्ति मिल गयी। जिनकी खोटी होनहार है वे साधु निन्दा के अखाड़े में उतर आते हैं और जिनका भविष्य उज्ज्वल रहता है वे व्यक्ति अन्यधर्मी और क्रूर कर्मी होते हुए भी ऐसे साधराज से अपने कल्याण की सामग्री पा लेते है।

गुणाधिक्य,

कोई यह न सोचे कि आचार्य देशभूषण महाराज मे सम्पूर्ण गुणो का ही समुदाय है और इनमें दोष नही है। दुनिया मे बे-ऐब अर्थात् निर्दोष केवल परमात्मा ही है। अन्य व्यक्तियो मे न्यून अथवा अधिक दोष होते ही है। अकबर का यह कथन मार्मिक है—

जो ढूंढोगे तो अकबर मे भी पाओगे हुनर कोई।
जो चाहो तो निकालो ऐब तुम अच्छे से अच्छे मे॥

स्काउट सस्था के जन्मदाता वेडन पावेल ने वडे अनुभव की बात कही है, "Look on the bright side of things Be contented and make the best use of what you have" वस्तुओ के उज्ज्वल अश को देखो, सन्तोप धारण करो तथा जो कुछ पास मे है उसका पूर्णतया उपयोग लो।"

जिनमे गुणो की अधिकता पाई जाती है और जो अपनी अन्तर्दृष्टि के द्वारा सदा आत्मनिरीक्षण करते हुए अपनी दोषो का निवारण करते रहते हैं और अपना एक क्षण भी पाप प्रवृतियों को मन मे प्रविष्ट होने के लिए नही देते है, वे व्यक्ति मुक्ति मन्दिर की ओर अपना कदम निरंतर वढाते

जाते है। जोक की तरह सडा खून पीने वाला पापी कुगति मे जाता है। हस के समान गुणग्राही उच्च गति का पात्र होता है।

प्रभावकपना

आचार्य श्री का व्यक्तित्व बडा गम्भीरता पूर्ण है। उनके सम्पर्क मे आने वाला प्रभावित होता है, ऐसे अनेक प्रसग लोगो ने वताया कि दूर से किन्ही दुष्टो और मूर्खो के मुख से इनकी बुराई की कहानी सुनकर वे गलत धारणा बॉधे हुए थे, किन्तु इनके प्रत्यक्ष सम्पर्क में आकर पूर्वा पर विचार करने के बाद वे परम भक्त बन गये। मुझे तो बहुत व्यक्ति मिला करते है। मध्य प्रदेश छिदवाड़ा मे एक अग्रेज डिस्ट्रिक्ट जज विकेन्डन (Wikendon) ने, जो इनका नगर प्रवेश पसन्द नही करता था, इनका केशलोच देखा। वह इनका परम भक्त बन गया। जब एक बार निजाम स्टेट मे मुनि विहार मे विघ्न आया था, तब उस अग्रेज डिस्ट्रिक्ट जज ने एक प्रमाण पत्र जैनियों को दिया था कि "इन महाराज का जीवन मैने देखा। मै उससे बहुत प्रभावित हुआ।" ऐसा मधुर महाराज का जीवन है।

महत्वपूर्ण फोटो

भारत के प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री और आचार्य श्री की प्रणाम मुद्रा युक्त फोटो देखकर सरकारी अधिकारी प्रभावित होते है। एक बार सन् १९६८ मे निपाणी से कोल्हापुर को सार्वजनिक भाषण देने मै जा रहा था। मार्ग मे दो प्रान्तो की सीमा भूमि पर पुलिस ने हमारी गाडी रोकी थी, किन्तु यह देखकर कि भारत का प्रधान मत्री जिस महात्मा को प्रणाम कर रहा है, उनके संघ की मोटर है, यह जानकर पुलिस ने तुरन्त गाड़ी जाने की अनुमति दे दी।

विचारक व्यक्ति सोचे कि भारत के प्रधान मन्त्री द्वारा आचार्य श्री को प्रणाम मुद्रा वाला चित्र जैन सस्कृति के लिए कितना अनमोल है। उसको देखते ही मुनि विहार मे विघ्न डालने वालो की आखे खुल जाती है, कि श्रेष्ठ व्यक्तित्व वाला प्रधान मन्त्री जब दिगम्बर साधु के चरणों मे नतमस्तक है, तब हमे भी उस मुद्रा वाले साधु का सम्मान करना चाहिए। शास्त्री जी भारत शासन के प्रतीक हो दिगम्बर साधुत्व के प्रतिनिधि आचार्य देशभूषण जी को प्रणाम कर रहे है। इस बात की गम्भीरता को कभी नही भुलाना

चाहिए। यह बात अन्य साधुओ के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

गज युगल की भक्ति

जडवादी व्यक्ति की समझ में यह बात नही आती कि आध्यात्मिक विकास होने पर वैज्ञानिक चमत्कार की तरह आध्यात्मिक अद्भुत बाते भी उत्पन्न हुआ करती हैं। जीवन मे सत्य, सयम और पवित्र श्रद्धा का सगम होने पर ऐसी बाते देखने मे आती है, जिनको देखकर विवेकी मनुष्य को आध्यात्मिक महत्ता को स्वीकार करना पडता है।

अयोध्या मे भगवान् आदिनाथ की विशाल प्रतिमा का पचकल्याणक महोत्सव रायगज मन्दिर के प्रांगण मे हो रहा था। भगवान् आदिनाथ का दीक्षा कल्याणक हो चुका था। उसके दूसरे दिन भगवान के आहार ग्रहण करने की प्रतिष्ठा ग्रन्थ के अनुसार विधि सम्पन्न हो रही थी। भगवान् के आहारदान के समय बडा मनोरम और मधुर दृश्य था। उस समय आचार्य देशभूषण जी महाराज चर्या के लिए निकले। उन्होने आहार ग्रहण करने के लिए विशिष्ट मुद्रा अर्थात् बाये हाथ को कधे पर रखकर गमन करना प्रारम्भ किया।

उनके समक्ष कुछ दूरी पर दो हाथी खडे हुए थे। महाराज ने अपने कधे पर जब हाथ रखा तब दोनो हाथियो ने बडे जोर से एक साथ चिघाड़ मारी और दोनो ने सूँड उठाकर आचार्य महाराज को प्रणाम किया। गज युगल के द्वारा यह कार्य नैसर्गिक प्रेरणा से हुआ था, क्योकि उस समय वहाँ आदेशदाता महावत नही था।

थोडी देर के बाद महाराज के समक्ष एक व्यक्ति लड्डू भरी थाली लेकर आया उसका इरादा महाराज की पूजा उस मोदकराशि से करना था। महाराज के सकेत को पाकर उन सुचतुर हाथियो को वे मोदक खाने को मिले। ऐसा लगता था कि हिन्दू शास्त्र में वर्णित मोदक-प्रिय गणेश जी अपनी सूँड मे मोदक रखकर उसका मधुर स्वाद ले रहे हैं। उस कल्याणक के मगल दृश्य को देखने वाले आज भी उस घटना को नही भूल पाए हैं। वास्तव में पशुओ मे हाथी बडा बुद्धिमान् होता है। हमने महावीर जी के एक पचकल्याणक महोत्सव मे देखा था कि भगवान् के कल्याणक महोत्सव के अवसर पर हाथी अपनी सूँड से चवर उठाकर बार-बार भगवान जिनेन्द्र को प्रणाम कर रहा है। पशु भी भक्ति के माध्यम

से अपना कल्याण सम्पन्न करते है ।

आश्चर्य की बात है कि पशु तक जिन मनस्वी सतो से प्रभावित होते उन्हे देख नर-पशु द्वेषभाव धारण कर उत्पात मचाने की सोचते है। ऐसे लोग अपने को भी भूल जाते है । निदक 'नर-पशु' न नर है, न पशु है । वह तो विलक्षण जीव है ।

उच्च श्रेणी के साधु के प्रभाव से रोगी व्यक्तियो को भी अद्भुत लाभ हो जाया करता है। उपरोक्त अयोध्या पचकल्याणक महोत्सव के अवसर पर दिल्ली के श्री कैलाशचन्द्र जी (राजा टायज्) के पैर फिसल जाने के कारण गहरी चोट आ गई थी। हड्डी मे चोट लगने के कारण पैदल चलना कठिन ही नही असभव हो गया था। आचार्य महाराज के समक्ष प्रतिष्ठा के दो दिन पूर्व अयोध्या के प्राचीन मन्दिर मे भगवान् का पचामृताभिषेक हुआ। उस अवसर पर पास मे बैठे चलने मे असमर्थ कैलाशचन्द जी से आचार्य महाराज ने कहा-"कैलाश ! अब अभिषेक हो गया । तुम मेरे साथ पैदल चलो ।" वहाँ प्रतिष्ठाचार्य भट्टारक लक्ष्मीसेन महाराज थे। उन्होने कहा "महाराज ये पैदल नही जा सकते।" आचार्य महाराज ने कहा कि यह मेरे साथ अवश्य जायगा ।

भाई कैलाशचन्द जी ने बताया "महाराज ने मेरे कधे पर हाथ रक्खा, मुझे थोडा सा सहारा दिया और कहा--"उठो ।" उनका अवलम्बन पाकर मुश्किल से मै खडा हो सका । उसके बाद मै उनके साथ धीरे-धीरे चलने लगा । मालूम नही मेरे पैर का दर्द कहाँ चला गया और मै गुरुदेव के साथ डेढ मील की दूरी पर स्थिति रायगज मन्दिर तक बिना कष्ट के जा सका। मेरे पैर का दर्द एकदम चला गया, यह चमत्कार नही तो क्या है ? अगर मै दिल्ली मे होता तो न जाने कितने दिन तक मै अपने कमरे से बाहर जाने मे असमर्थ रहता । यह तो महाराज का पावन प्रभाव था जो मेरी भयकर पीड़ा क्षण भर मे दूर हो गई। इसके पश्चात् मैने पचकल्याणक मे बिना कष्ट के दिनो-रात काम किया ।"

भाई कैलाश जी ने अपना एक अनुभव और सुनाया "जब आचार्य श्री फरीदाबाद मे अभिनन्दन कुमार जी कागजी की फैक्ट्री में दिल्ली आते समय ठहरे थे तब उनके पैर के छालो मे वनस्पति का लाल रग का लेप लगा था । उससे मेरे मन मे यह विचार हुआ कि साधु के पैर मे यह क्या चीज लगी है ? उस समय इनके प्रति मेरी रचमात्र भी श्रद्धा नही थी

महान् योगी आचार्य महावीर कीर्ति जी महाराज के पास आया था। अपनी आदत के अनुसार उसने यह नही सोचा कि हम किन से बात कर रहे है। उन्होने साधुओ की निन्दा का अपने स्वभावानुसार आलाप शुरू कर दिया।

आचार्य महावीरकीर्ति जी महाराज ने अनेक प्रकार से समाधान दिया, किन्तु उन लोगो के दिमाग मे कोई बात आती ही नही थी क्योकि जब ऐसे लोगो को कोई ऐसी बात समझाई जाती है तो ये लोग उस बात के समझने की दृष्टि को दूर रखकर अपनी-अपनी सुनाने की सोचते है। उससे स्पष्ट होता है, कि एकान्तवाद ने इनके मन और दिमाग पर पूर्णतया स्थान जमा रक्खा है। इससे धर्म की सच्ची देशना श्रवण करने मे वे असमर्थ हो गये है। मिथ्यात्व का तीव्र उदय होने पर जीव की ऐसी ही दयनीय दशा हुआ करती है। न कुछ जानते हुए भी पुस्तको को पास मे रख ये अपने को श्रेष्ठ ज्ञानी समझते है। हमारे यहाँ एक अपने को अध्यात्म का महाज्ञानी मानने वाले अभिमानी व्यक्ति से एक साधु ने पूछा था कि श्रावक के व्रत कौन-कौन से है? तब उन महानुभाव ने श्रावको के पाच अणुव्रतो को न बताकर पचमहाव्रतो को श्रावक के व्रत कहा था। छोटे-बडे स्त्री पुरुष सभी लोग हस पडे थे। किन्तु इस भयकर भूल मे उनके चेहरे पर कोई परिवर्तन नही आया था। कोई सुने या न सुने इसकी ओर वे एकान्तवादी कम ध्यान देते है और अपनी ही अपनी चलाते है। यही बात महावीर कीर्ति जी महाराज के सामने चल रही थी।

उस समय महाराज ने पूछा, आप लोग मुनियो मे दोष निकालते है और कहते है कि उनमें मुनिपने का एक भी गुण नही है। यह तो बताओ कि मुनि मे क्या-क्या गुण होना चाहिए? शास्त्रानुसार उनमे कौन-कौन से गुण जरूरी है? यह सुनते ही प्रश्नकर्ताओ के चेहरे पर ऐसी उदासी छा गई जैसे इम्तिहान मे फेल हो जाने वाले विद्यार्थी के चेहरे पर छा जाती है। उन्हे मुनियो के अट्ठाईस मूल गुणो का भी पता नही था। पुलाक जाति के मुनियो के मूल गुणो मे तक कभी-कभी दोष लगता है[1]। उन अविवेकियो को लज्जित होना पडा।

---

१ जैन आगम में निर्विचिकित्सा अग के पालन करनेवालो मे उद्दायन राजा का दृष्टान्त दिया गया है। एक देवता ने राजा की सच्ची श्रद्धा की परीक्षा हेतु रोगी, घृणित दिगम्बर मुनि का नकली रूप बनाया था। उस मुनि वेषधारी देवता को सच्चा साधु समझकर राजा ने भक्ति पूर्वक आहार दिया। उस मुनि वेषधारी देवता ने वमन

करुणा भाव

सच्चे सम्यक्त्व रूपी देवता की ओर पीठ करके मिथ्यात्व की आराधना करने वाले ऐसे एकान्तवादी व्यक्तियो को देखकर आचार्य देशभूषणजी महाराज के मन मे क्षोभ या द्वेष उत्पन्न नही होता। उनमे इनके प्रति करुणा का भाव जागृत होता है कि ये लोग मिथ्यात्व कर्म के उदय से अधकार मे जा रहे है और विपयासक्त अन्धे व्यक्ति को अपना सद्गुरु और मार्ग दर्शक बना रहे हैं।

भद्र भाव

दिल्ली की वात है। एक समय एकान्तवादी वर्ग की साधु निदा रूप दुष्टता को देखकर एक धर्मात्मा, प्रभावक समाज सेवक के मन मे वडा क्षोभ हुआ। जव उन्होने देशभूषण महाराज के समक्ष आकर दुष्टवृत्ति वालो का दमन करने का अपना मनोगत भाव व्यक्त किया। तव शातिप्रिय आचार्य महाराज ने कहा—"तुम उनके गुण देखो। अरे! इन लोगो के कारण जो शास्त्र नही पढते थे, वे शास्त्र तो पढने लगे है"। महाराज मे तनिक भी क्षोभ नही आया। यही तो महात्माओ की विशेपता है। महाराज मे अद्भुत गभीरता है।

दृष्टि भेद

दो प्रकार के मनुष्य होते है। एक होता है गुणदृष्टि और दूसरा होता है अवगुणदृष्टि। गाधी जी के जमाने मे मिस मेयो नाम की एक अमेरिकन महिला हिन्दुस्तान मे आई थी। उसने काशी आदि भारत के

कर दिया था। उस समय उद्दायन राजा ने घृणा न कर उनकी सेवा की और सोचा कि हमारी भूल के कारण मुनिराज को वमन हो गया।

यह देख देवता ने अपना रूप प्रकट किया और राजा के सम्यक्त्व की प्रशसा की। समतभद्र स्वामी ने रत्न करण्ड श्रावकाचार मे निर्विचिकित्सा अग धारियो मे राजा उद्दायन का उल्लेख किया है। क्या इस दृष्टान्त से यह वात विदित नही होती कि सम्यक्त्वी जीव जैन साधु की मुद्रा को मान्यता देकर उनको आहार देने के कर्त्तव्य पालन करने से ही विमुख नही होगा। इस उदाहरण से धार्मिक पुरुषो को पर्याप्त मार्ग दर्शन प्राप्त होता है।

नगरो मे भ्रमण कर 'मदर इडिया' पुस्तक मे भारत का निन्दित चित्रण किया था। उस समय गाधी जी ने कहा था कि मिसमैयो की दृष्टि गटर इन्सपेक्ट्रेस अर्थात् नाली निरीक्षण करने वाली जमादारिन की थी। जो गन्दगी को ही देखती थी। उसने देश के गुणो पर निगाह नही डाली।

ऐसी ही दृष्टि वाले व्यक्ति सत्पुरुषो मे दोष खोजने मे रहते है। यदि दोष नही दिखते तो ये कल्पित दोष लगाने का प्रयत्न करते है। इन लोगो को विधाता भी नही सुधार सकता। बगुलो को क्या कोई विश्वविद्यालय हस बना सकता है? कुगति गामी, पतित पापी पुरुष पाप वर्धक सामग्री का सग्रह करते रहते है।

स्वर्ण तुल्य जीवन

दुर्जनो की निन्दा के द्वारा साधुओ का कुछ नही बिगडता, उनका गुण गौरव विचारको के सामने आता है। सत्पुरुष की विशुद्ध स्वर्ण से तुलना की जाती है। अपने को अग्नि मे डाले जाने पर स्वर्ण ने कहा—

> रे हेमकार परदुःखविचारमूढ कि मां
> मुहुर्क्षिपसि वारशतानि वह्नौ।
> संदीप्यते मयि सुवर्णगुणातिरेको
> लाभ. परं तव मुखे खलु भस्मपात ॥

इसका भाव है—

> रे स्वर्णकार मति मन्द विवेकहीन।
> दे दे मुझे अगनि मे कह लाभ लीन ॥
> मेरा तो स्वर्ण गुण नित्य ही वृद्धि पावै।
> पै तोर कूर मुख पै उड़ धूर धावै ॥

जिस प्रकार अग्नि मे स्वर्णकार के द्वारा स्वर्ण के जलाये जाने पर स्वर्ण को कोई हानि नही पहुचती। वह तो दीप्तिमान होता है, किन्तु जो सुनार सोने को अग्नि मे तपाता है उसके मुह पर धूल उडती है, इसी प्रकार साधु की निन्दा करने वाला दुर्गति मे गिर कर दु ख पाता है। इस सम्बन्ध की अनेक कथाए ऋषि प्रणीत पुराण ग्रन्थो मे मिलती है। ऐसी परिस्थिति मे भी अनेक द्रव्य लोलुपी पडित और मदान्ध धनिक सत्पुरुष की निदा तथा निन्दा प्रचार करने मे हाथ वटाते है। सूरदास का क३ ना अर्थपूर्ण है कि—

सूरदास खल काली कामरि चढ़त न दूजो रंग।
छाड़ि मन हरि विमुखन को संग॥

कवि सूरदास ने काले कम्बल से मिथ्या विचार और प्रवृत्ति वाले दुष्टो की तुलना की है। दीन हरिण किसी को पीडा नही देता है, जगल मे रहता है तृण भक्षण कर जीवन विताता है किन्तु शिकारी उस निर्दोष वाणी-विहीन, अत्यन्त भयशील हरिण को मार कर खुशी का अनुभव करते है।

उनके स्वय हृदय होता तो कवि के ये शब्द उनकी दुष्ट प्रवृत्ति में परिवर्तन कर देते—

जैसे अपने प्रान है, वैसे पर के प्रान।
कैसे हरते दुष्ट जन, बिना बैर पर प्रान॥

आज के जमाने मे लोग जानवरो को मार कर उनके सीग अपने घर मे लगाना शान की वात समझते हैं। ऐसी क्रूरता समझदार मनुष्य को शोभा नही देती। इसी प्रकार स्वय पवित्र, निर्दोप, निरपराध जीवन व्यतीत करने वाले साधुओ की निन्दा करने मे दुर्जनो को आनन्द आया करता है।

साधु निन्दा महापाप

आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ने मुझसे कहा था—"साधु की निन्दा करना वहुत बडा पाप है।"

महापुराण मे यह कथा आई है। धनश्री नाम की कन्या ने एक वार समाधिगुप्त नाम के मुनिराज के समीप मरे कुत्ते का कलेवर डाला था। उसके फलस्वरूप धनश्री को आगामी भव मे कष्ट भोगना पडा था। इस सम्वन्ध मे महापुराणकार कहते है कि मुनिनिन्दा महापाप है—

वाचातिलघन वाचं निरुणद्धि भवे परे।
मनसोप्यतिलघनं चापि स्मृतिमाहन्ति मानसीम्॥१५३॥
कायेनातिक्रमस्तेषां कायर्त्तिं साधयेत्तराम्।
तस्मात्तपोधनेन्द्राणां कार्योनातिक्रमोबुधैः॥६—१५४

वाणी के द्वारा साधु की निन्दा करनेवाला आगामी जन्म मे गूंगा होता है। मन के द्वारा जो मुनि की निन्दा करता है, उसकी स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है, शरीर से साधु का तिरस्कार करने वाला महान् शारीरिक कष्टो को प्राप्त होता है। इसलिए वुद्धिमान् व्यक्ति का कर्तव्य है कि कभी

भी तपस्वी मुनियो का अनादर अथवा तिरस्कार न करे।

आचार्यश्री ने कहा था—"मुनि अत्यन्त निर्दोष और निरपराध व्यक्ति है जो अपने पर अत्याचार किये जाने पर उसका कोई प्रतिकार नही करता।" यदि गृहस्थ के विरुद्ध कोई दोषारोपण करे तो वह या उसके कुटुम्बी ताजीरात हिन्द (Indian Penal Code) की धारा ५०० के अनुसार उस झूठे दोषारोपण करने वाले पर मुकदमा चला कर उसे दण्ड दिला सकते है। किन्तु साधु का कर्तव्य अत्याचार को प्रेम से जीतना है। वह तो शत्रु को अपने मित्र रूप मे सोचा करता है। मन मे यदि क्रोध आया तथा मलिनता आयी तो वे पवित्र ज्ञानरूपी जल से यह सोचकर मलिनता को दूर करते है—

तै कर्म पूरब किये खोटे, सहे क्यो नही जीयरा।
अति क्रोध अग्नि बुझाय प्राणी साम्य जल ले सीयरा॥

अद्भुत पुण्य

महाराज देशभूषण जी के व्यक्तित्व का अद्भुत प्रभाव पडा करता है। जब आचार्यश्री का सघ दिल्ली आ रहा था, तब इन्दौर से सघ की सुरक्षा के लिए शासन की ओर से पुलिस की व्यवस्था की गई थी। सघ जब गुना के समीप आया तब गुना से शिवपुरी जाते समय सामान्य नागरिक के भेष मे डाकू पीछे लग गये। उन्हे देखकर यह नही सोचा जाता था कि यह डाकू होगे। उनमे एक डाकू ने तो अपने को जैन बताया। वह महाराज का कमण्डलु लेकर चलता था। उसे जैन समझकर सघ ने उसके बीमार हो जाने पर काफी रकम औषधि आदि मे खर्च की। ये डाकू शिवपुरी से मुरैना तक साथ मे रहे। सघ ग्वालियर से करीब ११ मील पर स्थित पनिहार नामक जैन तीर्थ के समीप पहुचा, तब एक व्यक्ति ने पनिहार के दर्शन करने की प्रेरणा की। जन साधारण में ऐसा भय समाया हुआ था कि वहा जाने पर डाकू लूट लेते है, इसलिए कोई कभी नही जाता था। जिनका डर था वे ही भक्त के रूप मे महाराज के पुण्य से मार्ग दर्शक बने हुए थे। रास्ते मे बडे-बडे काटो का जाल बिछा था। मूर्ति का दर्शन करना कठिन था। भक्त लोगो ने महाराज को अपने हाथो पर उठा लिया और भगवान के समीप ले गये। महाराज ने तीन सुन्दर खड्गासन तथा एक पद्मासन मूर्ति का दर्शन कर बहुत शान्ति का अनुभव किया। मूर्ति करीब २८ फीट ऊँची थी। भगवान का अभिषेक भी किया

गया था। अभिषेक करने के लिए प्रतिमा जी के दोनो ओर ऊपर चढने के लिए सीढिया थी। आगे जाने पर वे भक्त रूपधारी डाकू चले गये। इस प्रकार अनेक जगह पर जहा जान-माल का खतरा रहा है, वहा भी महाराज के पुण्य, तेज और तपस्या ने सहायता दी है।

कैदियो को उपदेश

एक वार महाराज ने जयपुर के जेल मे स्थित कैदियो को वडा प्रभावशाली और मार्मिक उपदेश दिया, जिसका उन क्रूरकर्मा जीवो के मन पर वडा असर हुआ। अनेको ने यह प्रतिज्ञा की कि जेल से छूटने के वाद वे अपने जीवन को स्वच्छ और निर्मल वनावेंगे। ऐसा उपदेश भरतपुर अजमेर, हरियाना, रेवाडी, सागानेर, हिडलगी वेलगाव आदि स्थानो मे भी हुआ है। वेलगाव मे कैदियो ने चोरी आदि महापापो का त्याग किया था। कुशल जेलर ने कुछ द्रव्य इधर-उधर डालकर उनकी जाच की। कैदी परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए। उनकी दुष्ट वृत्ति मे परिवर्तन हो गया। कठिन परिस्थिति मे साधुओ को उनका पुण्य सहायता दिया करता है। विपत्ति भी सुखद सामग्री प्रद तथा अनुकूल हो जाती है।

आचार्य विमलसागर महाराज ने वताया था कि जब वे पन्ना मे चातुर्मास के वाद वुन्देलखण्ड की तीर्थो की यात्रा करते थे अनेक डाकू उनके पास आते थे। वे सेवा और भक्ति करते थे। वे डाकू साधारण वेष मे आते थे, जिससे उनका पता न चल पावे। परिग्रह रहित साधु का पवित्र जीवन देख पापी का भी हृदय वदल जाता है।

साधुत्व का प्रभाव

डाक्टर अम्वेडकर ने अपने अग्रेजी ग्रथ "वुद्ध और उसका धर्म"[1] ग्रन्थ मे गौतम वुद्ध के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना दी है। अगुलीमाल नाम का एक वहुत वडा हत्यारा डाकू था। वह धन लूटकर आदमी को मार डालता था और उस व्यक्ति की अगुली काट लेता था। ऐसी अगुलियो की माला को वह हत्यारा अपने गले मे धारण करता था, इसलिए उसका नाम अगुलीमाल पड गया था। उसके जीवन मे परिवर्तन हेतु वुद्ध उस दुष्ट के समीप पहुँचे। वुद्ध को देखकर अगुलीमाल ने कहा—"ठहर जाओ"।

1 The Buddha and his Dhamma P 204

बुद्ध ठहर गये। उन्होने अगुलीमाल से कहा—क्या तुम अब भी पापकार्य करने के बारे मे नही रुक सकते ! अगुलीमाल ! तुम्हारे भीतर सद्‌गुण की ज्योति विद्यमान है। तुम्हारे भीतर सद्‌गुण का नाश नही हुआ है।—"The good in you is not yet dead" बुद्ध से अगुलीमाल प्रभावित हुआ। उसके जीवन मे नवीनता आ गई। हत्यारा अगुलीमाल भिक्षु बन गया। साधु का प्रभाव अद्‌भुत हुआ करता है।

आचार्य पायसागर महाराज ने स्तवनिधि अतिशय क्षेत्र पर मुझसे कहा था—"मेरा जीवन पापो मे डूबा था। आचार्य शाति सागर महाराज का सत्सग प्राप्त कर मै पायसागर (क्षीरसागर) बन गया।" जिनका मन निर्मल होता है, जीवन स्वच्छ रहता है, उनका प्रभाव आश्चर्यप्रद रहा करता है। जीवन को स्वच्छ या मलिन बनाने वाला कोई विधाता नही रहा करता है। पुरुषार्थी सच्चरित्र व्यक्ति अपने प्रयत्नो के आधार पर जीवन को ज्योति को दीप्तिमान बनाता जाता है।

बबई निवासी सघपति सेठ गेदनमल जी जवेरी ने सुनाया था कि जब वे आचार्य शातिसागर महाराज का सघ लेकर बागड प्रान्त मे गए थे, तब आचार्य महाराज के प्रभाव से बडी-बडी विपत्तियो को घटाये सहज ही दूर हो जाती थी। कई स्थानो पर थोडे से पैसे के लिए भूखे और गरीब सहज ही प्राण ले लिया करते थे किन्तु सघ के विहार काल मे कही भी कोई कष्ट नही आया। गृहस्थ यदि अकेले जाते है तो लूट लिए जाते है और साधुओ के विहार करते समय कोई नही लूटता था। इसका कारण यह है कि अच्छे साधुओ का व्यक्तित्व बडा प्रभाव रखता है, जिसने कष्ट दूर हो जाता था। दिगम्बर परमहस सद्‌गुरुओ का अद्‌भुत प्रभाव होता है।

वात्सल्य मूर्ति

आचार्य देशभूषण महाराज मे वात्सल्य गुण बहुत अधिक मात्रा मे है। सघ मे किसी साधु, साध्वी आदि के बीमार हो जाने पर वे बडी सावधानी रखते हुए उन सब के धर्म ध्यान की पूर्ण व्यवस्था करते है। गृहस्थ भी यदि भयकर रोग युक्त होता है तो महाराज उसको भी धर्म मे स्थिर करते है। मै कोल्हापुर मे था वहा करीब २० मील की दूरी से एक मरण सन्मुख वृद्ध जैन लाया गया था, ताकि वह आचार्य महाराज

का परलोक प्रयाण करते समय दर्शन कर सके। महाराज उसके घर पर कई वार गये और मधुर शब्दो मे उसको सम्बोधित करते हुए जब कुछ कहते थे तो वह व्यक्ति वड़ा सुख का अनुभव करता था।

महाराज ने मुझसे कहा—पडितजी इस वृद्ध को आप कुछ शब्द सुना दो। उस समय उस वृद्ध व्यक्ति ने यह बात कही—"हमे पडितजी के मुख से उपदेश नही सुनना है। हमे तो दिगम्बर गुरु की वाणी चाहिए।" इस वाक्य से मेरे हृदय पर कोई बुरा असर नही पडा। मैने सोचा कि वह व्यक्ति बिल्कुल ठीक कह रहा है। उसे पाडित्यपूर्ण चर्चा नही चाहिए। उसे तो समाधि के समय गुरु देव की वाणी चाहिए। भगवान पार्श्वनाथकी वाणी से जिस प्रकार जले नाग नागिनी का कल्याण हुआ था, उसी प्रकार महाराज के द्वारा उस वृद्ध का कल्याण हुआ। महाराज उस व्यक्ति को सम्बोधित कर कोल्हापुरी साहूपुरी स्थित मदिर मे आये ही थे कि, वह व्यक्ति परलोक चला गया। जीव रूपी पक्षी शरीर रूपी पिंजरे को छोड़ कर उड गया।

मैने देखा कि अनेक मरणासन्न व्यक्तियो को महाराज ने धर्मोपदेश देकर उनके कल्याण का उद्योग किया है। जिस समय बीमार व्यक्ति के पास बैठकर महाराज की मधुर वाणी सुनने मे आती है उस समय ऐसा लगता है कि कोई आध्यात्मिक वैद्य आध्यात्मिक वाणी रूपी औषधि बीमार को पिला रहा है। दूसरे का कल्याण करते समय महाराज अपने कष्ट की तनिक भी परवाह नही करते। महापुराण मे कहा है—

स्वदुःखे निर्घृणारभा. परदु.खेषु दुःखिता ।
निर्व्यपेक्षं परार्थेषु बद्धकक्ष्या मुमुक्षव. ॥९—१६४

ये मुमुक्षु मुनीश्वर अपने दु ख के विषय मे निर्दय रहते है अर्थात् अपने कष्ट की परवाह नही करते। किन्तु दूसरो के दु खो से दु खी होते हैं और दूसरो का हित सपादन करने मे नि स्वार्थ भाव से तत्पर रहते हैं। यह मंगलमय प्रवृत्ति आचार्य देशभूषण महाराज मे प्रचुर मात्रा मे पाती जाती है।

ज्योतिषशास्त्र के प्रकाश मे

यह आनन्द की बात है कि ज्योतिष के माध्यम से भी आचार्य देशभूषण महाराज के आध्यात्मिक जीवन की वास्तविक स्थिति का परि- ज्ञान होता है। इस विषय मे गुरुभक्त लाला महताब सिह जी जौहरी B A L L B देहली के सुपुत्र श्री सुरेन्द्र कुमार जैन B A ज्योतिष

मार्तण्ड ने बहुत श्रमपूर्वक दुर्लभ ग्रन्थ भृगुसहिता से यह सामग्री प्राप्त की।
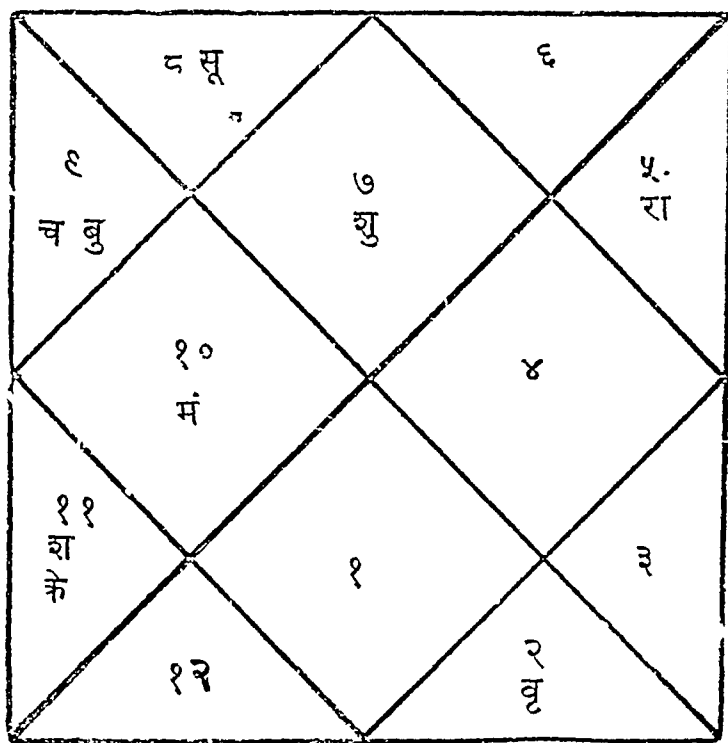
जन्म लग्न २८ नवम्बर १९०५ सवत् १९६२ मगसिर सुदी दूज मगलवार, मूल नक्षत्र, चतुर्थ चरण।

भृगुसहिता मे लिखा है—

विजितेन्द्रियो भवेत्तात बहुगुणं च भविष्यति।
भाग्यनाथो तृतीये च भाग्यवान् भवेन्नरः॥
भाग्यवृद्धि सर्वथा च, यत् कथयति तत् प्राप्स्यति।
त्यागवृत्तिर्भवेत्तात परोपकारेऽमितावधिः॥
अहोनिशि योगयुक्त ईश-आत्मचिंतन कृतम्।
दशमेशो तृतीये च भौमदृष्टिर्भविष्यति॥
पितुः सौख्यस्वल्पका च दिग्वर्षान्तरावधि।
राजयोगो भवेत् राजपुरुषैर्मानं विशेषत.॥
लाभनाथो दिवानाथ सैंहिकेय· लाभेस्थित.।
यादृशी इच्छा तात तादृशो लाभ जायते॥

व्ययनायो विक्रमे च लाभ व्ययो समो मत. ।
भ्रमणयोगो विशेषेण स्थानात् स्थानान्तरंतथा ।।
द्विपादिदेशे (?) न भ्रमण तीर्थ तीर्थ भ्रमत्यसौ ।
ऋद्धि सिद्धिश्च परिपूर्णा कदाभिमान न मानसि ।।
पुन ज्ञानेन द्वन्द्वीत एतद्योगो कदा मुने. ।
आत्मबली प्रतापी च महामान्यो भविष्यति ।।
स्वजातौ अन्य जातौ च प्रतिष्ठा च विशेषतः ।
धर्मप्रशस्तरत कार्ये तल्लीनश्च महामुने ।।
भ्रमणं करोति देवस्य तीर्थ तीर्थ भ्रमत्यसौ ।
स्वाध्याये निरतः सयमेन कृतो मुनेः ।।

समाधिवर्णन

नेत्र-वसु समारभ्य शरवसु (८२—८५) च फल श्रृणु ।
समाधिश्च भवेत्तात ज्ञानवृद्धि कारक ।
मारकेशो च परिपूर्ण आत्मा उर्ध्वगति लभेत् ।।
समाधिस्थ वपुंत्यक्त्वा केवलज्ञानं भविष्यति ।
भाद्र शुक्ला पंचम्या शुभे दिने मरणं ध्रुवम् ।।
मातृ कुक्षि सफलाकृत्वा अते मोक्षो भविष्यति ।
कुण्डली फल सफलतात पूर्व पुण्य प्रभावत. ।।
तथा च मयोक्तमेतद्धि फल योग दृष्ट्या ।

इतिश्री भृगुसहितायां भृगु शुक्र संवाद कुण्डल्यां योगोय समाप्तः ।।

सस्कृत पद्यो से यह ज्ञात होता है, कि उपरोक्त कुण्डली वाला व्यक्ति भाग्यवान, बहुगुण युक्त, जितेन्द्रिय, त्यागवृत्ति, परोपकारी, दिन-रात तत्त्वचिंतन मे निमग्न, परमात्मा तथा आत्मस्वरूप का चिंतक, राजयोगी, राज्य पुरुषो के द्वारा पूजित, तीर्थस्थानो की यात्रार्थ भ्रमणशील, आत्मवली, प्रतापी तथा अपनी जाति द्वारा मान्य होगा। अन्य धर्म वालो द्वारा विशेष प्रतिष्ठा का लाभ होगा। इच्छानुसार पदार्थो का लाभ होगा। पिता का सुख बहुत थोडा रहेगा। धर्म प्रचार के कार्य मे निरन्तर तल्लीन रहेगा। सयमी होगा तथा स्वाध्याय मे सदा सलग्न होगा।

समाधि वर्णन

८२ वर्ष से ८५ वर्ष की आयु में ज्ञानवृद्धिप्रद उत्तम रूप से भादो सुदी पचमी को समाधिमरण होगा। उच्चगति प्राप्त होगी।

यह भृगु-शुक्र सवाद भृगु सहिता में कुण्डली योग पर दिया गया है। ज्योतिप विद्या के विद्वानो का कहना है, कि यह कुण्डली महापुरुष की है। सम्राट् अकबर और महात्मा गाधी से मिलती-जुलती है। प्रथम स्थान इनके बालब्रह्मचारीपने का द्योतक है। तीसरा स्थान पैदल धर्म प्रचार तथा लोक कल्याण कार्य का सूचक है। आठवा स्थान ज्ञान पूर्वक जीवन व्यतीत कर समाधि मरण का द्योतक है। दशमस्थान प्रबल राजयोग तथा राजपुरुषो आदि को प्रभावित करने को बताता है। बारहवा स्थान बताता है कि इनका समय धर्म कार्यो मे व्यतीत होता है। समस्त कुण्डली बताती है कि यह आत्मा अत्यन्त पवित्र चरित्र, प्रभावशाली तथा श्रेष्ठ पुरुपो द्वारा पूजित होगी।

इस प्रकार प्रत्यक्ष अनुभव और ज्योतिप शास्त्र द्वारा यह ज्ञात होता है, कि आचार्य देशभूपण महाराज का व्यक्तित्व महान् है और इनके द्वारा महान् जनकल्याण होता है।

कर्मयोगी साधु

•

कार्य निरत

आचार्य देशभूषण महाराज अपने समय का सावधानी पूर्वक सदुपयोग करते हैं। वे या तो शास्त्र स्वाध्याय, शास्त्र लेखन तत्त्व चितन में निमग्न पाए जाते हैं, या धर्मोपदेश आदि द्वारा जीवो का कल्याण करते रहते हैं। उनकी अध्ययनशीलता महान् है। व्यर्थ की बातों में वे अपना समय नष्ट नही करते। उनमे आलस्य का लेश भी नही है। आज विज्ञान द्वारा प्राप्त यत्र शक्ति के विकास काल मे मनुष्य के पास समय की बचत बढ़ती जा रही है। अब समस्या यह है कि मनुष्य अपने (Leisure) अवकाश काल का किस प्रकार उपयोग करे। सपूर्ण विश्व पर दृष्टि डालते हुए श्री बिली ग्राहम (Billy Graham) ने अपने ग्रन्थ वर्ल्ड एफ्लेम (World Aflame) मे कहते हैं "In Societies where leisure is already a reality, boredom is the big new problem" (p. 44)—जिन समाजो में फुरसत बहुत है वहाँ मानसिक थकान की बडी नवीन समस्या उत्पन्न हो गई है। खाली दिल मे शैतान का अड्डा रहता है, ऐसी स्थिति मे वह मनुष्य घबड़ा जाता है या फिर वह पाप कार्यो मे फसकर अपना तथा राष्ट्र का विनाश करता है। दिगम्बर जैन मुनि के पास लौकिक काम नही रहने पर भी वे एक क्षण भी अपने मन को बेकार नहीं रहने देते। वे या तो आत्मा का ध्यान करते हैं अथवा सत्कार्यों मे सलग्न हो जाते हैं। वे एक क्षण भी प्रमाद नही करते। भगवान महावीर ने कहा, "गोयम ! समय मा पमाए" गौतम ? क्षण भर भी प्रमाद नही करना। इसलिए प्रत्येक मुनिराज अपना एक क्षण भी व्यर्थ न खोकर ऐसे कर्मों मे लगाते हैं, जिसका साक्षात् या परंपरा से सम्बन्ध मोक्ष से है। आर्त-रौद्र ध्यानो से अपनी रक्षा कर वे मोक्ष

के परपरा कारण धर्म ध्यान मे सलग्न रहते है। कुपथगामी मन को जैनागम के अनुसार सुपथगामी बनाते है। सयम पालन द्वारा आचार्य देशभूषण महाराज स्वय को कल्याण पथ मे लगाते है। ज्ञान प्रसारार्थ वे शिष्यो को शिक्षण भी दिया करते है। उनका स्वय का अध्ययन भी चला करता है। वे आचार्य होने के साथ ज्ञान पिपासु विद्यार्थी भी है।

अध्ययनशील

कलकत्ता चातुर्मास काल मे मैने देखा था, वे बगला भाषा सीखते थे। दक्षिण प्रान्त में उनको तामिल भाषी व्यक्ति का योग मिला, तो उन्होने तामिल भाषा का अध्ययन करना प्रारभ कर दिया। उस भाषा के महान् साहित्य के अनुवाद की ओर उनका आकर्षण बढा। सन् १९७२ मे उन्होने 'मेरु मन्दिर पुराण' का, जो तामिल की महत्वपूर्ण रचना है, हिन्दी भाषा मे अनुवाद करके प्रकाशित भी कर दिया। प्रोफेसर ए० चक्रवर्ती ने "तामिल भाषा मे जैन साहित्य" शीर्षक अग्रेजी बृहत् निबन्ध में उस पुराण का महत्व सूचित किया था।

इन्होने कन्नड भाषा के अनेक शास्त्रो का हिन्दी अनुवाद करके प्रकाशन कराया है। रत्नाकर कवि का भरतेश वैभव कन्नड़ साहित्य का महान् ग्रन्थ है। उसका महाराज ने हिन्दी मे अनुवाद किया है। जब वे भरतेश वैभव की व्याख्या करते हुए उस पर अपना आध्यात्मिक विवेचन करते है, तब वे महान् साधु के साथ महान पण्डित या व्याख्याता रूप में प्रतीत होते है। उस ग्रन्थ के पद्यो को अपने मधुर कण्ठ से जब वे पढ़ते हैं, तब बडा आनन्द आता है। हमने महाराज श्री की वाणी मे तरुण अवस्था मे जो माधुर्य पाया था, आज सत्तर वर्ष के वृद्ध होने पर भी उसकी मधुरिमा तथा मिठास मे अन्तर नही लगता। इसका मूल कारण महाराज का निर्दोष ब्रह्मचर्य तथा सुस्वर प्रकृति का उदय है। इन बाल ब्रह्मचारी महापुरुष का जीवन अत्यन्त पवित्र स्वच्छ तथा सुरभि सम्पन्न है।

सिवनी में शुभागमन

देशभूषण महाराज सर्व प्रथम तरुण श्रमण रूप मे सिवनी आए थे, जहाँ उन्होने हिन्दी भाषा मे बोलना प्रारभ किया था। उस काल मे वे नयसेन आचार्य रचित कन्नड़ ग्रन्थ धर्मामृत को समाज के समक्ष पढा

करते थे। मैं उसके कथन तथा कथा के भाव को श्रोताओ के लिए स्पष्ट करता था। अब वह ग्रन्थ हिन्दी भाषा मे आचार्य श्री द्वारा अनूदित होकर तथा छपकर आरा चातुर्मास काल मे सर्व साधारण के हाथ मे आ गया। उससे सम्यक्त्व सुदृढ होता है, कारण उसमें सम्यक्त्व के अष्ट अगो से सम्बन्धित आठ कथाए दी है। अहिंसादि व्रतो से सम्बन्धित पाच कथाए है। प्रथम कथा मे सम्यक्त्व की महिमा बताई है। कुल चौदह कथाए है।

एक कथा है कि वसुभूति नाम का एक व्यक्ति जैन धर्म का द्वेषी था। वह जैन मुनि की निन्दा मे निपुण था। जिनेन्द्र भक्त एक दयामित्र नाम के सेठ ने धन का लालच दे वसुभूति से कृत्रिम मुनि का आचरण करवाया। उस समय मुनि जीवन की कठिनता, जितेन्द्रियता आदि का प्रत्यक्ष परिचय पाकर वसुभूति के हृदय मे सम्यक्त्व का भाव जागा। वह जैन बन गया। सम्यक्त्व सहित मरण कर वसुभूति ब्राह्मण ने स्वर्ग पाया। यह कथा हमने आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व देशभूषण महाराज के मुख से सुनी थी। कई दिन तक शास्त्र मे यही कथा चली थी। आज भी उसकी मधुर स्मृति सजग है।

हिन्दी साहित्य का हित

विवेक के प्रकाश मे यदि न्याय दृष्टि से देखा जाय तो कहना होगा कि दक्षिण प्रान्त की विभिन्न भाषाओ की मान्य रचनाओ का अनुवाद करके आचार्य श्री ने हिन्दी साहित्य की जो श्रीवृद्धि की है, वह लोकोत्तर है, वदनीय, तथा अभिनदनीय है। दिगम्बर साधु होते हुए तथा विविध सयम संबंधी मर्यादाओ के भीतर रहते हुए भी जो भगवती भारती की सेवा की है तथा कर रहे हैं, वह अत्यन्त महत्व की बात है तथा साधु वर्ग के लिए अनुकरणीय है। आचार्य श्री को 'महा श्रमण महावीर' मेरी लिखी ६०० पेजी हिन्दी रचना पसद आई। शीघ्र ही उन्होने उस हिन्दी रचना का कन्नड मे अनुवाद करके दो भागो मे सन् १९६८ मे छपवाया तथा कन्नड भाषी जनता को वह सामग्री प्रदान की। महाराज श्री के प्रवचनो का सग्रह भी हिन्दी मे छपा था।

उदार प्रकृति—महाराज बड़े उदार तथा विचारक है। अनेक विद्वानो से भी ग्रथ लिखवाकर उनको प्रकाशित कराते हैं। विद्वानो को मुक्त हस्त हो भरपूर पारिश्रमिक दिया जाता है। कृपणता तो महाराज

ने सीखी ही नही। इनके भक्त लोग मुक्त हस्त हो गुरुदेव की इच्छानुसार द्रव्य देते है, और ये मुक्ति प्रेमी साधु भी मुक्त हस्त हो उस द्रव्य का सत्कार्यो मे उपयोग करा देते है। इससे इनकी अकिचनता तथा अपरिग्रह वृत्ति को बाधा नही आती। इनके द्वारा स्व तथा पर कल्याण हुआ करता है। इतना अवश्य है, कि महाराज अपने कार्यो मे कभी-कभी शीघ्रता बहुत करते है। इससे उचित लाभ मे बाधा आती है।

रथ निर्माण

एक बार कोल्हापुर मे भगवान को विराजमान कर नगर विहार हेतु एक रथ की आवश्यकता प्रतीत हुई। गुरुदेव के चित्त मे उसकी उपयोगिता जची। दिल्ली, जयपुर आदि के चातुर्मासो मे आगत धर्मात्मा स्त्री पुरुषो ने हृदय खोल कर द्रव्य दिया और उससे अत्यन्त सुन्दर रथ कोल्हापुर पहुच गया। उससे खूब धर्म प्रभावना होती है। उसमे जुते काष्ठ निर्मित कृत्रिम अश्व युगल साक्षात् सरीखे लगते है। अपार जन समुदाय उस रथ के दर्शनार्थ एकत्रित होता है। मैने दो बार उस रथ यात्रा के महोत्सव को देखा है।

कुछ अविवेकी छिद्रान्वेषी इस कार्य को प्रान्तीयता की दृष्टि से देखकर कहते थे महाराज ने उत्तर का धन दक्षिण मे लगवा दिया। यथार्थ बात यह है कि महाराज प्रान्तीयता के भेद से विमुक्त है। महाराज के निमित्त से कितनी धर्म की प्रभावना हुई, यह उन निन्दको की समझ में नही आता। यह बात विनोद प्रद है कि जिन्होने एक पैसा भी दान नही दिया था वे बहुत हल्ला मचाते थे, टीका टिप्पणी करते फिरते थे। साधुओं के आहार दान से दूर रहने वाले लोग ही साधुओ के आहार दान तथा दाताओ और पात्रो के दोषो का व्याख्यान करते-करते नही थकते। यथार्थ में दुष्टतापूर्ण व्यक्तियो का भी अद्भुत् तरीका होता है। अग्रेजी मे एक सूक्ति है (Dog in the manger) 'डाग इन दी मैजर' कुत्ता घास नही खाता है, किन्तु वह घास खाने वाली गाय आदि को भौक भौक कर भगाना नही छोडता।

ग्रन्थ प्रेम

आचार्य ने देहली के वैदवाड़ा के जैन मन्दिर में सचित्र महावीर

पुराण देखा । उनको वह रचना उपयोगी प्रतीत हुई । उस हिन्दी ग्रथ का महावीर परिनिर्वाण के पुण्य अवसर पर प्रकाशन हितकारी रहेगा यह सोचकर वे उसके अनुवाद सपादन आदि की व्यवस्था मे लग गये । हिन्दी साहित्य की दृष्टि से उस रचना का यह विशेष आकर्षण है कि उसमे महावीर भगवान के जीवन सवधी घटनाओ आदि पर प्रकाश डालने वाले लगभग ३५० रगीन चित्र है । ग्रथराज छपकर तैयार हो गया । भूतपूर्व उपराष्ट्र पति श्री गोपाल स्वरूप पाठक के द्वारा उस ग्रथ का विमोचन समारभ दिल्ली मे २ दिसम्वर १९७३ को वैभव पूर्वक सपन्न हो गया ।

भारती भक्ति

परम संयमी जीवन मे सतत सलग्न रहने वाले सदा व्रत उपवास करने वाले आचार्य रत्न श्री देशभूषण महाराज ने अपार श्रम उठाकर इस कल्याणकारी प्राचीन ग्रथ को प्रकाश मे लाने की जो कृपा की है, उसके प्रति सभी भगवती भारती के भक्त तथा साहित्यकार इन साधुराज के चरणो को सदा प्रणामाजलि अर्पित करेगे ।

पुण्योदय

ज्योतिष के ग्रन्थ भृगु सहिता मे आचार्य श्री के बारे यह लिखा है "यादृशी इच्छा तात्,, तादृशो लाभ जायते" इनकी जो इच्छा होती है, उसकी पूर्ति हो जाती है । यह बात प्रत्यक्ष अनुभव गोचर होती है । आचार्य श्री के महान धार्मिक कार्यो मे हजारो नही लाखो रुपया लगते हैं, किन्तु उसकी पूर्ति इनके पुण्योदय से होती रहती है । अयोध्या पंच कल्याणक प्रतिष्ठा को राजकीय वैभव से सपन्न करने के पवित्र तथा आदर्श कार्य मे कलकत्ते का एक अजैन भाई सेठ रामेश्वर दयाल अग्रवाल भक्त रूप मे आ गया तथा उसने कहते हैं लगभग दो लाख रुपया अपनी ओर से खर्च कर दिए थे । उस द्रव्य व्यय के द्वारा उसने आचार्य महाराज का पवित्र आशीर्वाद रूपी महान् निधि प्राप्त की ।

धर्म प्रभावना प्रवीण

आचार्य श्री की सयम साधना, ऋषिमण्डल मत्र की आराधना तथा पूर्व जन्म मे सचित पुण्य रूपी सपत्ति के कारण वीतराग शासन की

स्थायी प्रभावना हो रही है। महाराज श्री विशेष अवसरो पर अपनी प्रतिभा के कारण अपूर्व कार्य सपन्न कर दिया करते है। आज से लगभग दस वर्ष पूर्व कोल्हापुर मे वैभव पूर्वक आदीश्वर भगवान् की २५ फीट ऊँची प्रतिमा की प्रतिष्ठा हो रही थी। उस समय कोल्हापुर के नरेश आए थे। ऐसे अवसर पर महाराज ने जो सामयिक भाषण दिया था वह अपूर्व था। विना किसी तैयारी के विशिष्ट अवसर आने पर महाराज का उपदेश उस प्रसग के उपयुक्त हो जाया करता है।

बेलगाव मे भारतरत्न डाक्टर राधाकृष्णन् भूतपूर्व राष्ट्रपति आचार्य देशभूषण महाराज के समीप दर्शन हेतु उपस्थित हुए थे। राष्ट्रपति ने महाराज के प्रति महान् आदर व्यक्त करते हुए जो शब्द कहे थे, वे तो अपूर्व थे[1]। किन्तु उस समय महाराज का कथन सामयिक तथा महत्त्वपूर्ण था। विविध प्रसगो पर अत्यन्त सामयिक बाते कहना इन साधुराज की पवित्रता तथा प्रतिभा शक्ति के परिचायक है। मैने देखा है कि राष्ट्रीय तथा अतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्ति भी आचार्य श्री के आध्यात्मिक तेज और अध्ययन के कारण इनके समक्ष नत मस्तक हो जाया करते है।

---

१ राष्ट्रपति डा० राधा कृष्णन् का प्रणामाजलि पत्र—

राष्ट्रपति भवन नई दिल्ली

न० F/46 (3) G 62 ४ जून १९६२

प्रधान मत्री जैन पच कल्याणक प्रतिष्ठा कमेटी

कोल्हापुर

प्रिय मित्र

आपने परमपूज्य आचार्य रत्न बाल ब्रह्मचारी योगीन्द्र चूडामणि दिगम्बर जैन गुरु देशभूषण महाराज का राष्ट्रपति पद ग्रहण करते समय जो आशीर्वादात्मक सदेश भेजा था, इसके लिये राष्ट्रपति जी आपको धन्यवाद देते हैं।

उन्होने मुझे यह आदेश दिया है कि मैं आप से यह निवेदन करूँ कि आप राष्ट्रपति जी का सविनय प्रणाम पूज्य स्वामी जी को निवेदन कर दे।

आपका विश्वसनीय

आर के. रामधानी

विश्वसनीय व्यक्ति

आचार्य देशभूषण महाराज की कुशलता, पवित्रता तथा कार्य क्षमता पर चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर महाराज को वड़ा विश्वास था। ववई सरकार ने हरिजन मन्दिर प्रवेश कानून के अतर्गत उपधारा द्वारा जैन सस्कृति को अपार क्षति पहुचाने का कार्य किया था उसके वारे मे आचार्य शान्तिसागर महाराज ने धर्म सकट टलने तक अन्न का त्याग कर दिया था। उस अवसर पर देहली मे देशभूषण महाराज थे। उनके प्रभाव वश अनेक महत्त्व पूर्ण कार्य इष्ट ध्येय की सिद्धि हेतु सम्पन्न होते थे। आचार्य शांतिसागर महाराज को विश्वास था मेरा शिष्य देशभूषण दिल्ली मे, भारत की राजधानी मे वैठा है। वह धर्म रक्षा के कार्यो मे कोई कमी नही रखेगा।" देशभूषण महाराज ने गुरु आज्ञा पालनार्थ उपवास किए थे तथा धार्मिक समाज को कर्तव्यपालनार्थ प्रेरणा दी थी। मैं तो आचार्य शान्ति सागर महाराज के चरणो मे वहुत वार भी कभी नही जाया करता था। उन्होने देशभूषण महाराज की जव कभी चर्चा कदाचित् आती थी, तव सतोष का भाव ही व्यक्त किया था। वे इनके निर्मल चरित्र तथा धर्म प्रभावना के कार्यो से वहुत प्रसन्न थे।

सन्मार्ग दर्शन

आचार्य देशभूषण महाराज जीव का सच्चा कल्याण सोचा करते है। सस्कृति मे सूक्ति है 'इष्ट धर्मेण योजयेत्" अपने इष्ट व्यक्ति को धर्म के साथ योजना करे।

आचार्य श्री ने अपने काका जी को क्षुल्लक दीक्षा दे दी, जो जिन भूषण नाम से प्रख्यात है तथा सघ मे रहते हैं। वे अपना समय स्वाध्याय तथा ध्यान मे वहुत दिया करते है। वे ७६ वर्ष के हो गए है। वड़े ज्ञानी, मार्मिक तथा गभीर स्वभाव के हैं।

जिनभूषण महाराज

मैंने गत वर्ष १९७३ के पर्यूषण के समय एक दिन उनसे दिल्ली मे पूछा था, "महाराज! आपने क्षुल्लक दीक्षा किससे ली?"

उन्होने वताया, कि अयोध्या पच कल्याणक के समय आचार्य श्री ने उन्हे दीक्षा दी। वे लौकिक दृष्टि से काका है किन्तु सयम की अपेक्षा शिष्य

होने से महाराज को प्रणाम कर उनका आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। यथार्थ में संयम धारण करने पर नवीन जन्म होता है, उसमें पूर्व जीवन के सर्व संबन्ध अस्तंगत हो जाते हैं।

मैंने जिन भूषण महाराज से कहा, आप इतने वृद्ध हो गये। क्षुल्लक दीक्षा लेने से कोई कष्ट तो नही होता है ?

उन्होने कहा, "कष्ट का नाम नही है। आनद ही आनंद है।"

मैंने पूछा, "आपके भाव क्या पूर्व से ही त्याग के मार्ग में लगने के थे, या एकदम यह परिणाम उत्पन्न हुआ ?"

उत्तर—"हमारे विचार जब हम बीस वर्ष के थे, तब से साधु बनने के थे। हमने पढ़ा था, मनुष्य जन्म श्रेष्ठ है। मुनि होना जीवन का श्रेष्ठ फल है। इससे मुनि पद के प्रति प्रीति पैदा हुई। हम पहाड़ पर जाकर एकान्त में कानड़ी ग्रन्थ पढा करते थे। धन्य कुमार चरित्र आदि के पढने से मन पर बहुत असर हुआ। ज्ञानार्णव पढ़ा, उससे नव चेतना उत्पन्न हुई। अध्यात्म रुचि बढ़ी। एक दिन क्षुल्लक भरमप्पा ने कहा, 'अब कितने दिन घर में रहोगे ? सयमी के देवगति होती है। स्वर्ग मे जाने पर नदीश्वर की वंदना मिलेगी। तीर्थंकर सीमधर भगवान का दर्शन मिलेगा। आत्मज्ञान प्राप्त करके मोक्ष की साधना मे लग सकोगे। भरमप्पा की बात जंच गई। हमने स्तवनिधि मे ब्रह्मचारी रूप में दो वर्ष व्यतीत किये। हमने सपरिवार मुनि समतभद्र जी से ब्रह्मचर्य प्रतिमा ली थी। पश्चात् महाराज से क्षुल्लक के व्रत धारण किये। त्याग से बहुत शान्ति मिलती है।"

साधना सलग्न

आचार्य श्री के निकट रहने वाले कुछ व्यक्तियो से ज्ञात हुआ कि महाराज के पास अनेक सिद्धियां है। आधी रात के बाद जगकर वे शेष रात्रि जप और ध्यान में व्यतीत कर देते हैं। मैंने सोचा महाराज से कुछ माल प्राप्त करूँ। महाराज स्तवनिधि क्षेत्र मे विराजमान थे। शायद उस दिन उनका उपवास था। मैंने उनके पास पहुंचकर कहा "महाराज आपके पास बहुत माल है, कुछ दीजिए ?"

महाराज ने पिच्छी सामने रख दी। और कहा इसे ले लो। इसके प्रसाद से राज्य से भी बड़ी वस्तुओ की प्राप्ति होती है। परिग्रह को छोड़ो, आनन्द लो। इस हाथ दो, इस हाथ लो। असली सिद्धि तो

कर्मों के नाश से मिलती है। पिच्छी लेने वाला कर्म क्षय के मार्ग मे लग जाता है। अन्य सिद्धियो मे क्या है? हमारा ध्यान मोक्ष की सिद्धि की ओर है।

आध्यात्मिक खजाना

इस प्रसग मे गौतम बुद्ध की यह कथा देना मनोरजक होगी। डा० अम्वेडकर ने लिखा है, कि बुद्ध वोधिलाभ के अनतर कपिलवस्तु पहुचे। वे अपने पिता से मिले। उनके मोही मन को प्रकाश देते हुए बुद्ध ने कहा, "जैसा प्रेम आप पुत्र होने के नाते मुझ पर करते है, वैसा प्रेम प्राणी मात्र के प्रति आपके मन मे हो जावे तो आपको अपने पुत्र सिद्धार्थ से भी वडा व्यक्ति मिल जायेगा। बुद्ध की पत्नी यशोधरा ने अपने सात वर्ष के पुत्र राहुल को बुद्ध के समक्ष उपस्थित किया। राहुल ने कहा, "पिताजी! अपनी सपत्ति मुझे दीजिए।"

बुद्ध ने अपने शिष्य सारिपुत्र से कहा, "मैं राहुल को विनाशी सपत्ति नही देना चाहता, मैं उसे पवित्र जीवन रूपी सम्पत्ति देना चाहता हू।" इसके पश्चात् उन्होंने राहुल से कहा, "चादी, सोना, जवाहरात तो मेरे पास हैं नही, मेरे पास आध्यात्मिक खजाना है। उसे तुम पा सकते हो धर्म के पथ पर चलना मेरा आध्यात्मिक कोष है।"

राहुल ने उस सपत्ति के लिए निवेदन किया। बुद्ध ने राहुल को साधु का पद दे दिया।

आचार्य देशभूषण महाराज अपनी सयम को सपत्ति प्रत्येक सत्पात्र को देने को तैयार हैं। वह सपत्ति अविनाशी आनद देती है। धन सच्ची सपत्ति नही है। भोगी प्राणी धन वैभव को अपने लिए निधि स्वरूप माना करता है किन्तु जिनके ज्ञान नेत्र खुल जाते हैं, वे त्याग, सदाचार को सपत्ति मानते हैं। उनकी दृष्टि से धन मे आसक्त व्यक्ति मोह रोग से वीमार ज्ञात होते है। संतों की दृष्टि अद्भुत रहती है। सूक्ति है—

मुख श्रवण दृग नासिका सब ही के इक ठौर।
कह्यो सुनवो देखवो चतुरन को कछु और॥

सुन्दर कथन

एक दिन आचार्य श्री के समीप वैठे हुए मुनि श्री वृषभ सागर जी

ने दिल्ली मे सबके लिए उपयोगी तीन बाते कही थी। विचार शील व्यक्ति अच्छे चितन द्वारा विपत्ति से घिर जाने पर कल्याण की बात सोचता है। उन्होने कहा, "एक स्त्री का पति मर गया। उसके विधवा हो जाने पर सब कहते है, इसके पाप का उदय आ गया। अब इसे कोई नही पूछता। ज्ञान दृष्टि से वह यह सोचती है, मेरा मोह का बन्धन टूट गया। अब मै धार्मिक दीक्षा के योग्य हो गई। अब मुझे कर्म नाश का कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ है।

दूसरा दृष्टान्त—एक व्यक्ति की सर्व सपत्ति नष्ट हो गई। वह हाय हाय करता हुआ अपने दुर्भाग्य को बुरा कहता है। सद्गुरु उसे समझाते है, अरे भाई! जो गया सो गया। वह तो अब नही आता है। क्यो आर्त्त ध्यान द्वारा जीवन को बरबाद करता है। अब साधु बनने की स्थिति आ गई। सब विघ्न दूर हो गए। अतराय कर्म ही तो बाधा पहुचाया करता है।

जब जोग मिला शिव साधन का, तब विघन करम ने हटका है।
तुम विघ्न हमारा दूर करो, सुख देहु निराकुल घट का है॥

तुम साधु बनकर जीवन सफल करो।

तीसरी बात—शरीर में रोग हो गया। हम सोचते है, अच्छा हुआ। हमारे पूर्व सचित कर्म नष्ट हो रहे है। आत्मा मे रोग नही है। शरीर तो जाने वाला ही है। पीडा चितवन से आर्त ध्यान होता है। इस प्रकार पापोदय की स्थिति मे ज्ञानी व्यक्ति सच्चे कल्याण की बात सोचा करता है।

आचार्य देशभूषण महाराज के पास मुनि पद्म सागर जी कोथली चातुर्मास में थे। पद्म सागर महाराज के ये शब्द स्मरणीय है। "तुम्हारे भीतर ही मन्दिर है। अन्दर बैठा है बाबा, वहाँ सिद्ध स्वरूप है। तुम भी वैसे हो जाओ, कर्मो को काटो। याद रखो यम का दूत किसी को भी नही छोडेगा। तुम भी जाओगे, हम भी जावेगे। तीर्थंकर भगवान ने यम दूत को जीता है।"

उन्होने कहा था, "आचार्य शान्ति सागर महाराज इजन है। हम पीछे डब्बे है। इजन न हो तो डिब्बा नही चले। उन्होने पेड लगाये। अब फल लग रहे है। साधु समाज उनका ही कुटुम्ब है। असली कुटुम्ब धैर्य, शाति, शील, सयम, दया है।" साधुओ की वाणी द्वारा आत्मा को प्रकाश प्राप्त होता है।

सन्देश

एक बार हमे सन् १९६६ मे अमेरिका से प्राच्य विश्व परिषद् (International Congress of Orientalists) मे शामिल होने का आमन्त्रण प्राप्त हुआ। वह सम्मेलन एन आरबर मिशीगन (An Arbor Michigan) मे हो रहा था। मैं जयपुर पचकल्याणक प्रतिष्ठा मे आचार्य देशभूषण महाराज के पास खानिया मे था। मैंने कहा, गुरुदेव अमेरिका का आमत्रण है यदि सब प्रकार की साधन सामग्री मिली तो मैं वहा पहुच सकूँगा। आप महान् जैन धर्म गुरु हैं। यदि आपका कोई सन्देश या वार्ता मैं वहा के विद्वानो को सुना सका तो लोग हर्षित होगे, क्योकि आप सुलझे हुए अनुभवी दिगम्बर श्रमण सघ के महान् धर्माचार्य है।

प्रश्न—आज का जगत् विपत्ति के ज्वालामुखी के शिखर पर बैठा है उसके दुःख निवारण का क्या उपाय है?

उत्तर—अहिंसा। अहिंसा का प्रचार करो। अहिंसा से हमारा अभिप्राय झूठ, चोरी, कुशील, अतिसग्रह, जीवघात रूप पाप प्रवृत्तियो पर नियन्त्रण रखना है। आत्म संयम और आत्म निर्भरता (Self-reliance) का पथ पकडा जाय। परावलम्बन कम किया जाय।

प्रश्न—(१) अमेरिका जैसे सम्पन्न तथा आर्थिक दृष्टि से समृद्ध देश के लिए आप का क्या मार्ग दर्शन होगा?

उत्तर—ऐसे देश के लिए यह उचित होगा कि वह सग्रह तथा धन की तीव्र लालसा को कम करे तथा अपनी समृद्धि का सदुपयोग जीव दया के कार्यो मे करे। स्वय भी जीव दया के क्षेत्र मे लगे। उन्होने कहा था "थोडे दिन पूर्व अमेरिका के अत्यन्त प्रिय राष्ट्रपति केनेडी की हत्या हो गई। अमेरिका का वैभव उसके साथ नही गया। अमेरिका की शक्ति उसे न बचा सकी। अत विवेक से काम लेना चाहिए। समर्थ राष्ट्र का कर्त्तव्य है कि असमर्थ राष्ट्रो की सहायता करे। अपनी शक्ति विश्व बन्धुत्व के मार्ग मे लगाना चाहिए। धन की विपुलता हो जाने पर शान्ति नही प्राप्त होती। नैतिक उन्नति होने पर ही आत्म शान्ति प्राप्त होगी।"

शोचनीय स्थिति

यथार्थ मे भौतिक दृष्टि से समृद्ध देशो की आन्तरिक स्थिति सोचनीय है। नैतिक मानव (Ethical man) बनने की ओर आज के जडवादी

जगत् को प्रगतिशील रहना चाहिए। अमेरिका के वैभव में पले लोग जब भारत के आध्यात्मिक जीवन को देखते है, उस समय ऐसा लगता है बिना आध्यात्मिक दृष्टि पाए वास्तविक आनन्द नही मिलता है। आचार्य समन्त भद्र ने इन्द्रिय जनित सुख को विद्युत के उन्मेष सदृश अल्पकालीन 'शत-ह्लदोन्मेषचल हि सौख्यं"—कहा है। उसे तृष्णा-लालसा रोग की वृद्धि का कारण कहा है—"तृष्णामयाप्यायन मात्रहेतु.।" इस कारण सम्पूर्ण इन्द्रियों को आनन्ददायिनो सामग्री प्राप्त होते हुए भी वहाँ आन्तरिक चैन नही है।

जानवेल गेडेस (Joan Bel Geddes) ने अत्यन्त समृद्ध और सुखी सोचे जाने वाले अमेरिकी के विषय मे लिखा है "In the U. S. despite our relatively high degree of freedom and affluence problems seem to be increasing week by week and people are full of complaints and anxieties (Nagpur Times 30-4-72) सयुक्त राज्य मे अधिक स्वतन्त्रता तथा सम्पन्नता के होते हुए भी वहा प्रति सप्ताह नई-नई समस्याएँ उत्पन्न हुआ करती है तथा लोग बहुधा शिकायतो तथा विविध चिन्ताओ से आक्रान्त पाये जाते है। Illustrated Weekly of India मे छपा था "About half the people in the United States of America suffer from sleeplessness" (6th May 1956) सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे आधे से अधिक लोग अनिद्रा रोग से व्यथित पाए जाते है। लाखो व्यक्ति आत्मघात कर लिया करते है, क्योकि सक्लेश भावो के कारण उनकी विवेक शक्ति के आगे अन्धेरा आ जाता है और वे स्वय का नाश करने की प्रेरणा पाते है।

इग्लैड से प्रकाशित होने वाले 'दी प्लेन ट्रुथ' (The Plain Truth) नामक समाचार पत्र के अगस्त १९७१ के अक मे छपा है कि, 'अमेरिका मे रजिस्टर दर्ज आत्मघातो की सख्या लगभग २५००० प्रति वर्ष है। अर्थात् २६ मिनट मे एक आत्मघात की घटना हो जाती है। वैसे सयुक्त राष्ट्र मे आत्मघात की सख्या (चालीस हजार), ४०००० है।

उस पत्र मे यह भी लिखा है कि अमेरिका में डायविटोज (Diabetes) बहुमूत्र की बीमारी बढ रही है। सत्तर लाख से अधिक अमेरिका मे आर्थिरि्टिस (Arthritis) गठिया रोग की बीमारी वाले है। अमेरिकन पुरुषो में दस मे से एक व्यक्ति के पेट मे फोडा (Stomach Ulcer) पाया

जाता है । छह मे एक व्यक्ति पुरुषत्व शक्ति हीन (Sterile) है ।

अमेरिका के समान सम्पत्ति शाली देश ब्रिटेन भी है । छह मे एक व्यक्ति के शरीर मे कैसर रोग हो जाता है । ब्रिटेनवासी अधिक मोटापन (Obesity) से सामान्यतया ग्रस्त पाये जाते है । उनके दातो की स्थिति भी बहुत खराब होती है ।

'In America recorded suicides average somewhere between twenty two and twenty five thousand annually or one suicide every 26 minutes The total suicides in United States is 40,000 yearly.

In America the incidence of diabetes is increasing More than seven million Americans have arthritis One of ten supposed healthy, has a stomach ulcer One of six is sterile

In Britain one in five will develop cancer Britons suffer in general from obesity and wretched dental conditions"

इस प्रकार भौतिक दृष्टि से समृद्ध राष्ट्रो की स्थिति है । मास भक्षण मद्यपान आदि क्रूरता पूर्ण कार्यों मे निमग्न रहने वाले व्यक्तियो, समाजो अथवा राष्ट्रों की स्थिति आन्तरिक व्यथाओ से पूर्ण होना स्वाभाविक बात है । बहिर्मुख (Extrovert) होकर निरतर शरीर तथा इन्द्रिय सुख मे उलझे व्यक्तियो को सच्चे आनन्द का दर्शन नहीं होता ।

मार्गदर्शन

पाश्चात्य प्रख्यात विद्वान् टायनबी (Toynbee) ने बडी मार्मिक बात कही है । "पाश्चात्य जगत् अब बहिर्मुखी जीवन बिताता है । भौतिक अर्थो मे हम बहुत सम्पत्तिवान हो गये है, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से हम दरिद्र है । समय आ गया है अब हमे धर्म की ओर मुडना चाहिए । धर्म का अभिप्राय अन्तर्मुखी जीवन है ।" उन्होने यह लिखा है "पाश्चात्य जगत् ने ध्यान-योग की शक्ति खो दी है । मध्य युग मे ऐसे सन्त होते थे, जो देखने मे बेकार लगते थे, किन्तु आध्यात्मिक अर्थो-मे वे सक्रिय जीवन बिताते थे ।" (कादम्बिनी १९७० अप्रेल)

सच्चा आनन्द

यथार्थ मे देखा जाय तो सच्चा आनन्द वहा मिलेगा जहा व्यक्ति

आध्यात्मिक विकास की ओर प्रयत्नशील होगा। इस अपेक्षा से शास्त्रानुसार जीवन को समुज्ज्वल बनाने वाले दिगम्बर जैन मुनि का जीवन आदर्श रूप है। श्री विनोवा ने "पूजा गीत-एक चिन्तन" पुस्तक मे रवीन्द्र की कविताओ के विषय मे लिखते हुए एक भारतीय सत के बारे मे आख्यान दिया है। सिकन्दर ने भारत पर कब्जा कर लिया। उसे एक फकीर मिला सिकन्दर ने पूछा "दुनिया का बादशाह कौन है ?"

फकीर ने उत्तर दिया, "जिसके साथ आप बात कर रहे है वह है।"

वास्तव मे साधु की श्रेष्ठता सर्वमान्य है, किन्तु करोडो में एक व्यक्ति कठिनता से उस आध्यात्मिक शैल के शिखर पर जाता हुआ पाया जायेगा। जन साधारण का कल्याण उस साधुत्व की अभिवदना करते हुए उनके करुणामयी मार्ग दर्शन के अनुसार वासना विजय की ओर अपनी क्षमता तथा परिस्थिति के अनुरूप आचरण करना है। बाईबिल मे ईसा ने कहा है—"Blessed are the merciful for they shall obtain mercy"—New testament" करुणाशील व्यक्ति सुखी है, क्योकि उन पर करुणा की जावेगी।

कार्य संलग्न

आचार्य देशभूषण महाराज सदा कार्य मे संलग्न रहे आते है। शास्त्राभ्यास तथा तत्व चिन्तन उनकी आदत हो गई है। इस प्रवृति का लक्ष्य मनोजय है। यदि मन पर नियत्रण न किया गया तो क्षण भर मे साधु मानसिक मलिनता द्वारा कुपथगामी हो जाता है। अनगार धर्मामृत में कहा है।

> त्र्यहादवैयाकरणः किलैकाहादकार्मुकी।
> क्षणादयोगी भवति स्वभ्यासोपि प्रमादतः॥

तीन दिन पर्यन्त सूत्रो का पाठ न होने पर व्याकरण का पंडित अवैयाकरण हो जाता है अर्थात् वह सूत्र पाठ मे भूल सकता है, एक दिन भी अभ्यास न करने पर धनुर्वेत्ता अकार्मुकी बन जाता है अर्थात् उसे एक दिन अभ्यास बन्द नही करना चाहिए। भली प्रकार अभ्यास करने पर प्रमाद वश योगी क्षण भर मे अयोगी सिद्ध हो जाता है। मानसिक चचलता क्षण मे कुपथ से योगी को गिरा देती है सूक्ति है—

मन सब पर असवार है, मन के मते अनेक।
जे मन पर असवार हैं, वे लाखन मे एक॥

मन की करामात

यदि मन पर नियन्त्रण करने की परम कला प्राप्त हो जाय, तो सहज ही आत्मा जिनेन्द्र हो जाती है। उत्तर पुराण मे एक महत्त्वपूर्ण कथा आई है, उसने यह बात अवगत होती है कि क्षण भर मे मन क्या-क्या करामात दिखाता है। श्रेणिक महाराज विपुलाचल पर भगवान महावीर के समवशरण मे जा रहे थे। मार्ग मे उन्होंने एक क्षीणकाय तेजस्वी मुनि का दर्शन करके प्रसन्नता का अनुभव किया। विपुल गिरि पर पहुच कर उन्होंने गौतम गणधर से मुनिराज की चर्चा चलाई और कहा उनके दर्शन से मैं प्रभावित हुआ हू किन्तु उनके मुख पर कुछ विकार भाव—'विकृतानन' मैंने देखे, यह क्या बात है?

मन पर्ययज्ञानी गौतम स्वामी ने कहा, "श्रेणिक वह मुनि रौद्रध्यान के चक्कर मे फस गया है, यदि ऐसा ही हाल रहा, तो वह कुगति मे जावेगा, तुम शीघ्र जाकर मुनिराज को सबोधित करो।

श्रेणिक महाराज ने तुरन्त नीचे आकर उन मुनिराज की स्तुति करते हुए कहा, "हे धर्म रुचि महाराज, आप धन्य हो, आप अपनी आत्मा को विकारी भावो से दूर रखिए।"

उन पवित्र निमित्त को पाकर उनका मन ठिकाने पर आ गया। वे पहले राजा थे। उत्तराधिकारी अपने पुत्र को राज्य पद देकर मुनि बने थे। शत्रु ने राज्य पर चढाई कर दी थी। इसको सुनकर धर्मरुचि महाराज मोह-रुचि होकर मानसिक युद्ध भूमि मे विचरण कर रहे थे तथा अपने कल्पना जगत मे उन्होंने शत्रु को जीत लिया था, उस क्षण मे श्रेणिक महाराज के शब्द कान मे पडे। तत्काल मोहान्धकार दूर हुआ। क्षपक श्रेणी पर चढ कर उन्होंने कुछ ही क्षणो मे केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया तथा राजा श्रेणिक को धर्म रुचि केवली भगवान की पूजा का सुयोग मिल गया। इससे यह स्पष्ट हो जाता है, कि चचल मन क्या क्या तमाशा नही दिखाता है। परमात्म प्रकाश मे कहा है।

पचहि णायक वस करहु जेण होइ वस अण्णु।
मन विणट्ठहि तरुवरहि अवसहि सुक्कहि पण्णु॥

पाचो इन्द्रियो के स्वामी मन को वश में करो। इससे सभी वश में हो जाते है। वृक्ष की जड के नष्ट हो जाने पर उस वृक्ष के पत्ते स्वयमेव सूख जाते है।

मन को विशुद्ध बनाने मे सदा शास्त्राभ्यास उपयोगी है। अभीक्ष्ण (सतत) ज्ञानोपयोग के रहने पर तीर्थकर की पदवी प्राप्त होती है। अनगार धर्मामृत मे कहा है—

श्रुत सस्कृतं स्वमहसा स्वतत्त्वमाप्नोति मानसं क्रमशः।
विहितोप परिस्वंगं शुद्धयति पयसा न किं वसनम् ॥३-३॥

श्रुत अर्थात् शास्त्र के द्वारा सस्कृत (स्वच्छ) हुआ मन स्व सवेदन के द्वारा क्रमश आत्म तत्त्व को इस प्रकार प्राप्त कर लेता है, जिस प्रकार खारी मिट्टी (सोडा) द्वारा सयुक्त वस्त्र जल के द्वारा स्वच्छता को प्राप्त होता है। पूज्यपाद स्वामी ने समाधि शतक में कहा है—

अविद्याभ्यास-संस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः।
तदेव ज्ञान संस्कारैः स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते ॥३७॥

अविद्या के अभ्यास युक्त सस्कारो के कारण मन वश मे नही रहता है, वही मन ज्ञान के सस्कारो के द्वारा स्वय स्थिर हो जाता है।

आचार्य देशभूषण महाराज ने इस रहस्य को समझ लिया है कि मन को सतत स्वच्छ रखने के लिए उसे सत्प्रवृत्तियो मे सलग्न रखना चाहिए और प्रमाद के पक मे नही फँसने देना चाहिए। महान् कवि मिल्टन ने कहा है।

Mind can make heaven of hell
And hell of heaven

पावन प्रवृत्ति

मानसिक चितन नरक को स्वर्ग रूप मे तथा स्वर्ग को नरक रूप मे परिणत कर देता है। आचार्य देशभूषण महाराज का आध्यात्मिक विकास अधिक होता जा रहा है। मैने देखा, उनके समीप बहुत समय तक बैठने पर भी वे निरुपयोगी बात नही कहते। विकथाओ से दूर रहते है। वृद्धावस्था के कारण शरीर पर रोगो का आक्रमण आरभ हुआ है, फिर भी वे धर्म ध्यान मे सतत् सावधान रहते है तथा भगवती भारती की समाराधना मे सलग्न रहते है। ये वाहरी चिताओ के चक्कर मे नही फसते है। आगम के

अनुसार प्रवृत्ति हेतु उद्योग करते है। निकृष्ट काल, हीन सहनन, पापियों तथा पापो की वृद्धि के युग मे सच्चे जैन दिगम्बर मुनिराज आत्म साधन मे रहे आते है।

सच्चे पुरुषार्थी

साधु का जीवन सच्चे पुरुपार्थ की मूर्ति रूप होता है। ये दैव की कृपा पर अपनी जीवन नौका को नही छोडते है। इनका सयम शील जीवन तथा विशुद्ध श्रद्धा दुर्दैव का क्षय करती है। ये स्वय अपने भाग्य का निर्माण करते है। ऐसे सत्पुरुपो को लक्ष्य कर एक मुस्लिम शायर कहता है।

खुदी को कर बुलन्द इतना कि खुदा।
खुद बदे से पूछे बता तेरी रजा क्या है ?

दिगम्बर मुद्रा को धारण कर पूर्णतया स्वावलम्वी तथा पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले महापुरुष का जीवन धन्य है।

फकीरी की इंतिहां है तन की उरयानी।
इसके जरिए ही बंदा खुदाई जलवा पाता है ॥

आचार्य रत्न देशभूषण महाराज के चरणो को मनसा, वाचा, कर्मणा प्रणाम है।

गुरु की महिमा वरनी न जाय गुरु नाम जपो मन वचन काय।

श्रद्धा के सुमन

१०८ आचार्य धर्मसागर महाराज

आचार्य रत्न श्री देशभूषण जी महाराज द्वारा लिखित भगवान् महावीर और उनका तत्त्वदर्शन नामक ग्रथ का विमोचन हो रहा है। यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई। अध्यात्म प्रधान इस भारत वर्ष मे बढ़ती हुई हिसा और अनैतिकता का अर्थात मत्स्य उत्पादन, मुर्गीपालन, मास भक्षण, भ्रष्टाचार आदि पापप्रवृत्तियो का निर्मूलन हो। राज्य के पदाधिकारी से लेकर सामान्य जन तक अपने आचरणो मे अहिसा को धारण करे। आचार्य देशभूषण जी महाराज द्वारा चिरकाल तक इस अनादि निधन पवित्र जैन धर्म की प्रभावना हो, यही हमारी शुभकामना है।

धर्मप्रभावक श्री विद्यानन्द मुनि महाराज

जनप्रिय १०८ पूज्य मुनि विद्यानन्द जी महाराज ने अपने गुरु आचार्य रत्न श्री देशभूषणजी महाराज के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए भगवान से प्रार्थना की है कि उनके द्वारा सम्पूर्ण जीवो का कल्याण हो तथा धर्म की रक्षा होती रहे।

१०८ मुनि श्री ज्ञानभूषण जी

परम पूज्य आचार्य रत्न श्री १०८ देशभूषण जी महाराज ने जय-सिंगपुर मे मानस्तम्भ की प्रतिष्ठा के अवसर पर क्षुल्लक पद से ऊँचा बनाकर मुनि दीक्षा देकर मुझे कृतार्थ किया। आचार्य श्री के द्वारा धर्म की अपूर्व प्रभावना हुई। उनके चरण कमलो का हमारा त्रिकरण शुद्धि पूर्वक त्रिवार नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु।

ऐलक कुलभूषण महाराज मु० ऐनापुर (कर्णाटक)

आचार्य श्री देशभूषण महाराज ने अपने जीवन मे धर्म प्रभावना के महान् कार्य किये तथा कर रहे है। वे इस बीसवी शताब्दी के युग पुरुष हो गये है। आगे भी धर्म प्रभावना तथा तपश्चर्या करते हुये इस देश के भव्य जीवो का कल्याण करते रहे तथा चिरकाल तक जीवित रहे ऐसी अनन्य भाव से श्री जिनेश्वर चरणकमलो मे मेरी प्रार्थना है।

•

क्षु० अजितमती माता जी

आचार्य महाराज क्षमावान् परोपकारी धर्मप्रेमी, दयालु दु:खियो का उद्धार करने वाले तथा ससार समुद्र से पार लगाने वाले महापुरुष है। उनके द्वारा हमे यह पवित्र दीक्षा मिली। गुरुवर का सत्सग सतत मिलता रहे, वे दीर्घायु हो, ऐसी हमारी कामना है। उनके चरणो मे हमारी श्रद्धाजलि है।
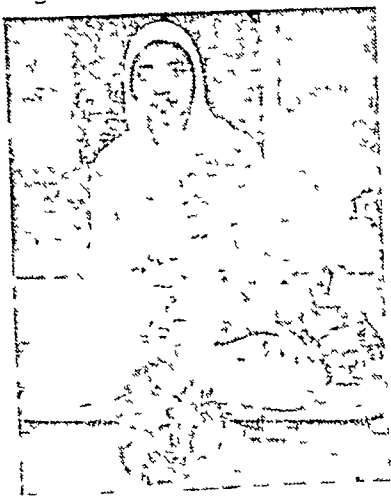
आर्यिका ज्ञानमती माता जी, दिल्ली

आचार्य श्री १०८ देशभूषण जी महाराज ने अनेक स्थानो को तीर्थ स्वरूप बना दिया। कोथली मे जगल मे मगल करा दिया। आपने २२वर्ष पूर्व बाराबकी (उ० प्र०) मे मेरी आत्मा का कल्याण किया। आपने मेरी दीक्षा के प्रसग को लेकर बाराबकी मे मोही जीवो को अपनी मधुर वाणी से शान्त किया था तथा छ माह के अन्दर श्री महावीर जी अतिशय क्षेत्र पर १८ वर्ष की लघु वय मे क्षुल्लिका दीक्षा प्रदान कर मुझे कृतार्थ किया था।

आचार्य श्री मे उदारता, गभीरता, कोमलता, कार्यकुशलता, क्षमाशीलता आदि अनेक गुण भरे हुये है। आपने अपने ५० वर्षीय दीक्षित जीवनकाल मे देश के कोने २ मे भ्रमण कर जो जैन धर्म का डका बजाया, वह अविस्मरणीय है। आपके धर्मोपदेश से स्थान २ पर जो कार्य हुये उनकी गणना कठिन है। आपने मेरे सदृश अनेको पर अनन्त उपकार किये है, जिससे इस जन्म मे तो क्या जन्मान्तर मे भी उऋण होना शक्य नही है।

पूज्य गुरुवर चिरकाल तक इस पृथ्वी पर धर्मोपदेश देते हुये भव्य जीवो को मोक्ष मार्ग पर लगाते रहे यही मगल कामना है। मै यही चाहती हू कि ससार समुद्र से पार होने के लिये आपका शुभाशीर्वाद सदा प्राप्त होता रहे। शतश त्रिकाल नमोस्तु।

क्षुल्लक बाहुबली महाराज

गुरुदेव परमपूज्य आचार्य देशभूषण महाराज का व्यक्तित्व दिव्यता सम्पन्न है। देहली १९६५ मे जो विश्व धर्म महासम्मेलन हुआ था, उस समय लाखो जनता की दृष्टि इनके ऊपर जाया करती थी। अमेरिका के प्रोफेसर डा० कोपलेड नामके विद्वान पादरी ने अमेरिका से प्रेषित एक पत्र मे लिखा था कि भारत वर्ष मे उन्हे १०८ आचार्य देशभूषण महाराज के दर्शन का सौभाग्य मिला था। वे उनके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित थे।

आचार्य की फोटो भी अपना अदभुत स्थान रखती है। श्रमणबेलगोला के १९६७ के महाभिषेक महोत्सव को दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्ति के पश्चात् ये कोल्हापुर तरफ लौटते हुए आ रहे थे। रास्ते मे कारवार जिले के समीप एक स्थान मिला। उस ग्राम के आगे भयकर जगल था। सघ ने रात्रि को उस ग्राम मे रुकने का निश्चय किया, किन्तु वहा विशाल सघ के ठहरने को स्थान का अभाव था।

सघ का एक व्यक्ति उस स्थान पर नियुक्त पुलिस के अधिकारी के पास गया। उसने महाराज श्री की फोटो देखी तथा यह देखा कि भारत का दिवगत प्रधान मत्री लाल बहादुर शास्त्री जैसा प्रमुख व्यक्ति उनको प्रणाम कर रहा है, तब उसे तुरन्त अपने निवास के स्थान को खाली किया, और सघ की ऐसी व्यवस्था की, मानो कोई गुरुभक्त जैनी ऐसा काम कर रहा हो। सैकडो ग्रामवासी आ गए। रात भर लोगो का आना जाना रहा। इससे महाराज श्री रातभर चुपचाप बैठे ही रहे। उन्हे निद्रा लेने का भी अवकाश नही मिला। लोग कहते थे, स्वामी जी अच्छा दूध है, घी बढिया है, सुन्दर फल है, ग्रहण कीजिए। उनको बताया गया, ये महात्मा जीव रक्षा की दृष्टि से रात को कुछ भी नही खाते पीते है। गरीब लोग समीप मे आकर पैसा चढा रहे थे। पैसो का ढेर हो गया। प्रभात ही गुरुप्रसादरुप वह द्रव्य सभी ग्रामीणो को प्राप्त हो गया।

अनेक लोग अपने २ साधुओ को गुणगाथा गाते हुए अन्य साधु का समुचित मूल्याकन नही करते, किन्तु जब वे देशभूषण जी महाराज को साधु समुदाय के बीच अपने तपोमय, पवित्र व्यक्तित्व से समलकृत देखते है तथा इनकी अमृतवाणी को सुनते है तो उन्हे यह स्वीकार करना पडता है कि वास्तव मे ही साधुओ तथा आचार्यो के मध्य मे आचार्यरत्न का अत्यन्त गौरव पूर्ण स्थान है। उन गुरुदेव के चरणो को शतश वदन।

स्वामी श्री पार्श्वकीर्ति जी महाराज

जैन मठ मूड़विद्री (कर्नाटक)

श्री दयामूर्ति अध्यात्मप्रेमी **अनुपमत्यागी** बालब्रह्मचारी स्वपरोपकारी स्वस्ति श्री जैनश्रमणशिरोमणी आचार्यरत्न शान्ति सुखदायी तत्वोपदेशी पूज्य १०८ श्री देशभूषण सार्थक नाम से शोभित महाराज है।

दीर्घकाल से हम आप के व्रतनिष्ठादि मुनियोग्य रत्नत्रय धर्म से परिचित है। आप ने अयोध्या कोल्हापुर कोथली आदि अनेक स्थानो मे बडी बड़ी जिनमूर्ति तथा जिनमन्दिर और लौकिक पारमार्थिक विद्यासस्थाओ को निर्माण कराकर जैन धर्म की विशेष प्रभावना की है। इतना ही नही उत्तम लेख लिख कर साहित्य को प्रकाशित कराया।

आप शतायु होकर जैन धर्म की प्रभावना करके सुख शान्ति से रहे यह १००८ भगवान् जिनेद्र देव से अनन्य भक्ति से प्रार्थना है। महान सौभाग्य की बात की आचार्यवर्य का पुण्य जोवन सत्य अहिसादि गुणो से शोभित है। ऐसा गुण हमे भी प्राप्त होने के लिए उनके पुण्य चरण—कमलो मे हम दोनो हाथो को मुकुली कर और मस्तक पर रखकर विशाल भक्ति से नमस्कार करते है॥

संघस्थ १०५ माता अनंत मतीजी

१०८ आचार्य देशभूषण महाराज के सानिध्य मे रहने से मेरा महान् हित हुआ है। उनके प्रवचनो से बडा लाभ होता है। ऐसे महान गुरु के चरणो का शरण हमे सदा प्राप्त होता रहे, ऐसी भगवान से प्रार्थना है। उनके चरणो मे मेरी विनम्र श्रद्धाजलि है।

ब्रह्मचारिणी माणिक बाई
तथा
ब्रह्मचारिणी पद्मा बाई (संघस्थ)

पूज्य आचार्य देशभूषण जी महाराज के चरणो मे हमे बीस वर्ष से रहने तथा उनको आहार दान देने का पुण्यमय सौभाग्य मिला है। उनकी आत्मा रत्नत्रय धर्म से प्रकाशमान है। पूज्य आचार्य महाराज के चरणो मे हमारी श्रद्धाजलि है।

१०५ विदुषी श्री क्षुल्लिका राजमतीजी
(सब्जी मंडी, देहली)

रत्नत्रयपुनीतो यो वीतरागो महामुनिः ।
आबाल्य-ब्रह्मचारी च नवयौवन-दीक्षितः ।।१।।
बोधनेन सुभव्याना मुक्तिमार्ग-प्रदर्शकः ।
अनेक-भाषया-नेक-ग्रन्थानामनुवादक ।।२।।
देश-शिरोमणिः ख्यात सूरि श्रीदेशभूषणः ।
षडधिक-सप्ततेश्च वर्षवर्धने महोत्सवे ।।३।।
दधे श्रद्धाजलि तस्य भूयादायु शत समम् ।
त नमामि च मद्गुरोः शिष्याग्रेश्वर मुदा ।।४।।
मोक्षमार्ग-महाविद्या-सपन्ना भुवि विश्रुता ।
नाम्ना राजमती ख्याता क्षुल्लिका-पदधारिणी ।।५।।

१०८ परमपूज्य तपोनिधि विद्यालंकार से भूषित बालब्रह्मचारी वीतराग दिगबर आचार्यरत्न श्री देशभूषण मुनिराज है। ससार मे आपने मनुष्य पर्याय की जीवनयात्रा को निष्कटक निराकुल सुखमयी बनाई और अपनी आत्मा का उत्थान किया। गृहस्थजीवन में बाल्यावस्था में ही साधुसतो के सदुपदेश के सस्कार से गृहबन्धन रूप, या विवाहबन्धनरूपी बन्दिश मे नही फसकर अपने जीवनोत्थान की ओर सदा सन्मुख रहे ।

काल-लब्धि की प्रवलता से वालब्रह्मचारी रहकर नवयौवन मे ही १८ वर्ष की आयु मे अपने दीक्षागुरु १०८ आचार्यरत्न, ज्ञानतपोनिधि जय-कीर्ति मुनिराज से कुथलगिरि मे जैनेश्वरी दीक्षा धारण की।

सर्वतोभद्र, सिंहनिष्क्रीडित आदि व्रत के प्रभाव से अपनी आत्मा मे शाति और शुद्धि को प्राप्त किया।

आपने अयोध्यानगरी, जयपुर, कोल्हापुर, कोथली आदि स्थानो में विशाल मदिरो का निर्माण कराकर पचकल्याणक पूर्वक प्रतिमा स्थापित कर भव्यजीवो का उद्धार किया।

आपको नौ भाषाओ का ज्ञान है। आपने आर्षप्रणीत कठिन कठिन ग्रन्थराजो को अनेक सरल भाषा मे अनुवादित कर भव्यजीवो के मोहबंधन से मुक्त होनें का ज्ञान कराया।

आपके उपदेश से मुग्ध होकर वडे-वडे राजा लोग भी आपके चरणो मे नत मस्तक होकर मास, शराव आदि का त्याग कर आपके चरणसेवक वन गये। यह आपकी अंतःशुद्धि वीतराग परिणति का प्रभाव है।

आपने अनेक देशो मे विहार करके जैन, जैनेतर लोगो मे भी जेनधर्म का प्रभाव डाला, प्रवर्त्तमान भगवान महावीर तीर्थंकर की २५वी शताब्दी के महोत्सव में सवसे अग्रेसर, मुख्य नेता है। और सर्व मान्य विद्वान आचार्य है।

आपके गुण कितना भी वर्णन करे तो भी थोडा ही है।

आज आपका ७६ वर्ष की वर्षवर्धन-महोत्सव मनाया जा रहा है। २० मुनिराज, अनेक क्षुल्लक अर्जिकाऐ क्षुल्लिकाऐ, देहली आदि अनेक स्थानो से आये हुए भव्यात्मा उपस्थित हैं सचमुच यह दृश्य विदेह क्षेत्र की उपमा दे रहा है आप अपने सदुपदेश के द्वारा भव्यजीवो का ससार से उद्धार करे। देश २ मे अहिसा धर्म का प्रचार करे। शत वर्ष तक चिरजीवी रहे इस प्रकार आपको षडधिक-सप्तति-वर्षवर्धन-महोत्सव मे दिल्ली लाल मदिर मे श्रद्धाजलि देते हुए, अपने लेखन से विराम लेती हू।

१०५ श्री क्षुल्लिका विदुषी राजमती जी
(मैसूर स्टेट सालिग्राम जन्मभूमि)

१०५ श्री क्षुल्लिका राजमती बूछाखेड़ा जन्मभूमि

स्वस्ति श्री बालब्रह्मचारी विद्यालंकार अध्यात्मयोगी प्रात:स्मरणीय परमपूज्य १०८ आचार्यरत्न श्री देशभूषण गुरुवर्य को बार २ नमस्कार करती हूं।

आपके गुण वर्णन करना सूर्य के सामने दीपक दिखाना है। तो भी भक्ति से प्रेरित होकर अल्परूप से वर्णन करूँगी।

आपने भव्य जनता के कल्याण के वास्ते महानपुनीत तीर्थकरो की जन्मभूमि अतिशय क्षेत्र, सुकौशल देश की राजधानी अयोध्या-नगरी मे मनोहर वृषभोद्यान मे महाकाय ३३ फुट उत्तुग महामनोज्ञ १००८ आदिनाथ तीर्थंकर भगवान की नूतनप्रतिमा बनवाकर, नूतन जिनमदिर बनवाकर उसमें भगवान को पचकल्याणक विधिपूर्वक स्थापित कराया। जो भव्यजीवो के मनको वीतराग-परिणति की तरफ आर्कषित करती हैं। अगल बगल मे भरत बाहुवलि की प्रतिमाये भी, चक्री भरतराज की तथा कामदेव बाहु-वलिजी की याद दिलाती है ऐसी पुण्यभूमि का पुनरुत्थान कराया।

इसी तरह महाराष्ट्र की प्रसिद्ध नगरी कोल्हापुर में दीर्घकाल से प्रचलित भट्टारको के मठ के स्थान पर २४ फुट की आदिनाथ भगवान की प्रतिमा स्थापित कराई।

उसी मदिरजी की पचकल्याणक प्रतिष्ठा मे चार वर्ष पूर्व से ही आप मुझे अनबोध १६ वर्ष की बाल्यावस्था मे ही माता पिता, भाई बन्धु वर्ग के मोह से छुड़ाकर मेरी जन्मभूमि "बूछाखेडा" ग्राम से अपने साथ लाये थे। अपने सान्निध्य मे रखकर सब तरह से दृढता की परीक्षा की संस्कृत, व्याकरण, सर्वार्थसिद्धि, जीवकाड आदि सिद्धात ग्रन्थो का अध्ययन कराया। अज्ञानी को सुज्ञानी बनाया। मोक्षमार्ग मे तपश्चरण करने के सुयोग्य बनाया। आपके प्रताप से ही सुयोग्य बनी हू।

कोल्हापुर के आदिनाथ भगवान के पंचकल्याणक के समय आत्मा की कल्याणकारक क्षुल्लिका दीक्षा देकर मुझे कृतार्थ बनाया। मेरा नाम राजमती रखा, विद्या का प्राप्त करना, चारित्र में दृढ रहना बालब्रह्मचारिणी

होना यह सब आपके आश्रय से ही हुआ। आपके प्रताप से मुझे ज्ञानचरित्र की स्थिरता हुई। इस प्रकार आपने मुझे स्त्रीलिंग छेदने का मार्ग बताया। इसलिये आपकी चिरऋणी हूं।

राजस्थान की राजधानी जयपुर के खानिया मे "चूलगिरि पर" पार्श्वनाथ मदिर नूतन कराया। सचमुच मे योगियों को तपश्चरण करने को बुला ही रहा हो ऐसा मनोज्ञ मदिर बनवाया।

कोल्हापुर स्टेट आपकी जन्मभूमि कोथली मे मदिर मानस्तम्भ, गुरुकुल का भी निर्माण कराया जगल मे मंगल बनाया। आर्षप्रणीत अनेक ग्रन्थो को अनेक भाषा में सुचारु रुप से सरलापूर्वक अनुवाद आपने किया। इन सब कार्य में आपने मुझे सुयोग्य समझकर धन एकत्र कराने का कार्य सौंपकर मुझे भी पुण्य भागिनी बनाया। आपके आज्ञानुकूल मैंने उत्तमकार्य के लिये धन सहायता कराना अपना अहोभाग्य समझकर लक्षांतर रुपये की सहायता कराई। यह सब आपकी कृपा से ही मैंने कराया। आपके सान्निध्य मे रह कर ही इतनी बुद्धि धैर्य प्राप्त हुआ। ऐसे कल्याणकारक सद्गुरू शताब्दि तक चिरजीव रहे धर्म का प्रचार करें इस प्रकार ७६ वर्ष वर्षवर्धन महोत्सव के समय आपको श्रद्धांजलि देते हुए अपने लेखन से विराम लेती हूं।

श्री क्षुल्लिका राजमती जी
(जन्मभूमि बूछाखेडा निवासी)

○
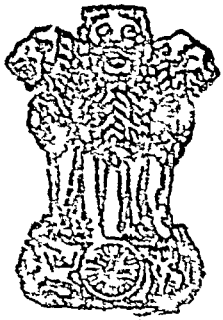
सत्यमेव जयते

उप राष्ट्रपति, भारत
नई देहली
VICE-PRESIDENT
INDIA
NEW DELHI

नवम्बर ७, १९७४

प्रिय महोदय,

आपका पत्र दिनाक ३ अक्तूबर, १९७४ को प्राप्त हुआ, धन्यवाद।

यह खुशी की बात है कि श्री देशभूषण जी महाराज के जीवन चरित्र पर आधारित एक पुस्तक प्रकाशित होने जा रही है। मै आपकी इस पुस्तक की सफलता के लिये अपनी शुभ कामनाये भेजता हू।

आपका,
(ब० दा० जत्ती)

भूतपूर्व उपराष्ट्रपति श्री गोपालस्वरूप जी पाठक

मै जैन मित्र मडल का आभारी हू कि उन्होने मुझे आमन्त्रित किया, जिससे मै परमपूज्य योगी आचार्य रत्न श्री देशभूषण जी महाराज जैसे बडे व्यक्ति और त्यागी के दर्शनकर सका तथा उनके प्रति अपनी श्रद्धाजलि भेट कर सका। मै उनके 'भगवान महावीर और उनका तत्त्वदर्शन' महान् ग्रन्थ का विमोचन कर रहा हू। आगे हम भगवान् महावीर का निर्वाणोत्सव मनायेगे।

महावीर भगवान ने जो उपदेश दिया था उससे विश्व मे शान्ति रहेगी। वे अखिल विश्व के थे। हम सब पर उनके जीवन का प्रभाव पडा है। भगवान के उपदेश अहिसा और त्याग के थे। आज के विश्व को शान्ति तब मिलेगी जब हम भगवान् महावीर के बताये हुए सिद्धान्तो को समझेगे और उस पर अमल करेगे। ग्रन्थ पढ लेना और उपदेश सुन लेना काफी नही है। उनके उपदेशो को जीवन मे लाने का प्रयत्न करना चाहिये। महावीर और उनका तत्त्वदर्शन ग्रन्थ बहुत ठोस कार्य कर सकता है तथा हमारे हृदय मे परिवर्तन कर सकता है। और इससे हमारा देश आगे बढ सकता है।

केदारनाथ साहनी
महापौर, दिल्ली

यह प्रसन्नता का विषय है कि जैन धर्म के श्रेष्ठ परमहस सत, शिरोमणि बाल ब्रह्मचारी महान योगिराज १०८ आचार्य रत्न श्री देशभूषण जी महाराज का पावन जीवन चरित्र प्रकाशित किया जा रहा है। भारत के प्राचीन ऋषियो और मुनियो ने देश की सस्कृति के विकास मे जो योगदान दिया उसके लिए आज भी भारतवर्ष प्राचीन एव वर्तमान ऋषियो और मुनियो का कृतज्ञ है। आचार्य जी बहुत वडे साहित्यकार है और उनके द्वारा किये गये अनेको ग्रन्थो का अनुवाद आज के जैन समाज को एक देन है।
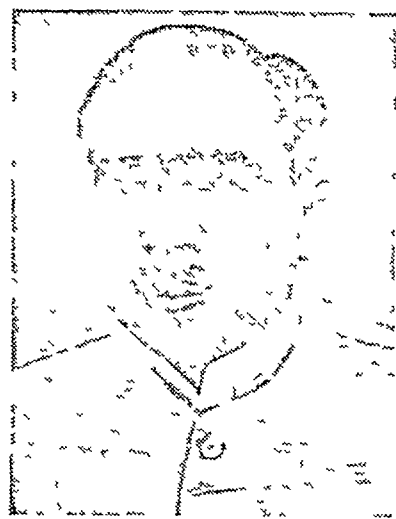
मुझे विश्वास है कि साधुराज के पावन चरित्र से उनके अनुयायी और हम सब प्रेरणा लेकर अपने जीवन मे अनुशासन, सच्चरित्र व अध्यात्मिक विकास का मार्ग अनुग्रहण करेगे।

शुभकामनाओ सहित।

श्री प्रकाशचन्द सेठी, मुख्य मंत्री, मध्यप्रदेश

आध्यात्मिक सत आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज के ७० वर्षो के त्यागपूर्ण और तपोमय जीवन को लिपिवद्ध कर उसे प्रकाशित करने का जो सकल्प किया गया है, वह श्लाघनीय और स्तुत्य है।

जैन आध्यात्मिक सतो की परपरा मे आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज का विशिप्ट स्थान है। उन्होने अपनी वाणी तथा कर्म द्वारा जैन धर्म के महान सिद्धातो और आदर्श जीवन पद्धति की श्रेष्ठता तथा युग के अनुरूप उनकी उपयोगिता को प्रतिपादित किया, साथ ही जैन दर्शन और सिद्धांतो की विस्तृत विवेचना कर अनेक विद्वतापूर्ण ग्रथो की रचना की।

भगवान महावीर स्वामी के २५०० वे निर्वाण वर्प के अवसर पर आचार्य श्री के पवित्र और अनुकरणीय जीवन चरित्र का प्रकाशन निश्चय ही जैन सिद्धातो और उसकी उच्च परस्पराओ की ओर जनमानस को आकृष्ट करेगा। श्री सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर शास्त्री की यशस्वी लेखनी का सहयोग इस प्रकाशन की वोधगम्यता मे वृद्धि करेगा।

जैन धर्म मे कर्म सिद्धात पर सवसे अधिक वल दिया गया है और इसी कारण आचरण, व्यवहार, और मन वचन और कार्य द्वारा, काय की शुचिता को सवसे प्रमुख माना है। भगवान महावीर के २५०० वे निर्वाण वर्प मे यदि हम उनके आदर्शो को किंचित् भी अपने जीवन मे उतार सके तथा श्री देशभूषण जी महाराज के त्यागपूर्ण तथा तपोमय जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर सके तभी इन आयोजनो की सार्थकता है।

मै महाराज श्री के प्रति अपनी भक्तिपूर्ण श्रद्धाजलि अर्पित करते हुये उनके यशस्वी और दीर्घ जीवन की कामना करता हू।
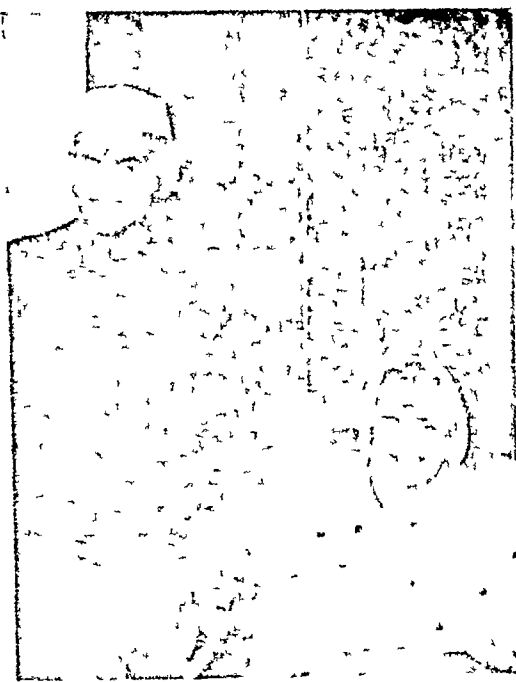
श्रीमती ललिता जी (धर्मपत्नी स्व० प्रधान मंत्री लालबहादुर जी शास्त्री)

यह प्रसन्नता की बात है कि श्री आचार्य देशभूपण जी महाराज का मगलमय जीवन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है ।

श्री देशभूषण जी महाराज ने अपने प्रारम्भिक जीवन से ही जिस त्याग, लगन व निष्ठा से जनमानस को सन्मार्ग पर चलने एव सत्कर्म करने की प्रेरणा दी, वह एक आदर्श है। आशा है कि इस ग्रन्थ के माध्यम से उनकी सम्पूर्ण जीवनी व उपदेशो की जानकारी प्राप्त कर अत्यधिक लोग लाभान्वित होगे ।

ताशकन्द जाने से पूर्व श्री शास्त्रीजी जैन मित्र मडल के विशेष आग्रह पर श्री देशभूषण जी महाराज के जयन्ती उत्सव मे सम्मिलित हुए थे । उनके विचारो एव जनता को उनके प्रति असीम प्यार को देखकर शास्त्री जी प्रसन्न हुए थे ।

मैं श्री आचार्य देशभूषण जी महाराज की दीर्घायु की कामना करते एहु ग्रन्थ के सफल प्रकाशन के लिए अपनी शुभकामना भेजती हू ।

○

मोहनलाल सुखाड़िया राज्यपाल कर्नाटक

३ सितम्बर १९७४

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि बाल ब्रह्मचारी योगेन्द्र चूडामणि श्री पूज्य देशभूषण जी महाराज अपने त्याग तथा तपोमय जीवन के ७० वर्ष पूरे करके इस वर्ष दिल्ली मे चातुर्मास मना रहे है। महाराज श्री ने अपनी त्याग और तपोमय सेवा से देश का आध्यात्मिक उत्थान किया है और देश के अध्यात्मिक सतो मे उनका विशिष्ट स्थान है। इस पवित्र अवसर पर उनका जीवन चरित्र आध्यात्मिक ग्रथ के रूप मे प्रकाशित किया जा रहा है, यह जानकर सन्तोष हुआ । महाराजश्री को अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए मै यह आशा करता हू कि यह ग्रन्थ सफल हो ।

श्री रत्नप्पा कुंभार,
मिनिस्टर महाराट्र शासन कोल्हापुर

विकारो को दूर करके आत्मोत्कर्ष करते हुये विशिष्ट अतरग आचार-विचारो के साथ व बाह्य मे भी दुष्कर तपश्चरण के द्वारा जैन धर्म मे मोक्ष-प्राप्ति वतलायी है। यह साधना कठिन है। आज तक अनादिकाल से सैकडो हजारो सत मुनियो ने वह साधना की है और मोक्ष प्राप्ति की है। यह प्रणाली अक्षुण्ण चालू है।

वर्तमान काल मे भी दिगम्बर वनकर साधना करने वाले सत मुनीश्वर विद्यमान है। उनमे सत श्री १०८ आचार्य रत्न देशभूषणजी महाराज का अपना एक वैशिष्ट्यपूर्ण स्थान है। आपका जीवन भी एक साधना का जीवन है।

उनके उपदेश प्रवचनों का प्रभाव जिस प्रकार सामान्य लोगो पर पडता है,उसी प्रकार भारत के प्रमुख नेता गण मान्यवर राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन प्रधान मत्री प० लाल वहादुर शास्त्री, गृहमत्री गुलजारी लाल नदा आदि पर भी काफी मात्रा मे पडा है।

आचार्य महाराज के द्वारा आत्मोत्थान के साथ-साथ समयोचित और सामूहिक अभ्युत्थान के लिये जो सजग प्रयत्न हो रहे है, उनके लिये समाज और राप्ट्र महाराज श्री का अवश्य ही ऋणी रहेगा। इन महान् दिगम्बर जैन सत के चरणो मे नतमस्तक होता हुआ मै अपनी सद्भावनायें अर्पित करता हू।

दानवीर सर सेठ भागचन्द जी सोनी (अजमेर)

परमपूज्य, श्रमण शिरोमणि आचार्यरत्न श्री १०८ देशभूषणजी महाराज ज्ञान ध्यान तपोनुरक्त जीवन की मगल गाथा के प्रकाशन का मगल वृत्त अवगत कर अतीव प्रसन्नता हुई। आचार्यरत्नश्री की आध्यात्मिक दीपशिखा से आज समग्र धार्मिक जगत दैदीप्यमान है। उनका जीवोद्धारक विराट् व्यक्तित्व प्रेरणादायक तथा सन्मार्ग प्रकाशक है।

वालब्रह्मचारी तपोनिधि आचार्यरत्न श्री १०८ देशभूषण जी महाराज रत्नत्रय के जीवन्त स्वरूप है। सच्चारित्रनिष्ठता की प्रतिमूर्ति तथा अतीव विद्वान साधुराज है। अभी गत दिनो ही एक अद्वितीय ग्रथराज का प्रणयन आपने अहर्निश श्रम से किया है। भगवान महावीर स्वामी के २५००वे परिनिर्वाणोत्सव के पुण्य प्रसग पर आपके द्वारा अनेको प्रामाणिक ग्र थो का सम्पादन—प्रकाशन किया जा रहा है। निर्वाणोत्सव कार्यक्रमो मे आप आत्मसाधन के अतिरिक्त अपना समय प्रदान कर समाज का अतीव उपकार कर रहे है।

आचार्यरत्न श्रेष्ठ **वक्ता** है। आपकी **मर्मस्पर्शी वाणी** का श्रोताओ पर महान प्रभाव पडता है। आप स्वय मे एक सजीव सस्था है। समाज के लौकिक तथा पारलौकिक कल्याण के लिये अनेको सस्थाए आपके सदुपदेश से स्थापित हुई है। अनेक श्रेष्ठ अग्रगण्य पूज्य त्यागीराज आपके द्वारा दीक्षा प्राप्त कर आज जन जन का कल्याण कर रहे है। परमपूज्य श्री १०८ विद्यानन्दजी महाराज आपके विशिष्ट विद्वान शिष्य साधुराज है।

परमपूज्य आचार्यरत्नश्री का प्रथम दर्शन १९५९ मे कलकत्ता में करके मै कृतार्थ हुआ। तव से अव तक आपका पूर्ण आशीर्वाद प्राप्त करने का मुझे सौभाग्य मिला है। वाहुवली स्वामी के दर्शनार्थ श्रमणबेलगोला पधारते समय **आप अजमेर पधारे थे। तब आपका अजमेर में अभूतपूर्व स्वागत हुआ था।** धार्मिकजन आपके दर्शनो के लिये लालायित हो रहे थे। **हजारों जैनाजैन समूह के मध्य आपका कल्याणकारी उपदेश हुआ, वह चिरस्मरणीय रहेगा।**

परमपूज्य आचार्यरत्न जी का वरदहस्त चिरकाल तक समाज एव देश पर बना रहे, यही श्री १००८ वीरप्रभु से विनम्र प्रार्थना है।

ओजस्वी श्रमणराज के पावन चरणो मे शत शत प्रणाम।

साहू शान्तिप्रसाद जैन

पूज्य आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज ने जितनी मेरे पर कृपा
किसी और ने नहीं करी। किसी और पर भी इतनी ही कृपा
[illegible] विषय में महाराज जानें।

पूज्य महाराज के चरणों में शत शत वन्दन।
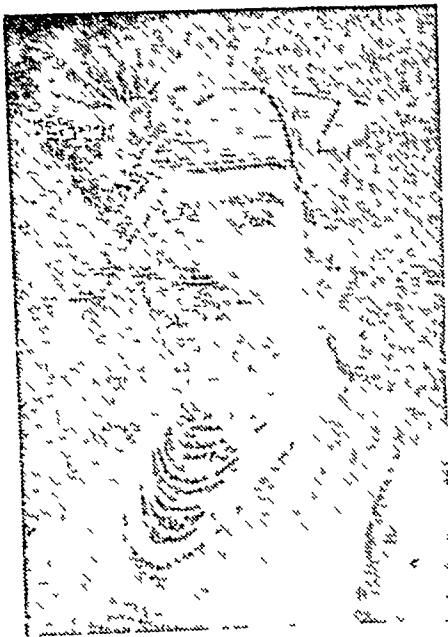
रा०ब० सेठ राजकुमारसिह जी
एम. ए एल. एल. बी., इंदौर

आचार्य श्री १०८ देशभूषण जी महाराज आध्यात्मिक जगत की श्रद्धास्पद विभूति है। इस भोग प्रधान युग मे त्याग और सयम का उच्चादर्श असिधारा व्रत के समान निर्ग्रंथ श्रमण संघ में ही उपलब्ध होता है, जो निःस्पृह, गभीर, शान्त, निर्विकार एव अहिसा की साक्षात् मूर्ति होते है।

बालब्रह्मचारी आचार्य महाराज श्रमण शिरोमणि है। आपकी वाणी में माधुर्य और विश्व कल्याण की भावना होने से विषय वासना की ज्वाला मे जल रहे प्राणियो को वास्तविक सुख शान्ति का मार्ग दर्शन मिल रहा है। इसे महान पुण्य ही मानना होगा।

मुझे आचार्य महाराज के अनेक बार पुनीत दर्शन एव धर्मोपदेश का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। दक्षिण की ओर विहार करते हुए दो बार इन्दौर मे आपका पदार्पण हुआ है। यही'केश लोच भी हुआ है।

आचार्य श्री ने अपने अन्य ग्रन्थो के अतिरिक्त हाल ही भगवान महावीर के पच्चीस सौवे निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष मे सर्व प्रथम भगवान महावीर और उनका तत्वदर्शन नाम का ६५० पृष्ठ का वड़ा ग्रन्थ तैयार कर दिया है जो जैन साहित्य समिति दिल्ली द्वारा प्रकाशित हो चुका है। यह सरस्वती की आराधना एव साहित्य सेवा का अपूर्व उदाहरण है।

वर्तमान युग में सम्यक चारित्र के प्रचार, प्रसार एव अहिसा और वीतरागता का सदेश प्रदान करने वाले आचार्य श्री के ७० वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर मै श्रद्धा सुमन समर्पित करते हुए आपके दीर्घ जीवन की शुभ कामना करता हूं।

मुनिभक्त सेठ लखमी चन्द जैन सिरोही, (राजस्थान)

(श्री लखमीचन्द जी जैन ने आचार्य रत्न श्री १०८ देशभूषण जा महाराज के जीवन से प्रभावित होने के कारण अपनी आर्थिक सहायता के द्वारा यह जीवन चरित्र प्रकाशित कराया। आपका परिवार बडा धार्मिक है तथा आप लोकोपकारी कार्य मे उदार हृदय से सदा सहायता दिया करते हैं। हम यहा उक्त धार्मिक महानुभाव को श्रद्धाजलि दे रहे है)।

मैं श्रमण वेलगोला के महा मस्तकाभिषेकोत्सव मे १९६७ मे पहुचा था। वहा पुण्योदय से पूजनीय आचार्य रत्न श्री १०८ देशभूषण जी महाराज का पुण्यदर्शन मिला। उनके प्रभावक व्यक्तित्व से मेरा मन उनकी ओर आकर्षित हुआ।

मैंने आचार्य श्री मे अपने निवास स्थान सिरोही पधारने की प्रार्थना की। पूज्य गुरुदेव ने कृपा कर सिरोही पधारकर हम सबको कृतार्थ किया।

उनके पधारने से जैन अजैन समाज मे धर्म की अपूर्व प्रभावना हुई। मेरी आत्मा आनन्द विभोर हो गई।

आचार्य श्री के प्रति मेरी विशेष श्रद्धा इस वात से वढी कि जव वे आवू पर्वत से ऊवड-खावड रास्ते से नीचे उतर रहे थे उस समय मै भी उनके पीछे चल रहा था। गर्मी का मौसम होने से सभी गृहस्थ प्यास से व्याकुल हो गये थे। सारा पर्वत भयकर रूप से तप रहा था। इधर-उधर तलाश करने पर पानी का नाम निशान नही था।

आचार्य महाराज शान्त भाव से मध्याह्न के सामायिक मे निमग्न थे। उनकी सामायिक के उपरान्त सभी लोगो ने प्रार्थन' की, 'गुरुदेव। प्यास की वेदना से सव घवडा रहे हैं; पर पानी का पता नही है। इस विपत्ति को वेला मे क्या किया जाय? हम लोगो मे अव १० कदम भो चलने की हिम्मत नही है।

महाराज ने कहा घबडाओ मत। इसके अनन्तर वे चुपचाप कुछ क्षणो के लिए स्थिर होकर विचार मे मग्न हो गये। फिर उन्होने कहा कि सामने जो दश कदम पर पत्थर दिख रहा है उसे जरा दूर हटाओ।

जैसे ही पत्थर अलग किया गया कि पर्वत पर निर्मल शीतल जल की धारा फूट पड़ी। सभी ने प्रसन्नता के साथ जल पीकर अपनी प्यास बुझाई। आचार्य श्री की तपस्या का चमत्कार देखकर मेरे मन मे गहरी श्रद्धा उत्पन्न हुई। इसके परिणाम स्वरूप मैने महाराज जी की इच्छानुसार धर्म सेवा करने का विचार किया।

मुझे जब यह ज्ञात हुआ कि पूज्य महाराज जी का चरित्र लिखा जा रहा है तब मैने अपने हृदय की प्रेरणा से महाराज श्री से प्रार्थना की कि आपके पवित्र चरित्र को छपवाने मे जो भी खर्च लगेगा उसे मै देना अपना परम सौभाग्य मानूगा।

पूज्य आचार्य श्री के चरणो मे मेरी अपार श्रद्धा और भक्ति है। मेरी भगवान् से प्रार्थना है कि उनके चरण प्रसाद से आचार्य रत्न गुरुदेव चिरजोवी हों और उनके द्वारा जैन धर्म की महिमा जन मानस मे प्रकाशमान होती रहे।

डॉ० प्रो० सुशीलचन्द्र दिवाकर

M A LL.B.Ph.D. डीन, जबलपुर युनिवर्सिटी

परमहंस दिगंबर मुनि भारतीय संस्कृति-सागर के अमृतकलश है। हमारी संस्कृति की सार्थकता ऐसे महामुनियों के प्रादुर्भाव पर ही निर्भर करती है। जैसे किसी उद्यान की शोभा बिना पुष्पों के नही होती, जैसे सरोवर की शोभा बिना कमल के नहीं होती, उसी प्रकार दिगंबर मुनिराज के बिना समाज का हाल होता है। जब समस्त प्रकार के परिग्रह के परित्यागी, आत्मनिष्ठ मुनिराज हमारे सौभाग्य से यदा-कदा यत्र-तत्र दर्शन देते रहते है, तो कलिकाल मे ही सतयुग उतर आता है। यद्यपि मात्र बाह्य भेष ही किसी को मुनि सज्ञा से समन्वित नही कर देता, फिर भी पूर्ण मुनित्व के लिए यह आधारभूत अनिवार्य आवश्यकता है। वैराग्य और ज्ञान के विकास की चरम परिणति कालांतर मे दिगम्बरत्व मे ही परिलक्षित होती है।

भावनाओ मे मुनित्व को धारण करने वाले यथाजात मुद्राधारी नर-पुगव विरले होते है। "साधु न चले जमात"। प्रात. स्मरणीय गुरुदेव पूज्यपाद देशभूषण महाराज ऐसी ही अलौकिक विभूतियो मे है। ऐसे ऋषिराज का निमित्त पाकर जैनधर्म, जैन संस्कृति और जैन साहित्य की आभा मे बहुमुखी वृद्धि हुई है, इनका गौरव बढा है। शास्त्रानुकूल दिगंबर तपोनिधि का दीर्घकालीन जीवन यापन करते हुए पूज्य गुरुदेव तेजपुज हो गए है। उनके चरण सामीप्य मे बैठने वाला अद्भुत शांति और चुम्बकीय आकर्षण का सहज अनुभव करता है। सर्वत्र विद्युतीय अणु व्याप्त से हुए लगते हैं। एक राजर्षि की भांति महाराज-श्री ने असामान्य कार्यो से ही हाथ लगाया और उनमें सर्वांगीय सपन्नता, सफलता और यश अर्जन किया है। अयोध्या मे प्रतिष्ठित आदि तीर्थकर की ३१फुट की कायोत्सर्ग प्रतिमा, जयपुर के समीप खानिया के जिन मदिर, स्तवनिधि और कोथली के गुरुकुल, वर्धमान महावीर पर संपादित महाग्रन्थ और न जाने

कितनी कृतिया उनकी यशः पताका को काल गगन में दीर्घकाल तक लहराते जायगी। किसी समारोह मे हो, अथवा विशाल अधिवेशन मे, जहा भी यह दिव्य-विभूति विराजती है, बस वही छा जाती है। उनकी वाणी अमृतमयी मधुर है, उनका हृदय गगाजल सदृश निर्मल है और मुनिव्रत शरत ऋतु के आकाश की भाति स्वच्छ है। आज के भौतिकता के इस युग मे, कि जब दिगबर गुरु के प्रति अनास्था और उपेक्षा उत्पन्न करने के योजनाबद्ध षडयत्र चल रहे हो. पूज्य देशभूषण महाराज मेरूवत स्थिर हो कर "णग्गो हि मोक्खमग्गो" के स्वर्णिम सिद्धात के प्रति व्यावहारिक अनुराग की अलख जगा रहे है। उनका जीवन कुतर्को का सशक्त प्रत्युत्तर है। उनके "मुनि सकल व्रती बड़भागी" स्वरूप को देखकर ही दिगबर धर्म पर हमारी ढुलमुल श्रद्धा की जड मिलती है और हमारी सास्कृतिक थाती की दीवाल ढाने से वच आती है। हमारी आस्था का दीपक बुझ नही पाता है।

मेरा सौभाग्य कि मैने दक्षिण भारत मे उनके जन्मस्थान कोथली के दर्शन किये और उस ग्राम मे वह मकान, तथा मकान का वह भाग देखा है, जहा उनकी मातृ श्री ने जन्म दिया था। मैने गगोत्री देखी है। और फिर देखा-सुना उनका विशाल रूप। धर्म की प्रभावना की प्रबल भावना उनमे विष्णुकुमार जैसी है, और पथ पर अडिगता अकपनाचार्य सी। "आप तरहि, पर तारही" का मर्म उनके जीवन-दर्शन से सहज गले उतरता है। उनके चरणो मे मेरी सादर श्रद्धाजलि।

हाईकोर्ट जज श्री टी० के० तुकोल वैंगलोर के मननीय अंग्रेजी वक्तव्य का सार

[हाईकोर्ट जज श्री टी० के० तुकोल एम० ए०, एल० एल० वी० तथा पूर्व उपकुलपति वेगलोर विश्व विद्यालय ने सात पृष्ठ मे आचार्य श्री के प्रति अपनी महत्वपूर्ण श्रद्धाजली अग्रेजी निवध मे व्यक्त की है।

हाईकोर्ट जज श्री तुकोल दिगम्बर जैन प्रकाण्ड विद्वान और उच्च चरित्र सम्पन्न महान पुरुष हैं। उनकाप्रत्येक शब्द बहुमूल्यह और विद्वानो एव जन साधारण के लिए हाईकोर्ट के निर्णय के समान महत्व पूर्ण है।

वे लिखते है, "आचार्य महाराज का मेरा तीस वर्ष से निकट परिचय है उनके पवित्र सम्पर्क द्वारा मेरा जीवन प्रभावित हुआ है और उससे मुझे मार्ग दर्शन मिला है। आचार्य श्री अनेक प्रश्नो के पूछे जाने पर कभी भी उत्तेजित नही होते और वे भगवान महावीर के उपदेश को शिक्षा प्रद कथाओ से सुसज्जित करते हुए उपदेश देते है। मैंने १९४४मे पण्ढरपुर उनके दर्शन किये थे और मैंने उनके धर्म के विविध अगो पर कई भाषण सुने थे। वहा उन्होने स्थानीय दिगम्बर जैन मदिर के झगडे को निपटाने के लीए तिन उपावस किये थे, जिससे कि समाज का आपसी मामला न्यायालय मे न जाये।

मैंनें १९४५ मे उनके दर्शन गलतगा ग्राम (वेलगॉव जिला) के चतुर र्मास के समय किये थे। वहा उनके उपदेश से अजैनो पर जो प्रभाव पडा था, उससे मैं चकित हो गया था। उनके उपदेश ग्रामवासियो के अत.करण मे सीधा पहुचते थे। ग्रामवासियो की अनेक शकाओ का समाधान करते थे उनको वे णमोकार का जाप और सूर्यास्त के पहले भोजन करने की प्रेरणा देते थे।

इसके वाद अनेक वर्षो तक मुझे उनके दर्शन का सौभाग्य मिला। उनके उपदेश में वहुजन समुदाय आया करता था। जैन समाज इन

आचार्य देशभूषण महाराज तथा इसी प्रकार चारित्र चक्रवर्ती शातिसागर महाराज आदि मुनीश्वरो का अत्यधिक ऋणी है, जिनने लोगो के हृदय पर जैन धर्म के सम्बन्ध मे आदर बुद्धि जागृत की। अन्यथा बहुत से लोग जिन-वाणी के महत्व की मधुरता को हृदयगम किये बिना मरण कर जाते है। सन् १९६४ मे मैने कोथली कुप्पन वाड़ी मे आचार्य श्री की हीरक जयती मनाने के लिए लगभग २० हजार लोगो को एकत्रित देखा था। उस समारम्भ का उद्घाटन मैसूर राज्य के तत्कालीन मुख्यमत्री निजलिगप्पा ने किया था तथा उस उत्सव का अध्यक्ष मै था। मुख्यमत्री ने जैन धर्म तथा उसका आचार के महत्व पर प्रकाश डाला था। मुख्यमत्री ने जैन मुनियो के दिगम्बरत्व और त्याग युक्त सादगी की बहुत प्रशसा की थी, जिसको देखकर ईश्वर को न मानने वाले व्यक्ति भी प्रशसा करते थे। महाराज ने अपने सारगर्भित भाषण मे मानव समाज को पतन के पथ से अलग होने का उपदेश दिया था। उस समय एक आश्रम और हाईस्कूल की नीव डाली गई थी अब वहा विद्यार्थी धार्मिक शिक्षण पाते है।

पाच वर्ष बाद आचार्य श्री का ६५ वा जन्मोत्सव बेलगाव मे बड़े वैभव और उत्साह पूर्वक मनाया गया था। उस पावन प्रसग पर मुझे अध्यक्ष बनाया गया था। उत्सव का उद्घाटन मिनिस्टर काजलगो द्वारा सम्पन्न हुआ था। मत्री महोदय ने आचार्य महाराज की बहुत प्रशसा की थी। आचार्य श्री के भाषण की बडे २ शिक्षितो ने प्रशसा की थी।

१९६८ मे मुझे आचार्य श्री के ग्रथ अध्यात्म सुधासार की प्रस्तावना उनके बेलगॉव चातुर्मास के समय लिखने का अवसर मिला था।

अ मुनि देशभूषणजा महाराज आध्यात्मिक शक्ति और ज्ञान के स्तम्भ समान है।—Today the Muni Maharaji is a tower of spiritual strength and knowledge."

१२ अप्रैल १९७२ का दिन महत्वपूर्ण था, जबकि नई दिल्ली के पार्लियामेट भवन मे भगवान महावीर के २५०० वे निर्वाण महोत्सव की राष्ट्रीय कमेटी की बैठक हुई थी। उस बैठक मे मै सदस्य के रूप में सम्मलित हुआ था। उस समय बैठक की अध्यक्षता प्रधानमत्री इदिरागाधी ने की थी। उसमे आचार्यरत्न देशभूषण महाराज उपस्थित थे। उस

बैठक में आचार्य महाराज ने बड़े गम्भीरता पूर्ण मार्मिक भाषण दिया था—"He addressed the meeting in a measured tone with dignity"

आचार्य महाराज ने प्रधानमंत्री को राजकीय कार्यों में धर्मानुसार कार्य करने के लिए आशीर्वाद दिया था—'He blessed the Primminister to uphold harma in a l her administrative measures"

मुनि महाराज उस सभा के लिए आमन्त्रित किये गये थे और वे अपने धर्म की उन परम्परा के अनुसार दिगम्बर रूप में वहां पहुंचे थे जिसका संरक्षण भारतीय संविधान ने नियम नम्बर २५ में किया है।

मैं आचार्य श्री को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए भर्तृहरि के समान परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि मुझे भी शांत, निस्पृह, एकांतवासी तथा कर्मों का निर्मूलनाश करने में समर्थ, कर पात्र में आहार करने वाले दिगम्बर मुनि की अवस्था प्राप्त हो।

○

अमेरिकन प्रो० डा० लूथर कोपलेण्ड के अंग्रेजी वक्तव्य का भाव

(अमेरिका से प्रोफेसर ई० लूथर कोपलेन्ड वेकफारेस्ट नार्थ केरोलिना (Caroli.a) ने आचार्य देशभूषण महाराज के १९६४ के जनवरी में दिल्ली में दर्शन किये थे। उन्होने अपने पत्र मे, जो अंग्रेजी में अन्यत्र दिया गया है, इस प्रकार अपना मनोभाव व्यक्त किया है।)

"१९६४ की जनवरी के आरम्भ मे मुझे प० एस० सी० दिवाकर तथा के० सी० जैन राजा टायज कम्पनी की कृपा से महान जैन साधु आचार्य देशभूषणजी महाराज से वार्तालाप करने का सौभाग्य मिला। मुझे पूज्य साधुराज भारतीय साधु जीवन के प्रामाणिक प्रतिनिधि के रुप मे प्रतीत हुए। उनका दर्शन तनिक भी विस्मय प्रद नही था। उनमे उनकी प्रामाणिकता का दर्शन होता था। अपने साधु आचार्य की कठोर प्रतिज्ञाओ को पालते हुए भी वे स्वस्थ और शक्ति सम्पन्न दिखाई पडते थे। यह बात मै स्वीकार करूगा कि मै उस शीतऋतु मे जबकि वायु का तापमान हिमाक से नीचे था, उन्हे पूर्णतया दिगम्बर रूप मे देखकर पभावित हुआ।

मैने पूज्य श्री के साथ धर्म और सदाचार की अतिम बारीकियो पर चर्चा चलाई, तब मुझे उनमे जैन जीवन का श्रेष्ठ आचार का प्रतिनिधित्व पूर्ण रूप मे दिखा। उन्होने धार्मिक विषयो पर युक्ति और गहराई के साथ चर्चा की। जब उन्होने कहा कि धर्म का वास्तविक हृदय, करूणा, दया बधुत्व है तब मैने उनका समर्थन किया, क्योकि मै भी करूणा, जिसे ईसाई धर्म के शब्दो मे प्रेम अथवा कृपा कहा जायेगा को, धर्म का वास्तविक सार मानता हू। मै पुन इस बात को दोहराता हू कि पूज्य श्री मे सच्चे भारतीय साधुत्व का दर्शन होता था। उन्होने अपने परिश्रमपूर्ण प्रयत्नो के द्वारा पवित्रता की उपलब्धि की थी इसे जानते हुए भी उनके व्यवहार मे अहकार या दम्भ का दर्शन नहीं होता था। इस प्रकार के साधुत्व के प्रति मेरे हृदय मे विशेष पूज्यता है। यद्यपि मेरे धार्मिक विश्वास के अनुसार साधुत्व का

अर्थ परमात्मा के असीम करुणा तथा प्रेम की उपलब्धि है, जिसे कोई व्यक्ति परमात्मा से पुरस्कार के रूप मे प्राप्त कर सकता है, और जिसे वह स्वयं नहीं पा सकता। परमात्मा के पुरस्कार को पाकर ऐसा व्यक्ति करुणाशील और प्रेमी बनता है और वह दूसरो को परमात्मा के प्रेम प्राप्ति का माध्यम बनता है।

इस प्रकार मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क को स्मरण करता हूं जिनमे जैन धर्म के अनुसार आचार्य की परम्परा तथा भारतीय साधुत्व की मूर्ति का दर्शन होता है।

प्रिय दिवाकर जी! आपकी कृपा के लिए बहुत धन्यवाद है। यदि आप का अमेरिका आना हो तो मुझे विश्वास है कि मुझे आपसे मिलने का अवसर मिलेगा।

इस समय हम लोगो का क्रिस्मस का समय चल रहा है। हम क्रिश्चियन लोग ईसामसी का जन्मोत्सव मनाते हैं जिन्हे हम अपना आराध्य और परित्राणदाता मानते हैं। मेरे परिवार और मेरे लिए यह समय बड़ी प्रसन्नता का समय है। ऐसे अवसर पर हम भारत वर्ष के क्रिस्मस पर्व को कृतज्ञता पूर्वक स्मरण करते है, जो हमारे ईसाई मित्रो की भक्ति के फलस्वरुप स्मरण योग्य है। इस अवसर पर हम आपके समान व्यक्तियो को भी स्मरण करते है, जो ईसाई न होते हुए भी हमारे धर्म के प्रति सद्भावना रखते हैं और इस प्रकार जो हमारे इस पर्व के आनन्द के अंगभूत बन जाते हैं। मेरी आपके प्रति सदा श्रेष्ठ शुभकामनाए हैं।

आपका मित्र और प्रेमी
ई० लूयर कोपलैंड"
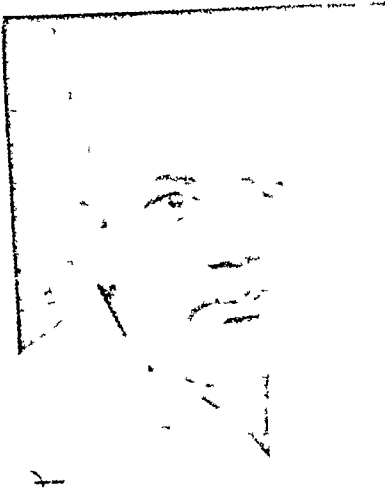
श्री आदीश्वर प्रसाद जैन
एम० ए०, अध्यक्ष जैनमित्र
मंडल, दिल्ली

श्री बशेशरनाथ जैन

मत्री, जैन समाज दिल्ली

आनार्य रत्न देशभूषणजी महाराज इस युग के एक महान् तत्त्वदर्शी पुरुष है। आप सर्वगुण सम्पन्न है। आचार्य श्री जो महान् धर्म कार्य कर रहे है वे स्वर्णाक्षरो मे अकित होकर सदैव अमर रहेगे। ऐसे विश्व कल्याणकारी महामुनि के जीवन से जितनी शिक्षा ली जाय थोड़ी है। ऐसे महान् आध्यात्मिक सत के चरणो मे हमारी सविनय श्रद्धांजलि है।
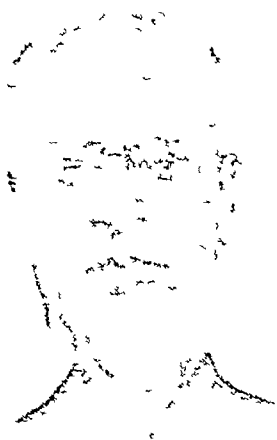
श्री पन्नालाल जैन,
प्रकाशक दैनिक तेज, दिल्ली

आचार्य रत्न देशभूषणजी महाराज जंन व अजैन दोनो से बडा प्रेम रखते है। श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी और तेरहपन्थी मे इनके मन में किसी प्रकार का भेद-भाव नही है। महाराज श्री दीर्घायु हो। उनके प्रति मैं अपनी विनम्र श्रद्धाजलि भेट करता हू।

●

श्री कैलाशचन्द्र जैन, राजा टायज-दिल्ली

परम पूज्य आचार्य रत्न श्री देशभूषणजी महाराज ऐसे ही सद्गुरु रत्न है, जिनके चरण स्पर्श मे चमत्कार और वाणी मे अद्भुत् शक्ति है। आचार्य रत्न सदैव क्रियाशील, सजग और धर्मायतनो की रक्षा तथा प्रवृद्धि करने में अत्यत उद्योगशील है। महाराज सदैव ही शास्त्र स्वाध्याय मे लीन, श्रुत के अभ्यास, उत्कृष्ट दया अनशन आदि तप तथा जिनेन्द्र भगवान् की वाणी को प्रगट करने मे दत्तचित्त रहते है। साधुओ के योग्य जो मूल गुण तथा पच महाव्रत आचार्यो ने बताये है, उनके पालन मे सर्वदा प्रवृत्ति रखते है। अपनी अद्भुत चरित्र निष्ठा द्वारा समाज मे जो धार्मिक प्रवृत्ति उनके कारण है उससे आगम की मान्यता मे लोगो की श्रद्धा बढ गई है। आचार्य श्री मे सबसे बडी बात यह है कि उनमे कभी क्रोध, क्षोभ आदि कारण बन जाने पर भी नही आते। आपका जिसने भी उपदेश सुना है, वह हमेशा के लिये ही आपके चरणो का दास हो गया है।

मेरी आचार्य श्री के चरणो में विनम्र श्रद्धाजलि है।

रा० ब० हरकचन्द जैन

प्रात. स्मरणीय पूज्य १०८ आचार्य देशभुषण जी महाराज परम तपस्वी, जैन सिद्धान्त के वेत्ता, महाविद्वान्, ज्ञानध्यान तपोरक्त, बालब्रह्मचारी महाव्रती सत है। आपका जन्म आज से ७० वर्ष पूर्व दक्षिण प्रात मे जिला बेलगाव मे हुआ था। वे बाल्यकाल से ही ससार से विरक्त, आजन्म ब्रह्मचारी है।

आचार्यरत्न देशभूषणजी महाराज आज से करीब २५ वर्ष पहले राची पधारे थे वहा पर वे एक बार ठहरे थे उस समय मुझे उनकी प्रत्यक्ष सेवा का सुअवसर प्राप्त हुआ था। मैं श्री जिनेद्र भगवान से उनके स्वास्थ्य, दीर्घायुष्य एव रत्नत्रय की कुशलता हेतु प्रार्थना करता हूं एवम् कामना करता हू कि वे चिरकाल तक अपने अमृतोपमा प्रवचनो से समाज व राष्ट्र का निरतर हित करते रहे। पू० आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज के चरणो मे हमारा बारम्बार नमोऽस्तु।

•

श्री रतनलाल मालवीय

भूतपूर्व उपमत्री केन्द्रीय शासन, दिल्ली

पूज्य आचार्य देशभूषणजी महाराज ने अपनी ज्ञानज्योति से जनता का पथ आलोकित किया। उन्होने अपने उपदेशो से जो ज्योति प्रकाशित की है मानव अपने जीवन के कल्याण के लिये उससे सदैव प्रेरणा लेगा और अपना मार्ग प्रशस्त करता रहेगा।

श्री दादोबा चौगले

महामत्री दक्षिण भारत, कोल्हापु

आचार्य देशभूषण महाराज बडे प्रभावशाली साधु है। उन्होने महान् कार्य किये है। उनकी आज्ञा से मैने कोथली आश्रम के आरम्भ काल में भूमिपूजन आदि कार्य किया था। कोल्हापुर मे आचार्य श्री की प्रेरणा के फलस्वरूप देशभूषण शिक्षा प्रसारण मण्डल सस्था की स्थापना हुई है। उसके तत्त्वावधान में दो हाई स्कूल तथा एक कालेज चल रहे है। आचार्य श्री के चरणो मे मेरा सादर प्रणाम है।

○

सेठ चन्दूलाल कस्तूरचंद

महामन्त्री भा० दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी, बम्बई—

आचार्यरत्न देशभूषण जी महाराज की तपस्या एव ज्ञान वैभव से जैन-जैनेतर समाज सुपरिचित है। आचार्य श्री शतायु होकर आज के पथ भ्रान्त युग को ठीक प्रकार से मार्ग दर्शन देते रहे, यह मेरी जिनेन्द्र भगवान् से प्रार्थना है।

●

डा० प्रेमचन्द जी जैन,

धर्मपुरा, दिल्ली

मै १६ वर्ष पूर्व आचार्य श्री के निकट सपर्क मे आया। यथार्थ मे वे बहुत बडे मनस्वी साधुराज है। उनका प्रभाव जनसाधारण पर ही नही विद्वानो पर भी अपूर्व पड़ा करता है। मेरे पिता श्री वैद्यराज कन्हैया लाल जी वैद्य भी मेरी तरह उनके चरणो के अनन्य भक्त रहे।

उनके चरणो मे मेरी विनम्र श्रद्धांजलि है।

पद्म श्री सुमति बाई शहा

न्याय तीर्थ, सोलापुर

आचार्य देशभूषण जी महाराज आदर्श स्वरूप संत महात्मा हैं। वचपन से ही पूज्य महाराज श्री के साथ मेरा अनेको वार सम्पर्क रहा है। इनका अन्त करण वैराग्य पूर्ण है। परिणाम अत्यन्त उज्ज्वल और सरल है। इनका उपदेश अत्यन्त प्रभावशाली, हितकारक तथा भावना प्रधान होता है। सदा ज्ञानोपयोग मे रहना इनकी विशेषता है। ये चिरजीवी रहे यह हमारी शुभभावना है।

•

श्री गणपति रोटे

शाहूपुरी कोल्हापुर—

मैंने १२ वर्ष की अवस्था मे साहूपुरी के नेमिनाथ मदिर मे आचार्य श्री देशभूषण महाराज का सन् १९३२ मे दर्शन किया था, इसके अनंतर मेरी इनकी अधिक निकटता रही। आचार्य श्री के द्वारा धर्म की वहुत प्रभावना हुई। कोल्हापुर से १६ मील दूरी पर स्थित मानगांव ग्राम मे हैजा हो गया था, उस अवसर पर महाराज के कमण्डलु के पानी द्वारा सारे गांव को आरोग्यता मिली थी। इनका यह प्रभाव देखकर अनेक डाक्टर तथा अजैन भाई इनके दर्शनों को आते थे। आचार्य श्री के चरणो मे मेरी श्रद्धांजलि है।

यशपाल जैन

सम्पादक, जीवन साहित्य, दिल्ली—

आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज का मै हार्दिक अभिनन्दन करता हूं। वे दीर्घायु हो, ऐसी मेरी प्रभु से प्रार्थना है।

○

डा० विमल कुमार जैन

एम. ए , पी एच डी दिल्ली—

आचार्य देशभूषण जी महाराज अनेक गुणो के पुज है। आपकी सौम्य एव सरल आकृति आपकी आन्तरिक विद्वता की परिचायिका है। आपका हृदय निष्कपट एवं उदार है। आप उद्‌भट विद्वान्, महान शास्त्रवेत्ता तथा तत्त्व ज्ञानी है। आप प्राणी मात्र के हित चिन्तक, मानव समाज के मगल विधायक और चतुर्विध सघ के सफल सचालक है।

आपको शतशः वदन।

●

प्रो० (डा०) राजकुमार जैन,

एम० ए०, पी०-एच० डी० साहित्याचार्य, आगरा कालेज, आगरा

श्रद्धेय आचार्य रत्न श्री १०८ देशभूषणजी महाराज की असिधारोपम दैगम्बरी साधना एव उनके सातिशय आध्यात्मिक व्यक्तित्व के प्रति विनत हृदय से मै अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हूं।

श्री तेजपाला, सं० जैनदर्शन

आचार्य महाराज का १९६७ मैंने श्रमणबेलगोला में उनके चरणों को मेरा प्रणामांजलि है निकट से दर्शन किया था। वे वात्सल्यमूर्ति महापुरुष हैं।

○

डा० ज्योति प्रसाद जैन,

एम० ए०, पी०-एच० डी० लखनऊ

आचार्य रत्न श्री देशभूषणजी महाराज के प्रति मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं और कामना करता हूं कि उनके द्वारा चिरकाल तक जैन मुनि मार्ग एवं श्रावक धर्म का सम्यक् प्रचार होता रहे।

बाबू महताबसिंह जी जैन
बी०ए०, एल०एल०बी०
जौहरी

प्रधान मन्त्री
जैन मित्रमंडल दिल्ली
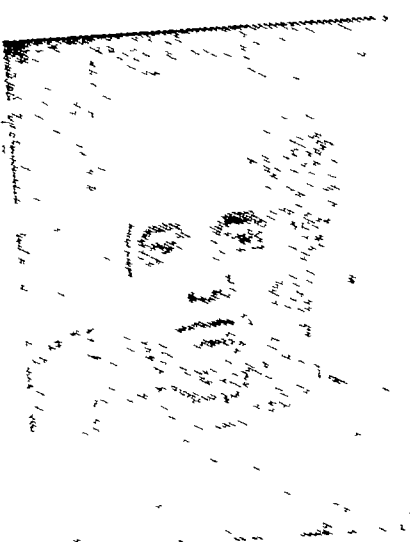
प्राचीन काल मे जिस प्रकार के तेजस्वी लोक कल्याणकारी साधु हुआ करते थे आज भी इसी परम्परा में भारत गौरव विद्यालंकार बाल ब्रह्मचारी आचार्य रत्न देशभूषणजी महाराज है, जो अपने द्वारा जन साधारण में ज्ञान और चारित्र की ज्योति जगाते रहते हैं। वे तेजस्वी योगी, दूरदर्शी और महान् ज्ञानी साधुराज है। उनका हृदय विशाल और उदार है। वे बडे साहसी है। धर्मप्रभावना के लिये अवसर की प्रतीक्षा करते हुये धर्म के प्रचार की उनमे अद्भुत लगन है। दिल्ली में विश्वधर्म सम्मेलन हुआ था। उस समय ८८ मील मथुरा से चलकर वे चौथे दिन दिल्ली पधारे थे। उनके स्वागत के लिये दिल्ली गेट पर बालक वृद्ध युवा स्त्रिया और वृद्धाये उनकी बाट जोह रही थी। धर्म की प्रभावना हेतु उन्हे अपने कष्ट की तनिक भी परवाह नही रहती। उनका जीवन अत्यन्त

मधुर है। उनके सम्पर्क मे जो आता ह उसे वे बडे प्रेम से अपनाते है। उनकी ज्ञान की साधना सतत चला करती है। आत्मध्यान और स्वाध्याय मे उनका मन बहुत लगता है। वे सदा लोक कल्याण की वात सोचते है। जगत मे सभी सुखी रहे, यह उनकी भावना है। वे धार्मिक कार्यो को प्रोत्साहन देना अपना कर्तव्य समझते है। वे चाहते है कि भारत की राजधानी दिल्ली के लोगो मे धार्मिक रुचि जग जाय, इससे धार्मिक कार्य सरल हो जायगे। मेरी और मेरे परिवार की महाराज के प्रति अनन्य भक्ति है। वे धर्म की साक्षात् मूर्ति है। वे जिनेन्द्रदेव के प्रसाद से दीर्घायु हो तथा निर्वाणलक्ष्मी के अधिकारी वने, यह हमारी हार्दिक भावना है।

अन्ना बाबा जैन

वी० ए० जी० (कृषि) सदलगा जि० बेलगाव भूखगोल विज्ञान सशोधक

मैने आचार्य देशभूषणजी महाराज का उनकी मुनि दीक्षा के पहले भी दर्शन किया था। आज उनका बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास देखकर मैं बहुत प्रभावित हू। उनकी उन्नति का कारण उनका निर्मल ब्रह्मचर्य तपस्या, ज्ञान की सतत आराधना और महान् पुण्य का उदय है। उनकी भाषा शैली से दक्षिण मे जैसे हजारो व्यक्ति प्रभावित होते है वैसे ही उत्तर भारत मे भी उनका अदभुत प्रभाव मैंने देखा है। मेरी उनके चरणो मे श्रद्धाजलि है।

दानवीर सेठ पारसमल कासलीवाल, कलकत्ता

(ये आचार्य देशभूषण जी महाराज के महान् भक्त रहे है । इन्होने दिवगत होने के पूर्व आचार्य श्री के प्रति इस प्रकार की पुण्यभावना व्यक्त की थी) ।

यह मेरा सौभाग्य रहा कि मुझे आचार्य देशभूषण जी महाराज जैसे महान् सत की कृपा और आशीर्वाद पाने का पुण्य प्राप्त हुआ । गुरुदेव मुझे सदा धर्म की राह मे चलने की प्रेरणा देते रहे है । मै उनका सदा ऋणी हू और उनके चरणो मे अपनी भावभरी भक्ति के फूल चढ़ाकर अपने को धन्य मानता हू ।

○

श्री रघुवरदयाल बिजली वाले, दिल्ली

मेरा आचार्य श्री मे बडा विश्वास है। मै तो अकिचन हू, किंतु उनकी भक्ति का अपार कोष मेरे पास है । उनके आशीर्वाद से मेरे सभी कार्य पूर्ण होते है । मै उनके चरणो मे श्रद्धापर्वक भक्ति के पुष्प चढाता हू ।

श्री आनंदलाल जीवराज दोशी फलटण

मुमुक्षु जीव अपने आत्मकल्याण मे प्रवृत्त होता हुआ यथा संभव परजीव के आत्मकल्याण मे सहयोगी होता है और मोक्ष प्राप्ति के उपायभूत रत्नत्रयात्मक जैन दर्शन की प्रभावना करने मे भी प्रवृत्त होता है। जैनदर्शन की प्रभावना उपदेश के द्वारा, साहित्यनिर्माण के द्वारा, आगमानुकूल चारित्र के यथार्थरूप से पालन के द्वारा और विकारशून्य परिणामो के द्वारा की जा सकती है। आचार्यरत्न श्री १०८ देशभूषणजी महाराज एक ऐसी ही आत्मा हैं। वे स्वयं बालब्रह्मचारी, महाव्रतधारी, आत्मकल्याणाभिलाषी व जीवहितनिरत महान् आत्मा हैं। उन्होने अनेक जीवो को महाव्रती बनाया है और जैन दर्शन के प्रचार और प्रसार के लिए भिन्न-भिन्न भाषाओ मे साहित्य का निर्माण भी किया है। जिन बिंब प्रतिष्ठाएं करवाकर जीवों के शुभ परिणामो की उत्पत्ति मे वे सहकारी बने हैं। सन् १९६५ के वर्षायोग के समय दिल्ली मे उन्होने ही मुझे सप्तम प्रतिमा प्रदान की और मोक्षमार्ग पर पदार्पण करने मे सहकारी हुए। आचार्य श्री के चरणो मे मैं श्रद्धांजलि समर्पित करता हूं।

○

उम्मेदमल जैन

शान्ति रोडवेज दिल्ली

गुरुवर आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज द्वारा महान धर्म प्रभावना एवं साधु संतो का निर्माण हुआ है। उनमे धर्म की अटल श्रद्धान एवं घोर तपस्या का बल है। भगवान महावीर का २५०० वां निर्वाण महोत्सव दिल्ली नगर मे आपके सानिध्य मे हो रहा है। आपके द्वारा धर्म की प्रभावना दीर्घकाल तक होती रहे यही हमारी कामना है।

आपकेचरणो मे त्रिबार वंदन।

सेठ पारसदास
मोटर वाले दिल्ली

परमपूज्य आचार्य रत्न १०८ देशभूषण महाराज जैन धर्म के दैदीप्यमान तेजस्वी रत्न है। महावीर स्वामी के २५०० वे निर्वाण महोत्सव के पुनीत कार्यो मे आपने अत्यधिक श्रम करके समाज मे अपूर्व जागृति पैदा की है। हमारी श्री जिनेन्द्र देव से प्रार्थना है कि आप शतायु हो समाज का मार्गदर्शन करते रहे।

श्री परसादीलाल पाटनी
दिल्ली

विश्ववन्द्य परम पूज्य श्री १०८ अलौकिक ज्ञानी आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की साक्षात मूर्ति हैं। उन्होने इस दोर्घ जोवन मे अनेक मुमुक्षुओ का महान् उपकार किया है। उनके निर्मल चरित्र, सौम्य मूर्ति, प्रभावशाली उपदेश तथा आत्म-तेज से प्रभावित होकर सैकडो व्यक्तियो ने उनसे दीक्षा ग्रहण की है और उन व्रतियो के कारण जैन धर्म की जो प्रभावना हो रही है, वह किसी से छिपी नही है। जैन समाज मे जो चारित्र की जागृति हुई है उसका श्रेय स्वर्गीय आचार्य श्री १०८ शाति सागर जी महाराज के वाद आप ही को है। ऐसे काल मे ऐसे दिगंवर जैन मुनि होना दुर्लभ है। इस कठिन मुनिव्रत के पालन मे कुछ भी कमी नही आई। इस वृद्ध अवस्था मे भी आज उनमे जो तपोवल दिखलाई देता है वह असाधारण है। उन्हे जीवन का मोह नही, शरीर की चिन्ता नही। धर्म, सस्कृति एव जैन मदिरो की मर्यादा के सरक्षण के पावन उद्देश्य को लेकर आचार्य श्री दृढ रक्षा करते है।

श्री १०८ परम पूज्य आचार्य शातिसागर जी महाराज के स्वर्गवास को २० वर्ष हो गए हैं। उस समय ऐसा लगता था कि स्व० आचार्य महाराज के वाद धर्म पर आपत्ति आने पर कौन रक्षा करेगा; लेकिन मुझे यह कहते हुए वडा हर्ष होता है कि परम पूज्य आचार्य श्री १०८ देशभूषण जी महाराज ने २० वर्ष मे धर्म, तीर्थो, मदिरो आदि पर जो भी आपत्ति आई, उस पर वहुत ही तत्परता और लगन के साथ विजय प्राप्त की। आप की धार्मिक दृढ़ता को इतनी प्रभावशाली देखकर जनता के ऊपर उसका अच्छा प्रभाव पड़ता रहा है। अत मे हम आपके चरणो मे पुष्पाजलि समर्पित करते हुए यह भावना करते हैं, कि आप शतायु होकर जन-जन का कल्याण करते रहे।

मिश्रीलाल पाटनी, लश्कर

मुझे आचार्य रत्न देशभूषण जी महाराज के दर्शनो का सौभाग्य कई वार मिला। दिल्ली आते हुये १६६३ में जब वे लश्कर पधारे तो दूसरे दिन उनको आहार देने का भी मुझे पुण्य-लाभ हुआ। तभी एक अद्‌भुत घटना घटित हो गई। चौके मे चदोवा तना हुआ था। चदोवा सुवह ही ताना गया था। छत विलकुल ठीक थी। पानी का कही नाम नहीं था। जव महाराज आहार करने लगे तो एकाएक जल की कुछ बूंदे महाराज के पास ऊपर से आकर गिरी। महाराज ऊपर की ओर देखने लगे। किन्तु वहा न तो चदोवा गीला था और न कोई जानवर ही था। हम लोगो की यह मान्यता वनी कि यह सब महाराज के तप का अतिशय था। महाराज के उपदेश का लश्कर के युवको पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनमे से अनेको ने महाराज के उपदेश से अशुद्ध आहार-विहार का त्याग करके शुद्ध आहार-विहार का नियम ले लिया।

एक दिन वे जैन वीर छात्रावास में पधारे। प्रवचन के समय बहुत भीड़ थी। उन्होने संस्था के लिये भवन निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया। फलत: आध घन्टे में ३३ हजार रुपये के कमरे बनाने की स्वीकारता प्राप्त हो गई।

मै पूज्य आचार्य महाराज के चरणो मे अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हू।

श्री रतीलाल केवलचन्द गाँधी, टावररोड सूरत
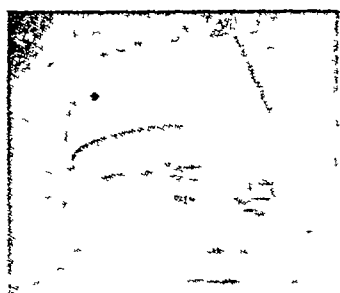
आचार्य देशभूषणजी महाराज ने जैन धर्म की अपूर्व सेवा की है। उनके चरणो मे हमारी हार्दिक श्रद्धाजलि है।

०

श्री सुदर्शनकुमार दिवाकर, दिवाकरसदन सिवनी म०प्र०

मैं अपने दादाजी (पूज्य प० सुमेरुचन्दजी दिवाकर) के साथ आचार्य महाराज के पास कोल्हापुर, कोथली, निपानी, स्तवनिधि, दिल्ली आदि अनेक स्थानो पर अनेक वार गया। मैने महाराज जी को सदा परोपकार मे सलग्न पाया। उनके उपदेश को सुनकर जनता मत्र मुग्ध हो जाती है।

पूज्य महाराज की मुझ पर अपार कृपा है। मुझे देखकर उनके हृदय मे वडी प्रसन्नता होती है। वे वार वार मेरे सिर पर पीछी रखकर मुझे आशीर्वाद देते है। मेरे जीवन को सुधारने मे उनका आशीर्वाद वहुत वड़ा कारण है। उनके चरणो मे मेरी सर्वदा प्रणामांजलि है।

०

पं० माणिक चन्द्र जी जैन न्याय-काव्य तीर्थ, जैन दर्शन शास्त्री
वर्णी महाविद्यालय सागर

श्री १०८ आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज जैन धर्म की अनुपम विभूति हैं। श्रमण संस्कृति और रत्नत्रय धर्म की महिमा उनके निमित्त से प्रकाशमान हुई है। पवित्र चरित्र, प्रभावक व्यक्तित्व, मनोहारिणी वाणी तथा शास्त्रों की सतत समाराधना के कारण जन साधारण और सुधी समाज में सर्वत्र उनकी पूज्यता का दिग्दर्शन होता है। पूज्य महाराज के दर्शनकर मैं बहुत ही प्रभावित हूं। उनके दीर्घ जीवन के लिए मेरी वीर प्रभु से हार्दिक प्रार्थना है।

○

पं० वर्द्धमान जी शास्त्री, शोलापुर

पूज्य आचार्य देशभूषण जी महाराज के विहार से भारतवर्ष में धर्म का अपूर्व उद्योत हुआ है। आज के भौतिक वातावरण में ऐसे प्रभावक लोकसंग्राहक तथा मनीषी साधुओं की अत्यन्त आवश्यकता है। उनके पुण्य चरणों में हमारी सविनय श्रद्धांजलि है।

साहित्यरत्न पं० सुमेरचन्द जैन शास्त्री
एम० ए० न्यायतीर्थ दिल्ली

प्रातः स्मरणीय परमपूज्य तपोनिधि आचार्य श्री १०८ देशभूषणजी महाराज जयपुर से तीन वर्ष पूर्व दिल्ली पधारे। आपने भगवान महावीर के २५०० वे निर्वाण महोत्सव के अवसर पर उत्तमोत्तम कई ग्रन्थरत्नो का निर्माण किया और समस्त आगत मुनिराजो, साध्वी आर्यिकाओ और श्वेताम्बर स्थानकवासी, तेरह पन्थी, समस्त लोगो मे परस्पर सौहार्द और वात्सल्य की भावना पैदा करके अपूर्व एकता का परिचय दिया है। आपकी छत्र छाया मे भगवान् महावीर निर्वाण महोत्सव सफल होरहा है यह आपकी पुनीत धार्मिक श्रद्धा का फल है।

श्री मूलचंद किसनदास कापड़िया
सम्पादक जैन मित्र, सूरत

आचार्य देशभूषण महाराज महापुरुष हैं। उनके द्वारा धर्म की प्रभावना हुई है। उनका चातुर्मास सूरत मे हुआ था, उस समय यहाँ जैन धर्म की बहुत प्रभावना हुई। उनके चरणों मे हमारी श्रद्धांजलि है।

पं० रामशंकर त्रिपाठी शास्त्री बस्ती (उ०प्र०)

मुझे पूज्य आचार्य रत्न महामुनि श्रद्धेय गुरुदेव श्री १०८ श्रमण संघ नायक देशभूषणजी महाराज के चरणो मे २० वर्ष से अधिक समय व्यतीत करने का ईश्वर की कृपा से सौभाग्य मिला। मैने हजारो साधु और विद्वानों के दर्शन किये। उन सबके मध्य आचार्य रत्न गुरुदेव का व्यक्तित्व अपना सर्वोपरिस्थान रखता है। उनकी कृपा से मेरा अकथनीय कल्याण हुआ है।

मैने देखा है कि अपार जन समुदाय युक्त मेदिनी आचार्य श्री के जीवन और उपदेश से आलोकित होती रही है। मेरे पास इतने शब्द नही है कि मै गुरुदेव के प्रति यथार्थ मे अपनी कृतज्ञता को व्यक्त कर सकूँ। महाराज श्री ने मुझ पर तथा मेरे परिवार पर जो उपकार किया है उससे मै जन्म जन्मातर में भी उऋण नही हो सकता।

आचार्य महाराज के कारण मुझे दानवीर सेठ जुगल किशोरजी बिरला आदि अनेक हिन्दू धर्म के महापुरुषो के पास जाने का मौका मिला। मै स्वर्गीय भारत रत्न प्रधान मत्री श्री लालबहादुरजी शास्त्री की साध्वी पत्नी माता ललिताजी से भी मिला। उन सबके हृदय में आचार्य श्री के प्रति अपार भक्ति, ममता और श्रद्धा मैने देखी। श्रीमती शास्त्री ने मुझसे कहा था—"मेरे पतिदेव ने आचार्य महाराज की भक्तिपूर्वक चर्चा की थी। वास्तव मे वे सत शिरोमणि है।"

आचार्य महाराज के द्वारा लाखो जैनो व अजैनो का सच्चा कल्याण हुआ है। अगणित लोगो को उन्होने सयम, सदाचार तथा त्याग के मार्ग में लगाया है। परमात्मा से प्रार्थना है कि ये महामानव महर्षि शिरोमणि साधुराज चिरकाल तक जीवित रहे और उनकी कृपा तथा दयादृष्टि हम पर सदा बनी रहे।

ब्र० सूरजमल जैन आचार्य संघ

आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज के पुनीत चरणो मे नमोस्तु करते हुए १००८ श्री भगवान महावीर स्वामी के चरणो में प्रार्थना है कि परम योगीश्वर आ० श्री देशभूषण महाराज हम सरीखे पामर जीवों को सन्मार्ग देते रहे।

०

सूरजमल गोधा (नायब)

जयपुर

श्रमण शिरोमणि परमपूज्य गुरुवर आचार्यरत्न देशभूषण जी महाराज की देश देश मे जो देन है वह भूली नही जा सकती। राजस्थान के जयपुर नगर मे गुरुवर के पधारने पर जो धर्म प्रभावना हुई और एक विशाल पहाड़ी पर श्री १००८ पारसनाथ चूलगिरी मन्दिर का निर्माण होकर प्रतिष्ठा हुई यह निधि जयपुर जैन समाज के लिए अपार है। मेरा गुरुवर के चरणो मे नतमस्तक होकर वारम्वार नमस्कार है और प्रभु से प्रार्थना है कि आप दीर्घायु हो।

०

वैद्य प्रेमचन्द जैन, नमिसागर जैन औषधालय, दिल्ली

आपके चरण सानिध्य का सौभाग्य मुझे बहुत समय से प्राप्त है, मैं निश्चय पूर्वक कह सकता हूं कि आप मे जो प्राणिमात्र के लिये वात्सल्य, अटूट धर्म प्रेम, प्रगाढ़ करुणाभाव, अदम्य क्षमता, और अनंत गाम्भीर्य आदि विशिष्ठ गुण हैं, वे अन्यत्र एक साथ देखने में दुर्लभ हैं।

अरि मित्र महल मसान कंचन, कांच निन्दन थुति करन।
अर्घावतारन असि प्रहारन, मे सदा समता धरन॥

आप शत शतायु हो।

०

लक्ष्मीचन्द्र जैन एम. ए. मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ

आचार्य महाराज की साधना की शृंखला मे अनेक स्वर्ण कड़ियां जुड़ी हैं। कितने ही कन्नड़; तमिल, मराठी जैन ग्रन्थों का उन्होंने उद्धार किया हैं, स्वयं उनका सम्पादन किया हैं, बहुभाषी अनुवाद किया हैं, प्रकाशन व्यवस्था करवाई हैं। इसके लिए जैन समाज और साहित्य जगत् उनका ऋणी है।

पंडित हीरालाल 'कौशल' शास्त्री न्यायतीर्थ
अध्यक्ष, जैन विद्वत् समिति दिल्ली
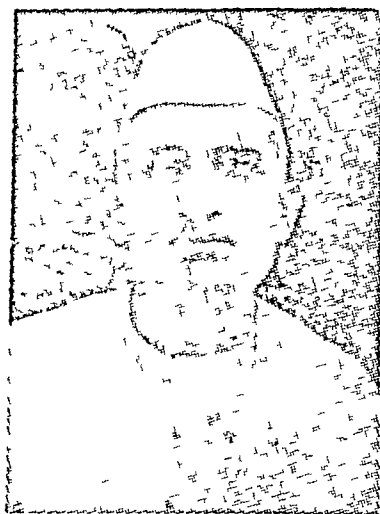
आचार्यरत्न श्री देशभूषणजी महाराज की गभीरता, उदारता, अनुशासन और ज्ञान गरिमा अनुपम है। आपकी वाणी मे ओज तथा माधुर्य है। आप महान तेजस्वी और प्रभावशाली साधुराज है। आपने कन्नड़ तमिल आदि दक्षिण की भाषाओ के अनेक ग्रन्थो को नागरी लिपि मे हिन्दी अर्थ सहित प्रकाशित कराके राष्ट्रभाषा की अपूर्व श्रीवृद्धि की है। आपका प्रत्येक क्षण साहित्य सेवा और आत्मकल्याण मे ही व्यतीत होता है। आप ज्ञान-ध्यान निरत उच्च कोटि के साधु है। आपके चरणो मे मेरा बारम्बार नमस्कार है।

श्री जयकुमार जैन

सहायक कमिश्नर राजस्थान—

पूज्य आचार्य देशभूषण जी महाराज की जयन्ती जब जयपुर में मनाई गई तब साधारण जन समुदाय स्तब्ध था। जयपुर के इतिहास मे वह दिन अमर तथा अपूर्व है। जैनेतर लोग कहते थे कि इन नग्न वीतरागी साधु के पास पीछी और कमडलु के सिवाय कुछ भी नही है, फिर भी दुनिया इनके पीछे-पीछे भागती है।

आचार्य श्री द्वारा जम्बूस्वामी तीर्थ क्षेत्र मथुरा का जीर्णोद्धार तथा मानस्तम्भ की प्रतिष्ठा का कार्य सम्पन्न हुआ। उनके पुण्य प्रभाव से पारस्परिक वैमनस्य दूर हो गया। उनके चरणो मे श्रद्धा से मेरा मस्तक नत हो जाता है। वे महान् योगी है। उनके चरणों में शतश. वदन है।

वि० शांतिराज शास्त्री कारकल, (कर्नाटक)

मैं प्रात.स्मरणीय दीर्घतपस्वी १०८ आचार्य रत्न देशभूपण महाराज से करीव ३५ साल से परिचित हू। मुझे आपकी सेवा करने का सौभाग्य भी नागपुर मे मिला था तथा कुछ वर्ष पूर्व कारकल मे दर्शन करने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ था। आचार्य श्री के चरणो मेरी श्रद्धाजलि है।

○

डा० पं० लालबादुर शास्त्री पी एच. डी. सं. जैन दर्शन, दिल्ली

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि पूज्य आचार्य देशभूषणजी महाराज का पावन जीवन चरित प्रकाशित होने जा रहा है।

महापुरुषों का वास्तविक व्यक्तित्व तो उनके जीवन चरित मे ही अन्तर्निहित रहता है। साक्षात्कार मे व्यक्ति के तत्कालीन दर्शन ही होते हैं, उससे उनके वास्तविक व्यक्तित्व का पता नही चलता।

आचार्य महाराज का व्यक्तित्व सर्वतोमुखी है। वे साधु हैं, साहित्य सर्जक हैं, सदुपदेष्टा है, सत्चिन्तक हैं।

अच्छा तो यह होता कि यह जीवनचरित वहुत पहले ही प्रकाशित हो जाता, पर सत्कार्य जव भी हो तभी अच्छा है।

मुझे विश्वास है कि इस जीवन चरित्र से जनसाधारण को आत्मोत्थान की प्रेरणा मिलेगी।

उनके चरणो को मेरा शतश. वन्दन।
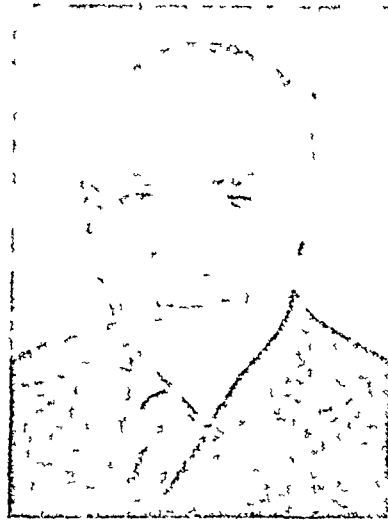
साहू शान्तिप्रसाद जैन

श्रीमती अक्काबाई
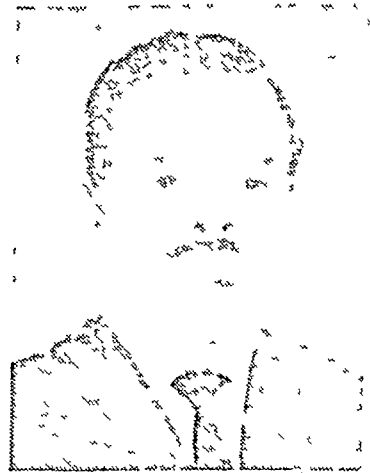
अजित प्रसाद ठेकेदार
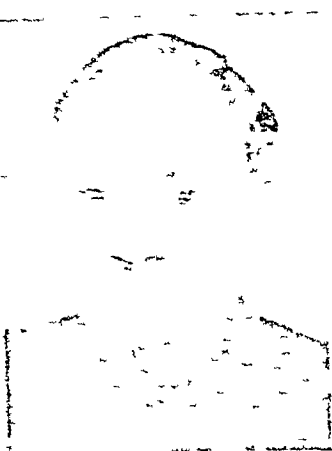
विजेन्द्रकुमार जैन

सूरजमल गोया
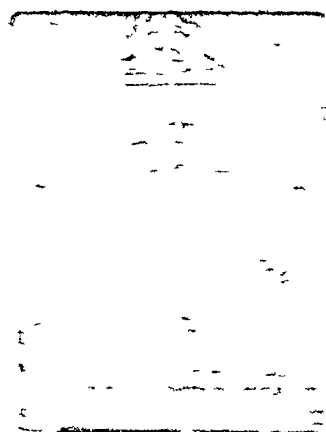
ऐलक कुलभूषण जी

रमेशचंद्र जैन

लाला श्यामलाल जी ठेकेदार, अध्यक्ष मुनिसंघ कमेटी, दिल्ली

मेरी दृष्टि में आचार्य देशभूषण महाराज महा तपस्वी, प्रभावशाली, अनुभवी, महान ज्ञानी, आकर्षक व्यक्तित्व वाले महान आत्मा हैं। मैंने विश्वधर्म सम्मेलन सन १९६५ ई० मे अनेक साधुओ के बीच में उनका सर्वोपरि व्यक्तित्व चमकता हुआ देखा है। आचार्य महाराज ने अपने चातुर्मासो द्वारा दिल्ली समाज को तथा जनता को प्रभावित किया है। उनके कारण समाज का धार्मिक जीवन अत्यन्त पुष्ट और वर्धमान हुआ है। उनके कारण पवित्र जैन धर्म की अद्‌भुत प्रभावना हुई है। सचमुच मे वे इस समय जैन धर्म के सूर्य के समान प्रकाशवान हो रहे है। उनके पुण्य चरणो मे मेरी सविनय श्रद्धाजलि है।
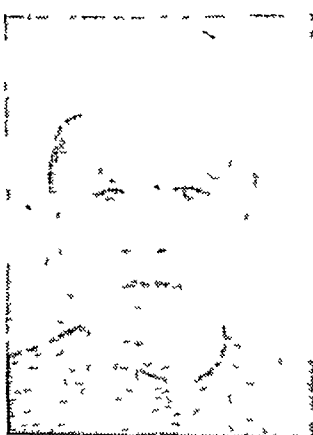
SHAKUNTALA CHAUGALE
KOLHAPUR

I and my family members are very happy to learn that a valuable book is being published about the life of our great venerable Guru Acharya Ratna Desh-Bhushan Maharaj.

We all pray for the longevity of our benefactor Dharmaguruji.

राजेन्द्र कुमार जैन,
अध्यक्ष श्री प्राचीन दि० जैन अग्रवाल
पंचायत दिल्ली

परम पूज्य, प्रातः स्मरणीय श्री देशभूषण जी महाराज अटूठ धर्मानुरागी अदम्य साहसी, श्रेष्ठ-धर्मोपदेशक, और प्रकाण्ड विद्वान हैं, जिनके उपदेश से अगणित लोगो का जीवनोद्धार हुआ है। मैं महाराज श्री के दीर्घ जीवन की कामना करता हू।

जुगमन्दरदास जैन, चाय वाले, सदर बाजार देहली

प्रात. स्मरणीय १०८ आचार्यरत्न देशभूषण जी—महाराज मे अनेको विशिष्ठ गुण है, जिनके कारण वे जगन्पूज्य है। उनके धर्मोपदेश से कितने ही लोगो का जीवन सुधर गया है, अज्ञानी, ज्ञानी, बने है, निर्धन, धनी वने है, अभव्य, भव्य वने ह मै आपके चरणो मे नमोस्तु करता हू। आप शनायु हो। इति।

श्री सुब्बय्य-शास्त्री

आस्थान महा विद्वान्, बेंगलोर

आचार्यरत्न श्री १०८ पूज्य देशभूषण मुनि पुंगव जी के पवित्र चरणों में भक्ति भाव से प्रणति कुसुमाजलिको समर्पण करते मुझे अमितआनद हो रहा है।

पूज्यमुनि श्रेष्ठ कई दशकों से दिगबर दीक्षित होकर ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य रूप पंच आचारो को निरतिचार पालन करते हुए, श्रीमज्जिनदेव, जिनशासन और जिनचैत्य तथा चैत्यालयो की परम प्रभावना करते हुए तथा जैनसमाज के अज्ञानाधकार को हटाते हुए सूर्य के समान शोभायमान हो रहे है। आपको तपोमहिमा की उज्ज्वलकोर्ति जैनसमाज रूप गगन मडल मे चादनी के समान भव्य जनो के हृदयकुमुदको हर्षित कर रही है। आपने पवित्र अनुष्ठान के दीर्घ अध्ययन के द्वारा अनेक ग्रन्थों को लिखकर जिन शासन की अद्वितीय प्रभावना की है।

परम पूज्य आचार्यरत्न गुरुवर्य गुणवृद्ध, तपोवृद्ध और वयोवृद्ध हैं। मै पूज्य आचार्य श्री के चरणो मे भक्ति भाव से श्रद्धा प्रणतिकुसुमाजलि को समर्पित करता हू।

श्री वर्धमानाय नमः

विश्ववंद्य आचार्यरत्न परम पूज्य श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज का तपोमय आदर्श जीवन, समाज देश एव राष्ट्र के कल्याण का निर्मल स्रोत है ।

(लेखक—श्री मक्खन लाल शास्त्री सिद्धान्त वाचस्पति मोरना)

वीतरागी दिगम्बर साधुओ का दर्शन, आहार दान, धर्मोपदेश, ससार विरक्तम पुरुषो के लिए रत्नत्रय प्राप्ति का साधन बन जाता है। इसके ज्वलत उदाहरण अनेकानेक है। प्रकरण मे आचार्य देश भूषण महाराज का उदाहरण भी महत्त्व पूर्ण है। जब महाराज गृहस्था एव बाल्य जीवन मे थे तब उनके घर मे परमपूज्य आचार्य शान्ति सागर महाराज का आहार हुआ था। गृहस्थ बालक देश भूषण पर उसका महान् प्रभाव पडा, "होन हार विरवान के होत चीकने पात" इस नीति के अनुसार देशभूषण प्राच्य सस्कार एव विशिष्ट पुण्योदय से बालक जीवन मे ही ससार से उदास थे, उपादान आत्मा मे पात्रता थी, आचार्य शान्ति सागर महाराज का आहार देखना और बालक देशभूषण के शिर पर उनका पिच्छी रखकर मगल वर्धक आशीर्वाद देना बालक की आत्मा मे अभ्युत्थान की भावना प्रबल हो गई। यह प्रबल प्रभावक निमित्त बालक को मोक्ष मार्ग मे लगाने और उनके द्वारा जगत् के जीवो के लिए कल्याण मे लगाने मे समर्थ साधक बन गया। वही निमित्त और वही उपादान पात्र, बालक देशभूषण महाव्रती परम दिगम्बर साधु रत्नज एव आचार्य रत्न बनाने मे सफल हो गया।

आचार्य महाराज का व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व

परम पूज्य श्री १०८ आचार्य देशभूषण महाराज का व्यक्तित्व उनका सुभग सुन्दर ओजस्वी एव प्रतिभाशाली शरीर का दर्शन करने से ही दर्शक प्रभावित हो जाता है और भक्ति से उसका मस्तक उनके चरणो मे

झुक जाता है। महाराज बाल ब्रह्मचारी है। वे इस समय ७० वर्ष के हो चुके है। उनके अखंडब्रह्मचर्य का ही यह प्रभाव है कि उनका शरीर प्रबल तप का साधक बना हुआ है।

महाराज परम शान्त हैं। परमित भाषी है, रत्नत्रय विभूषित है। उनके उग्र तपश्चरण का ही यह प्रभाव है कि सिह और सर्प का उपसंग आने पर महाराज थोडे भी भयभीत एव विचलित नही हुए, सर्प ने महाराज को डस लिया उनके दृढ सम्यक्तव एव चरित्र के प्रभाव सर्प का विष विना किसी औषधि आदि के प्रयोग के स्वय उतर गया।

महान् अनुभव और महती विद्वत्ता

आचार्य महाराज महान् अनुभवी और महान् विद्वान् है उन्होने अपने निर्मल विशेष क्षयोमशम से अनेक गभीर शास्त्रो का हिन्दी कनड़ी तामिल भाषाओ मे अनुवाद किया है। और कई अन्योपयोगी आगमानुकूल स्वतत्र ग्रन्थ भी बनाये है। उनका पूरा समय सामायिक स्वाध्याय और ग्रन्थ रचना में ही व्यतीत होता है।

भारत शासन एवं प्रमुख राष्ट्र नेताओं ने दर्शन किया

आचार्य रत्न देशभूषण महाराज का कितना महान् प्रभाव है और कितना महत्व है इसका परिचय सहज हो जाता है भारत के भू० पू० राष्ट्रपति एवं दार्शनिक विद्वान् डाक्टर राधाकृष्णन्, सुप्रीमकोर्ट के चीफसष्टिस श्री वेकटरमण जी तत्पर, केन्द्रीय काग्रेस के अध्यक्ष श्री ढेवर भाई श्री निजलिगप्पा, उपराष्ट्रपति श्री गोपाल स्वरूपजी पाठक, भारत के स्व० प्रधान मंत्री श्री लालबहादुर जी शास्त्री इन सभी राष्ट्रसंचालक प्रमुख नेताओ ने आचार्य महाराज के चरण शान्गिध्य मे बैठकर एव नत मस्तक होकर महाराज का साक्षात् आशीर्वाद लेकर अपने को कृतार्थ माना, उनके शिर पर पीछी रखकर महाराज ने आशीर्वाद देते हुए शासन मगलकारी बने ऐसा कहा।

ऐतिहासिक धार्मिक कार्य

भगवान ऋषभ देव आदि तीर्थकरो की जननी अयोध्या नगरी मे आचार्य महाराज ने इस युग के आदि तीर्थकर आदिनाथ भगवान की ३३ फुट ऊची अजीब सुन्दर खड्गासन प्रतिमा श्रावको को प्रेरित कर विराजमान कराई कोल्हापुर मे २५ फुट ऊची भगवान आदिनाथ की प्रतिभा महाराज ने श्रावको से विराजमान कराई।

इसी प्रकार प्रसिद्ध नगर जयपुर में खानिया के पर्वत पर वहा के श्रावको द्वारा चौबीस तीर्थकरो की चौबीस पद्मासन प्रतिमाएँ चौबीस

वेदियो मे महाराज ने विराजमान कराकर एक ऐतिहासिक धर्म साधक महान कार्य किया है। उस पर्वत का नाम पार्श्वनाथ चूल गिरी रक्खा गया है। जयपुर पहले से ही चैल्यालय नसिया और विशाल जिन मन्दिरो की लगभग ३०० तीन सौ की सख्या होने से जैनपुरी कहा जाता है अब चूल गिर का निर्माण होने से जयपुर अतिशय क्षेत्र बन गया है।

अनेक संस्थाएं

आचार्य महाराज की धवल की कीर्ति दक्षिण उत्तर मे सर्वत्र है उनके नाम पर निर्मित कोल्हापुर जिले मे गुरुकुल, छात्रावास आदि अनेक संस्थाए चल रही है।

तपस्विता पूर्ण प्रभाव

बँगलौर हाईकोर्ट के अवकाश प्राप्त न्यायाधीश महोदय ने आचार्य देशभूषण महाराज के प्रति प्रगाढ भक्ति प्रगट करते अपने निबध ग्रन्थ मे लिखा है कि आचार्य महाराज ने मेरे जीवन को प्रभावित कर मुझे मार्ग दर्शन दिया है।

इसी प्रकार १९७२ मे शासन द्वारा निर्माण महोत्सव मनाने के लिये भारत शासन की प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाधी ने आचार्य महाराज को ससद मे साग्रह एव सविजय आमन्त्रित कर उनसे आशीर्वाद ग्रहण कर आनन्दित हुई थी।

आचार्य महाराज ने अनेक मुनि बनाये और लाखों मनुष्यो का उद्धार किया

आचार्य महाराज ने अनेक दीक्षा देकर कई मुनि बनाये हैं कई आर्यिका आदि दीक्षित की है। सबसे बढ कर उन्होने परमपूज्य महान विद्वान मुनिराज श्री विद्यानन्द जी महाराज को दीक्षा देकर एक ऐसे सुपुत्र बना दिये है जिनके द्वारा आज जगत् का कल्याण हो रहा और जैनधर्म विश्व धर्म के रूप मे जन जन का कल्याण हो रहा है।

इसके अतिरिक्त आचार्य महाराज ने लाखो मनुष्यो से मद्य मास छुड़ा कर एव हिंसामद चोरी सुशीलआदि पापो के त्याग की प्रतिक्षा दिला कर उन जीवो का उद्धार किया है।

ऐसे जगत के परम हिंसक ही साधुराज परमपूज्य आचार्य देषभूषण जी महाराज के चरणो मे मैं श्रद्धा भक्ति से नमोस्तु कहा हू।

□

आचार्य श्री की जयन्ती पर पठित कविता

(स्व० कविरत्न 'सुधेश' जैन काव्यतीर्थ नागौद)

'दिव्य यमुना-धार ! कल कल कण्ठ से जयकार तो बोलो !

आज निर्भय निर्विकारी की जयन्ती है !

आज अर्हत्-धर्म-धारी की जयन्ती है !!

आज चिर से ब्रह्मचारी की जयन्ती है !!!

और स्वर मे स्वर मिला जय ऐ कुतबमीनार ! तो बोलो !

आज 'सो ऽ हं' मत्र-गायक की जयन्ती है !

आज मुनिवर सघ नायक की जयन्ती है !!

आज निश्चल निष्कषायक की जयन्ती है !!!

ग्रीष्म से कब भीत होते, शीत से कब कापते है ये !

'देशभूषण' देश-भू को निज पदो से नापते है ये !!

ये किसी भी तो उपासक से न कोई कामना करते !

हर परीषह और हर उपसर्ग का नित सामना करते !!

इन विचक्षण वीतरागी पर स्वय बलिहार तो हो लो ।

आज जिनमत के प्रसारी की जयन्ती है !

आज करुणा भावधारी की जयन्ती है !!

आज आत्मा मे विहारी की जयन्ती है !!!

एक सी इनके लिये ललकार औ' जयकार दोनों है !

एक सी इनके लिये दुतकार औ' सत्कार दोनो है !!

एक से इनके लिये प्रतिकूल औ' अनुकूल दोनो है !

एक से इनके लिये तो शूल एव फूल दोनो है !!

साधु ये समदृष्टि, करने प्रति विनय- उद्गार तो बोलो !

आज निस्पृह काम-जेता की जयन्ती है ।
आज विपयो के विजेता की जयन्ती है ।।
आज इन निर्भीक नेता को जयन्ती है ।।!

देह से होकर विरत इनने निजात्मा को निखारा है !
औ' नही तन-रूप चेतन-रूप हो अविरत सिंगारा है ।।
मुक्ति पाने हेतु सारे वन्धनो को खोलते है ये ।
अष्ट कर्मो की गढो पर नित्य धावा बोलते है ये ।!
अव इन्ही के अनुसरण के हेतु तुम तैयार तो हो लो ।
आज सच्चे स्वाभिमानी की जयन्ती है ।
आज धार्मिक धर्मध्यानी की जयन्ती है ।।
आज आगम-ग्रन्थ-ज्ञानी की जयन्ती है ।।।

○

श्रद्धा भरा नमन है

कविरत्न शर्मनलाल जैन 'सरस'

आज मनुजता धन्य हुई देकरके तुम्हे जनम है।
हे आचार्य तुम्हे इस युग का श्रद्धा भरा नमन है ॥

१

तुमने वैभव छोड़ सदा सयम का साथ निभाया,
तुमने अपनी वाणी से, पत्थर नवनीत बनाया,
आज तुम्हारे रोम रोम मे, सत्य शिव सुन्दर बोला
तुमने मिट्टी के चोले से, मुक्ति का पथ खोला
लगने लगती धरा रत्न सी, होता जहाँ गमन है
हे आचार्य तुम्हे इस युग का श्रद्धा भरा नमन है ॥

२

तुमने दुनिया से लड़ना दुनियाँ को व्यर्थ वताया,
तुमने अदर के अरियो से, लडने को उकसाया,
जो भी गया तुम्हारे तट पर, वही सदा है जीता,
पार्थ बन गया जिसने तुमसे सुनी तुम्हारी गीता,
तुम्हे देखकर मानव मन को, मिलता अमिट अमन है,
हे आचार्य तुम्हे इस युग का श्रद्धा भरा नमन है ॥

३

किससे उपमा लिखे तुम्हारी, हे युग के कल्याणी,
सत्य शिव के मूर्तिमान, हे ज्योति पुञ्ज वरदानी,
जिसकी आभा नष्ट न होती, वस तुम आभूपण हो,
और देशभूपण सचमुच मे, तुम्ही देशभूपण हो,
तुम वह तीरथ जिसके तट पर होता पाप शमन है,
हे आचार्य तुम्हे इस युग का श्रद्धा भरा नमन है ॥

आचार्य देशभूषण-स्तुतिः

पं० इन्द्रलालः शास्त्री जयपुर निवासी

ब्रह्मतेज. सुतेजस्वी दर्शनीयः सदाकृति. ।
सौम्यमूर्तिर्महावक्ता मेधावी गुणमंडितः ॥१॥

लेखकः शुद्धसद्ध्यानी पूज्यपाद· सुशातिधृत् ।
ओजस्वी दृष्टिसमोदो लोकाकृष्टिप्रभाववान् ॥२॥

सज्ज्ञातानेकभापाणां विद्वान् धीमान् दिगवर ।
निर्ग्रन्थो वीतरागात्मा सूरिराट् देशभूषण. ॥३॥

यो जित्वा भवभोगकर्कशरिपून् ससारकष्टप्रदान् ।
आत्मन्येव सुनिष्ठितात्मधिपणो मुक्त्वा वृत्ति भौतिकीम् ॥४॥

धृत्वाऽऽनदसुखास्पद वुधधृत जैनेश्वर दीक्षण ।
सोव्यात् सूरिवरो हितोद्यतमतिः श्री देशभूपो गुरु ॥५॥

सम्यग्दृष्ट्यादि सशुद्धरत्नत्रितय-भूषित. ।
आत्मैकसिद्धिसलीनो नोव्यात् श्री देशभूपण ॥६॥

जिनवाणीमनुसृत्य निर्मला क्लेशहारिणीम् ।
शास्त्राणा लेखको वक्ता सदाव्याद्देशभूपण. ॥७॥

स्वभावमधुरा वाणी सदैवामृतवर्पिणी ।
भव्यलोकोद्धरा यस्य स जीयाद्देशभूपणः ॥८॥

आचार्यवर्यदेशभूषणस्तुतिः

कविभूषण पं० मूलचन्द जैन शास्त्री श्री महावीरजी

तारुण्ये जयिना स्मर विजयिन जित्वाऽश्च भोगाह्हिके,
दध्रे येन महौजसाऽतितरसा जैनेश्वरैरादृता ।
दीक्षाऽक्षाश्वबलप्रसारशमने सुप्रग्रहप्रोपमा,
देशाभूपणदेशभूषणगुरु र्भूयाद्भवात्तेर्हर. ॥१॥

लक्ष्मीपतिभ्यो ललनापतिभ्यो बभूव यद्विस्मयकारकं तत् ।
मुनिव्रत धर्मधिया च येन धृत पवित्र स्वगुरोः सकाशात् ॥२॥

रत्नत्रय पञ्च महाव्रतानि गुप्तित्रयं वा समितोस्त्रिकालम् ।
य. पालयत्यादरतो भजेऽह मुनीन्दुमेन मुनिदेशभूषणम् ॥२॥

रम्भासमानोऽस्ति भवोह्यसार काम प्रतापो परितापहेतु ।
विचिन्त्य चित्ते निखिल विहाय बभूव यो रागविरक्तचित्तः ॥३॥

तामिन्दरां मन्दिरमध्यवासा विहाय कायेऽपि निरस्तमोह
व्रत गृहीत सुखसाधनेऽपि ह्यनेन धर्मैसुधिया विशुद्धया ॥४॥

उपद्रवा वाऽपि परोषहास्ते यत्र क्वचित्सचरतोऽस्य सूरे. ।
पार्श्वे समायान् न तथाप्यभैबोदसौ च हर्यक्षसमानवृत्तिः ॥५॥

कायेऽपि यस्योस्ति न मोहवृत्तिमित्रे ऽप्यरो यस्य समत्ववृत्ति ।
ममत्वतश्चित्तविकारतो वा बभूव योऽजेयविशिष्टशक्ति ॥६॥

जिनेन्दमार्गेऽद्भु्तरत्नराशि विचिन्त्य तल्लब्धुमसो मुनोन्द्र. ।
सिद्धान्तशास्त्राण्यनुवाद्य जातो विशिष्टबोधो महनोयकार्ति. ॥७॥

धन्या इमे ये विविधैस्तपोभिर्मलोमस स्व परिशोधयन्ति ।
श्रो सूरिवर्या गुरुदेशभूषा भूषाविहोना अपि सर्वमान्या ॥८॥

भोगान्न भुक्तान् परिचिन्तयन्ति वाञ्छन्ति नैवाथ च भाविनस्ताम् ।
चतुर्गतिभ्यः सतत विभोता मुक्त्यर्थमेते पुरुपार्थवित्ताः ॥६॥

नमोऽस्तु चास्मै गुरवे गुरूणा जगज्जनाना च हितकराय ।
ससार स वर्द्धककारणाना विच्छेदिने पादविहारिणेऽस्मात् ॥१०॥

न क्षौरकर्माणि, जलाभिषेक नाभ्यङ्गमङ्गस्य च सस्कारम् ।
न दन्तकाष्ठादिभिराचरन्ति शुद्धि रजाना च कदापि चैते ॥११॥

स्वात्मानद प्रकाशान्निजहृदिसमतावल्लरीवृद्धिजुष्टा,
तुष्टा शिष्टाभिराध्या विधृतशमदमाद्यैर्गुणै साद्विशप्टा,
दृप्टाश्चारित्रलब्ध्या विमलगुणगणान् निष्ठयाऽऽराधयन्त ।
सन्त सन्तु प्रसन्ना मयि गुणिगुरवो देशभूषा मुनीन्द्रा ॥१२॥

जिनेन्द्रमुद्राङ्कितचारुवृत्ते ! तत्त्वज्ञ ! धर्मज्ञ ! विदावरेण्य ।
नमोऽस्तु ते मोहमहारि-मल्ल ! रत्नत्रयाराधक ! सघभर्त्रे ॥१३॥

शास्त्रिणा मूलचद्रेण मालयोनिनिवासिना ।
भक्त्या कृता स्तुति र्दिव्या महावीर प्रवासिना ॥१४॥

○

My Homage

To

Acharya Ratna Shri Deshābhushana Muni Maharaja
(Justice T K. Tukol, M A,, LL.B,

Retired Judge, High Court of Karnataka & Former Vice-Chancellor, Bangalore University)

श्रुतमविकल शुद्धा वृत्ति परप्रतिबोधने
परिणतिरुद्योगो मार्गप्रवर्तनसद्विधौ ।
बुधनुतिरनुत्सेको लोकज्ञा मृदुतास्पृहा
यातिपतिगुणा यस्मिन्नन्ये च सोऽस्तु गुरु सताम् ॥६॥

"May he,—who is possessed of the perfect knowledge o- the scriptures, of pure character. well-versed in elightening others (in the tenets of religion), ever engaged in the noble task of leadf, ing others to the right path of salavation, praised by the learned tree from temptations and endowed with such other virtues of great saints—be always our teacher " Atmanusasana (6)

When I thought of writing a short but humble tribute to revered Acharya Deshabhushana Muni Maharaja on his completion of seventy years of his life, *my mind* was *naturally overwhelmed with, a feeling of great veneration for the Saint whose blessings during the last three decades have moulded my life and given direction to it*

He has grown in stature I find a graphic picture of his mental and spiritual attainments in what Acharya Shri Guna Bhadra has said in the verse quoted at the top from his learned book known as *Atmanusasana* Besides these qualities, I have found in him an enviable art of patient persuasion working its charms on his audience by his sweet, clear and pious words of advice

n dguidance *He never gets excited* amidst a volley of questions which he answers in his religious discourses by *brief ethical stories as has been the practice of the ancient sages* who have spread the glorious message of Bhagawan Mahaveera

The first incident that I remember occurred in 1944 when I was privileged to have his *darsana* at Pandharpur when he was perhaps on his way to Kunthalagiri which is a place of pilgrimage, now in Maharashtra During his stay, *I used to attend his daily* discourses on different aspects of Jainism He was pained to see that the Sravakas had a dispute over the management of the local Digambara Jaina Temple He tried to persuade the local gentry to agree to an amicable settlement, he fasted for three days and advised them about the futility of raising disputes over the management of a temple I lent my humble support by offering to adjudicate privately on their rival claims by looking into their documents and other evidence But human vanity for name and fleeting power had its sway over pious advice for unity and *aparigraha* Though an ascetic is unconcerned with worldly affairs, he was sad over the disharmony that was breeding disunity and bitterness amongst the members of a small community whose claims to be the followers of the immortal doctrines of Ahimsa and Truth found no stable basis in practice

My next opportunity was during the year 1945 when he was spending his *Chaturmas* in Galataga which is a village in the Belgaum District I could realise what a wonderful awakening he had created amongst the Jainas, and the-Jainas, by his daily discourses on the ethical principles of Jainism His familiarity with rural life and aspirations of the people lent reality to what he preached and *his words went straight to the hearts* of the people who used to gather from the neighbouring village also It was a delight to see how the villagers, with all their innocence, used to put questions on their difficulties in the practice of various principles in daily life He used to emphasise on the need of firm faith, a sincere effort to understand the principles and determined will to practice what they had understood *The patience and skill with which he* tried to simplify the *rules of conduct*

was remarkable He used to impress on their minds that it was necessary to repeat the *namokar mantra* after their morning bath every day *and take their evening meals before sunset.* The magnitude of the task that he performed can be appreciated only by those who know the Jains in the rural areas, most of them being agriculturists who are either illiterates or semi-literates

During the next few years, I had rare occasions of his *darshana* His discourses used to attract large crowds of people from all communities who used to part in the evening with grateful reverence for the new light shown to them The Jaina community must acknowledge how much it is indebted to the Acharya and to the other Saints like *Charitra-Chakravarti* Shantisagar Muni Maharaja by awakening the people to the principles of Jainism which are universal in concept and unique in practice, but for their efforts, many would have remained ignorant of their glorious inheritance and would have died without testing the sweetness of *Jina-vani*

It was a moment of exultation and wonder when I saw a crowd of about 20 thousand people, men and women gathered at Kothali-Khupanawadi to celebrate the Diamond Jubilee of the Acharya's birthday in 1964 It was presided over by me and the function was inaugurated by the then Chief Minister Mr.S. Nijalingappa The vast concourse of people loudly cheered the Maharaja by cries "Long live Muni Maharaja, may victory attend the Jaina religion" The Chief Minister sang the catholicity of Jainism, its practical ethics, the contribution of Ahimsa to world peace and of Jaina writers to the enrichment of Kannada literature. *He was all praised for the simplicity of Jaina monks whose nudity and renunciation evoked the admiration of even the athiests* The Muni's sermon on the eternal principles of Jainism was marked for its brevity and for its universal appeal to practice religion in daily life to save humanity from further degeneration. My speech was an appeal to cultivate human values in the light of what the Acharya had advised them just then

It is a point for emulation that the occasion did not end with speeches Solid foundations were laid for the education

of poor students by establishing an Ashrama and a High Schoo in the twin villages The students receive regular instruction in religion and a temple dedicated to the Twentyfour Tirthanakaras constructed at the Ashram to commemorate the occasion exudes an atmosphere of religion and devotion The two villages which have mostly a Jaina population have been pulsating with new life of religions elightenment and piety. The institutions have been progressing with the blessings of the Acharya under the management of devout and dedicated Sravakas

Five years later, the Jaina community celebrated the 65th Birthday of Acharya Ratna Deshabhushanaji at Belgaum with great pomp and enthusiasm It was again my good fortune that I was called upon to preside over the occasion and the then Minister for Revenue Mr H V Kaujalgi inaugurated the function He too was eloquent over the catholicity of Jainsim and the contribution it had made to Indian Culture He paid rich tributes to the Muni Maharaja for spreading religious knowledge in different parts of the country and thus helping the cause of moral advancement in public life The Muni Maharaja addressed the audience in eloquent terms emphasising the need to practice religion for a happy life here and for securing real happiness in the next world As the audience consisted many educated men and women, he dealt at some length on the meaning of *Ratna-traya*, the three gems of Right Faith, Right Knowledge and Right Conduct, and explained how those qualities which were inherent in every soul were required to be realized by regulating our individual lives on the lines indicated by the *Jinas* His speech was acclaimed even by the non-Jainas both for its serenity and breadth of vision I emphasised that the need of the hour was to *narrow the gulf between precept and practice.* To my co-religionists, I only appealed how they could easily be examples of noble life, both in private and public, by scrupulously following the five *anu-vratas* in letter and spirit

It was the most fortunate moment of my life when I was asked to write a foreword to *Adhyatma Sudha sara* which is a collection of the discourses delivered by the Acharya Maharaja

during the *Chaturmasa* of the year 1968 in Belgaum Though I was first delighted at the unexpected honour done to me, I felt very humble and wrote "Does a sun need somebody to herald his rise in the sky? The sudden disappearance of darkness bringing in new light and activity was ample proof of his brilliance That was what the book *"The Essence of Spiritual Nectar was"* It must have been a treat to all those who were lucky to hear expositions of the philosophical principles of Jainism The nature of the *Atman* as the embodiment of infinite faith, knowledge, bliss and power has been explained in simple words with suitable illustrations The primary task of the laymen and laywomen is to understand the real nature of the soul and purify themselves in mind, thought and action by following the various vows and observing the austerities with a firmness of mind and flawless devotion Man has forgotten his nature and has been finding pleasure in the worldly objects of his attachment He has entangled himself in the fine webs of karmas and has lost his way in the dazzle of his sensual delights Religion alone can show the real path by helping him to destroy his karmas Due to his *mithyatva*, man is infatuated by delusion and knows not that he is himself his own enemy Freedom from karmic matter is salvation and religion helps man not only in discovering the cause of bondage but also in getting rid of them. Continuous devotion to the Apta (*paramatman*), study of the scriptures to understand the seven principles and bringing about subsidence of obscuring karmas and passions, will assist him to unravel the hidden qualities of real happiness and peace in his own self Know that you are distinct from non-self and then you have known what ought to be known to appreciate the value of truth, compassion, self-control, austerity, renunciation and self-absorption In brief, the book contains all the essence of Jaina tenets and philosophy, and in fact, is a guide for an average layman Even if a person carries all the scriptures with himself, he will not be able to realise his pure soul so long as an atom of attachment continues to obscure his vision.

This is the substance of these discourses To one who has followed the life of this great Saint with devotion and care, it is an objective experiment to establish the universal validity and

greatness of the Jaina philosophy. Shri Kundakunda Acharya has said —

यो इन्द्रियान् जित्वा ज्ञानस्वभावाधिकमनुते आत्मानम् ।
त खलु जितेन्द्रिय ते भवन्ति ये निश्चिता साधव ॥ ३६ ॥

Samayasara, Verse-36

"The Saints who know the real point of view call him a conquerer of himself, who has gained victory over his senses and realised that Knowledge is the inherent quality of his Soul" One may have faith in religion but to have Knowledge of the Self, it is essential that there is the subsidence of the *Jnanavaraniya* Karma. Today, the Muni Maharaja is a tower of spiritual strength and knowledge Who could have expected fifty years ago that a Jaina youth with limited aquaintance with letters would blossom into a great Saint? The answer of Jainism to this question is that there must have been a stoppage of the influx of karmas (*asrava*) as well as a purgation (nirjara) of the karmas As indicated by Umaswami in Chapter IX of *Tattwarthadhigama Sutra*, there could be subsidence of karma by the exercise of three kinds of restraints (guptis), five kinds of careful behaviour (*samiti*) the ten noble virtues and practice of the twelve kinds of reflections (*anuprekshas*) Afflictions are to be endured, austerities have to be practised, and contemplation and meditation have to be resorted before one can bring about the subsidence of the karmas This great ascetic has undergone all the sufferings and privations inherent in the practice of penances and austerities Only if one remembers how he has devoted himself to the arduous task of self-purification day and night during these years, then only one can understand the metamorphosis that has taken place in his life

The Muni Maharaja has demonstrated by precept and by example that the tenets of Jainism are noble and practical We need faith in them and they will to follow them He has been advising all of us, as did Yoginda Swamin through his "*Paramatma Prakasha*," —

" वत्स धर्मं कुरु धने यौवने का तृष्णा" (१३२)

"O pupil, follow religion and renounce all the greed and attachments of wealth and youth."

12th April 1972 is a memorable day when the first meeting of Bhagawan Mahaveera 2500th Nirvana Mahotsava National Committee was held in the one of the halls of the Parliament House at New Delhi I attended the meeting as a member. It was a pleasant surprise when Acharya Ratna Deshabhushan Muni Maharaja attended the meeting which was presided over by Prime Minister Indira Gandhi. Among those who addressed the meeting, the Acharya Maharaja was one. He *addressed the meeting in a measured tone with dignity* While speaking about the need to spread the message of Ahimsa as propounded by the Bhagwan in a world of conflicts and of threatened wars, he also emphasised the absolute and immediate necessity to educate the public on the principles of *Ahimsa, Satya* and *Aprigraha* propounded by Lord Mahavira and the first two of which inspired Mahatma Gandhi to establish the triumph of Ahimsa as a weapon of strength even against the formidable strength of the British Government He blessed the Prime Minister to uphold *dharma* in all her administrative measures.

It is strange that some newspapers commented upon the entry of a naked Saint into the Parliament House The Saint was there on invitation and his conduct in going naked was in the highest tradition of Jainism and consistent also with rights guaranteed under Article 25 of the Constitution of India When Mahatma Gandhi entered the Royal Palace of the Queen of England with his half covered body, Churchill, the then Prime Minister of England, described him as a "naked Fakir" Gandhi replied that it was his ambition to be one and that he did not know when he would reach that stage May I end this small homage by quoting from Bhartrihari's *Vairagya Sataka* where the great Sanskrit poet prayed for reaching that stage .—

एकाकी निस्पृहो शान्त पाणिपात्रो दिगम्बर ।
कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षम. ।।

"O God, when shall I, after the destruction of all my karmas, become a naked Saint, solitary, free from all desires, calm and collected and taking my food in the palm of my hand ?

Mr. S C. Diwaker Shastri,
B.A , L L B

Diwaker Sadan
Seoni (M P.)
INDIA

Dear Mr. Diwaker :

I was very pleased to hear from you recently. I still remember the kindness shown to me by you and by Mr K. C. Jain and his family.

You ask for my impressions of the Jain saint whom I interviewed—through your good offices—in Delhi about ten years ago. First of all, let me say that I hope that His Holiness is still well and vigorous You will recall, also, that my interview with His Holiness was published in your English translation in your Jain periodical You may wish to refer to that issue of your magazine.

And now, here is a brief statement of my impressions :

In early January of 1964 I had the privilege, through the kindness of Pandit S C. Diwaker and Mr K. C Jain of the Raja Toy Company, of an interview with the great Jain saint, Acharya Desh Bhushan ji Maharaj

His Holiness appeared to me to represent authentic Indian sainthood His presence was not at all overly awesome, but nevertheless reflected sincerity and genuineness He appeared to be robust and vigorous in spite of the abstemiousness of his ascetic discipline I must confess that I was struck by a discipline that included the complete absence of clothing in a season of below freezing temperatures !

His Holiness and I conversed about ultimate issues in religion and ethics, and I found him representing the best I had learned about the Jain way of life. He discussed religious matters with vigour and insight. When he indentified *dharam* (mercy, compassion, fellow-feeling) as the very heart of religion, I responded affirmatively because I, too, see compassion (love or grace, in Christian-terminology) as the very essence of faith

I reiterate my impression that His Holiness represented authentic Indian sainthood. He was aware of having achieved holiness by his own strenuous efforts. Yet he was not haughty nor conceited in his bearing I have great respect for this concept of sainthood, although my own faith views sainthood as the acceptance of God's infinite mercy and love which one cannot merit or achieve but only receive as a gift—and then respond by becoming a merciful and loving person, mediating God's love to others.

So I remember with great appreciation this contact with one who embodied in himself the living tradition of the Jain way of life and the Indian image of sainthood

Thank you again, Mr Diwaker, for your kindness. If you do get to visit America, I hope I will get to see you again.

This is the Christmas season, when we Christians celebrate the birth of Jesus whom we confess as Lord and Saviour. It is a very joyous season for my family and me, and we remember with gratitude our Christmas in India, made memorable by the devotion of friends, some of whom, such as yourself, were not Christians but nevertheless respected our faith and to some extent entered into our Christmas joy.

My very best to you always.

December 18, 1973
U.S.A.

In friendship and love
E. Luther Copeland
(Professor of Christian Mission and World Mission)
Wake Forest, North Carolina-27587.

INDIAN NATIONAL SCIENCE ACADEMY

Dr D S Kothari

BAHADUR SHAH ZAFAR MARG,
NEW DELHI-1
September 6, 1974

Message

It is a privilege and honour to pay my respectful tribute to Acharya Shiromani Desh Bhusanji Maharaj on the occasion of the publication of his biography Delhi is fortunate that the Acharyaji Maharaj is spending the 'Chaturmas' in the capital *His pioneering religious work and tapascharya will long remain a source of unfailing strength and inspiration*

D.S Kothari

Dr. A.N. Upadhye
M.A Ph D. D Litt.
Manas Gangotri Mysore

Acharya-ratna : A Unique Personality

Acharyaratna Deshabhushana Maharaj is completings eventy years of his distinguished career. I look upon it as a previlege to offer him, on this occasion, my 3 Namostu and respectful Adaranjali. It is of great significance that this event is almost coinciding with the 2500th Anniversary of the Nirvana of Bhagavan Mahavira.

Acharyaratna Deshabhushana Maharaj has built himself up into a great personality of the present age by his innate qualities of renunciation, study and benevolence. He has been steady rise to the top by sheer application and dedication to ascetic virtues.

He has been leading a rigorous life of a Digambara Jaina monk, and has toured on foot over the breadth and length of our ccountry winning respect from men and women from all layers of

the society. His practices are rigorous, and he tries his best, even under adverse circumstances, to abide by the Agamic injunctions laid down for the Digambara Muni. It is by this great quality that he has enshrined himself in the hearts of his devotees

Even while leading the life of a Digambara monk, his devotion to Svadhyaya is remarkable Not only he studies for his spiritual benefit, but he also wants his devotees to share the fruits of his study That is how he has rendered into Hindi significant works from Sanskrit, Prakrit, Kannada and Tamil He has given to his devotees in Hindi in an integrated form whatever best is available in other languages of India What a boon to his devotees !

Rich and poor, small and big, dignified and humble : all flock to his feet for their religious and spiritual benefit His blessings give a miraculous and soothing solace to one and all Institutions commemorating his name have come up in many places, and they are bestowing great religious and educational benefit on the poor and needy.

May Acharayaratna live long with sound health, mental quiet and spiritual peace for the social and spiritual benefit of us all

Shri Jayantilal T. Modi,

B. Sc. (Eng.), C. Eng., F.I.E.E., Sr. M I E.E.E., F.I.E.
Chartered Electrical Engineer & Consultant, Surat

"It is in fitness of things that the life sketch of Revered Acharya Ratna Shri 108 Deshbhusanji Maharaj has been written by the learned Jain Scholar Bal Brahmachari Sumerchandji Diwaker. I had an opportunity of attending Acharyaji's religious discourses during his Chaturmas stay in Surat in 1950 A D when my family had the fortune of offering Ahar to this great saint The then Collector of Surat Shri Deshmukh was extended a special invitation by the Digamber Jain Samaj (I had the privilege to join the deputation) to attend Acharyaji's Pravachan which enabled him to know various aspects of Digamber Jain Muni Dharma Shri Deshmukhji was accompanied by Shri Tukol of the Legal Department of then Government of Bombay an ardent devotee of Acharyaji, who happened to be in Surat at that time This visit had salutory effect on the citizens of Surat which facilitated all the more free movement, of Digamber Jain Munis in the city without any Hindrances The Digamber Jain Samaj was so much impressed by Acharyaji's Tapascharya and Learning that Acharya-padvi was bestowed on him His great devotion to study and bring forth old Jain Literature lying in Jain Temple Bhandaras and have been published in the language understood by the Society at large is unique indeed and worth to be emulated. The Gujarati translation of "Bhartesh Vaibhava" translated by Acharyaji from Kannad in Hindi was completed and published during his stay.

At this age his severe Tapascharya and great love for Jinvani only is keeping him fit for his onward march for the emancipation of his soul Acharyaji's deep interest in Jainism and zeal to impart its impact on other non-Jains is well known and one will be too small to measure its greatness I offer my respectful Shradhanjali to him and pray that he may attain high peak of spiritual greatness and live long for the benefit of Sansari Souls and to guide us too "

उत्तर खण्ड

श्रमण स्वरूप

•

समसत्तु बंधुवग्गो समसुहदुक्खो पसंसणिंदसमो ।
सम-लोट्ठु कंचणो पुण जीविद-मरणे समे समणो ।।३—४१
सम शत्रु-बंधुवर्ग. सम सुख दुःखः प्रशंसा-निन्दा समः ।
समलोष्ठ कांचनः पुनर्जीवितमरणे सम. श्रमण ।।

शत्रु तथा बधु वर्ग मे समता धारी, सुख तथा दु ख मे समान भाव युक्त, स्तुति और निदा में समान, मिट्टी और सुवर्ण में समान तथा जीवन और परम मे समान श्रमण होता है ।

पंचसमिदो तिगुत्तो पंचिद्रिय संवुडो जिदकसाओ ।
दंसण-णाण-समग्गो समणो सो संजदो भणिदो ।। ३—४०।।
पंचसमित स्त्रिगुप्त पचेन्द्रिय संवृतो जितकषायः ।
दर्शन-ज्ञान सामग्रः श्रमण ससयतो भणितः ।।

ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण, व्युत्सर्ग रूप पच समिति सहित, पचेन्द्रियो का विजेता, कषायो को जीतने वाला, सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान समलकृत श्रमण सयत कहा गया है ।

दंसण-णाण चरित्तेसु तीसु जुंगव समुट्ठिदो जोदु ।
एयग्गगदो-त्ति मदो सामण्णं तस्स पडिपुण्णं ।।३—४२।।
दर्शनज्ञानचरित्रेषु त्रिषु युगपत् समुत्थितो यस्तु ।
एकाग्रगत इति मतः श्रामण्यं तस्य परिपूर्णम् ।।

जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र इन तीनो मे एक साथ उद्यमी होकर प्रवर्तता है, तथा एकाग्रता को प्राप्त है, उस आत्मा के परिपूर्ण श्रमणपना है ।

पंचय महव्वयाइ समिदीओ पच जिणवहद्दिट्ठा ।
पचेंविदिय रोहा छप्पिय आवासया लोचो ।।१
—२ मूलाचार

अच्चेलक मण्हाणं खिदिसयण-मदंत-घसणं चेव ।
ठिदिभोयणेयभत्तं मूलगुणा अट्ठवीसादु ।।१—३।।
पंचमहाव्रतानि समितय. पंच -जिनवरोद्दिष्टाः ।
पंचैवेंद्रिय निरोधाः षडपि च आवश्यकानि लोचः ।।१—२
आचेलक्यं अस्नानं क्षितिशयन अदंतघर्षणं चैव ।
स्थिति भोजनमेक भक्तं मूलगुणा अष्ठाविंशतिस्तु ।।१—३।।

प्राणतिपात परित्याग, सत्य, अदत्त परिवर्जन, ब्रह्मचर्य, परिग्रह परित्याग रूप पंचमहाव्रत, पंच समिति, पचेन्द्रिय-जय, समता, स्तव, वंदना प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान तथा व्युत्सर्ग रूप छह आवश्यक, केशलोच, अचेलकपना (दिगम्बर मुद्रा), अस्नान, भूमि शयन, दंतघर्षण, त्याग खड़े होकर आहार ग्रहण, एक वार भोजन करना साधु परमेष्ठी के अट्ठाईस मूल गुण हैं।

अब्भुट्ठेया समणा सुत्तत्थ विसारदा उवासेया ।
संजम-तव णाणड्ढा पणिवदणीया हि समणेंहि । ३—६३।।
अभ्युत्थेया. श्रमणा· सूत्रार्थ विशारदा उपासेया. ।
संयम तपो-ज्ञानाढ्या. प्राणिपतनीया हि श्रमणैः ।।

परमागम के भाव का पूर्ण रूप से ज्ञान करने वाले, संयम, तप, ज्ञान से सम्पन्न, महामुनि अन्य श्रमणो द्वारा सादर प्रणाम योग्य हैं।

ण हवदि समणोत्ति मदो संजम-तव सुत्त सपजुत्तोवि ।
जदि सद्दहदि ण अत्थे आदपधाणे जिणक्खादे ।।३—६४
न भवति श्रमण इति मत संयम तपः सूत्रसंप्रयुक्तोपि ।
यदि श्रद्धत्ते नार्थानात्मप्रधानान् जिनाख्यातान् ।।

यदि कोई मुनि संयम तप तथा शास्त्रज्ञान सम्पन्न होते हुए भी आत्मतत्त्व है प्रधान जिनमे ऐसे जिनेन्द्र कथित पदार्थों मे श्रद्धान नही करता है तो वह श्रमण नही कहा जाता है ।

समदायवो य वंदण पडिक्कमणं तहेव णादव्वं ।
पच्चक्खाण विसग्गो करणीया वासया छप्पि ।।१—२२।।

समता स्तवश्च वंदना प्रतिक्रमणं तथैव ज्ञातव्यं ।
प्रत्याख्यानं विसर्गः करणीया आवश्यकाः षडपि ॥१—२२॥

श्रमण को समता भाव, जिनेन्द्र स्तवन, वदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान तथा व्युत्सर्ग ये छह आवश्यक करना चाहिए ।

वंदनीय आचार्य

सम्यग्दर्शन मूल ज्ञानस्कंधं चारित्र शाखाढ्य ।
मुनिगण विहगाकीर्ण आचार्य महाद्रुमं वन्दे ॥

जिसका मूल सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान रूप स्कन्ध है, चारित्र रूपी शाखाए है तथा जो मुनिगण रूपी पक्षियो मे शोभायमान है ऐसे आचार्य रूप महावृक्ष को मै प्रणाम करता हू ।

तिरयण खग्ग णिहाए णुत्तारिय मोह सेण्ण सिरणिवहो ।
आयरियराय पसियउ परवालिय भविय जियलोओ ॥३॥ महावंध
त्रिरत्न खड्ग निघातेन उत्तारित मोह सैन्य शिर-निवहः ॥
आचार्य राज प्रसीदतु परिपालित भव्य जीव लोक ।

जिन्होने रत्नत्रय रूप तलवार के प्रहार से मोह की सेना के मस्तको के समूहो का क्षय किया है तथा भव्य जीव लोक का परिपालन किया है ऐसे आचार्य महाराज हम पर प्रसन्न हो ।

सदा आयारविद्दण्हू सदा आयरियं चरे ।
आयार मायारवतो आयरिओ तेण उच्चदे ॥७—८॥
सदा आचारवित् सदा आचरित चर ।
आचारमाचारयन् आचार्य तेन उच्यते ॥७—८

वे सर्वदा सदाचार के ज्ञाता तथा सदाचार वाले तथा गणधर आदि के द्वारा व्रतादि का पालन करते हैं और अन्य साधुओ को आचरण करने का प्रकाश प्रदान करते है, इस कारण वे आचार्य कहे जाते हैं ।

जम्हा पचविहाचारं आचरन्तो पभासदि ।
आयरियाणि देसतो आयरियो तेण वुच्चते ॥७—९॥

यस्मा त्पंचविधाचारं आचरन् प्रभासते ।
आचरितानि दर्शयन् आचार्यः तेन उच्यते ॥७—९॥

जो ज्ञानाचार दर्शनाचार्य चारित्राचार, तथा वीर्याचार रूप पंचाचार से सोभायमान होते है और अपने आचरण द्वारा शिष्यों को सन्मार्ग का दर्शन कराते है इस कारण उनको आचार्य कहते है ।

दसण-णाण पहाणे वीरिय चारित्र वर तवायारे ।
अप्पं परं च जुंजइ सो आयरियो मुणी णेयो ॥

जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान है प्रधान जिनमे ऐसे वीर्याचार चारित्राचार तथा तपाचार मे अपने को तथा शिष्यो को लगाते है, उन्हे आचार्य परमेष्ठी जानना चाहिये ।

द्वादश तप दश धर्म युत पालै पचाचार ।
षड आवश्यक त्रिगुप्ति युत आचारज पद सार ॥

अर्थ—छ प्रकार के बाह्य और छ प्रकार के अन्तरंग ये बारह तप, उत्तम क्षमा आदि दश धर्म, पंच प्रकार का आचार, छ. आवश्यक तथा तीन गुप्ति ये छत्तीस गुण आचार्य धारण करते हैं ।

समता धर वंदन करें नाना थुती बनाय ।
प्रतिक्रमण स्वाध्याय जुत कायोत्सर्ग लगाय ॥

समता धारण, वदना, स्तुति पाठन, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग ये छह आवश्यक हैं ।

छत्तीस गुण समग्गे पचविहाचार करण सदरिसे ।
सिस्साणुग्गह कुसले धम्मायरिये सदा वंदे ॥
षट्त्रिशद गुणसमग्रान् पंचविधाचार सद्रदृष्टून् ।
शिष्यानुग्रह कुशलान् धर्माचार्यान् सदा वंदे ॥

जो छत्तीस गुणो से अलकृत है, पचाचार का पालन करते है, कराते है, तथा जो शिष्यो का कल्याण करने मे प्रवीण है, ऐसे धर्माचायो को मैं सदा प्रणाम करता हू ।

आत्म-ध्यान पर प्रकाश

•

श्रेष्ठ तत्व

सर्वज्ञ प्रणीत आगम मे कहा है, कि मोक्ष जाने के लिए अन्य सामग्री होते हुए भी आत्मचितन तथा आत्मध्यान के विना निर्वाण की प्राप्ति नही हो सकती। गौतम गणधर ने महावीर भगवान से पूछा था, भगवन् आप ने यह कहा था कि सपूर्ण विश्व मे व्रत सार रूप है। उन व्रतो मे भी सार रूप क्या है ?

भगवान ने कहा, 'सो सारो एस गोदम, सार झाणेत्ति णामेण, सव्वबुद्धेहिं देसिद' (प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रय पृष्ठ १३५)—हे गौतम! व्रतो का सार ध्यान है। यह बात सम्पूर्ण अन्य सर्वबुद्धो (सर्व ज्ञानियो) ने भी कही है। इस कथन से आत्म ध्यान का महत्व स्पष्ट होता है।

ध्यान का महत्व

कुँद कुँद स्वामी ने रयणसार मे कहा है कि, ध्यान के द्वारा मोक्ष मिलता है। उनकी निम्नलिखित गाथा आचार्य वीरसेन ने जय धवला मे इस प्रकार उद्धृत की है।

> **णाणेण झाण सिद्धी झाणादो सव्वकम्मणिज्जरणं।**
> **णिज्जरफलच मोक्खं, णाणब्भासं तदो कुज्जा ॥१५४॥**

ज्ञान के द्वारा ध्यान की सिद्धि होती है, ध्यान से सपूर्ण कर्मो की निर्जरा होती है, निर्जरा के फल स्वरूप मोक्ष प्राप्त होता है, अत· ज्ञान का प्रयास करना चाहिए।

भगवती आराधना मे कहा है,—

जिदरागो जिददोसो जिदिंदियो णिदभयो जिदकसाओ ।
रदि-अरदि-मोह-महणो झाणोवगओ सदा होइ ।

राग के जीतने वाले, द्वेष को जीतने वाले, इन्द्रियो को जीतने वाले, अभयरहित, कषायरहित व्यक्ति के रति, अरति तथा मोह का नाशक ध्यानोपयोग सदा होता है ।

सामग्री

इस ध्यान के लिए साधु को सदा ज्ञान की समाराधना आवश्यक है । नागसेन मुनि ने तत्त्वानुशासन ग्रन्थ मे कहा है, कि स्वाध्याय के द्वारा चित्त की एकाग्रता रूप ध्यान करने की क्षमता प्राप्त होती है । उनके शब्द इस प्रकार हैं ।

स्वाध्यायाद् ध्यानमध्यास्तां, ध्यानात्स्वाध्यायमामनेत् ।
ध्यान-स्वाध्याय-सम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ।। तत्त्वानुशासन ।।८१।।

आर्ष ग्रन्थो के स्वाध्याय द्वारा ध्यान की क्षमता प्राप्त होती है । ध्यान के द्वारा स्वाध्याय की वृद्धि होती है । ध्यान तथा स्वाध्याय रूपी संपत्ति के द्वारा परमात्मा प्रकाशित होता है ।

ज्ञान वैराग्य

ध्यान के लिए इद्रिय और मन पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है । तत्त्वानुशासन मे लिखा है,

ज्ञान-वैराग्यरज्जूभ्यां नित्यमुत्पथवर्तिनः ।
जितचित्तेन शक्यन्ते धर्तु मिन्द्रियवाजिनः ।।७७।।

सदा अपने मन को वश करने वाला व्यक्ति कुपथ गामी इद्रिय रूपी घोडो को ज्ञान और वैराग्य रूपी लगाम की दोनो रस्सियो से पकड सकता है, वश मे कर सकता है ।

अनुप्रेक्षाओं का महत्व

मानसिक निर्मलता के लिए द्वादश अनुप्रेक्षाओ (बारह भावनाओ) का चितवन भी बहुमूल्य है । कुद-कुद आचार्य ने अनुप्रेक्षाओ को 'बुहजणवेरग्गजणणीओ' ज्ञानी पुरुषो के मन मे वैराग्य उत्पन्न करने वाली जननी सदृश कहा है । स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा मे इन भावनाओ को चचल मन के रोकने

मे सहायक कहा है ।

जिणवयणभावणट्ठं सामि-कुमारेण परमसद्धाए ।
रइया अणुपेक्खाओ चचलमण रु भणट्ठं ।।४७।।

स्वामी कुमार ने, जिन वचनो की भावना के हेतु परमश्रद्धा युक्त हो 'चचल मन को रोकने के उद्देश्य से' अनुप्रेक्षाओ की रचना की है । नागसेन मुनि ने कहा है—

स चितयन्ननुप्रेक्षा स्वाध्याये नित्यमुद्यत ।।
जयत्येव मनः साधुरिन्द्रियार्थ पराड्मुख. ।।७६।।

इद्रियो के विषयो से विमुख साधु अनुप्रेक्षाओ का चितवन करता हुआ तथा स्वाध्याय मे सदा तत्पर रहता हुआ मन को वश करने मे समर्थ होता है ।

पाप-परित्याग

ध्यान की उपलब्धि हेतु उपयुक्त सामग्री आवश्यक है । हिंसा, असत्यादि पाप प्रवृत्तियो से मलिन मन पवित्र ध्यान करने मे सफल नही हो पाता । पद्मनन्दि आचार्य ने कहा है—

सामायिकं न जायेत व्यसन-म्लान-चेतस ।
श्रावकेन तत. साक्षात्त्याज्य व्यसनसप्तकं ।।६।। श्रावकाचार अधिकार

जुआ, मास, सुरा, वेश्या, शिकार, चोरी तथा परस्त्री सेवन रूप सप्त व्यसनो के कारण मलिन मन वालो के सामायिक नही बनती, अतः श्रावक को सप्त व्यसनो का परित्याग करना चाहिए ।

आत्म ध्यान की सामग्री

परिग्रह आदि का त्याग भी निर्मल ध्यान का आवश्यक अग है । आगम मे कहा है—

सगत्याग. कषायाणां निग्रहो, व्रत धारणम् ।
मनोक्षाणां जयश्चेति सामग्री ध्यान जन्मनः ।।

वस्त्रादि परिग्रह का परित्याग, क्रोधादि कषायो का निग्रह, अहिंसा आदि व्रतो का परिपालन, मन और इन्द्रियो को अपने वश मे रखना ध्यान करने की सामग्री है । इनके होने पर निर्मल ध्यान होता है ।

दुर्ध्यान

आर्त ध्यान, रौद्र ध्यान ससार के कारण है। इष्ट वियोग, अनिष्ट सयोग, शारीरिक पीडा होने पर जो सक्लेश परिणाम होते है, भोगो की तीव्र अभिलाषा के कारण चित्त मे आकुलता उत्पन्न होती है, वह आर्त ध्यान कहा गया है। परिग्रह मे अत्यन्त आसक्त होना, कुशील सेवन करना, अत्यन्त लोभ करना, अतिशय शोक करना आदि आर्त ध्यान होने के सूचक चिह्न है। महा पुराणकार जिनसेनाचार्य इसका फल तिर्यंच गति कहते है, "तिर्यग्गति फलम्"।

हिसानन्द, मृषानन्द अर्थात् झूठ बोलने मे आनन्द मानना, चौर्यानन्द, और परिग्रहानन्द रूप रौद्र ध्यान चार प्रकार का है। इसके चिन्ह क्रूर वृत्ति, हिसादि पापो मे तल्लीनता, शस्त्रादि हिसा के साधनो के सग्रह मे प्रवीणता आदि क्रूर तथा दुष्ट प्रवृत्तिया है। इस रौद्र ध्यान का फल नरक के दु.खो की प्राप्ति है। इन अशुभ ध्यानो का जीव को अनादि कालीन अभ्यास पडा है। इससे मन को इन दुर्ध्यानो से बचाने मे बडी सावधानी और मनोबल की आवश्यकता है। पचम काल मे शुद्ध भाव रूप शुक्ल ध्यान का आगम मे निषेध किया गया है, इसलिए इस काल के महामुनियो को भी धर्म ध्यान का शरण लेना हितकारी है। धर्म ध्यान शुभ भाव है। भाव पाहुड मे कुँद कुँद स्वामी ने कहा है।

भाव तिविहपयारं सुहासुह सुद्धमेव णादव्व।
असुह च अट्टरुद्दं सुहधम्मं जिणवरिंदेहिं ॥७६॥

शुभ, अशुभ और शुद्ध के भेद से भाव तीन प्रकार का है। आर्तरौद्र ध्यान तो अशुभ भाव है। धर्म ध्यान शुभ भाव है, ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है।

धर्म ध्यान की उपयोगिता

पचम काल मे मोक्ष की पात्रता नही है। अत धर्म ध्यान रूप शुभ भाव के द्वारा जीव स्वर्ग जायेगा। सम्यक्त्वी जीव महाव्रती होकर धर्म ध्यान सहित मरण कर लौकान्तिक देव हो सकता है, जो आगामी भाव मे मनुष्य होकर नियम से मोक्ष पद को प्राप्त करता है।

चार भेद

तत्त्वार्थ सूत्र मे "आज्ञापाय-विपाक-सस्थान-विचयाय धर्म्यम् (९ अ-

कर्मो के क्षय से उत्पन्न अरहत के पूर्णस्वरूप को अपने मनो मन्दिर में विराजमान करने वाले, मुनिराज के मोह का क्षय हो जाता है। अरहत भगवान, सिद्ध भगवान के स्वरूप चितवन द्वारा आत्मा के राग द्वेष मोह रूप विकार दूर होते है। अतः पच परमेष्ठी का ध्यान, पच परमेष्ठी वाचक शब्दो का शान्त मन से निरन्तर जाप आत्मा के लिए हितकारी माना गया है। जय धवला टीका मे कहा है—

"अरहंतणमोक्कारो सपद्दिठयबंधादो असखेज्जगुण कम्मक्खयकारओ"

(पृष्ठ ८)

अरहत को नमस्कार तत्कालीन बध की अपेक्षा असख्यात गुणित कर्म क्षय का कारण है। "तेण सोवण-मोयण-पयाण-पच्चावण-सत्थ पारभादि किरियासु णियमेण अरहत णमोक्कारो कायव्वो" अतएव सोना, भोजन, प्रयाण, वापिस आना, शास्त्र का प्रारम्भ करना आदि कार्यों में नियम से अरहत भगवान को नमस्कार करना चाहिए। पच परमेष्ठी का नाम स्मरण श्रेष्ठ सिद्धियो का प्रदाता भी माना गया है।

मानसिक विशुद्धि के लिए जिनेन्द्र के गुणो का स्मरण आवश्यक है। तत्त्वार्थ सूत्र मे कहा है "जगत्कायस्वभावौ वा सवेग-वैराग्यार्थम्," (७-१२)—सवेग और वैराग्य के हेतु सपूर्ण लोक तथा शरीर के स्वरूप का भी विचार करना चाहिए।

आत्म स्वरूप

इस पुण्य चितन के साथ अपनी आत्मा के विषय मे भी इस प्रकार विचार करना चाहिए। अमृतचन्द्रसूरि कहते है।

सिद्धान्तोमुदात्त-चित्तचरितैः मोक्षार्थिभिः सेव्यताम्।
शुद्धं चिन्मय एक एव परम ज्योतिः सदैवास्म्यहम् ॥६॥

मोक्षाधिकार, समय सार कलश

समुन्नत मन तथा आचरण युक्त मोक्षार्थियो को इस सिद्धान्त को अगीकार करना चाहिए कि मै शुद्ध, चैतन्य रूप, एक अविनाशी, पर-ज्योति स्वरूप हूँ। आचार्य कहते है,

भावयेत् शुद्धचिद्रूपं आत्मानं नित्यमुद्यतः।
रागाद्युदग्रशत्रूणा-मनुत्पत्यै क्षयाय च ॥

प्रयत्न पूर्वक शुद्ध चैतन्य रूप अपनी आत्मा की भावना करे। इससे

रागादि प्रवल शत्रुओ की उत्पत्ति नही होती तथा उनका क्षय होता है।

आत्म शांति का प्रेमी सत्पुरुष आत्मा के निज स्वरूप का भी इस प्रकार विचार करता है। समय सार मे कहा"

> अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइयो सयाऽरुवी।
> णवि अत्थिमज्झ किंचि वि अण्णं परमाणु मित्तंपि ॥३८॥

मै अद्वैत रूप हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञान दर्शन स्वरूप हूँ, सदा अरूपी हूँ। अन्य परमाणु मात्र मे भी मेरा नही है।

> अरस-मरुव-मगंधं अव्वत्तं चेदणागुण-मसद्दं।
> जाण अलिग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठ-संठाण ॥६४॥

—पचास्तिकाय

मेरा आत्मा रस, रूप, गध रहित है। वह अव्यक्त है। चेतना गुणयुक्त है। शब्द रहित है। वाह्य चिन्हो के द्वारा अग्राह्य है, अनिर्दिष्ट आकार सहित है। (शरीर के अनुसार छोटा-वडा रूप हो जाता है) महापुराण मे जिनसेन स्वामी कहते हैं—

> अहमेको न मे कश्चित्-नैवाहमपि कस्यचित्।
> इत्यदीनमना· सम्यगेकत्वमपि भावयेत् ॥३८—१८४॥

मैं विश्व में अकेला हूँ। कोई पदार्थ मेरा नही है। मैं भी किसी का नही हूँ। इस प्रकार दीनता रहित होकर भली प्रकार एकत्वपने की भावना करे। वुध जन का भजन है,

"वावा, मैं नही काहूका, कोई नही मेरा रे ॥ वावा ॥

विशेष वात

वह अद्वैत वादी के समान अपने को वर्तमान पर्याय मे शुद्ध नही मानता है। वह अपनी व्रत हीन या उच्च सयम शून्य वर्तमान अवस्था को भी ध्यान मे रखता है। इस वात को भी ध्यान मे रखता है कि जव तक पूर्णतया सयम के शिखर पर वह नही पहुँचता है, तव तक केवल विचार के मनोज्ञ वायुयान मे सैर करने मात्र मे वह सिद्धावस्था को नही प्राप्त कर सकेगा।

तप का महत्व

श्रद्धा या ज्ञान के साथ इच्छा निरोध रूप तपश्चर्या का भी महत्व है। मोक्ष पाहुड मे कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं—

धुवसिद्धी तित्थयरो चउणाणजुदो करेइ तवयरणं ।
पाऊण धुवं कुज्जा तवयरण णाणजुत्तोवि ॥६०॥

जिन तीर्थकरो का मोक्ष जाना पूर्णतया सुनिश्चित है तथा जो मतिश्रुत अवधि और मन पर्यय ज्ञान चतुष्ट्य से शोभायमान है, वे भी तपश्चर्या करते है, यह बात जानकर ज्ञान सपन्न होते हुए भी तुमको तपस्या करनी चाहिये ।

बालब्रह्मचारी महावीर भगवान ने दीक्षा लेकर द्वादश वर्ष पर्यन्त घोर तप किया था। गौतम गणधर ने कहा है वीरस्य घोर तपो—महावीर भगवान घोर तपस्वी थे। अत' आत्मचितन के भक्त को तपोमय जीवन के प्रति भी श्रद्धावान् रहना चाहिए ।

संयम की आवश्यकता

संयम विहीन तत्वज्ञानी को निर्वाण नही मिलता है

णहि आगमेण सिज्झदि सद्दहणं जदि ण अत्थि अत्थेसु ।
सद्दहमाणो अत्थे असंजदो वा ण णिव्वादि ।।प्रवचनसार-२३७।।

यदि पदार्थ का श्रद्धान नही है, तो आगम के ज्ञान मात्र से सिद्धि नही प्राप्त होगी। कदाचित् पदार्थो का श्रद्धान हो गया, तो भी सयम अर्थात् सम्यक्त्वचारित्र शून्य व्यक्ति मोक्ष नही प्राप्त करता है ।

भक्ति गंगा

मुनियो के अट्ठाईस मूल गुणो में छह आवश्यक कर्म कहे गए है। उनमें प्रथम आवश्यक समता है। साधु साम्यदृष्टि को सजग रखकर राग-द्वेषआदि विकृतियो द्वारा अपने अतः करण को मलिन नही बनाता है। इस आवश्यक मे वह आध्यात्मिक दृष्टि को मुख्यता प्रदान कर अपनी आत्मा के विशुद्ध रूप का चितवन करता है, किन्तु वदना तथा चतुर्विशति स्तव नामक आवश्यको का पालन करते हुए वह साधु अपने को भगवान मानने की दृष्टि को गोणकर स्वयं को जिनेन्द्र, आचार्यादि आध्यात्मिक विभूतियो का दास बनाता है। उस समय 'सोह' की दृष्टि के स्थान मे वह दासोह की भक्ति रस मे परिपूर्ण भावना को मुख्य बनाता है। जिनेश्वर की भक्ति गगा मे डुबकी लगाने वाला तत्त्वज्ञानी अपनी आत्मा को स्वच्छ बनाता है। महापुराण मे वीर जिन के समवशरण स्थित समस्त साधुओं

द्वारा गौतम गणधर की स्तुति का यह मनोहर पद्य आया है—

वाग्गुप्ते स्त्वत्स्तुतौ हानिर्मनोगुप्ते स्तवस्मृतौ ।
कायगुप्तेः प्रणामे ते काममस्तु सदापि नः ॥२—७७॥

हे प्रभो ! आपकी स्तुति करने से हमारे वचन गुप्ति का पालन नही होता, आपका स्मरण करने से मनो गुप्ति कीरक्षा नही होती तथा आपको प्रणाम करने से काय गुप्ति का पालन नहीं होता, ऐसा भले ही हो, हम तो आपकी स्तुति, स्मरण तथा वदना का रस पान करते ही जायेंगे ।

स्याद्वाद दृष्टि

सामायिक तथा आत्म ध्यान के समय की मनोदशा सदा नही रहती । सामायिक के समय साधु सोचता है ।

यः परात्मा स एवाहं योहं सः परमस्ततः ।
अहमेव मयोपास्य नान्यः कश्चिदिति स्थितिः ॥३१ समाधिशतक

जो परमात्मा है, वह मैं हूं । जो मैं हूं वही परमात्मा है । इस कारण मुझे आत्मदेव की उपासना करनी चाहिये, दूसरे की नही । ऐसी आराध्य-आराधक की व्यवस्था है ।

जैन धर्म की शैली मे अनेकान्त दृष्टि से प्रकाश पाने वाला एकान्त वाद के भवर मे नही डूबता है । जहा साधु ध्यान करते समय "शुद्धोह, सच्चिदानदोह" आदिचिंतवन करता है, वहां वही साधु प्रतिक्रमण करते समय गुरु के समीप अपने को अगणित दोषों का केन्द्र निवेदन करते हुए अपने अपराधो की शाति हेतु गुरुचरणो में प्रार्थना करता है ।

अपनी अपूर्णता का विचार

ईर्यापथ शुद्धि के पाठ का यह श्लोक इस विशिष्ट दृष्टि को सूचित करता है कि महान आध्यात्मिक साधक होते हुए भी पवित्र हृदय वाले मुनिराज जिनेश्वर के समक्ष यह पाठ विनम्रतापूर्ण पढते हैं—

पापिष्ठेन दुरात्मना जड़धिया मायाविना लोभिना ।
रागद्वेषमलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम्
त्रैलोक्याधिपते जिनेन्द्र भवतः श्रीपादमूलेऽधुना
निन्दापूर्वमहं जहामि सततं दुष्कर्मणां शान्तये ।

हे त्रिलोकीनाथ जिनेन्द्र, रागद्वेष से मलिन मन द्वारा मुझ जैसे महान

पापी दुरात्मा, जड बुद्धि मायावी तथा लोभी व्यक्ति ने जो दुष्ट कर्म किए है, मै आप के श्री चरणो के समीप अब आत्म निन्दा पूर्वक उन पापो का परित्याग करता हू जिससे मेरे पापो का क्षय हो।

इससे स्पष्ट होता है कि आगम के प्रकाश मे अपने कल्याण को देखने वाला साधु ध्यान के समय शुद्ध विचारो तथा शुभभावनाओ का अवलम्बन लेता है तथा स्तव, वदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान तथा कायोत्सर्ग रूप आवश्यको के परिपालनकाल मे व्यवहार दृष्टि को मार्गदर्शक मानता है। गृहस्थ विषयो के चक्कर मे फसा रहने से वास्तविक रूप मे मोक्ष के लिए प्रयत्न नही कर पाता है।

दो मुख सुई न सीवै कंथा दो मुख पंथी चलै न पंथा।
यों दो काज न होहि सयाने विषय भोग अरु मोक्ष पयाने ।।

गृहस्थ को आध्यात्मिक अजन लगाकर अपनी दृष्टि को विमल बनाते हुए आदर्श भक्त बनने का भी सत्प्रयत्न करना चाहिए। कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है, कि जिनेन्द्र के चरणो की आराधना द्वारा यह जीव क्रमश. उन्नति करता हुआ मोक्ष प्राप्त करता है। भाव पाहुड मे कहा है।

जिणवरचरणम्बुरुहं णमंति जे परम भत्तिरायेण ।
ते जन्मवेलिमूलं खणति वरभावसत्थेण ।।१५३।।

जो श्रेष्ठ भक्ति से अनुरंजित हो जिनेन्द्र के चरणकमलो को प्रणाम करते है, वे उज्ज्वल भाव रूपी शस्त्र के द्वारा जन्म रूपी वेलकी जड़ काट डालते है

सन्मार्ग

सोमदेवसूरि ने यशस्तिलक मे महत्वपूर्ण मार्ग दर्शन किया है—

वैराग्य भावना नित्यं नित्य तत्त्वानुचितनम् ।
नित्यं यत्नश्च कर्तव्यो यमेषु नियमेषु च ।।

सदा वैराग्य भावना भावे, प्रति दिन जीवाजीवादि तत्वो का स्वरूप विचारे तथा प्रतिदिन यम, नियम रुप से व्रतो का पालन करे। आत्म

---

* सामाइय चउवीस-त्थव-वदणय पडिक्कमण ।
पच्चक्खाण च तहा काओसग्गो हवदिछट्ठो ।
मूलाचार, १५।। आवश्यकाधिकार, ।

निर्मलता चाहने वालो को उपरोक्त कार्य करना चाहिए।

भक्त का उत्थान

कुन्दकुन्द स्वामी ने गृहस्थ का मुख्य कर्तव्य दान, पूजा कहा है। मुनियो के लिए ध्यान और अध्ययन वताया है। समन्तभद्र स्वामी ने रत्न करण्ड श्रावकाचार मे जिनेन्द्र भक्त गृहस्थ की अद्भुत उन्नति वताई है। वे कहते है—

देवेन्द्रचक्रमहिमान-ममेयमानम्
राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्रशिरोर्चनीयम्
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृत-सर्वलोकम्
लब्ध्वा शिव च जिनभक्तिरुपैति भव्य· ॥४१॥

जिनेश्वर का भक्त भव्यात्मा देवेन्द्र वृन्द की अपार महिमा को, राजेन्द्र के मस्तको द्वारा पूज्य चक्रवर्ती के चक्र रत्न को, त्रिभुवन मे पूज्यनीय तीर्थंकर के धर्म चक्र को प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त करता है।

धर्मात्मा पुरुष को यह वात अपनी दृष्टि मे रखनी चाहिए

भक्त बनो जिनराज के त्यागो विषयासक्ति ।
जीवन शोधन हेतु तुम करो धर्म अनुरक्ति ॥

गृहस्थ का आत्मचिंतन

विवेकी गृहस्थ भक्ति, व्रताचरण के सिवाय आत्म स्वरूप का चितवन करता है। सामायिक के समय किस प्रकार आत्मा का चिंतन करे, इस पर समन्तभद्र स्वामी का कथन ध्यान देने योग्य है।

अशरण-मशुभमनित्य दुःखमनात्मानमावसामि भवम् ।
मोक्ष स्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामायिके ॥१०४॥

मै अशरण, अशुभ, अनित्य, दु ख रूप और अनात्म स्वरूप संसार मे रहता हूँ, वास्तव मे मेरा आत्मा शरण रूप, शुभ, नित्य, आनद मय मोक्ष रूप है, ऐसा सामायिक मे श्रावक चितवन करे।

इससे विपत्ति काल मे अद्भुत आत्मवल प्राप्त होता है तथा श्रावक अपने धर्म मे विचलित नही होता है।

मैत्री

आत्म चिंतन काल मे अपने मन को द्वेष की मलिनता से मुक्त कर

यह सोचना चाहिए—जगत् मे सब प्राणियो के प्रति मेरे अन्त करण में मैत्री भाव है। मूलाचार मे कहा है।

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वैरं मज्झं ण केणवि ।।४४।।

मेरे हृदय मे प्राणी मात्र के प्रति क्षमा भाव है। मै अपने दोषो के लिए प्राणी मात्र से क्षमा मागता हू। सब जीवो के प्रति मेरे मन में मैत्री भाव है तथा किसी के भी प्रति मेरे मन मे शत्रु भाव नही है।

एकत्व

एगो मे सासदो आदा णाण-दंसण-लक्खणो।
ऐसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोग लक्खणा ।।४८।।

मेरा आत्मा अकेला है, अद्वैत रूप है। वह अविनाशी है। ज्ञानदर्शन लक्षण वाला है। शेष पदार्थ मुझसे भिन्न है। वे पदार्थ सयोग लक्षण रूप है। उन पदार्थो के साथ मेरा तादात्म्यपना नही है।'

वपुर्गृहं धन दाराः पुत्राः मित्राणि शत्रवः
सर्वथान्य-स्वभावानि मूढ स्वानि प्रपद्यते ।।८।।

शरीर, घर, धन, स्त्री, पुत्र, मित्र तथा शत्रु ये सब मेरी आत्मा से भिन्न स्वरूप है। अज्ञानी प्राणी इस सामग्री को अपना मानता है।

मार्मिक बात

शरीर मे मै आत्म बुद्धि धारण करता रहा हू, इससे ही अनत ससार समुद्र मे अब तक डूबता रहा हू। समाधि शतक मे कहा है—

देहान्तर्गते बीजं देहेऽस्मिन्नात्म-भावना।
बीजं विदेहनिष्पत्ते-रात्मन्येवात्म-भावना ।।७४।। समाधिशतक

मरने के उपरात मै एक शरीर को छोडकर दूसरे शरीर को प्राप्त करता हू क्योकि मै देहमें आत्मा की भावना करता हू। आत्मा मे ही आत्मा की भावना करने पर विदेह—दशा अर्थात अशरीरी सिद्धावस्था प्राप्त होती है।

देहात्मकोह-मित्यात्मन् जातु चेतसि मा कृथा।
कर्मतो ह्यपृथक्त्व ते त्व निचोलासि सन्निभ ।।११—४७

क्षत्र चूड़ामणि ।।

हे आत्मन् ! मैं देहात्मक हू यह बात तू अपने चित्त मे कभी भी मत ला। शरीर तो कर्म से भिन्न रूप है। तू शरीर से इसी प्रकार भिन्न है, जिस प्रकार म्यान से तलवार भिन्न है।

त्यक्तोपात्त-शरीरादि. स्वकर्मानुगुणं भ्रमन्
त्वमात्मन् एक एवासि जनने मरणेपि च ॥४२॥

हे आत्मन् ! एक शरीर का त्याग कर तू दूसरा शरीर धारण करता हुआ अपने कर्मों के अनुसार ससार मे परिभ्रमण करता है, किन्तु जन्म तथा मरण की अवस्था मे तू अकेला ही रहता है।

बधवो हि श्मशानांता गृह एवार्जितं धनम्।
भस्मने गात्रमेक त्वा धर्म एव न मुचति ।४३॥

हे आत्मन् ! बधुगण श्मशान पर्यन्त साथ देते है, तेरा कमाया हुआ धन घर मे रह जाता है, तेरा शरीर भस्मरूप मे परिणत हो जाता है, तेरा धर्म ही तेरा साथ नही छोड़ता है।

ऐसी स्थिति मे बाहरी सामग्री से अपने मन को हटाना उचित है इस कार्य मे जीव का आत्म बल तथा पुरुषार्थ ही सहायक है।

यथार्थ बात

त्वमेव कर्मणा कर्ता भोक्ता च फलसंतते ।
मोक्ता च तात किं मुक्तौ स्वाधीनाया न चेष्टसे ॥४५॥

हे आत्मन् ! तू ही रागादि-भावो के कारण कर्मो का बध करता है तथा तू ही कर्मानुसार फलो को भोगता है। तू ही अपने प्रयत्न द्वारा मुक्त होता है। इस प्रकार तेरा मोक्ष तेरे अधीन है, उसके लिए तू क्यो नही प्रयत्न करता है।

नटवन्नैकवेषेण भ्रमस्यात्मन् स्वकर्मत.।
तिरश्चि निरये पापात् दिवि पुण्याद् द्वयान्तरे ॥३६॥

हे आत्मन् ! तू नाना प्रकार के वेषो को (पर्यायो को) धारण करता हुआ नाटक के पात्र के समान अपने कर्मों के अनुसार भ्रमण कर रहा है। पाप का उदय होने पर तूने तिर्यच तथा नरक पर्याय पायी, पुण्य का उदय होने पर तूने स्वर्ग मे जन्म लिया तथा पुण्य और पाप के विपाक मे मनुष्य की पर्याय प्राप्त की।

आत्मन् ! तेरा अद्भुत पुण्य रहा, जो आज तुझे कर्म भूमि की

दुर्लभ मनुष्य पर्याय, योग्य शरीर, उच्चकुल इत्यादि उत्तरोत्तर दुर्लभ सामग्री प्राप्त हुई, किन्तु तू अपने अमूल्य जीवन को शरीर तथा कुटुम्ब की आराधना मे बरबाद कर रहा है। जीवधर स्वामी वैराग्य का प्रकाश प्राप्त होने पर अपनी आत्मा से कहते हैं—

व्यर्थं स समवायोपि तवात्मन्धर्म-धीर्न चेत् ॥

कणिशोद्गमवैधुर्ये केदारादि गुणेन किम् ॥११—७५॥

हे आत्मन्! तुझे सर्वप्रकार की आत्म कल्याण के योग्य दुर्लभ सामग्री मिली, किन्तु यदि धर्म मे बुद्धि नही की गयी, तो तेरा सर्व सामग्री का पाना व्यर्थ रहा। खेत मे यदि धान की उपज नही हुई, तो खेत आदि उत्तम सामग्री होने से क्या लाभ हुआ?

शिक्षा

तदात्मन् दुर्लभं गात्र धमार्थं मूढ कल्प्यताम्।

भस्मने दहतो रत्नं मूढः कः स्यादपरोजन· ॥७६॥

रे मूढ आत्मन्! इस दुर्लभ मनुष्य की देह को धर्म के लिए समर्पण कर दे। भस्म की प्राप्ति के लिए रत्न को भस्म करने वाले व्यक्ति से बढकर भला दूसरा कौन मूर्ख होगा?

दुःखी जीवराशि

हे आत्मन्! आगम के प्रकाश मे दृष्टि को निर्मल बना, सर्वज्ञ भगवान ने कहा है, कि अभी भी ऐसे अनतानन्त जीव है, जिन्होने परिणामो की मलिनता के कारण अपनी निगोद की पर्याय नही छोडी है। वहा यह जीव क्षण-क्षण मे जन्म मरण की पीडा भोगा करता है।

अत्थि अणंता जीवा जेहि ण पत्तो तसाण परिणामो।

भावकलंक सुपउरा णिगोदवासं ण मुंचति ॥१९०॥

गोम्मटसार जीवकाड

जिस समय एक निगोदिया का जन्म होता है, उसी समय अनन्त जीव जन्म धारण करते है। जिस समय एक जीव मरता है, उसी समय अनन्त जीवो का मरण होता है।

जत्थेक्कुमरइ जीवो तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं।
वक्कमई जत्थ एक्को वक्कमणं तत्थ णंताण ॥१९३॥
गोम्मटसार जीवकांड

आत्मन् ! निश्चय नय से तू शुद्ध है बुद्ध है, ज्ञाता है, स्वतन्त्र है, किन्तु वर्तमान पर्याय मे तेरी स्थिति ऐसी नही है। सच्चे पदार्थ का व्यवहार नय द्वारा स्वरूप प्रतिपादन करने वाले सर्वज्ञ भगवान ने कहा है कि

एगणिगोद शरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा।
सिद्धेहिं णंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण ॥१९६ गो० जी०

एक निगोदिया जीव के शरीर ने सख्या की दृष्टि से सपूर्ण सिद्धो की अपेक्षा अथवा सम्पूर्ण व्यतीत हुए काल की अपेक्षा अनन्त गुणे है।

आत्मन्, एकान्त दृष्टि का परित्याग कर। विषय भोगो में आसक्ति छोड़कर अपने सुधार की बात सोचने में एक क्षण भी विलम्ब मत कर। योगीन्द्र देव कहते हैं—

नश्वर जीवन;

जे दिट्ठा सूरुग्गमणि ते अत्थवणि ण दिट्ठ।
ते कारणि वढ धम्मुकरि धणि जोव्वणि कउतिट्ठ॥

हे वत्स ! सूर्य के उदय काल मे जो पदार्थ तूने देखे थे, सूर्य अस्त होते समय वे नही दिखाई पडते अर्थात् उनका नाश हो जाता है। अतएव तू धर्म की ओर अपने जीवन को मोड, अपनी सम्पत्ति और युवावस्था मे तृष्णा क्यो कर रहा है।

धम्मु ण संचिउ तउ ण किउ रुक्खे चम्ममएण।
खज्जिवि जर-उद्देहियए णिरइ पडिव्वउ तेण ॥१३३॥

जिस मनुष्य ने चर्ममय मनुष्य के शरीर रूपी वृक्ष को पाकर धर्म नही किया, तप नही किया, उसके शरीर को बुढापा रूपी दीमक के कीडे खा जायेगे। पश्चात् वह जीव नरक मे जावेगा।

हे आत्मन् ! जगत के पदार्थो से अपने मन को दूर कर तथा शुद्ध आत्मा के स्वरूप पर अपने मन को केन्द्रित कर। परमात्मा पर मन को केन्द्रित करने वाला जीव अद्भुत आध्यात्मिक सफलता को प्राप्त करता है। परमात्म प्रकाश मे कहा है।

परमात्म प्रेम

जइ णिवि-सुद्धुवि कुवि करइ परमप्पइ अणुराउ।
अग्गि कणी जिम कट्ठगिरी डहइ असेसु वि पाउ ॥११४॥

आत्मन्, यदि आधे निमेप मात्र (क्षण भर भी) यदि कोई परमात्मा मे अनुराग करता है तो उसके समस्त पाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते है जिस प्रकार अग्नि के कण द्वारा काष्ठ का पर्वत भस्म हो जाता है।

बड़ी भूल

हे आत्मन्! तू दूसरे पदार्थों मे अकारण राग द्वेष करता हुआ अपना सर्वनाश करता चला आ रहा है। वास्तविक स्थिति दूसरे प्रकार की है। क्षत्र चूडामणि मे कहा है—

लोकद्वयहितोत्पादि हन्त स्वान्तमशांतिमत्।
न द्वेक्षि द्वेक्षि ते मौढ्यादन्य सकल्प्य विद्विषम् ॥१-८२॥

हे जीव, तू इस लोक और परलोक मे दु ख देने वाले अपने हृदय को बुरा नही मानता है, यह दु:ख की बात है, किन्तु मूढतावश दूसरे जीवो को अपना शत्रु मानकर उनसे द्वेष करता है। वास्तविक कल्याण दूसरो के दोष दर्शन मे नही है। अपने दोषो पर दृष्टि डालनी चाहिए।

स्वदोष दर्शन

अन्यदीय मिवात्मीयमपि दोषं प्रपश्यता।
क सम. खलु मुक्तोय युक्तः कायेन चेदपि ॥१-८३॥

जो व्यक्ति दूसरे के दोषो को देखने के समान अपनी भी बुराइयो को देखता है, वह पुरुष श्रेष्ठ है। यथार्थ मे वह शरीर युक्त होता हुआ भी जीवन मुक्त सदृश है।

आत्मा से प्रश्न

हे आत्मन्! तू अपने मन को ससार के मायाजाल मे फँसाता है। तू अपना एक क्षण भी अपने स्वरूप चितन की ओर क्यो नही लगाता? इस अनादि ससार मे तूने सबप्रकार के इन्द्रिय जनित भोगो को भोगा है। आचार्य कहते है।

भुक्तोज्झितं तदुच्छिष्टं भोक्तुमेवोत्सुकायते ।
अभुक्त मुक्तिसौख्य त्वमतुच्छ हन्त नेच्छसि ।।११-३६।।

हे आत्मन् ! तू अनन्त बार भोग कर छोडे गये उच्छिष्ट—जूठे पदार्थो को भोगने के लिए उत्कण्ठित हो रहा है, किन्तु खेद है कि पूर्व मे नही भोगे गये मोक्ष रूपी महान् सुख की इच्छा नही करता है ।

दृष्टि परिवर्तन

यह जीव माया के जाल मे फसा हुआ मोह की शराब पीकर उल्टे मार्ग मे भटक रहा है । जिस प्रकार की ममता इस जीव की ससार के सुखो के प्रति है, उस प्रकार की दृष्टि यदि जिनेन्द्र भगवान की ओर लग जाय तो यह अक्षय ओर अनन्त सुख का स्वामी बन जाए। आचार्य कहते है ।

जह जीवो कुणइ रइ पुत्त-कलत्तेषु काम-भोगेषु ।
तह जइ जिणिंद धम्मे तो लीलाए सुहं लहदि ।।
जैसे रमणी, विषय, सुत ममता के आधार ।
वैसा यदि जिन धर्म हो शीघ्र लहे भव पार ।।

पवित्र पथ प्रदर्शन

स्व० आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ने १८ फरवरी सन् १९५३ मे कहा था, "अरे बाबा ! ससार की झझट छोडकर अपने स्वरूप का चिन्तन करो ।" आत्मदेव की आराधना करो । मोह की गाठ को काटो । तुम्हारा आत्मा बाहर नही है । वह शरीर मे है । तुम उसे भूल गये हो । शरीर रूपी कोठरी मे आत्मा बोलता है । सच्ची वस्तु की पहचान करो । हम कौन है ? इसे सोचो और समझो । पतग की डोरी के समान तुम मोह राजा के हाथ मे हो । तुम कहते हो, मेरी स्त्री है, मेरा बच्चा है, मेरा धन है । इसको फिकर करना जरूरी है । जरा सोचो, पूर्व भव मे भी तो तुम्हारा कुटुम्ब था । उनका कौन प्रबन्ध करता है । यह चिन्ता तो तुमको नही है । तुमने अपने आपको कल्पना द्वारा मोह के बन्धन मे बाध रखा है । अरे भाई ! तुम क्षण भर चुपचाप बैठो । सब प्रकार की चिन्ताओ को, इच्छाओ को क्षण भर के लिए अलग कर दो । "गप बसाला सीखा"—चुप होकर बैठने का अभ्यास करो । उस समय तुम्हे आत्मा का रस मिलेगा ।"

आचार्य महाराज ने यह भी कहा था, यह सब मार्ग दर्शन भव्य जीव के लिए है। अभव्य जीव के लिए यह कथन कार्यकारी नही है।

आत्म चिन्तन और संयम

आत्म चिन्तन का आचार्य महाराज की दृष्टि मे बडा मूल्य था। उन्होने १८ सितम्बर १९५५ को कुथल गिरि से स्वर्ग प्रयाण करने के पूर्व अपने आध्यात्मिक सदेश मे कहा था, "आत्म चिन्तन केला पाहिजे, या सिवाय मोक्ष होणार नाही"—आत्म चिन्तन करो। इसके बिना मोक्ष नही मिलेगा। हमारा यही कहना है कि तुम्हे भय त्याग कर सयम को पालन करना चाहिए। सयम के द्वारा तुम कुगति मे नही जावोगे। तुम्हारे कल्याण का मार्ग आत्म चिन्तन और सयम का परिपालन है।

आत्म चिन्तन की पृष्ठभूमि

अकलंक स्वामी भटकते हुए मन को खेचकर आत्मा को ओर उन्मुख बनाने के लिए इस प्रकार के स्वस्थ चिन्तन को प्रेरणा देते है

"न किचित्ससारे समुदित ध्रुवमस्ति, आत्मनो ज्ञान दर्शनोपयोग स्वभावादन्यत्। पचगुरव लोकोत्तर जीवशरण, तत्प्रतिबिम्वाद्य-जीवशरण, सधर्मोपकरण—साधुवर्गो मिश्रशरण। · · सुचरितो धर्मो व्यसन-महार्णवे तरणोपायो भवति। ससारे परिभ्रमन् जीव कर्मयत्रप्रेरित पिता, पितामहो भूत्वा भ्राता, पुत्र, पौत्रश्च भवति, माता भूत्वा भगिनी भार्या दुहिता च भवति।

एकएवाह नीकाश्चित् मे स्वजनः परिजनो वा व्याधि-जरा-मरणादीनि दु खानि परिहरति। बन्धु मित्राणि श्मशान नातिवर्तन्ते। धर्म एव मे सहाय अनपायी।

धर्ममवाप्य विषय सुखेरजन भस्मार्थ चन्दनदहनमिव विफल।"

आत्मा के ज्ञान-दर्शनोपयोग स्वभाव के सिवाय सारे जगत मे कोई भी वस्तु स्थिर नही है। पचपरमेष्ठी लोकोत्तर जीव रूप शरण है, उन का प्रतिबिम्ब अजीव शरण है, धर्म के उपकरण सहित साधु वर्ग मिश्रशरण है। · भली प्रकार आचरित धर्म सकट रूप महासागर से तिरने का साधन है। ससार में भ्रमण करता हुआ जीव कर्म रूपी यत्र से प्रेरित हुआ पिता होता है, पितामह होता है और फिर भाई तथा पुत्र और पौत्र हुआ करता

है। वह जीव माता होकर वहिन, स्त्री, तथा पुत्री की पर्याय को धारण करता है।

मैं एक हूं। मेरे कुटुम्वी जन, या सेवक वर्ग मेरे रोग, जरा-मरण आदि के दुखो का निवारण नही कर सकते। वन्धु, मित्रादि श्मशान से आगे नही जाते। मेरा एक ही सहायक है, वह है धर्म, जो कभी भी साथ नही छोड़ता।

इस धर्म को प्राप्त कर विषय सुखो मे आसक्ति धारण करना, राख के लिए चन्दन को जलाने के समान निष्फल है।

(तत्त्वार्थ राजवार्तिक अ० ९, सूत्र ७)।

आत्म चिन्तन

ज्ञानी आत्मा विषयो से मन को हटाकर समता तथा सयम की समाराधना को जीवन का केन्द्र विन्दु वना अपने पवित्र हृदय मे अपनी आत्मा के विषय मे इस प्रकार चिन्तवन करता है—

एकोह निर्मम शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचर.।
वाह्या सयोगजा भावा मत्त सर्वेऽपि सर्वथा॥२७॥

इष्टोपदेश

मैं एक हूं, ममत्व रहित हू, शुद्ध हू, ज्ञानी हू, योगीन्द्रो के ज्ञान गम्य हू। वाह्य सयोग सम्वन्ध को प्राप्त पदार्थ मुझसे सर्वथा भिन्न है।

शुद्ध दृष्टि को नमन हो मेरा वारम्वार।
जा प्रसाद तें जीव यह शीघ्र होय भवपार॥

इनकी सभी जीवो पर साम्य दृष्टि रहती है।

अरि-मित्र, महल-मसान, कचन काच, निदन-थुतिकरन।
अर्घावतारन असि-प्रहारन मे सदा समता धरन॥

आतरिक सौन्दर्य

इन दिगम्वर जैन मुनियो के निकट मे आने वाला व्यक्ति इनके जीवन के आतरिक सौन्दर्य का उचित मूल्याकन करता है। वह देखता है, ये महापुरुष पूर्ण अहिसा पालन करते हुए सत्य शील, सयम आदि दैवी सपत्ति रूप सद्गुणो मे समन्लकृत है, ये अधिक से अधिक आत्माश्रयी जीवन व्यतीत करते है। नगे पैर विना वाहन जीवन भर पैदल ही विचरण करते

है। भयकर ग्रीष्म, भयकर शीत आदि ऋतुओ मे बाहरी साधनो की पीड़ा निवारणार्थ उपयोग नही करते है। जिस समय जगत् को कपित करती हुई शीत पवन बहती है, लोग गर्म वस्त्र तथा अग्नि का आश्रय लेते है उस समय भी ये आत्मबल को जगाकर शीत परीषह सहते है। ये खडे होकर गृहस्थ के द्वारा विनय तथा श्रद्धापूर्वक अर्पित किए गए शुद्ध अन्न, शाक को अपने करपात्र मे लेते है। स्त्री पुरुष इनके हाथो मे आहार अर्पण करते है, किन्तु उस समय भी इनकी निर्विकार वृत्ति दैदीप्यमान हुआ करती है। इनके जीवन मे अन्य साधुओ की अपेक्षा अहिंसा, अपरिग्रह की परिपूर्ण साधना परिलक्षित होती है। ये चौबीस घण्टो मे एक बार ही दिन मे आहार पानी लेते है। बहुधा निर्जल उपवासो द्वारा ये आत्मा को राग द्वेषादि विकार रहित बनाने मे सलग्न रहते है। निर्दोष दिगम्बरत्व इनकी आतरिक महत्ता को स्पष्ट करता है। रात्रि के समय ये मौन धारण कर अपना समय आत्मचितन तथा जीवन शोधन मे व्यतीत करते है। क्रोधादि की सामग्री उपस्थित किए जाने पर भी ये मनोबली महात्मा शाति को भग नही करते।

शाँति मूर्ति

एक दुष्ट व्यक्ति स्व० आचार्य शाति सागर महाराज के समीप आया और उसने कहा, "आप बन्दर की तरह नगे क्यो रहते है ? इस प्रश्न के उत्तर मे आचार्य श्री ने शान्तिपूर्वक कहा "भाई ! मन बदर की तरह चचल रहता है। बदर की तरह चचल मन को वश मे करने के लिए बदर की मुद्रा लेनी पडती है"। उत्तर सुनकर वह व्यक्ति इनका परम भक्त बन गया।

अद्भुत आत्मबल

इन दिगम्बर मुनियो के पास ईश्वर भक्ति और आत्मबल का अक्षय भण्डार रहता है। आचार्य रत्न देशभूषण महाराज इदौर उज्जैन के समीप किसी ग्राम के मैदान में आत्मध्यान करते थे। उस समय एक सर्प ने इनको काट दिया। उस सर्प के डेढ दात टूटे हुए इनके शरीर पर पाए गए। इन्होने अपने कमण्डलु का थोडा जल उस स्थान पर डाल दिया। कुछ काल के अनतर आगरा मेडिकल कालेज के प्रमुख सर्जन इन गुरुदेव

के पास आकर इनके सर्पदंश के बारे मे बात करने लगे, तब इन्होने सस्मित वदन से कहा, 'हमारी क्या फिकर करते हो, उस साप का इलाज करो, जिसके डेढ दात टूट गए।" ऐसी विलक्षण आत्मा की साधना इन ऋषियो की रहती है। वर्षा काल के अनतर ये मुनिराज भिन्न-भिन्न स्थानो के तीर्थ स्थानो की वन्दनार्थ तथा जनहित हेतु अन्यत्र जाते है।

विश्व पूज्य

एक बार आचार्य देशभूषण महाराज के सघ ने बुदेलखण्ड के डाकुओ से घिरे क्षेत्र मे भ्रमण किया। सघ नायक दिगम्बर आचार्य देशभूषण महाराज ने बताया, कि उस क्षेत्र की यात्रा मे कई अजैन साथ मे रहा करते थे। रात्रि को भजन करते थे। जब सघ ने उस क्षेत्र से अन्यत्र विहार किया, तब उन लोगो ने आचार्य महाराज से कहा, 'महाराज! हमलोग वे हैं, जिनसे लोग डरा करते है। आगे आपको डाकुओ की बाधा नही होगी। आपके सघ को कोई कष्ट न हो, इस कारण आपकी सेवा मे साथ साथ रहे।" इन महापुरुषो के जीवन के सपर्क मे आने वालो को जगल मे भी जो आनन्द आता है, वह बडे-बडे धनिको को अपने सर्व साधन सपन्न बडे-बडे भवनो मे नही प्राप्त होता है। इनके जीवन के पास प्रेम और पवित्रता की भगवती भागीरथी बहा करती है।

मैंने दिल्ली मे देखा सनातन धर्म के महान भक्त दानवीर सेठ जुगल किशोर जी बिरला एकान्त मे आचार्य देशभूषण महाराज के पास आकर कभी थोडी चर्चा करते या कभी चुपचाप मौनदर्शन द्वारा शान्ति प्राप्त करते थे। एक दिन वे इन्हे अपने बिरला मदिर ले गए और इनका वहाँ भाषण कराया। इन्हे वे अपना आराध्यदेव सदृश मानते थे। अपनी माता की बीमारी के समय मे महाराज के समीप एक गिलास मे दूध लेकर आए। महाराज ने अपनी पिच्छी उस पात्र पर रख दी, पश्चात् हवाई जहाज से वह दूध परम औषधि रूप समझा जा कर वाराणसी भेजा गया।

आचार्य देशभूषण महाराज के पास लाल मदिर के प्रागण मे एक अमेरिकन महिला बैठी थी। उसकी आचार्य श्री के प्रति बडी भक्ति थी। उसे णमोकार मत्र आता था। उस बहिन ने अग्रेजी स्वर (English tune) मे मुझे मत्र सुनाया। आचार्य श्री के आदेश पर मैंने उस बहिन को,

एसो पंचणमोयारो सव्व पावप्प णासणो।
मंगलाण च सव्वेसि पढमं होई मगल।

यह पद्य अंग्रेजी मे लिखकर दिया। उस बहिन ने बताया, मै सदा गुरु महाराज का नाम जपती हू। सकट काल में इनका स्मरण मेरे कष्टों का निवारण करता है।

निकट निरीक्षण

अन्य धर्म के भाई यदि दिगम्बर साधुओ के यथाथ जीवन को निकट से देखे, तो उनके मन मे आदर भाव जागे विना न रहेगा। इनके जीवन मे वह तुलसीदास जी की इन पवित्र पक्तियो को सजीव रूप में प्रतिष्ठित पायेगा। रामचरित मानस मे कहा है—

काम क्रोध मद मान न मोहा, लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।
जिन्हके कपट दभ नहि माया, तिन्हके हृदय बसहु रघुराया॥
सबके प्रिय सबके हितकारी दु ख सुख सरिस प्रशसा गारी।
कहीं सत्य प्रिय वचन विचारी जागत सोवत सरण तुम्हारी॥
जननी सम जानेहि पर नारी धन पराय विषते विष भारी।
जे हर्षहि परसपति देखी, दुखत होहि परविपति विसेखी॥

दुर्भाग्य की वात है कि कुछ वर्ष पूर्व धर्मो के विषय मे विद्वेषपूर्ण वातावरण बन गया था, किन्तु आज के युग मे जहा अणुबम, उद्जन बम की विभीषिका मानव समाज तथा सभ्यता को शून्य बनाने की भीति उत्पन्न कर रही है, वहाँ हमारे सबके दृष्टिकोण तथा सोचने समझने के तरीके मे नवीनता का प्रवेश होना जरूरी है।

सत्य ज्योति

जब हम सन् १९३४ मे कानून के विद्यार्थी थे, उस समय हमारे शिक्षक एक बुद्धिमान सफल वकील श्री प० गोविन्दराम जी त्रिवेदी थे। एक बार उन्होने छिदवाडा के सार्वजनिक जैन महोत्सव मे सुनाया था, कि वे बचपन मे जिस घर मे थे, उसके समीप एक जैन मदिर था। उस जैन मदिर को वे घृणा की दृष्टि से देखा करते थे, कारण उन्हे यह पाठ सिखाया गया था, कि प्राण जाने की स्थिति आने पर भी जैन मदिर में नही जाना चाहिये। जब त्रिवेदी साहब ने उच्च शिक्षा पाई और एक बार

उनकी दिगम्बर गात, नासाग्रदृष्टि युक्त वीतराग मूर्तियो पर निगाह पड गई, तो उन्हे अपने अज्ञान और भूल पर वहुत पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने स्वयं मदिर मे जाकर ध्यान से दर्शन कर अपनी दुर्भावना का परिमार्जन किया।

आदर्श योगी

उन्हे इस वात का पता लगा, कि उनके प्रिय ग्रन्थ गीता मे प्रतिपादित आदर्श योगी की मुद्रा का प्रत्यक्ष दर्शन जैन दिगम्बर मूर्ति मे होता है। उन्होने गीता के ये महत्वपूर्ण श्लोक दिए थे—

समंकाय शिरो ग्रीवं धारयन्नचल स्थिरः।
सप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥१३॥
प्रशान्तात्मा विगतभीः ब्रह्मचारिव्रते स्थित.।
मनः सयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्पर.॥१४॥
युञ्जन्नेव सदात्मान योगी नियत मानस.।
शांति निर्वाण परमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥१५॥ अध्याय ६

शरीर, मस्तक तथा ग्रीवा को समान और अचल करके स्थिर होकर अपनी नासिका के अग्र भाग को देखता हुआ अर्थात् नासाग्र दृष्टि हो अन्यत्र दृष्टि नही डालता हुआ, ब्रह्मचर्य व्रती हो, भय मुक्त हो, प्रशान्त आत्मा हो, सावधान हो मन को वश करके मेरे मे चित्त लगा, मुझमे लीन हो इस प्रकार अपनी आत्मा को सदा परमात्मा के स्वरूप मे लगाता हुआ एकाग्रचित्त योगी मुझमे विद्यमान निर्वाण रूप परम शांत तत्त्व को पाता है। इस संदर्भ मे गीता की यह वाणी भी सत्यपुरुषो को प्रकाश प्रदान करती है।

आत्मदर्शी साधु

काम-क्रोध-विमुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्म-निर्वाण वर्तते विदितात्मनाम् ॥ २६—५॥

जिन साधुओ ने काम तथा क्रोध से छुटकारा पा लिया है, जिनका मन वश मे हो गया है; उन आत्मदर्शियों को पूर्णतया परब्रह्म परमात्मा का पद प्राप्त है।

यतेन्द्रिय मनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्ष परायण. ।
विगतेच्छा-भय-क्रोधो य. सदा मुक्त एव सः ॥२८—५॥

वह मुनि सदा मुक्त ही है, जो इन्द्रिय, मन बुद्धि का स्वामी है, मोक्ष परायण है, तथा जो इच्छा, भय तथा क्रोध से रहित हो गया है ।

श्रेष्ठ योगी, आत्मवेत्ता आदि का जो हिन्दू धर्म के अध्यात्म ग्रन्थो मे वर्णन पाया जाता है, उसका साक्षात् रूप दिगम्बर जैन मूर्तियो मे प्रत्यक्ष होता है। दिगम्बर जैन मुनिराज मूर्ति को आदर्श बना अपने जीवन को विशुद्ध बनाते हुए वीतराग, वीत द्वेष, वीत-मोह बनाने मे सावधानी पूर्वक तत्पर रहते है । जैन धर्म की शिक्षाये पूर्णतया तर्कसंगत (Rational) होने से विचारशील व्यक्ति के मन मे स्थान बनाती है । जैन मदिर, जैन साधु आदि के सपर्क मे आने पर दैवी सपत्ति का सपर्क अन्त करण को प्राप्त होता है ।

दैवी संपत्ति

दैवी संपत्ति का सौन्दर्य जैन मूर्तियो तथा दिगम्बर जैन मनस्वी मुनि के जीवन मे प्राप्त होता है। गीता मे दैवी सपत्ति का इन शब्दो द्वारा स्पष्टीकरण हुआ है—

अभय सत्वसशुद्धिर्ज्ञान-योग व्यवस्थितिः ।
दान दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥१॥
अहिसा सत्यमक्रोधस्त्याग शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्व मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥२॥
तेजः क्षमा धृति शौच-मद्रोहो नाति मानिता ।
भवति सपद दैवी-मभिजातस्य भारत ॥३॥ अध्याय १६

अभय, अन्त करण की विशुद्धता, ध्यान तथा योग मे दृढता, दान, इद्रिय दमन, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, अपिशुनता (निन्दा करना) सर्व प्राणियो पर दया, लोलुपपने का अभाव, मृदुता, लज्जा शीलता, चचलता का अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, द्रोह भाव का अभाव, अहकार विहीनता, हे भारत ! दैवी सपत्ति युक्त पुरुष के ये लक्षण है ।

दैवी सपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ॥५—१६॥

दैवी सपत्ति द्वारा मोक्ष का प्राप्त होती है। आसुरी सपत्ति बन्धन-

कारी होती है। दि० जैन श्रमण मे उपरोक्त दैवी सपत्ति प्रतिष्ठित मिलती है। दिगम्बर अवस्था मे उनके द्वारा ज्ञान दान, तथा अभयदान जीवो को मिला करता है। वे आत्म यज्ञ करते है। क्रोधाग्नि मे क्षमा, कामाग्नि मे वैराग्य तथा उदराग्नि मे अनशन की आहुति दिया करते है।

सच्चा साधुत्व

अनेक लोग बडे-बडे साधु रूप मे प्रसिद्धि पा जाते है, किन्तु वे क्रोध, अहकार, अविवेक आदि के कारण आसुरी वृत्ति युक्त हो कल्याण मार्ग से विपरीत हो जाते है। विकारी हृदय मे दिव्यता का निवास असत्य कल्पना है। तुलसी दास जी ने कहा है—

जहां राम तह काम नहि, जहां काम नहि राम।
तुलसी दोऊ न रहे रवि-रजनी इक ठाम॥

साधुत्व का कहाँ निवास है, कहा उसका कोलाहल मात्र है, इसके विपय मे गीता मे आसुरी सपत्ति का इस प्रकार वर्णन आया है। जिनमे निम्नलिखित बाते है, वह सतोगुणी साधु कैसे होगा ?

दभो दर्पोभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञान चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥४—१६॥

हे पार्थ ! दभ (पाखण्ड) घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोर वाणी तथा अज्ञान आसुरी सम्पत्ति को प्राप्त व्यक्ति के लक्षण है।

दुर्लभता

इन्द्रिय विजय और सयम का मार्ग सरल नही है। विपय भोगो की लालसा सारे जगत को अपना गुलाम बनाए हुए है। जिनकी उपलब्धि कठिनता पूर्वक होनी है, उनकी प्राप्ति के लिए महापुरुप प्रयत्न करते है। छोटे पुरुप उनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न नही करते जिनकी उपलब्धि कठिनता पूर्वक होती है। तात्पर्य यह है कि मनोजयी महापुरुप तपश्चरण रूप कठिन जीवन व्यतीत करते है, वे थोडी सख्या मे होते है फलत. सुखी व्यक्ति थोडे पाये जाते है।

इस प्रकाश मे देखने पर स्पष्ट ज्ञात हो जाता है, कि अनेक व्यक्ति अपात्रो को महान साधु मानते है और परिस्थिति विशेप वश वे कृत्रिम साधु बहुजन समाज द्वारा सन्मान के भाजन भी बन जाया करते हैं, किन्तु

सत्य के उज्ज्वल प्रकाश में वे साधुत्व से बहुत दूर है। यह सुभाषित महत्वपूर्ण है—

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो न हि सर्वत्र चन्दनं न वने वने॥

पर्वत तो बहुत है, किन्तु किसी विशेप पर्वत पर ही माणिक्य रूप दर्शन मिलता है। हाथी भी बहुत है, किन्तु किसी विशिष्ठ गजराज के मस्तक से गजमुक्ता प्राप्त होता है। वन भी बहुत है, किन्तु विरले जंगल में चदन का वृक्ष पाया जाता है। इसी प्रकार साधु नाम वेषधारी भी बहुत है, किन्तु सच्चे साधु पुरुप विरले है। जिनके ज्ञान चक्षु खुले है, ऐसे सन्त कम हैं।

बाइबिल का एक वाक्य ध्यान देने योग्य है, "The paths of the Lord are Truth and Mercy" परमात्मा को प्राप्त करने के मार्ग सत्य और करुणा है। जिसमें सत्य का अभाव हो और उसके स्थान में असत्य और दभ प्रतिष्ठित हो, तथा जहा करुणा, प्रेम, दया के बदले क्रूरता, द्वेष तथा हिसा का सद्भाव हो, वहा साधुत्व की बात तो निराली है, मानवता—इंसानियत का भी अभाव स्पष्ट ज्ञात होता है। यह सूक्ति नकली साधुओ के मानस पर अच्छा प्रकाश डालती है—

मूंड़ मुंड़ाए तीन गुन सिर की मिट गइ खाज।
खाने को लड्डू मिलें लोग कहें महराज॥

साधुत्व का प्राण वैराग्य

अत. करण मे सच्चे वैराग्य की ज्योति जगे विना जो व्यक्ति साधु की सज्ञा प्राप्त करता है, वह स्वयम् को बधन मे डालता हुआ समाज को गुमराह करता है। कोई-कोई व्यक्ति कलह, विद्वेप, मारपीट, प्राणघात की ओर लोगो को प्रेरित हुए सोचते है, कि वे धार्मिक साधु हैं तथा संस्कृति और समाज का मुख उज्ज्वल कर रहे है, किन्तु सच्चा सौजन्य पूर्ण साधुत्व जिस अत. करण मे प्रतिष्ठित हो जाता है, वह प्रेम की गंगा बहाते हुए सर्वत्र वधुत्व और धार्मिक सौमनस्य की सद्भावना को जगाता है। तुलसी दास जी का यह मार्ग दर्शन कितना सुन्दर और सार्थ पूर्ण है, कि जब तुम सर्वत्र प्रभु का दर्शन करते हो, तो फिर तुम्हारे सामने भेद और विद्वेष की गुजाइश कहां रहेगी ?

उमा जे राम चरन, रत विगत - काम-मद-क्रोध ।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, केहि सन करहिं विरोध ।।

अहिंसा मूर्ति संत

संत का समागम मिलने से जीवन मे मोह का अधकार दूर होता है। संतों का समागम महान पुण्य से प्राप्त होता है। तुलसी दास जी कहते हैं,

पुण्य पुज बिन मिलहि न संता, सत् सगति संसृति कर अन्ता ।।

राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त ने जैन सन्त शिरोमणि चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शांति सागर महाराज के श्रेष्ठ व्यक्तित्व के प्रति अपनी भक्ति व्यक्त करते हुए हमे लिखा था, वह पद्य प्रत्येक व्यक्ति के लिए मननीय है—

पंथ अनेक संत सब एक, नत हूं मै अपना सिर टेक ।
जहां अहिंसा का अभिषेक, परम धर्म का वहा विवेक ।।

अहिंसा परमो धर्मः का तत्त्व जिस अन्त करण में जितना अवतरित होगा, उतनी ही उसमें साधुत्व की उपलब्धि होगी। जितना-जितना आत्मा मे साधुत्व का विकास होकर क्रोध, मान, माया, लोभ, कामादि विकारो की न्यूनता होती जाएगी, उतनी-उतनी उस आत्मा मे दिव्यता की अभि-व्यक्ति होती जाएगी।

आत्म निष्ठा

परम हस रूप दिगम्बरत्व को स्वीकार करने वाली आत्मा मे अपूर्व आत्म विश्वास का होना अत्यन्त आवश्यक है। उसकी आत्मा में यह विश्वास आवश्यक है कि मैं चैतन्य ज्योति स्वरूप हूँ। बाहरी परिग्रह मेरा नही है, न मेरा हो सकता है। कन्नड़ भाषा के महान आध्यात्मिक कवि रत्नाकर अपनी रचना 'रत्नाकर शतक' मे आत्मा से इस प्रकार कहते हैं—

"हे आत्मन्! सपत्ति, मणिहार, पुष्प माला तो शरीर के शृंगार हैं—भूषण हैं। आत्म श्रद्धा, आत्म बोध तथा सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय आत्मा के आभूषण हैं। मैं उस आत्मा के शृंगार का कवि हूँ। हे परमात्मन्! आप हसराज हैं। रत्नत्रय के अधिपति होने से आप मेरे

स्वामी है।

हे आत्मन्! यह शरीर यदि सुवर्ण, चाँदी अथवा ताम्बे का होता तो इस पर तेरा मोह होना उचित था, किन्तु यह तो हाड़, मांस, मल-मूत्र के पिण्ड रूप है तथा यह थोडे समय टिकने वाला क्षणिक है, तब तू क्यो इस पर आसक्त हो रहा है?

हे आत्मन्! भैंस, भैंसा, शूकर कीचड़ में ही लोटा करते है, तू तो ज्ञान रूप सम्पत्ति का धनी है, फिर क्यो विषय भोग रूपी कीचड में तू लोटता है। यह तो बता तू, विषय रूप पंक तथा इस गोले चर्ममय शरीर मे कब तक बैठा रहेगा? ऐसी स्थिति में यदि कोई तेरे को अमगल रूप कहता है, तो तू क्यो रोष को प्राप्त होता है? एक विचार शील भक्त कहता है—

मनः तू सड़े शरीर में क्या माने सुखचैन।
जहां नगारे कूच के बजत रहत दिन रैन॥

आत्मजागरण

जब आध्यात्मिक दृष्टि द्वारा साधक वस्तु स्वरूप को समझ जाता है, तब वह श्रेष्ठ सयम तथा महान व्रतो को स्वीकार करता हुआ अपरिग्रह तथा अहिसा की साधना हेतु दिगम्बर मुद्राको धारण करता है। ऐसी स्थिति का पाना विश्व साम्राज्य की उपलब्धि से भी अधिक गौरव पूर्ण है। भर्तृहरि, गांधीजी आदि महान पुरुष उस साधुत्वको आकाक्षा ही करते करते परलोक प्रयाण कर गए, जिस साधुत्व में शरीर और मन दोनो दिगम्बर रहते है। अज्ञानी और अविवेकी व्यक्ति इस देवेन्द्र पूज्य पद की महत्ता नही जान पाता है। स्वामी राम कृष्ण परमहस "विषयी मन को गोबरका कीडा कहते थे।" उस कीट को गंदगी ही पसन्द पडती है, इसी प्रकार दुष्ट तथा निकृष्ट व्यक्ति सच्चे सन्तो की महत्ताको न समझ कर विषयो, विलासो, दभी लोगो की आराधना को अपने लिए वरदान और विभूति मानते है। दि० जैन मुनि की आतरिक विशुद्धता और उच्चता को तो कौन कल्पना कर सकेगा, उनके बाहरी जीवन को देखकर विवेकी मानव प्रभावित हुए बिना नही रहेगा। साधु कहने मात्र से कोई व्यक्ति साधु नही माना जा सकता। कवि कहता है—

बड़े न हूजे गुनन बिनु बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक गहनो गढ़्यो न जाय॥

साधु का लक्ष्य

दिगम्वर मुनि का लक्ष्य परमात्मा की स्थिति को उपलब्ध करके जन्म, जरा तथा मृत्यु के अनादिकालीन अभिशाप से मुक्त होना है। मनुष्य सारे जीवन को लगाकर जिस सामग्री को एकत्रित करता है, वह "सम्मीलने नयनयो नहि किंचिदस्ति" नेत्रो के वन्द हो जाने पर नही रहती। इसलिए सर्वज्ञ तीर्थकर ने, जो साधु के लिए मुक्ति प्राप्ति के लिए मार्ग दर्शन किया है, उसपर श्रद्धा धारण कर आचरण करना हितकारी है। दिगम्वर जैन मुनि मन, वचन, काय-कृत, कारित और अनुमोदना पूर्वक जीव हिसा नही करते है। वे सदा मयूर की पिच्छी साथ मे रखते है, जिससे वे सपर्क मे आने वाले छोटे-छोटे जीवो की रक्षा तक कर सके। पिच्छी दया का उपकरण है।

दुष्टो पर भी करुणाभाव

उनके मनमे अहिंसा प्रतिष्ठित रहने से वे जगत के जीवो पर सच्ची मैत्री रखते है। दुष्टो के प्रति भी उनके हृदय मे मधुर भावना रहती है। इस विषय को स्पष्ट करने हेतु एक घटना स्मरण आती हैं।

कोगनोली ग्राम, जिला वेलगाव (दक्षिण भारत) मे एक दिगम्वर मुनि सिद्धप्पा स्वामी कुछ समय रहे थे। एक दिन ग्राम के कुछ उपद्रवी वालक उनकी कुटी मे पहुँचे। नागा वावा को आँख वद कर ध्यान मे निमग्न देख उनके उपद्रवी दिमाग मे वावा को पत्थर मारकर सताने की कल्पना उठी। उन्होने पत्थर मारना शुरू किया। वावा शान्त रहे। पत्थरो के प्रहार से उनके शरीर से खून वहने लगा। दुष्ट वच्चो ने अपने खेल का मजा लिया और वे घर लौट आए। प्रभात के समय गाव का स्वामी गुरुभक्त पाटील वावा के पास आया। उनके शरीर को क्षत विक्षत देख वह घवडाया। आखो मे आसू आ गए। वावा मौन रहे। उन्होने कुछ नही कहा। पाटील घर वापिस आया। उसे पता चल गया, कि कल गाम को आठ, दस वदमाश लड़को ने जाकर यह क्रूर कृत्य किया है। उसने उनको हवालात मे वद करवाया।

सिद्धप्पा स्वामी मदिर के दर्शनार्थ वस्ती मे आए। उनके पवित्र हृदय मे यह वात झलक गई, कि पाटीलने उन लड़को को पकडवाया है। उस दिन आहारका समय हो जाने पर भी साधु वावा आहार को नही उठे। पाटील ने कानड़ी भाषा मे पूछा, "स्वामी जी! आहार का समय हो गया

है"। बाबा ने कहा, "तुम उन लडको को जब तक नही छोडोगे, तब तक हम आहार को नही जावेगे। हमारे कारण तुम उनको कष्ट दे रहे हो।" बाबा का आग्रह होने से बच्चो को छोड़ना पडा। पश्चात् बाबा ने एक अद्भुत बात कही, "पाटील! वे बच्चे हमारे पास आए। उन्होने हमे झाड सरीखा समझकर फल पाने की लालसा से पत्थर मारे, क्योकि वे आम, अमरूद, जामुन आदि के वृक्षो को पत्थर मारकर फल पा लिया करते थे। उन्होने हमे पत्थर मारा, किन्तु उन्हे कुछ भी फल नही मिले। उनके हाथको कष्ट हुआ।" फिर बाबा ने कहा, "पाटील! जो हम कहते है, वह करोगे क्या?" पाटील ने कहा, "बाबा, हम आपके सेवक है। आपकी आज्ञाको पालन करेगे।" इस पर बाबा सिद्धप्पा स्वामीने कहा, "उन बच्चो को एक एक कुरता और एक-एक टोपी इनाम में दो"। पाटील को स्वामी की आज्ञानुसार कार्य करना पडा। सब लोग यह देखकर आश्चर्य युक्त हुए कि बाबा के हृदय मे कैसा अद्भत प्रेम तथा महान अहिसा और करुणा का अमृत भरा हुआ है।

पुण्य दर्शन

यथार्थ मे ऐसे साधुओ के दर्शन जिस व्यक्ति को प्राप्त हो जाते है, वह स्वयंको कृतार्थ मानता है। लोग ईश्वर से प्रार्थना करते है, कि ऐसे प्रेमके देवता यदि हमारे ग्राम या नगर की ओर पधारे, तो हमारा सौभाग्य होगा। यशस्तिलक मे कहा है, ऐसे दिगम्बर मुनिराज जिस देश मे जाते है वहाॅ सुख और शाति का निवास होता है—

पद्मिनी राजहंसाश्च निर्ग्रन्थाश्च तपोधनाः।
य देशमुपसर्पन्ति सुभिक्षस्तत्र निर्दिशेत्॥

लोकोत्तरता

ऐसे साधुओ की दुनिया निराली होती है। भयकर वन तथा हिसक प्राणी भी इनको भीति उत्पन्न नही करते है। सत्य और अहिसा के द्वारा ये प्रेमनगर का निर्माण करते है। गीता में कहा है जो रात्रि सारे जगत् को निद्रा हेतु आती है, उसी रात्रि के आगमन पर सयमी जागृत रहता है, तथा जिस समय सारा जगत् जागा करता है, उस समय वह सयमी सुप्त प्राय रहा करता है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।।

आध्यात्मिक परिवार

साधु जीवन मे कोई लौकिक कुटुम्वी नही रहता है, किन्तु उनका आध्यात्मिक परिवार उनका सदा साथ दिया करता है । महाकवि वनारसी दास जी कहते है ।

धीरज-तात, क्षमा-जननी, परमारथ-मीति, महारुचि-मासी ।
ज्ञान-सुपुत्र, सुता-करुणा, मति-पुत्रवधू, समता अति-भासी ।।
उद्यम-दास, विवेक-सहोदर, बुद्धि-कलत्र, शुभोदय-दासी ।
भाव-कुटुम्ब जिनके ढिग यो मुनि को कहिए गृहवासी ।।
वनारसी विलास, २०५

अद्भुत बात

वर्तमान कालीन शारीरिक शक्ति हीनता, प्रतिकूल वातावरण आदि के होते हुए भी जो कुछ मनोवली महापुरुष कठिनाइयो से परिव्याप्त दिगम्वर मुनि की दीक्षा को स्वीकार करते हैं, यह वहुत वड़ी वात है । पूज्यपाद ऋषि की यह उक्ति यथार्थ है—

काले कलौ चले चित्ते देहे चान्नादि कीटके ।
एतत्चित्र , यदद्यापि जिन रूप धरा नराः ।।

यह महान आश्चर्य की वात है कि कलिकाल मे मन की चचलता के होते हुए तथा शरीर अन्न का कीडा सरीखा होते हुए भी इस समय दिगम्वर मुद्राधारी आत्माओ का दर्शन होता है ।

प्रतिकूल परिस्थितियो के होने से वर्तमान साधुओ के समीप पूर्ववत् अद्भुत सिद्धिया ऋद्धिया नही देखी जाती है, फिर भी इस विलासिता के युग मे अपने महाव्रतो का वे वड़े साहस और धैर्य के साथ जो पालन करते है, वह कोई कम चमत्कार की वात नही है । एक वात यह भी है, कि किन्ही साधुओ को यदि कोई विशेष उपलव्धि भी हो जाती है, तो वे उसका प्रदर्शन नही करते । आज का मानव प्रसिद्धि प्रेमी रहता है, किन्तु आध्यात्मिक विभूति रूप साधु विशुद्धि तथा सिद्धि प्रेमी होते है । निम्नलिखित उदाहरण से उपरोक्त कथन की पुष्टि होती है ।

श्रेष्ठ निस्पृहता

हम सन् १९५२ मे दिगम्बर जैन श्रमण सघ के प्रमुख आचार्य शातिसागर महाराज के पास पहुचे और उनका जीवन चरित्र जिसके लिए उनकी जीवन वार्ता पूछने गए, तब उन्होने हमसे कहा था हमारा चरित्र लिखने मे अपने समय को व्यर्थ खोते हो। दुनिया मे सब साधुओ में हमारा 'लास्ट नबर है'। मैने कहा "महाराज लोग तो कहते है आपका फस्ट नबर है" तब उन्होने कहा "लोग हमे क्या समझे, अपनी स्थिति को हम जानते है।" इस प्रकार उन्हे यशोलिप्सा से दूर देख हमने दक्षिण प्रान्त, उनकी जन्म भूमि आदि का दौरा किया तथा अन्य साधनो से उनकी जीवन सामग्री एकत्रित कर चारित्र चक्रवर्ती तथा आध्यात्मिक ज्योति रचना बनाकर प्रकाशित कराई। अग्रेजी कवि मिल्टन की यह धारणा है कि बड़े बड़े लोग भी इस कीर्ति कामना से नही बचे। इसे मिलटन ने Last nfirmity of noble mind. सत्पुरुषो मे पाई जाने वाली दुर्बलता कहा है। महात्मागाधी पर ग्रन्थ लिखने हेतु अमेरिकन लेखक लुई फिसर जब बापू के पास सेवाग्राम गया था, तब बड़े प्रेमसे बापूने अपनो आवश्यक सामग्री दी थी। ऐसा अन्यत्र भी हुआ करता है, किन्तु आध्यात्मिक ज्योतिर्धर आचार्य शान्तिसागर महाराज को उनका गुण-गान किया जाना व्यर्थ की बात लगती थी। उनका जीवन वास्तव मे लोकोत्तर था।

आत्म बल तथा अपूर्व धैर्य

एक समय की बात है आचार्य महाराज कोगनोली के जैन मन्दिर मे अत्यत मनोज्ञ तथा अति प्राचीन भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा के समक्ष आत्म ध्यान करने बैठे। इतने मे करीब पाच छह हाथ लम्बे सर्पराज ने वहा आकर महाराज के शरीर पर चढना प्रारम्भ किया। वह उनके शरीर पर लिपट गया। महाराज अपनी ध्यान मुद्रा मे निमग्न रहे। सध्या के समय भगवान के दर्शनार्थ लोग मन्दिर मे आए। उन्होने यह विस्मयप्रद दृश्य देखा। सैकडो व्यक्ति एकत्रित हो गए। लोग सोचते थे, यदि सर्प को दूर करने का उद्योग किया और कही उस यम दूत ने महाराज को काट दिया तो अनर्थ हो जायगा, अत सभी किकर्तव्य विमूढ हो रहे थे। लगभग दो घण्टे के अन्तर सर्पराज चुपचाप अन्यत्र चला गया। ऐसे महान साधक के दर्शनार्थ दूर दूर से आकर भद्रात्माए स्वहित सपादन करती थी। अनेक

सर्प इनके पास आते थे, शेर भी कई वार इनके पास आकर वैठता था। ऐसा आत्मा का अद्भुत तथा दिव्य तेज होता है।

तप का तेज

आचार्य वीर सागर महाराज ने वताया था कि शातिसागर महाराज का आत्म तेज अपूर्व था। एक वार शिखरजी की ओर सघ की यात्रा काल में चार मस्त सांड दौडते हुए महाराज के समीप आए। लोगो को भय था कि ये मदोन्मत्त पशु कोई उत्पात उपद्रव न कर वैठे किन्तु सव लोग यह देख चकित हो उठे कि उन साडो ने पैर टेके और अपना मस्तक आचार्य शांतिसागर महाराज के चरणो पर रख दिया। वास्तव मे उनका आत्म बल आतरिक निर्मलता तथा अहिसा की साधना अप्रतिम थी उनका वौद्धिक विकास भी अद्भुत था। कठिन से कठिन दार्शनिक गुत्थियों का वे मधुर समाधान दिया करते थे।

अनासक्ति

एक दिन आचार्य महाराज ने अपने केशो का लोच किया तिनको के तोडने सदृश उनका वालो का उखाडा जाना देखकर एक व्यक्ति ने पूछा गुरुदेव ! केशलोच मे आपको पीडा नही होती ? क्या वात है कि आपके चेहरे पर जरा भी पीडा का दर्शन नही होता ?

महाराजने पूछा तुम्हारे वच्चे को कोई पीडा होती है तो तुमको कष्ट होता है या नही ?

उत्तर—हाँ महाराज हमे दु.ख होता है। रोष आता है।

प्रश्न—हमे दु ख होता है या नही ?

उत्तर—आपको कुछ नही होता।

प्रश्न—क्यो ?

उत्तर—हमारे ममत्व है, आपके ममत्व नही है।

महाराज ने कहा, हमारा शरीर के प्रति ममत्व नही है, इससे हमारी आत्मा को पीडा नही होती। जिस वस्तु के प्रति आसक्ति या ममता होती है, वह मनोव्यथा, पीडा आदि को उत्पन्न करती है। जिसके प्रति ममता का त्याग हो जाता है, वह वाधा नही पैदा करती है। यथार्थ मे ममता विपत्ति का मूल है और समता शाति की जननी है। सूक्ति है—

यस्मिन्वस्तुनि ममता, मम तापस्तत्र तत्रैव।
यत्रैवाह मुदासे तत्र मुदासे स्वभाव सतुष्टः॥

जिस वस्तु में मेरी ममता होती है, उससे ही मुझे सताप प्राप्त होता है, किन्तु जिस पदार्थ से मै उदासीन वृत्तियुक्त हो जाता हूं, उस पदार्थ से मुझे संताप नही मिलता, मैं स्वभाव से संतुष्ट हो आनन्दपूर्ण रहता हू। यह माया ममता ही जीव को दुःखी बनाया करती है। समस्त जगत से माया ममता का सम्बन्ध त्यागने वाले दिगम्बर साधुओ को जो आत्मानद मिलता है, उसकी कल्पना हम नही कर सकते। भयकर ज्वर से पीडित व्यक्ति को नीरोगता का क्या मजा होता है, हम यह कल्पना नही कर सकते है।

अज्ञानी की कल्पना

मोह, अज्ञान, अविद्या, दुर्वासना तथा असत्य से आक्रान्त अविवेकी इन साधुओ के अंत. सौन्दर्य और उच्चता को कल्पना तक नही कर सकने के कारण यह सोचता है कि इनको जन समाज का लिहाज करते हुए नग्न नही रहना चाहिए। इन्हें कुछ न कुछ काम करके समाज को आर्थिक लाभ पहुचाना चाहिए। बिना शारीरिक श्रम किए इनको भोजन पाने का कोई अधिकार नही है। यदि ये नगर में आते हैं, तो इनको दिगम्बर नही रहना चाहिए। ऐसी कल्पनाएं कुछ मूर्ख या अपने को अत्यत सभ्यशिरोमणि मानने वाले करते है।

समाधान

इन लोगो को यह सोचना, समझना चाहिए, कि जैसे उन्हें स्वतन्त्रता चाहिए, वैसे दूसरे को भी स्वतत्र रहने देना चाहिए। दूसरे को अपना अनुकरण करने का बाध्य करना क्या सभ्यता या भलमनसाहत है? कुछ लोग शराब पोते हैं, यह उनकी तबियत की बात है, किन्तु उन्हे यह कहने का क्या अधिकार है कि दूसरो को उनका अनुकरण करना चाहिए, अन्यथा उन न पीने वालों को दण्डित करना चाहिए? समझदार व्यक्ति कहेगा, कि शराबी को दूसरे को शराब पीने के लिए मजबूर करना नितान्त अनुचित है। इसी प्रकार मोह और ममता की शराब पोकर भोग और विलास में फंसे व्यक्ति या व्यक्ति समूह का यह सोचना कि जा माह

और ममता से दूर हो श्रेष्ठ, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अचौर्य वृत्ति की साधना करते हुए दिगम्बर हो अपना जीवन शोधन कार्य कर रहे हैं और अपने आदर्श तथा उपदेशो द्वारा जनसाधारण के जीवन को ऊचा उठाते है, उनमे विद्यमान पशुता को दूर करा कर उनमे मानवता, इसानियत आदि हितप्रद तत्त्वो को प्रतिष्ठित कराते है तथा जो राष्ट्र का आंतरिक विकास कराते हैं, उनका आभार और उपकार मानकर उनके चरणो की वदना करना चाहिए, न कि उनके मार्ग मे वाधक वनना चाहिए। अहिसा, सत्य, अपरिग्रह, जितेन्द्रियता आत्मनिर्भरतापूर्ण चरित्र द्वारा दिगम्बर श्रमण जगत् को कल्याणप्रद पथ को वताते हैं। "Example is better than precept"—उपदेश की अपेक्षा आचरण करना अच्छा है। इस सूक्ति के अनुसार ये महापुरुष अपने जीवन द्वारा मगलमय उपदेश देते हैं। यदि शासन सत्ता इनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर इनके चरित्र तथा वाणी की ओर जनता के ध्यान को आकर्षित करे, तो औद्योगिक उत्क्रान्ति (Industrial revolution) तथा भौतिक विकास के दुष्परिणाम स्वरूप भोगासक्ति, विषय-लोलुपता, स्वार्थपरायणता आदि विकृतियो से जनमानस को सही दिशा मे अव भी मोड़ा जा सकता है। कवीरदास के इस कथन का आज के विलासी मानव के पास क्या उत्तर है ?

हितोपदेष्टा

कहा चुनावे मेड़िया लांबी भीत उसारि।
घर तो साढ़े तीन हथ घना कि पौने चार॥

आध्यात्मिक दिगम्बर साधु तो यह कहते है, अरे विचारशील मानव यह शरीर भी तेरा नही है, तव अन्य वस्तुओ के साथ आत्मीय वुद्धि क्यो धारण करता है ? वादीभसिंह सूरि कहते हैं—

देहात्मकोऽहमित्यात्मन् जातु चेतसि मा कृथा.।
'हे आत्मन्! मैं देह स्वरूप हू, ऐसी कल्पना भी नही कर'।

अद्भुत प्रभाव

ऐसे आध्यात्मिक दृष्टिकोण की वात सपत्तिशाली, वैभव तथा माया के जाल मे फसे व्यक्ति के मुखसे सुनने पर श्रोता पर प्रभाव नही पड़ता है, किन्तु जो महापुरुष अपने उपदेश के अनुसार स्वय आचरण करते हैं,

उनका उपदेश लक्ष्मी पुत्रो की भी आखे खोल देता है। सेठ जुगलकिशोर जी विरला ने आचार्य देशभूषण जी के वारे मे मुझसे कहा था "हम तो आपकी इज्जत करेगे, क्योंकि आप हमारे आचार्य महाराज के शिष्य हो, मुझे उनकी बार-बार याद आती है। मेरी ओर से उनसे प्रार्थना कीजिए कि दक्षिण प्रान्त से अत्यन्त शीघ्र उत्तर प्रान्त मे वे पधारे, ऐसी महान शक्ति हमें कही देखने को नही मिलती है। उनके पुण्य से ही हम लोगो का उद्धार हो सकेगा। आज सर्वत्र भारी हिसा फैली हुई है। उनके आशीर्वाद से मेरा सब काम ठीक हुआ है। मेरी तबियत सुधर गई। देखो! मेरे पास उनकी फोटो रखी है, मै उन्हे सदा प्रणाम किया करता हू।" उन्होने यह भी अपना भाव व्यक्त किया था, "मेरा दुर्भाग्य है, कि मै इन गुरुदेव को अपने हाथ से आहार नही दे सकू गा, कारण मैं उनकी सर्व क्रियाओ तथा नियमो का पूर्णतया पालन नही कर सकू गा।"

सत्पथ-दर्शक

वर्त्तमान दुःखी जगत् की स्थिति वदल सकती है, यदि सच्चे सत्पुरुषो से हमारा जन समाज और शासन मार्गदर्शन प्राप्त करके अपनी प्रवृत्तियो मे परिवर्तन करे। आज भी जो जनता पाप कर्मो से दूर पाई जाती है, उसमे धर्म का प्रभाव विशेष स्थान रखता है। एक वार नागपुर उच्च न्यायालय के प्रमुख न्यायाधीश श्री नियोगी ने कहा था "यदि इस जगत् में वास्तविक धर्म का वास न होता, तो शाति के साधन रूप पुलिस तथा सैन्य बल के द्वारा घातक शक्तियो से साम्राज्य की रक्षा नही की जाती उसी प्रकार धर्मानुशासित अन्त.करण के द्वारा आत्मा उच्छृखल तथा पापपूर्ण प्रवृत्तियो से बचकर राष्ट्र तथा समाज के निर्माण मे उद्यत होता है।"

(जैन शासन पृष्ठ १२)

महानता का कारण

आचार और विचार की उच्चता मानव को महान बनाती है। धन वैभव, राजकीय प्रभुता थोडी चमक दमक दिखाकर विस्मृति की गोद मे विलीन हो जाती है। किसी ने कहा है—

नारायण ससार मे भूपति भये अनेक।
मै, मेरी कर मर गए, ले न गए तृण एक॥

यथार्थ मे जगत् मे वे महापुरुष चिरस्मरणीय रहे आते है, जिन्होने वैभव को त्यागकर अकिचन वृत्ति अगीकार की तथा जो सर्वत्र प्रेम तथा वधुत्व की सद्भावनाओ को जागृत किया करते है। यह कथन यथार्थ है—

दया धरम हिरदे वसै बोले अमृत वैन।
तेई ऊंचे जानिये जिनके नीचे नैन॥

दिगम्बर मुनियो के व्रत

दिगम्बर श्रमण इन पच महाव्रतो को स्वीकार करता है, पढ़मे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमण, विदिए महव्वदे मुसावादादो वेरमण, तिदिये महव्वदे अदिण्ण दाणादो वेरमण चउत्थ महव्वदे मेहुणादो वेरमण, पचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमण —प्रथम महाव्रत प्राणातिपात विरमण अर्थात् जीव घात परित्याग रूप है। द्वितीय महाव्रत मृषावाद अर्थात् असत्य का त्याग है। तीसरा महाव्रत अदत्तदान अर्थात् अचौर्य का त्याग है। चौथा महाव्रत मैथुन त्याग अर्थात् ब्रह्मचर्य का धारण है। पाचवा महाव्रत परिग्रह त्याग है[1]। इसमे दिगम्बर पने का समावेश है।

वौद्धो के यहाँ उपरोक्त व्रतो को शील नाम से ग्रहण किया गया है।

---

१ यह वात ज्ञातव्य है कि जैनो के भेद श्वेताम्बर जैन साधु वस्त्रादि का त्याग नही करते, किन्तु उनके पूज्य ग्रन्थो मे यह कहा है, कि भगवान महावीर के साधु जीवन के ४२ वर्षो मे प्रारम्भ मे एक वर्ष एक माह तक वस्त्र था। पश्चात ४० वर्ष ११ माह महावीर तीर्थंकर दिगम्बर रहे और निर्वाण के समय उनके शरीर पर कोई वस्त्र नही था। डा० जैकोवी के द्वारा अनुदित श्वे ग्रन्थ कल्प सूत्र में लिखा है—

"The Venerable ascetic Mahavira for a year and a month wore clothes and after that time he walked about naked & accepted the alms in the hollow of his hands (P 259)

समणे भगव महावीरे सवत्सर साहियमास चीवरधारी हुत्था, तेण पर अचेलए पाणि पडिग्गहिए (करपात्र श्चाभवत् (कल्प सूत्र पृ० २६७, सूत्र ११७)

तत पर यावज्जीव अचेलक पाणिपात्रश्चाभूत्" (कल्पसूत्र पृ० २६८)

उनके नाम इस प्रकार गिनाए गए है—पाणातिपाता दो वेरमणी सिक्खपाद समादियामि (२) अदिन्नदान वेरमणी (३) कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापद समादियामि (४) मुसावादा दो वेरमणी सिक्खापद समादियामि। पचम शील शराब आदि मादक द्रव्यो का त्याग है—सुरामेरेय मज्ज पम्पट्ठाना वेरमणी सिक्खापद समादियादि। इससे यह स्पष्ट है कि बौद्धो ने परिग्रह परित्याग को अपने नियमो मे स्थान नही दिया है। जैन मुनि के पंच महाव्रतो के साथ "छट्ठे अणुव्वदे राइभोयणादो वेरमण" का कथन है अर्थात रात्रिभोजन त्यागरूप छठवा अणुव्रत है। इसे अणुव्रत सज्ञा इसलिये दी है कि दिवस मे आहार ग्रहण का त्याग नही है।

अहिंसात्मक प्रवृत्तियाँ

पच्च महाव्रतो के सिवाय दिगम्बर श्रमण गमना-गमनादि प्रवृत्तियो के समय अहिसात्मक तथा दयामयी प्रवृत्तियो को दृष्टि पथ मे रखते हुए ईर्या, भापा, एषणा, आदान निक्षेपण तथा उत्सर्ग रूप पचविध समितियो का पालन करते है।

गमन करते समय सावधानी रखते हुए दिनके प्रकाश मे गमन करना तथा रात्रि के समय गमन नही करना चाहिए क्यो कि उस समय गमन करने से अनेक छोटे तथा बडे भी जीवो का घात हो जायगा। इस गमन विषयक सावधानी को ईर्या समिति कहते है। ईर्या शब्द गमन वाचक है। समिति का अर्थ है सम्यक प्रवृत्ति। भापा समिति मे मधुर, प्रिय, हितकारी भाषण,सभाषण गर्भित है। नीति वाक्यामृत मे कहा है–"वाक्यपारुष्यं शस्त्र-पातादपि विशिष्यते"—वाणी की कठोरता शत्रु प्रहार से भी अधिक पीडा देती है। कहते है कोडे की मार पड़ने पर मास पर ही निशान पडता है, किन्तु वाणी का प्रहार हड्डी को तोड देता है। रागद्वेष आदि विकारो को त्याग कर समता भाव सहित सच्चरित्र दातार के द्वारा पूर्ण तथा शुद्ध अहिसात्मक भोजन अपने कर पात्रो से ग्रहण करना एषणा समिति है। शुद्ध आहार के नियम विधि आदि का वर्णन आचार शास्त्र के ग्रथो मे विस्तार पूर्वक किया गया है। मद्य, मास, मधु आदि का आहार से कोई भी सम्बन्ध नही रहना चाहिए। जिस भोजन मे मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना रूप दोष नही है, वही आहार दिगम्बर मुनि खड़े होकर दिन मे **एक** ।

बार लेते है। उसी समय जल आदि भी लेते है। ज्ञान के उपकरण शास्त्र, आदि का सावधानी पूर्वक उठाना तथा रखना आदान निक्षेपण समिति कमण्डलु है। जन्तु रहित स्थान में अपने शरीर के मल, मूत्रादि का त्याग करना उत्सर्ग समिति है।

मन, वचन, तथा काय की असत्प्रवृत्ति का परित्याग करना मनो गुप्ति, वचन गुप्ति तथा काय गुप्ति है। पचमहाव्रत, पच समिति तथा तीन गुप्ति रूप त्रयोदश विध चारित्र का पालन करना दिगम्बर जैन श्रमण का कर्तव्य मुनिराज स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा कर्ण इन्द्रियो को वश मे रखते हुए उनके माध्यम से अपनी मानसिक निर्मलता को क्षति नही होने देते। उनकी समस्त प्रवृत्तियाँ तथा चिंतन जीवन शोधन की ओर प्रवृत्त होते है। वे मानसिक चचलता को दूर करके चित्तवृत्ति को एकाग्र करने के पावन कार्य मे सलग्न रहते है। वे अपनी आत्मा से बात करते हुए कहते है, अरे आत्मन्! "काल अनन्त गए तुम सोवत अब तो जागो चेतन जी।"

महान उपयोगी जीवन

वहिर्दृष्टि मानव को ऐसा दिखाई देता है, कि ये साधु चुप चाप बैठे रहते है, तथा अकर्मण्य से प्रतीत होते है, किन्तु तत्त्वज्ञ चिंतक जानते है, कि ये महापुरुष सदा जागरूक हो अन्तर्गत मोह और उसकी पतनकारी सेना से निरन्तर युद्ध मे सलग्न रहे आते है। ये परब्रह्म परमात्मपद की प्राप्ति के हेतु मनसा, वाचा, कर्मणा प्रयत्नशील रहते है। मलिन दर्पण की कालिमा दूर होने पर वह जैसे निर्मल हो जाता है, इसी प्रकार काम, क्रोध, मान, लोभ आदिका कलक दूर होने पर अकलक आत्मा को परमात्मा कहते हैं। उस अवस्था मे आत्मा की सर्व श्रेष्ठ शक्तियाँ खिल उठती हैं साधु परमात्मा का स्वरूप विचारते हुए हृदय मे कहता है—

मुझमे तुझमें भेद यो और भेद कछु नाहिं।
तुम तन तज परब्रह्म भये, मै दुखिया तन माहिं॥

आत्म ध्यान

आत्म ध्यान की क्षमता जितनी बढती जाती है, उतनी-उतनी आत्मा की क्षमता तथा शक्ति भी विकसित होती जाती है। महर्षि कुंद कुंद ने कहा है—

णाणेण झाण सिद्धी झाणादो सव्व कम्म णिज्जरणं ।
णिज्जर फलं च मोक्खं णाणब्भासो तदो कुज्जा ॥

ज्ञान के द्वारा ध्यान की सिद्धि उपलब्ध होती है। ध्यान के द्वारा समस्त कर्मो को आत्म विकास में बाधक सामग्री का क्षय होता है। उसके फल स्वरूप मोक्ष या निर्वाण प्राप्त होता है, अत सम्यग्ज्ञान का अभ्यास करते रहना श्रेयस्कर है।

ध्यान की सामग्री

अनेक साधना प्रेमी साधन विहीन हो ध्यान का प्रयत्न करते है और असफल हो यह कह बैठते है कि मन का स्वभाव चचलता है, वह वश में हो ही नही सकता। मोटर सब प्रकार अच्छी हो, सर्व साधन समन्वित भी हो, किन्तु यदि उसमें पेट्रोल नही है, तो कुशल ड्राइवर की बुद्धिमता भी काम नही आएगी। एक महान साधक तत्त्वज्ञ का कथन है—

संगत्यागः कषायां निग्रहो व्रत-धारणम् ।
मनोक्षाण जय श्चेति सामग्री ध्यान जन्मनः ।

संपूर्ण परिग्रह का त्याग, क्रोधादि कषायो का निग्रह, अहिंसा आदि व्रतो का धारण करना, मन तथा इन्द्रियों को वश में रखना ध्यान की उत्पत्ति की सामग्री है।

यह बात पूर्ण सत्य है कि बाहरी सामग्री को पास मे रखने वाले का चित्त उस ओर गए बिना नही रहता। जिन-जिन वस्तुओ के साथ व्यक्ति की ममता पूर्ण आत्मीयता रहती है, उनके आस पास चित जाने अनजाने चक्कर मारा करता है।

त्याग का महत्व

जब त्याग के माध्यम से कोई वस्तु हमारी कल्पनाओ द्वारा हमारी नही हो जाती है, तब उस ओर मन को दौडाने का कोई कारण नही दिखता। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति मिठाई खाने का बडा शौकीन है, इससे उसका चित्त उस ओर सहज ही घूमा करता है, किन्तु जिस समय वह सत्समागम को पाकर उसका हृदय से जीवन भर के लिए त्याग कर देता है, तो मिष्ठान्न भण्डार को देखते हुए भी उसका मन उस ओर आकर्षित नही होता है। इसलिए बाहरी वस्तुओ को छोडने की ओर जैन मुनिराज की प्रवृत्ति हुआ

करती है।

त्याग का महत्व अनुभव के आधार पर जिन्होने जाना है, वे कहते है, त्याग के द्वारा सच्ची शाति मिला करती है। त्याग के अन्त. सौन्दर्य का निरीक्षण करने वाले गाधी जी ने 'नव जीवन' मे लिखा था, "साधु जीवन से ही आत्म शाति की प्राप्ति सभव है। साधु जीवन का अर्थ है, सत्य और अहिसा मय जीवन, सयमपूर्ण जीवन। भोग कभी धर्म नही बन सकता। धर्म की जड तो त्याग मे ही है"।

त्याग द्वारा शाति

एक बार मैंने महा तपस्वी, अत्यन्त सरल तथा पवित्र हृदय दिगम्बर आचार्य नेमिसागर महाराज से बोरीवली बम्बई मे शोभायमान त्रिमूर्ति के समीप पूछा था, "महाराज! आप का अनुभव, साधना, आत्मचितन महान है। आप अपने अनुभव के आधार पर असली शाति का उपाय बताइये?"

उन्होने कहा था, "शाति प्राप्ति त्याग के द्वारा होती है। सर्व प्रथम पाप प्रवृत्तियो का परित्याग आवश्यक है।" महर्षि कुँदकुँद ने समय सार मे कहा है—

वत्थु पडुच्च जं पुण अज्झवसाणं तु होदि जीवाण।
ण य वत्थुदो दुबधो अज्झव साणेण बधोत्ति ।।२६५।।

ससारी जीवो के भाव बाहरी पदार्थ का आश्रय पाकर उत्पन्न हुआ करते है, किन्तु बध का कारण पदार्थ नही है, बध का कारण जीव का परिणाम है।

टोकाकार अमृतचन्द्र आचार्य यह स्पष्टीकरण करते है, "नहि बाह्य वस्त्वनाश्रित्य अध्यवसान मात्मानमालभते, बाह्य वस्तु आश्रयभूतं। बाहरी पदार्थो का आश्रय लिए बिना अध्यवसान (रागादि भाव) नही होते। बाह्य पदार्थ अध्यवसान के लिए आश्रय रूप है।

कल्पना

कुछ लोगो की मान्यता है, कि बाहरी सामग्री होना न होना हमारे लिए साधक या बाधक नही है। हमारी उनके प्रति मूर्छा-ममता (attachment) नही होनी चाहिए। इस विषय पर महान ज्ञानी दि० जैन ऋषियो ने भगवान

सर्वज्ञ महावीर तीर्थंकर के ज्ञान के आधार पर यह कहा है, "उपाधिसद्-भावे ममत्व-परिणाम लक्षणायाः मूर्छाया अवश्यभावित्वात्," (प्रवचन सार गाथा २२१ की टीका) बाह्य पदार्थ रहते हुए ममत्व परिणाम रूप मूर्छा भाव अवश्य पाया जाता है तथा उनके आश्रय से असयम भी होता है।

समाधान

एक प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है, यदि आप की बाहरी पदार्थो में तनिक भी आसक्ति, ममता तथा मूर्छा नही है, तो फिर उसे आप अपने समीप क्यो रखते है तथा उसकी सेवा मे अपना अनमोल समय क्यो लगाते है ? इस सम्बन्ध में यह सूक्ति ध्यान देने योग्य है—

काजर की कोठरी में कैसो ही संयानो घुसै।
एक रेख काजर की लागै पै लागै॥

गीता की यह वाणी इस सत्य को स्वीकार करने में सहायता देती है कि जब विषयो की ओर मन को दौड़ाने से उनके प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है, तब उन पदार्थो का साक्षात् स्वामित्व स्वीकार कर आतरिक ममता का अभाव मानना क्या मनोविज्ञान के द्वारा बाधित नहीं होगा ?

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात् संजायते कामः कामात्क्रोधोभिजायते॥६०-२॥ गीता

विषयो का चिंतन करने वाले व्यक्ति के मन मे आसक्ति होती है, उससे कामना तथा कामना से क्रोध उत्पन्न होता है।

युक्तिवाद

इस प्रसग मे तर्क शास्त्र का यह सिद्धान्त मार्ग दर्शक है। अग्नि का कार्य धूम है। धूम का कारण जब अग्नि है, तब अग्नि रूप कारण के अभाव में धूम का अभाव मानना होगा, इसी प्रकार परिग्रह का कार्य ममत्व परिणाम है। जब ममत्व का कारण परिग्रह है, तब परिग्रह के होते हुए ममत्व रूप कार्य अवश्य होगा। जिस प्रकार अंगार अवस्था युक्त अग्नि मे धूम का सद्भाव नही होता, उसी प्रकार ममता रहित व्यक्ति के पास परिग्रह का सद्भाव नही होगा।

छिलके वाली धान मे छिलका रूप वाह्य मल का परित्याग होने पर ही चावल का अन्तर्मल दूर हो सकेगा, किन्तु यदि छिलका है, तो भीतरी मल कदापि दूर नही होगा, इसी प्रकार बाहरी परिग्रह के होने पर अन्तरंग ममता या मूर्छा नियम से होगी। बाहरी परिग्रह का त्याग होने पर भी कदाचित अन्तरग मूर्छा का त्याग न भी हो।

इस कारण भावो को निर्मल बनाकर एकाग्रचित्त हो ध्यान करने की क्षमता उत्पन्न करने के लिए परिग्रह का त्याग अत्यन्त अनिवार्य है। नग्नता मात्र को विकास या कल्याण का साधन मानना उचित नही है, क्योकि सारा पशु जगत् बिना किसी अवर या वस्त्र के रहता है, उसका उद्धार हो जाना चाहिए था। अत नग्नता को आत्म विकास का साधन मात्र मानना होगा। दिगम्बरत्व पर आक्षेप करने वाले प्राय इस बात को दृष्टि पथ मे नही रखते, कि उस वाह्य मुद्रा के साथ हृदय मे उच्च अहिसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अचौर्य आदि आध्यात्मिक सम्पत्ति का सद्भाव होना आवश्यक है।

साधुत्व का स्वरूप

यह भी स्मरण रखना उचित होगा, कि हर एक को साधु कहकर उसकी पूजा को कल्याणकारी मानना वैज्ञानिक दृष्टि वाले व्यक्ति को स्वीकार न होगा। कोई भी आदमी चिकित्सा का नाम लेकर जनता के बीच आ सकता है, किन्तु आरोग्य प्राप्ति मे सहायक जिसकी औपधि होगी वही आदरणीय माना जायेगा, इसी प्रकार स्व तथा अन्य हित सपादनकरी आत्म विद्या समलकृत व्यक्ति ही साधु रूप मे उपासनीय होगा।

स्वामी समन्त भद्र ने लिखा है—

विषयाशावशातीतो निरारभोऽपरिग्रहः।
ज्ञान ध्यान तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥

इन्द्रियो को प्रिय लगने वाले विपयों की आशा से पूर्णतया विमुक्त अहिसात्मक प्रवृत्ति समलकृत, समस्त परिग्रह रहित तथा ज्ञान भावना, आत्म चितन तथा इन्द्रियो को वश मे रखने के लिए तपश्चर्या मे सलग्न तपस्वी मुनि आदरणीय है।

ऐसी पवित्र आत्मा मे क्रोध, मान, माया, लोभ, क्रूरता, दम्भ, काम, घृणा, असत्य आदि मलिनताओ का अभाव रहता है। वे आत्म शक्तियो कोसगृहीत करते हुए आत्मिक स्वाधीनता प्राप्त करके स्वराज्य को

उपलब्धि को अपना मुख्य लक्ष्य बना उस ओर प्रयत्न पूर्वक गतिशील होते है। उनका अहिंसा, प्रेम, करुणा, सत्य, शील, आदि सद्गुण, समलंकृत जीवन विश्व के प्राणी मात्र के लिए दीपस्तम्भ सदृश रहा करता है।

हमारा कर्त्तव्य

विवेकी तथा सहृदय विचारक का यह नैतिक कर्त्तव्य हो जाता है कि वह सत्साधु समाश्रय ले अपनी आत्मा को विशुद्ध बनाने के साथ जन साधारण के हितार्थ ऐसा प्रयत्न करे कि लोग सत्य से परिचित हो सत्स-मागम द्वारा मनुष्य जन्म को जो चिन्तामणि रत्न के समान है, भोग और विषयो की आराधना मे न लगावे। अन्यथा यह जीव इस प्रकार पश्चात्ताप करता है—

जन्मैव व्यर्थतां नीतं भव-भोग-प्रलोभिना।
कॉच मूल्येन विक्रीतं हंत चिन्तामणिर्मया।।

अरे! मैने ससार तथा सासारिक सुखो मे आसक्ति पूर्वक अपना मनुष्य जन्म व्यर्थ कर दिया। हाय, मैने चिन्तामणि रत्न को कॉच के टुकडे के रूप मे बेच दिया।

जीवन की सफलता

हमे अपने मानव जीवन को सफल करना चाहिए। इस विषय में एक जैन आचार्य कहते है—

इंद्रियाणि वशे यस्य यस्य दुष्टं न मानसम्।
आत्मा धर्मरतो यस्य सफलं तस्यजीवितम्।।

उस व्यक्ति का जीवन सफल है, जिसके अधीन इन्द्रियाँ है अर्थात् जो इन्द्रियो का गुलाम नही है, जिसका अन्त करण दुष्ट प्रवृत्तियो से मलिन नही है तथा जो सदा अहिसा रूप धर्म की साधना मे सलग्न रहता है।

आत्म विजय

विश्व विजेता की अपेक्षा आत्मा पर विजय प्राप्त करने वाला महान् है। भगवान महावीर ने राज्य का त्याग कर आत्म विजय के पथ को स्वीकार कर अपनी साधना के द्वारा निर्वाण पद प्राप्त किया था।

बुद्ध ने भी आत्म विजय को महत्वपूर्ण स्वीकार करते हुए धम्म पद

मे कहा है—

यो सहस्स सहस्सेण सगामे मानुसे जिने ।
एकं च जेय्यमत्तानं स वे संगामजुत्तमो ।।

जो सग्राम मे हजारो मनुष्यो को जीतता है उसकी अपेक्षा अपनी आत्मा को जीतने वाला श्रेष्ठ है।

सन्तो का उपकार

आज मानव समाज मे जो नैतिक जागरण और दुष्ट प्रवृत्तियो, विकारो और वासनाओ पर विजय प्राप्त करने की क्षमता दिखाई देती है, उसका वहुत कुछ श्रेय सदाचार-मूर्ति सतो का उपदेश और जीवन है। अहिसा की श्रेष्ठ साधना करने वाले काम, क्रोध, लोभ, माया, ममता आदि स्वाभाविक दुर्वलता पर विजय प्राप्त करने वाले निर्ग्रन्थ श्रमणो का जीवन प्रेम, पवित्रता और निर्मलता की त्रिपथगा को प्रवाहित करता हुआ मानव समाज को दिव्य जीवन की ओर आकर्षित करता है। इन महर्षियो के निकट सपर्क मे आने वाला सहृदय व्यक्ति उन्हे सम्प्रदाय से अतीत अपने जीवन को ऊचा उठाने वाला अपने गुरु रूप मे सोचता है।

महत्वपूर्ण कथन

ईसाई धर्म प्रचारक ए० डुवोई ने दिगम्बर जैन मुनियो के विषय मे कहा था, "सवसे उच्च पद जो कि मनुष्य धारण कर सकता है वह दिगम्वर मुनि का पद है। इस अवस्था मे मनुष्य साधारण मनुष्य न रहकर अपने ध्यान के वल से परमात्मा का मानो अश हो जाता है। जव मनुष्य दिगम्वर साधु हो जाता है, तव उसको इस ससार से कुछ प्रयोजन नही होता और वह पुण्य-पाप, नेकी-वदी को एक ही दृष्टि से देखता है। उसको ससार की इच्छाए तथा तृष्णाए नही उत्पन्न होती है। न किसी से वह राग और न ही द्वेष करता है। वह विना दु:ख मालूम किये सर्व प्रकार के उपसर्गो को सहन कर सकता है। अपने आत्मिक भावो मे जो भीजा हो उसको इस ससार की ओर उसकी निस्सार क्रियाओ की चिन्ता क्यो होगी।"

वहिर्मुखता का अभिशाप

भौतिक विज्ञान द्वारा प्रदत्त इद्रियो और शरीर को सुखदायी सामग्री

के मध्य यह मानव पूर्णतया बहिर्मुख हो गया है। वह अन्तर्मानव (Inner man) की ओर देखने की शक्ति विहीन बन गया है। भौतिक विपुलताओ के होते हुए भी वह आतरिक शान्ति के क्षेत्र मे दीन और हीन होता जा रहा है। सुख की नीद भी वह नही सो पा रहा है। समृद्ध अमेरिका के विषय में इलस्ट्रेटेड वीकली[1] मे छपा था, "About half the people in the United States of America suffer from sleeplessness" अमेरिका के सयुक्त राष्ट्र मे करीब आधे लोग अनिद्रा की व्यथा से पीडित है। अत्यंत समृद्ध देश के निवासी होते हुए भी शान्ति को न प्राप्त करने वाले हिप्पी लोग भारत वर्ष मे भ्रमण कर स्वच्छन्द तथा नियत्रण शून्य जीवन बिताते हुए देखे जाते है। पूछने पर वे यह कहते है, कि अपार धन और वैभव के होते हुए भी हमे आतरिक सुख नही मिला, अत: उसकी प्राप्ति के लिए हम यहा वहा फिरा करते है।

पाश्चात्यों की स्थिति

इस प्रसग मे विख्यात इतिहासकार डा० टायनबी (Taynbee) का कथन ध्यान देने योग्य है—भौतिक अर्थो मे पाश्चात्य जगत् बहुत सम्पत्तिवान हो गया है, "किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से हम दरिद्र है। हमारा जीवन बहिर्मुखी बन गया है। समय आ गया है जब हमें धर्म की ओर मुडना चाहिए।" विद्वान लेखक के ये शब्द महत्वपूर्ण है, "धर्म से अभिप्राय अन्तर्मुखी जीवन से है, पाश्चात्य जगत ने ध्यान और योग की शक्ति खो दी है। मध्य युग मे ऐसे सत होते थे जो देखने मे बेकार लगते थे किन्तु आध्यात्मिक अर्थो मे वे सक्रिय जीवन बिताते थे (कादम्बिनी, अप्रैल १९७०)।

वर्तमान स्थिति

वर्तमान जगत की अन्तरग स्थिति बहुत खोखली हो गई है वह हिसादि के भार से जर्जरित हो उठा है। वह ज्वालामुखी के शिखर पर पहुचकर यम-मदिर मे पहुचने की तैयारी पूरी कर चुका है। और अब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि पलक मारते ही सारी समाज और

---

१ Illustrated Weekly of India 6th May, 1955

सभ्यता का स्वाहा हो जाना सभव लग रहा है । आज का वहिर्मुखी जगत अर्थ का लोलुपी और महा स्वार्थी वन गया है । धन की लालसा द्वारा वह महान से महान पापो को करने को तैयार है । दुर्भाग्य है कि पुण्यभूमि धर्म प्रान्त भारत का शासन अर्थ की लोलुपता वश लाखो वदरो को मारे जाने के लिए विदेश भेजता है । मास आदि के विक्रय मे अग्रसर वन रहा है । वह इस सत वाणी को भूल गया है, "अहिसा परमो धर्म ", Thou shalt not Kiu । गणतत्र शासन उस वर्ग की पीडा पूर्ण आवाज को नही सुनता है जो पशुओ की कथा दूर करने के लिए दया भाव के जागरण हेतु आवाज उठाता है ।

सन्मार्ग प्रदर्शन

सारा जगत इद्रियो और भोगो का गुलाम वन रहा है । उसे सच्चा मार्ग दर्शन दिगम्वर जैन जितेन्द्रिय तपस्वी, करुणा और प्रेम मूर्ति दिगम्वर जैन मुनियो द्वारा प्राप्त होता है । उनके दिगम्वरत्व मे सत्य प्रतिष्ठित है । और प्रवृत्तियो मे स्वावलम्बन, अहिसा,अपरिग्रह तथा दया प्रतिष्ठित है ।उनके जीवन के माध्यम से आज की अन्तर्राष्ट्रीय उलझनो का समाधान सोचा जा सकता है ।

सन् १९५० मे महान जैन परमहस महर्षि चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शातिसागर महाराज ने अपने मगलमय उपदेश मे विश्व को कहा था, "यदि तुमने सत्य तथा अहिसा को अपने जीवन मे स्थान दिया तो तुम्हारे सव सकट दूर हो जायेगे" ।

दि० जैन गुरु के प्रति राष्ट्रपति की श्रद्धांजलि

उनके स्वर्गवास होने पर भारत के राष्ट्रपति डाक्टर रावा कृष्णन ने राष्ट्र की ओर से श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए वडे मार्मिक शब्द कहे थे ।—"ज्ञान और आत्मत्याग की चर्चा करना आसान है, पर उन पर अमल करना कठिन है । आचार्य शातिसागर जी ऐसे सत थे, जिनके आत्मत्याग के सहारे ही यह ससार जीवित है । आचार्य श्री वहुत वडे सत थे, जिनके निधन से भारत को अपार क्षति हुई है । जनता को चाहिये कि वह आचार्य शातिसागर महाराज के आदर्शो को अपने जीवन मे व्यवहारिक रूप दे ।"

तात्विक दृष्टि

यथार्थ बात यह है, कि जिन सतो के मन मे, तथा प्रवृत्तियो में अहिसा और करुणा का निवास हो जाता है, समस्त विश्व उनके चरणो मे श्रद्धा के सुमन समर्पण करता है। विश्व के अ धकार को दूर कर प्रकाशदाता सूर्य को सभी सप्रदाय के मानव तथा अन्य प्राणी महत्व प्रदान करते है, इसी प्रकार अविद्या के अ धकार को दूर कर ज्ञान का पवित्र प्रकाशदाता दिव्याचरण समन्वित सत भी विश्व पूज्य होते है। वे सत सार्व-सर्वकल्याण-दायी (Universal) होते है, अत विश्व (Universe) भी उन्हे अपना आदर्श मानता है। यशो विजय ने कहा है—

यस्त्यक्त्वा तृणवद्, बाह्यमन्तरं च परिग्रहम्।
उदास्ते तत्पदांभोजं पर्युपास्ते जगतत्रयी।।

जिसने राज्य को तृण तुल्य समझ छोड़ दिया है, तथा बाहरी और आतरिक परिग्रह का परित्याग कर राग तथा द्वेष रहित उदासीन वृत्ति प्राप्त की है, उस महात्मा के चरणकमल की तीनो लोक पूजा करता है।

कल्याण पथ

परमात्म पद की प्राप्ति मे निरन्तर प्रयत्नशील सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अहिसा, करुणा आदि श्रेष्ठ गुणो से समलंकृत इन परमहस श्रमणो की कौन विवेकी हृदय से अभिवदना न करेगा। ये महापुरुष समस्त विश्व को यह उपदेश देते हैं—

अभयं यच्छ जीवेषु, कुरु मैत्रीमनिन्दिताम्।
पश्यात्म-सदृश विश्व जीवलोक चराचरम्।।

सपूर्ण प्राणियो को अभय प्रदान करो, निर्दोष मैत्री को प्राप्त करो, चर तथा अचर समस्त जीवो को अपनी आत्मा के समान देखो।

यही विश्वशाति तथा कल्याण का मार्ग है।

णमो लोए सव्व साहूण
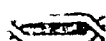
निर्ग्रन्थ श्रमण-दर्शन

•

Our sacred motherland is a land of religion and philosophy—the birth-place of spiritual giants—the land of renunciation, where and where alone from the most ancient to the modern times, there has been the highest ideal of life open to man

हमारी पवित्र मातृभूमि धर्म और तत्त्वज्ञान को वसुंधरा है। यहाँ आध्यात्मिक श्रेष्ठ पुरुष उत्पन्न हुए है। हमारा देश ही त्याग भावना का प्रदेश है, जहाँ अत्यन्त पुरातन काल से अबतक मनुष्य के समक्ष श्रेष्ठ आदर्श रहा है।

—विवेकानन्द

मानव जाति के नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास में उच्च चरित्रवाले सतो का महत्वपूर्ण योग दान रहा है। इससे समस्त विश्व में धन वैभव का त्याग करने वाले अकिचन सतो को पूज्यता प्रदान को जातो है। भगवत् जिनसेनाचार्य ने महापुराण मे सतो का महत्व इस प्रकार कहा है—

मुष्णाति दुरितं दूरात् पर पुष्णाति योग्यताम्।
भूयः श्रेयोनुबन्धाति प्रायः साधुसमागमः ॥६-१६१॥

साधु का समागम दूर से ही पाप को दूर कर देता है। उससे व्यक्तिगत योग्यता को अभिवृद्धि होतो है तथा उसके द्वारा महान कल्याण की प्राप्ति होती है।

संत समागम

कबीर संत समागम को श्रेष्ठता को इस प्रकार स्वीकार करता है—

राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधू संग मे, सो वैकुण्ठ न होय ।।

सत्पुरुष की चंदन के वृक्ष से तुलना की जाती है, जो स्वय को हानि देने वाले का हितकारी होता है। जलाये जाने पर भी चन्दन अपने सौरभ से प्रत्येक हृदय तथा मस्तिष्क को आनन्द प्रदान करता है। चन्दन के समान साधु जीवन के द्वारा सबका कल्याण होता है। चन्दन के वृक्ष का गुण वर्णन एक कवि इस प्रकार करता है।

मूलं भुजगैः शिखर प्लवगैः शाखा विहगैः कुसुमानि भृ गैः।
नास्त्येव तच्चदन पादपस्य यन्नाश्रितं सत्वभरैः समन्तात् ।।

चन्दन का कोई एक भी अग नही है, जो जीवो को आश्रय न देता हो, देखो चन्दन के मूल मे सर्प रहते है, शिखर पर बन्दर उछल कूद मचाते है, शाखाओ पर पक्षीगण विश्राम करते है और पुष्पो का आश्रय सौरभ प्रेमी भ्रमर लिया करते है, इसी प्रकार सच्चे साधु के द्वारा सभी को सुख तथा शाति प्राप्त होती है।

संतो का गौरव

दुष्टो की दुष्टता की ओर ध्यान न दे साधु पुरुष अपने स्वभावानुसार उनका हित ही करते है। इसीलिए ससार मे महान राजनीतिज्ञ, कुबेर के समान सम्पत्ति और ऐश्वर्य वाले धनिक तथा बडे सम्राट भी साधु की महत्ता तथा गौरव को नही पाते। ब्रह्मचारिणी परम साध्वी चन्दाबाई जैन जी को अभिनन्दन ग्रन्थ भेट करते समय राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् ने कहा था[1] "इस देश ने सदा राजनीतिज्ञो, धनी उद्योगपतियो तथा राजाओ के स्थान मे सत्पुरुषो—सन्तो को मूल्यवान माना है। इसी प्रकार सैनिक बल अथवा सम्पत्ति के स्थान मे सत्पुरुषो सन्तो को मूल्यवान माना है। इसी प्रकार सैनिक बल अथवा सम्पत्ति के स्थान मे आत्म-विजय को महत्ता प्रदान की गई है।" "उनका यह कथन मार्मिक है, कि अहिंसा के

---

1 This Country has always valued saints rather than statesmen, rich industrialists and kings and self conquest rather than military prowess or riches Unfortunately there is so must talk of Ahimsa, few practise it (Hindustan Times, New Delhi 17-4-1954)

बारे मे वडी-वडी बाते कही जाती है, किन्तु उसका पालन करने वाले वहुत थोडे व्यक्ति है"[१] बर्नार्ड सा का कथन है कि मानव ने अबतक केवल कागज पर कीर्ति, सौन्दर्य, सत्य, ज्ञान, गुण तथा स्थायी प्रेम प्राप्त किया है अर्थात् वास्तव मे वे गुण नही है।"

अपूर्व बात

ऐसी स्थिति मे अहिसा, सत्य, बह्मचर्य, अपरिग्रह तथा अचौर्य रूप महाव्रतो को पालन करने वाले महान साहसो आत्मबली दिगम्बर जैन मुनियो का सद्भाव अद्भुत, अपूर्व तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है। इनके अन्त करण मे अहिसा, समता तथा विश्व प्रेम की ज्योति प्रकाशित होती है। इनकी मनोभावना रहा करती है कि प्राणी मात्र सुखी रहे। "जगा चा कल्याण सन्ता ची विभूति"

दिगम्बर परमहस

हिन्दु धर्म मे भी परमहस दिगम्बर साधुओ का कथन है, तथा उनके प्रति अन्य समस्त साधुगण, राजा महाराजा अपना आदर भाव व्यक्त करते है, ऐसा प्रतिपादन शुकदेव मुनि आदि के कथानक मे आया है। श्रीमद् भागवत से इस विपय मे पर्याप्त प्रकाश होता है कि दिगम्बर साधु का हिन्दू धर्म मे सर्वोपरि स्थान स्वीकार किया गया है।

परिस्थिति

आज भौतिकवाद की मोहिनी सामग्री के चक्र मे फँसा व्यक्ति साधुत्व के स्थान मे सुरा, सुन्दरी तथा स्वार्थ की ओर अधिक आसक्ति दिखा रहा है। ऐसी आध्यात्मिक अन्धियारी मे साधु का रूप लेने वाले ऐसे लोग विचरण करने लगे है, जो जनता की मनोवृत्ति को विलासिता से विमुख न करके वाक्चातुर्य द्वारा स्वेच्छाचारिता को प्रश्रय प्रदान करते है। अत कभी-कभी सच्चे निर्ग्रन्थ श्रमणो (दिगम्बर जैन मुनियो) के

---

१ Only on paper has humanity achieved glory, beauty, truth, knowledge, virtue and abiding love"—Bernard shaw—Quoted in My Prison Days—P. 15 by Vijaya Lakshmi Pandita

मार्ग मे असघटन कारी तत्त्वो द्वार कटक विछा दिए जाते है। इस कारण हमने दिगम्बर जैन मुनि जीवन के बारे मे कुछ विवेचन करना कर्त्तव्य समझा है।

निर्ग्रन्थ श्रमण

इस प्रसंग मे हम तुलनात्मक धर्म के प्रकाण्ड विद्वान डा० सर एम० वी० नियोगी, भूत पूर्व मुख्य न्यायाधीश नागपुर हाईकोर्ट के महत्त्वपूर्ण विचारों को देना उचित समझते हैं, जो उन्होने दिगम्बर जैन मुनि १०८ सुमति सागर महाराज को देखकर आम सभा मे व्यक्त किए थे[1], "आत्म त्याग और आत्म निर्मलता की पूर्णता दिगम्बर अवस्थाये मे पाई जाती है। जब यह मानव अपनी इच्छाओ का त्याग कर पूर्णतया भय-विमुक्त बनता है, तब ही वह जगत् के पदार्थो के प्रति ममता सूचक अतिम पदार्थ (वस्त्र) का त्याग कर दिगम्बरत्व को स्वीकार करना है। दिगम्बर व्यक्ति लालच, पक्षपातपूर्ण दृष्टि का त्याग करके परमहस साधु को स्थिति को प्राप्त करता है। उसे ऐसी अनुभूति होती है, कि उसका दिव्यता के साथ निकटता हो गई है। प्रत्येक सच्चा साधु उस श्रेष्ठ अवस्था को कामना करता है।'

गांधी जी और दिगम्बरपना

विचारशील तत्त्वज्ञो ने यह अनुभव किया है, परिग्रह को अभिवृद्धि तथा उसके प्रति अपार ममता जीव को आतरिक शाति और समता पूर्ण स्थिति को गहरी क्षति पहुंचाती है। सुकरात ने ठीक ही कहा है, "Tne fewer are our wants, the more we resemble God

---

1. "Nudity is the climax of self-sacrifice and self-purification When a man breaks off all his desires and becomes fearless and bold, then he can discard the last symbol of this worldly attachment by taking up the cult of nudism" He also said that "the nudity is the triumphant conquest over the vices of greed, prejudice & other carnal desires and when an ascetic reaches the stage of Paramhamsism he feels that he is in direct communication with Divinity

This is the highest stage which every real and genuine Sadhu aspires to attain"—The Leader Allahabad (15-1-45)

हमारी आवश्यकताए जितनी जितनी कम होती जाती है, उतना-उतना हम परमात्मा के सदृश होते जाते है। गाँधी जी ने यरवदा जेल से सन् १६३० मे अपने महत्त्व पूर्ण विचार इस प्रकार लिखे थे, "सच्चे सुधार तथा सच्ची सभ्यता का लक्षण परिग्रह बढ़ाना नही है, बल्कि उसका विचार और इच्छा पूर्वक घटाना है। ज्यों-ज्यो परिग्रह घटाइए, त्यो-त्यो सच्चा सुख और सच्चा सतोष बढता है, सेवा की शक्ति बढ़ती है।

आदर्श आत्यतिक अपरिग्रह तो उसी का होगा जो मन से और कर्म से दिगम्बर है। मतलब, वह पक्षी की भाति घरके, बिना वस्त्रो के और बिना अन्न के विचरण करेगा। · ··इस अवधूत दशा को तो विरले ही पहुच सकते है।" (गाँधी वाणी पृष्ठ ६७-६८)

परिग्रह त्याग से लाभ

परिग्रह का त्याग करने पर आत्मा मे महान आतरिक शक्ति जागा करती है। जैसे रोग दूर होने पर शरीर वलवान बनता है, इसी प्रकार चैतन्य पुज आत्मा बाहरी पदार्थो का आश्रय छोड़ कर आत्म निर्भर हो अपूर्व स्फूर्ति और दिव्य अनुभूतियो को प्राप्त करता है। मेघ के नभो मण्डल मे व्याप्त हो जाने पर सूर्य का प्रकाश बराबर नही मिलता है, इसी प्रकार परिग्रह के आवरण में ढकी आत्मा अपनी दिव्य ज्योति को नही देख पाती है।

आत्म तत्त्व

ससार का प्राय. सभी आध्यात्मिक वर्ग यह स्वीकार करता है कि शरीर के भीतर निवास करने वाला आत्मा शरीर से भिन्न वस्तु है। जब मै ज्ञानमयी आत्मा हू, तब मै हाड़-मास, मल-मूत्र के पिण्ड को सजाने की विवेक शून्य प्रवृत्ति मे क्यो पड़ु? जब तक तत्त्व ज्ञान का जागरण नही होता है, तब तक मोही जीव सारे विश्व से मोहमयी नाता जोड़ा करता है, किन्तु सत्यज्ञान का प्रकाश आते ही उस साधक के ज्ञान चक्षु खुल जाते है और वह विशुद्ध सत्य का परिचय पाने की क्षमता को प्राप्त करता है।

सिक्खो के गुरु तेगबहादुर कहते थे—

"साधो, यह तन मिथ्या मानो।
या भीतर जो राम बसत है, सांचो ताहि पिछानो" ॥

झुकाते हैं।

विश्व के विविध धर्मो के उच्च साधुओ का वर्णन पढने पर यह बात निश्चित होती है, कि पाप तथा माया के जाल से दूर रहने वाले सत्पुरुष सदा जगत के आदर पात्र रहे हैं। गीता मे कहा है नरक के तीन रास्ते है ये काम, क्रोध तथा लोभ है।

गीता-वाणी

त्रिविध नरकस्येद द्वार नाशनमात्मन.।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रय त्यजेत् ॥२१—अध्याय १६॥

नरक के तीन द्वार कहे गए है—काम, क्रोध तथा लोभ। इनके द्वारा आत्मा का विनाश होता है, अत. तीनो का त्याग करना चाहिए।

आसुरी वृत्ति

आत्मा का पतन करने वाली सामग्री को गीता मे आसुरी सपत्ति कहा गया है। ये शब्द सभी विचारको के लिए ध्यान देने योग्य है—

दभो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सपदमासुरीम् ॥४—अध्याय १६॥

हे अर्जुन! दभ, अभिमान, क्रोध, कठोरता तथा अज्ञान ये आसुरी सपत्ति संपन्न व्यक्ति के चिह्न हैं।

आज महान् क्रोधी, लोभी तथा कामान्ध व्यक्ति धर्म का ठेका लेकर जनता को साप्रदायिक विद्वेषाग्नि मे गिराते हुए स्वयम् को कृतार्थ मानते है। ऐसे तमोगुणी व्यक्ति की क्या गति होती है, इस विषय मे गीता का कथन है—

आसुरीं योनिमापन्ना मूढ़ा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय यान्त्यधमां गतिम् ॥

हे कौन्तेय! मूढ प्राणी जन्म जन्मातरो मे आसुरी योनि को प्राप्त हुए है। वे मुझको न प्राप्त कर अत्यन्त अधम नरकादि गतियो को प्राप्त होते हैं।

दैवी सम्पत्ति युक्त जैन मुनि

इस प्रकाश मे हम दिगम्बर जैन मुनिराज के जीवन पर दृष्टि दें, तो

यह कहना उचित होगा, कि परम शान्त होने से वे क्रोध रूप महा विकार से दूर हैं, जितेन्द्रिय दिगम्बर होने से काम के विकार विजेता है तथा धन दौलत कपडा, सम्पत्ति आदि के परित्यागी होने से लोभ की व्याधि से दूर है। ऐसी स्थिति मे वे आसुरी वृत्ति रहित तथा दैवी सम्पत्ति सम्पन्न सत्पुरुष है, जिनके प्रति उनको आदर व्यक्त करना चाहिए, जो गीता को अपनी परम पूज्य धार्मिक ज्ञान निधि मानते हैं।

महान् साधक

दिगम्बर जैन मुनि जीवन को निकट से देखने वाला प्रभावित हुए विना नही रहता है। वे ब्रह्म दर्शन की पावन साधना मे सलग्न नर से नारायण बनने का उद्योग कर रहे है। अध्यात्म दृष्टि से उनका स्वयम् का चितन सम्प्रदाय वाद आदि परिधि से परे होता है। मानव देहधारी होते हुए भी वे अपनी चितन क्षण में स्वयम् को मनुष्य न सोचकर आत्मा मानते है। योगिराज पूज्यपाद कहते है—

'नरदेहस्थमात्मनमविद्वान्मन्यते नरम्'-अविद्वान् व्यक्ति नर देहधारी आत्मा को मानव मानता है। ज्ञानी स्वयं को ज्ञानज्योति जानता है।

वे जीव मात्र के प्रति मैत्री पूर्ण दृष्टि धारण करते हुए विश्व बंधुत्व के सिद्धान्त का अक्षरशः प्रतिपालन करते है। छोटे-छोटे जन्तुओ के प्रति भी उनकी प्रेम दृष्टि रहा करती है। वे मयूर की पिच्छी इसलिए धारण करते है, कि छोटे जीवो का भी यथाशक्ति संरक्षण किया जाय। वे नीचे देखकर दिन के प्रकाश में ही गमनागमन करते है और अपनी विश्व बधुत्व की कल्पना को साकार रूप प्रदान करते है। गृहस्थ नीचे देखकर चलने का अभ्यास करें, तो उसे हानि न होगी। एक विद्वान् का कथन सुन्दर है—

नीचे निरखे तीन गुन, जीव जंतु बच जाय।
पत्थर की ठोकर बचे, गुमी वस्तु मिल जाय॥

उनके जीवन मे स्वावलबन की प्रतिष्ठा दिखाई पडती है। इसी दृष्टि और अहिसा की पूर्ण साधना के हेतु साधक यथाजात दिगम्बर मुद्रा को स्वीकार करते है। उनके जीवन मे बालक की भांति निर्विकारता तथा सत्य का दर्शन होता है।

विकार विजेता

महा कवि भूधरदास के ये शब्द गंभीर तथा मार्मिक है—

अन्तर विषय वासना बरतै, बाहर लोक लाज भय भारी।
तातें परम दिगम्बर मुद्रा, धर नहि सकै दीन ससारी॥

इस बात का अनुभव करते हुए शेक्सपियर ने अपने प्रसिद्ध नाटक हेमलेट मे कहा है—

Give me that man
That is not passion's slave, and I will wear him
In my heart's core, ay in may heart of heart

Act III, Sc II

मुझे ऐसा मानव बताओ, जो वासनाओ का गुलाम न हो। मैं उसे अपने हृदय के भीतर ही नही अत करण के अतस्तल मे स्थान दूगा।

इस प्रकाश मे दिगम्बर मुनिराज का महत्व ज्ञात हो जाता है, इसलिए भूधर दास जी महाकवि ये मार्मिक शब्द लिखते हैं—

ऐसी दुद्धर नगन परीषह जीतैं साधु शील व्रत धारी।
निर्विकार बालकवत् निर्भय तिनके पायन धोक हमारी॥

मोह की गहरी अधियारी जब दूर होती है तथा ब्रह्म दर्शन का दिव्य प्रकाश दृष्टि को स्वच्छ तथा निर्विकार बनाता है, तब सम्राट चन्द्रगुप्त कलिंग चक्रवर्ती सम्राट् खारवेल अमोघ वर्ष के समान बडे साम्राज्यो का त्यागकर सत्पुरुष निर्वाण प्राप्ति के लिए दिगम्बर रूपता को अपना अलकार बनाते हैं।

निर्मल आत्मा

आत्मा की निर्मलता का बाह्यरूप दिगम्बररूपता मे प्रति फलित होता है। आतरिक दिगम्बरत्व के अभाव मे बाहरी नग्नता सारहीन है। दिगम्बरत्व पर एक शायर बडी मार्मिक बात कहता है—

देह मैली है मगर दिल तो उजला है प्यारे।
खाक के पुतले में हीरे की कनी रहती है॥

यह बात स्मरण योग्य है कि केवल नग्न वेप का तनिकभी महत्व नही प्रदान किया गया है। महर्पि कुदकुद ने भाव पाहुड ग्रथ मे कहा है—

णग्गत्तणं अकज्जं भावरहियं जिर्णेहि पण्णत्त ।
इय णाऊण य णिच्चं भाविज्जहि अप्पय धीर ।।५५।।

आन्तरिक उज्ज्वल भावो से शून्य नग्नपना बेकार है। ऐसी स्थिति को जानकर हे धीर ! सदा अपनी आत्मा के स्वरूप की भावना कर।

भर्तृहरि की भावना

महान ज्ञानी सन्त भर्तृहरि अपने वैराग्य शतक मे अपनी अन्तरात्मा-की भावना को इन शब्दो मे व्यक्त करते है—

एकाकी निस्पृहो शान्तः पाणि पात्रो दिगम्बरः ।
कदाहं संभविष्यामि कर्म निर्मूलन क्षमः ।।

प्रभो ! वह दिन कब आएगा, जब मै स्वतत्र, निस्पृह शान्त तथा कर पात्र द्वारा भोजन करने वाला दिगम्बर मुनि बनकर अपने चिरसचित कर्मराशि के उन्मूलन करने में समर्थ होऊगा।

दिगम्बरत्व को गौरव

शायर जलालुद्दीन रूमी ने सासारिक कार्यों में उलझे हुए व्यक्ति से तुलना करते हुए दिगम्बर साधु को महत्व प्रदान किया है। वह दिगम्बरपने को दिव्य आभूषण मानता हुआ कहता है—

मस्त बोला मुहतसिब से कामजा ।
होगा क्या नंगे से तू ओहदा बड़ा ।।
है नजर धोबी पै जामापोश की ।
है तजल्ली जेबरे उरियां तनी ।।

एक मुसलिम कवि तनकी उरयानी (दिगम्बरत्व) को इन शब्दों में गारव प्रदान करता है—

तन की उरयानी से बेहतर है नही कोई लिबास ।
यह वह जामा है कि जिसका नही उलटा सीधा ।।

योगवासिष्ठ मे दिगम्बर जिनेन्द्र की शाति की कामना रामचन्द्रजी ने इन शब्दो मे व्यक्त की है—

नाहं रामो न मे बांछा भावेषु न च मे मनः ।
शांति मास्थातु मिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा ।।

युक्तिवाद

अंग्रेज महिला श्रीमती स्टीवेनसन लिखती है 'वस्त्रों से विमुक्त होने के कारण मनुष्य के पास अनेक प्रकार की चिन्ताओं का अभाव हो जाता है। दिगम्बर व्यक्तिको वस्त्रो को धोने को पानी की आवश्यकता नही पडती। निर्ग्रन्थ लोगो ने-दिगम्बर जैन मुनियोने भले तथा बुरे की परिकल्पना को दूर कर दिया है। भला वे अपनी नग्नता को छिपाने के लिए वस्त्रो को क्यो धारण करे ?' Heart of Jainism हर्ट आफ जेनिज्म पुस्तक मे लेखिका के मूल शब्द इस प्रकार है—

"Being rid of clothes one is also rid of a lot of worries No water is needed in which to wash them The Nirgranthas have forgotten all knowledge of good and evil Why should they require Clothes to hide their nakedness ?" (P. 35)

वैदिक साहित्य मे उल्लेख

प्राचीन वैदिक साहित्य मे दिगम्बर साधुओ का उल्लेख है। ऋग्वेद का यहमंत्र दिगम्बर मुनिका कथन करता है। वातरशना: शब्द दिगम्बर का वाचक है।

मुनयो वातरशनाः पिशंगा वसते मला।

वायस्यातु ध्राजि यति महेवासोऽविसत" ॥ मडल १०,७६,१३६

जाबाल उपनिषद मे परमहस कहे जाने वाले साधु को दिगम्बर कहा गया है। उक्त उपनिषदो मे कहा है[1]जो "निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुद्राधारी तथा परिग्रह रहित होकर ब्रह्म के मार्ग मे सम्यक् प्रकार संलग्न हैं, शुद्ध मनोवृत्ति वाला है, प्राण रक्षा के लिए भिक्षाद्वारा आहार ग्रहण करता है तथा लाभ-अलाभमें सम दृष्टि रखता है वह परमहंस है।' परमहस साधु को आकाश-रूपी वस्त्रो को धारण करनेवाला कहा है। भागवत के ऋषभावतार स्कंध मे भगवान् ऋषभदेव को 'गगन परिधान" आकाशरूपी वस्त्रो का धारक अर्थात् दिगम्बर कहा है। उन्होंने परमहस धर्म (जैन धर्मका) उपदेश दिया (भागवत स्कंध ५, अ, ५, पाद २८)

---

(१) यथाजात रूपधरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रह स्तत्तद् ब्रह्म मार्गे सम्यक् सम्पन्न शुद्ध मानस· प्राणसधारणार्थं···विमुक्तो भैक्षमाचरन्···लाभालाभयो समो भूत्वा स: परमहंसो नाम।

नारद परिव्राजकोपनिषद में लिखा है[1] कि भिक्षु अपने पुत्र, मित्र, स्त्री, कुटुम्बियो का त्यागकर दिगम्बर होता है। सन्यासोपनिषद में ऐसे सन्यासी को ज्ञान-वैराग्य-सन्यासी कहा है जिसने सर्व परिग्रह का त्यागकर दिगम्बरत्व को आनन्द की अनुभूति का स्थान बताया है—

देश-काल-विमुक्तोस्मि दिगम्बरं सुखमस्म्यहम्"।

हिन्दू पुराण साहित्य भी दिगम्बरत्व के विषय मे उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करता है [2]शिव पुराण में एक कथा आई है, कि शिवजी ने दिगम्वर मुद्राको अंगीकार कर देवदारु बन का निरीक्षण किया था। उस समय उनके हाथ में मयूरपख की पिच्छी थी[3] कूर्म पुराण, पद्म पुराण मे भी दिगम्बरत्व समर्थक सामग्री है[4]। विवेक चूणामणि मे शकराचार्य ने ब्रह्मनिष्ठ योगी को दिशा रूपी वस्त्र युक्त कहा है। उन वस्त्रो को धोने और सुखाने की जरूरत नही पडती।

रामकृष्ण परमहस

स्वामी रामकृष्ण परमहस कहते थे, "मै भौतिक जगत् की सभी वस्तुओ को भूल जाता हूं। उस समय वस्त्र भी छूट जाता है। (Rama. krishna said, "I lost attention to every thing (mundane) My cloth dropped"— Reminiscences of Ramkrishna, Vol I P. 310.

बुद्धदेव

बुद्धदेव पहिले दिगम्बर मुनि रहे थे। मज्झमनिकाय मे बुद्धदेव कहते है, "Thus far, Sariputta, did I go in my penance I went without

---

१ अथवा यथाजात रूपधरो भूत्वा स्वपुत्र-मित्र-कलत्र बध्वा दीनिकोपीन च त्यक्त्वा।

२ मयूर चद्रिका पुज पिच्छिका धारयन् करे॥ शिवपुराण-१०-८०-८२

३ कूर्म पुराण उपरिभाग ३७-७। पद्मपुराण-पातालखण्ड ७२, ३३

४. चिन्ताशून्य मदैन्य-भैक्षमशन पान सरिद् वारिषु
स्वातत्र्येण निरकुशा स्थितिरमी निद्रा श्मशाने वने।
वस्त्र क्षालन-शोषणादि रहित दिगवास्तु शय्या मही।
सचारो निगमान्त वीथिषु विदा क्रीडा परे ब्रह्मणि॥

clothes I licked my food from my hands. I took no food that was brought or meant especially for me I accepted no invitation" "हे सारि पुत्त ! मै बहुत तपस्या करता था। मै नग्न रहता था। मैं कर पात्र मे भोजन करता था। मै अपने लिए लाए गए अथवा अपने लिए बनाए गए भोजन को नही खाता था। मैं निमन्त्रण स्वीकार नही करता था।"

विसाखवत्थु धम्म पदत्थ मे लिखा है, कि एक श्रेष्ठि के भवन में पांच सौ दिगम्बर जैन साधुओ ने आहार किया था। दिग्घनिकाय से ज्ञात होता है कि कौशल नरेश प्रसेनजित ने निर्ग्रन्थो—दिगम्बर मुनियो को नमस्कार किया था।

मुसलिम शासन

औरगजेब के समय मे डा० बर्नियर विदेशी पर्यटक भारत मे आया था। उसने लिखा है[1] मुझे बहुधा देशी रियासतो मे दिगम्बर मुनियो का समुदाय मिलता था। मैने उन्हे बडे शहरो मे विहारकरते हुए पूर्णतया नग्न देखा है और उनकी ओर स्त्रियो लड़कियो को बिना विकार मुक्त ही दृष्टिपात करते देखा है। उन महिलाओ के अन्तःकरण मे वे ही भाव होते थे, जो सड़क पर से जाते हुए किसी साधु को देखने पर होते है। महिलाए भक्ति पूर्वक उनको बहुधा आहार करती थी। मेक क्रिण्डल विद्वान् 'एनशिएन्ट' इडिया पुस्तक मे लिखते है[2] दिगम्बर विहार करने वाले जैन मुनि कष्टो की परवाह नही करते थे। प्रत्येक धनवान व्यक्ति का घर उनके लिए उन्मुक्त था, यहाँ तक कि वे अन्त पुर के भीतर भी जा सकते थे।

---

1. I have often met generally in the territory of some Raja bands of these naked fakirs I have seen them walk stark naked through a large town, women and girls looking at them without any more emotion than may be created when a hermit passes through our streets Females often bring them alms with devotion" "Travels in the Moghal Empire' —P 317 Bernier

2 "These men (Jain Saints) went about naked innured themselves to hardships and were held in highest honour Every wealthy house is open to them '—Mc Crindle's Ancient India P 71-72

महाभारत मे नग्न क्षपणक जैन मुनि का उल्लेख आया है,

विदेशी यात्री टेवर नियर का कथन दिगम्बर जैन साधुओ के उच्च नैतिक जीवन पर इस प्रकार प्रकाश डालता है, "Although the women reach them out of devotion .. you do not see in them any sign of sensuality, but on the contrary you would say, they are absorbed in abstraction" (J B Taverniers Travels P. 291—292)

यद्यपि स्त्रिया भक्ति पूर्वक उनके समीप पहुचती है फिर भी उनमें विकार भाव का रचमात्र भी दर्शन नही होता। इसके सिवाय उनका दर्शन कर तुम यही कहोगे कि ये आत्म ध्यान मे निमग्न है।

सिक्ख धर्म

सिक्खो के यहाँ भी दिगम्बर साधुओ का श्रेष्ठ रूप मे कथन है (Religious Sects of the Hindus p. 275)

मुसलिम सन्त

अबुल कासिम जीलानी[1] मुसलिम साधु ने दिगम्बर मुद्रा धारण की थी। अबुल[2] नाम के उच्च श्रेणी के मुसलिम सन्त पूर्णतया नग्न विहार करते हैं।

भ्रम निवारण

कोई-कोई आज यह सोचते है कि यदि जन साधारण के शिष्टाचार को ध्यान मे रख यदि साधु पूर्णतया दिगम्बर बनने के स्थान मे एक लगोटी रख ले तो क्या हानि है ?

लगोटी रखने पर पूर्ण निराकुलता, एकाग्रता पूर्ण मनोवृत्ति को हानि पहुँचती है। मोह का थोडा भी अश बढकर आत्मा को धोरे-धीरे माया के जाल मे फंसा देता है। कहते है लोकानुरोध से एक साधु ने दो लगोटी रखना स्वीकार कर लिया। चूहे के कारण एक लगोटी कट गई।

---

1. Abul Kasim Gilani discarded even lion-strip and remained ompletely naked—Religious life and attitude in Islam P 203

2 "The higher saints of Islam, called 'Abdals' generally went ;bout perfectly naked"—Mysticism and Magic in Turkey—Quoted n "The Digamber saints of India"

चूचहे की विपत्ति दूर करने को बिल्ली पाली गई। बिल्ली के दूध हेतु एक गाय का प्रबन्ध करना पड़ा। गाय के लिए एक उदार भक्त चरोखर जमीन दे दी। कहते है, जमीन टैक्स न चुकाने पर एक अपरचित सरकारी कर्मचारी साधु बाबा की बुरी तरह मानमरम्मत की। उस समय अपनी दुर्दशा पर वह साधु विचारने लगा। अन्त करण ने कहा, "भले आदमी, दूसरो को खुश करने के लिए अपने पवित्र सिद्धान्त की तूने परवाह न की, इससे तू आफतो मे मे फस गया। परिग्रह धारण करने पर समता का अमृत नही मिलता है। धानतराय कवि ने मार्मिक बात कही है—

फांस तनकसी तन मे सालै चाह लंगौटी की दुःखभालें।
भालै न समता सुख कभी नर बिना मुनि मुद्रा धरै।
धनि नगन पर तन नगने ठाडे सुर असुर पायनि परैं॥

शरीर के उपयोगार्थ थोड़ा भी परिग्रह करने वाले की आत्म निमग्नता मे विघ्न उत्पन्न होता है। आत्मा मे आत्म भावना के स्थान ने शरीर मे आत्म वुद्धि होती है, इससे आत्मा का श्रेष्ठ विकास रुक जाता है। पूज्य पाद महर्षि का कथन है—

देहान्तर्गते बीजं देहेस्मिन् आत्म-भावना।
बीज विदेह निष्पत्ते रात्मन्येवात्मभावना ॥७४॥

'समाधिशतक

एक देह के बाद दूसरे शरीर धारण करने का बीज शरीर मे आत्म भावना है तथा विदेहपना अर्थात् सिद्ध परमात्मा का पद प्राप्त करने का बीज आत्मा मे आत्म भावना है।

आसक्ति का सद्भाव

वस्त्रादि के धारण करने पर वस्त्रादि के साथ शरीर के प्रति भी आसक्ति का सद्भाव सिद्ध होता है। वस्त्र यदि फट गया, तो नवीन पाने की लालसा उठेगी, या सीने के लिए सुई धागा लगेगा। गीले वस्त्र को सुखाते समय ध्यान रखना होगा कि वस्त्र उड न जाय, या कोई उसे ले न जाय। पात्रकेसरिस्तोत्र मे परिग्रह धारण करने वाले की स्थिति पर मनोवैज्ञानिक प्रकाश डाला गया है।

परिग्रहवतां सतां भयमवश्यमापद्यते।
प्रकोप-परिहिंसने च परुषानृत-व्याहृती।

ममत्वमथ चोरतो स्वमनसश्च विभ्रान्तता ।
कुतोहि कलुषात्मनां परशुक्ल सद्ध्यानता ॥४२॥

परिग्रह धारी सत्पुरुषो के मन मे भय उत्पन्न होता है । क्रोध, हिसा पैदा होते है । कठोर तथा असत्य वाणो भी बोलने की स्थिति उत्पन्न होती है । ममत्व का भाव रहता है । चोर के कारण मन मे विकलता उत्पन्न हुआ करती है । इस प्रकार आत्मा के मलिन होने पर श्रेष्ठ शुक्ल ध्यान का सद्भाव कैसे हो सकेगा ?

ईसाई धर्म मे दिगम्बरत्व का समर्थन मिलता है ।

Peter said, "To all of us possessions are sins. The deprivation of these in whatever way it my take place in the removal of sins"—(Clement Homeli A N. C L Vol XVII P 240)"

सन्त पीटर ने कहा है, "सारा परिग्रह हमारे लिए साक्षात् पाप है । जिस किसी भी रूप मे इसका परित्याग किया जाना पाप का परित्याग है ।

"Love not the world, neither the things that are in the world. If any one loved the world, the love of the Father is not in him "—St. John (II-15-17)

इस दुनिया का मोह छोडो । इस जगत् के पदार्थों के प्रति प्रेम का परित्याग करो । यदि कोई दुनिया के प्रति प्रेम का भाव रखता है तो समझना चाहिये, कि उसके हृदय मे परमात्मा के प्रति प्रेम नही है ।

"Salvation is the privilege of the pure and passionless soul" (Math XI-12)

"Self-Control perfected through knowledge makes the man Lord and Master of himself"—(Clement Vol VIII P 555)

ज्ञान के द्वारा पूर्णता को प्राप्त आत्म-नियत्रण मानव को स्वय का प्रभु तथा स्वामी बना देता है ।

श्रेष्ठ पुरुष

श्रेष्ठ वैराग्य, आत्म ज्ञान उत्पन्न होने पर वह महापुरुष जीर्ण तृण बन, महान साम्राज्य तथा ममता के केन्द्र स्त्री पुत्रादि का त्याग करता है, तब वह अपनी दृष्टि आत्मा पर रखकर वासनाओ पर विजय हेतु उद्योग-रत होता है । अपने शास्त्र के आदेश, अन्तरात्मा के प्रकाश के अनुसार वह

महात्मा अपनी मंगलमयी, सर्व जीव हितकारी सच्ची प्रवत्ति में सलग्न होता है। गुणभद्र आचार्य कहते है—

निर्धनत्वं धनं येषां मृत्युरेवहि जीवितम्।
किं करोति विधि स्तेषा सताज्ञानैकचक्षुषाम् ॥१६२॥

अकिचनपना अर्थात् निधनता ही जिनकी सम्पत्ति है तथा जो समता पूर्ण दृष्टि सजग रख मृत्यु को जीवन सदृश मानते है, ऐसे ज्ञान दृष्टि युक्त सत्पुरुष का दैव क्या करेगा ?

मुनि जीवन

इन महर्पियो की जीवन प्रवृत्ति सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अचौर्य, करुणा की श्रेष्ठ साधना पर केन्द्रित रहती है, इसी कारण ये नाई के द्वारा बालो को नही वनवाते है, क्योकि इसके लिए इन्हे पैसो की जरूरत पड़ेगी। बहुत लम्बे केश यदि रखते हैं, तो उनमे जू पड़ जावेगे, जिनका घात खुजाने पर होगा, तथा जो ध्यान करने मे विघ्नप्रद वनेंगे, अत वे अपने हाथो से अपने बालो को उखाड़ कर अलग करते हैं। ये कार्य शान्ति भाव सहित होता है। इसके मध्यम से ये अपने मन का भी परीक्षण कर लिया करते है, कि कही उसमे शरीर के प्रति ममता का अश नही है। दिगम्वर जैन साधु को केश लोच करते देखकर जनता मे उच्च वृत्तियो का जागरण होता है। आचार्य रत्न दिगम्वर गुरु देशभूपण महाराज के केश लोच देखकर विकंडन नामक नामक अंग्रेज डिस्ट्रिक जज वहुत प्रभावित हुआ था। उक्त जज महोदय ने विशेष प्रसंग आने पर लिखित पत्र दिया था, कि इन मुनि का केशलोच आदि देखकर मेरी आत्मा को विशेप आनन्द तथा प्रकाश मिले ।

सन् १९४४ की वात है। नागपुर हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश डा० सर भवानी शकर नियोगी के नेतृत्व मे मुनि सुमतिसागर महाराज का मार्मिक उपदेश हुआ था। उसे सुनकर न्याय मूर्ति नियोगी महोदय वहुत प्रभावित हुए थे। उन्होंने कहा था, कहा तो ये साधु जो विना किसी परिग्रह के निश्चिन्तता पूर्वक जीवन व्यतीत करता है, कहा हम जो वहुत सी सामग्री एकत्रित कर शाति लाभ के लिए प्रयत्न करते हैं।

ऐसे सत्पुरुप नगर के जिन मन्दिरो के दर्शन अथवा भोजन आदि आवश्यक कार्य वश नगर मे आते है और उनको दिगम्वर देखकर जिनको

अच्छा नही लगता, वे अपने मनोज्ञ मुख को दूसरी ओर मोड़ सकते है। लेकिन इसका यह अर्थ नही है, कि इन महान् योगियो के नगरादि मे प्रवेश पर शिष्टाचार के नाम पर अशिष्टाचार पूर्ण बाधा उत्पन्न की जाय।

प्रधान मन्त्री शास्त्री द्वारा प्रणामांजलि

भारत के आदरणीय प्रधानमन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री दिल्ली के लाल किले के समक्ष स्थित जैन मन्दिर के समीप महान् जैन आचार्य रत्न १०८ देशभूषण महाराज के दर्शनार्थ आए थे। उन्होने साधुराज को प्रणाम किया तथा उनके दर्शन द्वारा अपूर्व सुख और शान्ति का अनुभव किया था। वे करीब दो तीन घण्टे आचार्य के चरणो के समीप बैठे। महाराज से आशीर्वाद प्राप्त कर उन्हे प्रणाम करते हुए वे उसी रात ताशकन्द जाने को तैयार हुए थे। महाराज श्री ने कहा था, तुम सदा प्रधानमन्त्री के पद पर रहो। यह सुनकर शास्त्री जी ने कहा "महाराज ! आप के समान पद कब मिलेगा। आप के सदृश पिच्छी कमण्डलु कब प्राप्त होगी ?"

अहिंसात्मक समाजवाद के उपदेश।

इन मनस्वी दिगम्बर गुरुओ के पास आकर भद्र पुरुषो को महत्वपूर्ण उपदेश के साथ जीवन को उज्ज्वल बनाने योग्य अपूर्व प्रेरणा प्राप्त होती है। यथार्थ मे ये अहिंसात्मक समाजवाद के प्रहरी तथा उपदेष्टा के रूप में शोषक वर्ग को सन्मार्ग मे लगने के लिए मार्मिक शिक्षा तथा उपदेश देते है। इनकी वाणी का अद्भुत प्रभाव इस कारण पड़ता है कि ये अन्त करण की भाषा बोलते है जो सीधी हृदय के भीतर प्रवेश पाती है।

आध्यात्मिक ज्योतिर्धर

(चारित्र चक्रवर्त्ती महर्षि आचार्य
शांतिसागर महाराज)

आध्यात्मिक ज्योतिर्धर

विश्व साहित्य मे मानव जीवन को महान महत्त्व प्रदान किया गया है। यदि मनुष्य विवेक के प्रकाश मे उद्योग करे, तो वह श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त कर सकता है। यदि वह वासनाओ और विकारो से पराभूत हो गया तो उसको महान पतित अवस्था प्राप्त होती है। अनादि कालीन मोह मद्य के पान द्वारा यह जीव विषयो मे आसक्त हो इन्द्रियो का क्रीतदास (गुलाम) सदृश बनता है। इन्द्रिया मन के आधीन है। मन के इशारे पर जगत् के प्राणी समस्त प्रवृत्तिया करते है। कवि ने कहा है—

मन सब पर असवार है मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है, वे लाखन मे एक॥

आत्मा अनन्त और अपूर्व शक्तियो का भण्डार है। विकार तथा दोष रहित आत्मा को परम आत्मा, भगवान, परमात्मा कहते है। उन शक्तियो के विकास हेतु मनोजय आवश्यक है। परमात्म प्रकाश में कहा है—

पचहु णायकु वसु करहि जेण होई वस अण्ण।
मूल विणट्ठइ तरुवरहि अवसइ सुक्कइ पण्ण॥

पांचो इन्द्रियो के नायक मन को वश में करो, इसके होनें पर सब पर विजय प्राप्त होती है। यदि वृक्ष की जड़ नष्ट हो गई है, तो उसके पत्ते नियमत· सूख जावेगे ?

परिस्थिति

जो सत्पुरुष कनक, कामिनी तथा विषयो के चक्कर से वचकर जीवन शोधन करते हुए स्व-पर कल्याण साधन में सलग्न होते है उन्हें

महात्मा, साधु सन्त आदि नाम से जगत याद किया करता है। आज के भौतिक चमत्कारो से अभिभूत मानव आत्मसाधना के क्षेत्र मे सामर्थ्य शून्य हो गया है।

ऐसी विपरीत भोग प्रधान परिस्थिति मे आज से सौ वर्ष पूर्व महर्षि तपो मूर्ति आचार्य शाति सागर नाम की महान आत्मा का जन्म हुआ था। वे आध्यात्मिक ज्योतिर्धर सन्त शिरोमणि थे। उन महान ज्ञानी योगिराज के जीवन के प्रति राष्ट्र पिता महात्मा गांधी के हृदय मे अपार श्रद्धा थी। जब इग्लैड के प्रधान मन्त्री सर विस्टन चर्चिल ने गाँधी जी को नग्न फकीर (nacked fakır) कहकर अपना दुर्भाव व्यक्त किया था, तव गाँधीजी ने उस शब्द को गौरव पूर्ण मानते हुए प्रधान मन्त्री को भेजे पत्र मे लिखा था, "मेरी हार्दिक इच्छा दिगम्बर साधु बनने की है, यद्यपि मै अब तक उस गौरव पूर्ण अवस्था को नही प्राप्त कर सका।" प्रख्यात लेखक लुई फिशर ने जब गाधी जी से इस विषय की चर्चा की, तब उन्होने कहा था—"I told churchıll, I would love to be a naked Fakır, but I am not one yet." (The lıfe of Mahatma Gandhı by L Fıscher P 473)

गाधी जी के अन्त.करण मे जो दिगम्बरत्व के प्रति प्रतिष्ठा थी, उसका स्पष्टीकरण स्वय उन्होने इन शब्दो द्वारा व्यक्त किया था, "जो मनसे और कर्म से दिगम्बर है, आदर्श आत्यतिक अपरिग्रह तो उसी का होगा। मतलब, वह पक्षी की भाति बिना घर के, बिना वस्त्रो के और बिना अन्न के विचरण करेगा।" उनके ये शब्द अत्यन्त मार्मिक हैं इस अवस्था को तो बिरले ही पहुच सकते है" (गाधी वाणी पृ० २५६)। गीता मे जिस 'स्थितप्रज्ञ' उच्च स्थिति का वर्णन किया है, वह दिगम्बर अवस्था मे पाई जाती है। बाल. ब्रह्मचारी शुकदेव मुनि दिगम्बर थे। समस्त साधु वृन्द उनके आने पर खड़े होकर उनके प्रति आदर भाव व्यक्त करते थे। श्रीमद् भागवत मे इस विषय मे महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है। हिन्दू सन्त भर्तृहरि के शब्द बहुत अनुभव पूर्ण है—

एकाकी निस्पृहो शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदाहं संभविष्यामि कर्म निर्मूलनक्षम ॥८९॥ वैराग्य शतक

भगवन्! मैं अकेला, स्पृहा रहित, शान्त, कर पात्र भोजी तथा कर्मो का मूलोच्छेद करने में समर्थ दिगम्बर मुनि कब बनूंगा?"

विवेकी, विचारवान गम्भीर चितक इस अवस्था का वास्तविक मूल्यांकन कर सकते है। कवि की यह वाणी महत्त्वपूर्ण है—

चाह घटी चिन्ता हटी मनुआ बेपरवाह।
जिन्हें कछु नहिं चाहिए वे शाहनपति शाह ॥

महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अमेरिका मे दिए गए भाषण में कहा था[1] "भौतिक जगत् में मानव विज्ञान की सहायता से प्राकृतिक शक्तियों पर प्रभुता प्राप्त कर रहा है, किन्तु नैतिक जगत् मे उसका कार्य बहुत कठिनतापूर्ण है। उसे अपनी वासनाओ और इच्छाओ की स्वच्छन्द प्रवृत्ति पर नियत्रण करना पड़ता है।"

इस प्रकाश मे दिगम्बर साधुराज तपोमूर्ति शान्तिसागर महाराज का जीवन प्रत्येक सहृदय सत्पुरुष के लिए उद्बोधक तथा प्रेरणादायक है।

जनक-जननी

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध नगर बेलगाँव के चिकोड़ी तालुका में भोजग्राम है। वह वेदगंगा, दूधगगा नदियो का सगम स्थल है। वहां भीमगौडा पाटील नाम के ग्रामपति रहते थे। उनके विषय में चरित्र नायक शान्ति सागर महाराज ने एक बार इस प्रकार चर्चा की थी, "हमारे आजा का नाम गिरिगौड़ा था। हमारे यहा सात पीढी से पाटील का अधिकार चला आता है। पाटील गाँव का रक्षक तथा मुखिया होता है। हमारे पूर्वज पहिले कर्णाटक प्रान्त में रहते थे। टीपू के अत्याचार के कारण वे भोज मे आए थे। हमारे सभी पूर्वज धार्मिक जमीदार थे। मुनि तुल्य उनकी धर्म मे निष्ठा रहती थी।"

"हमारे पिताजी बडे प्रभावशाली, अत्यन्त बलवान, प्रतिभाशाली ऊचे पूरे क्षत्रिय थे। वे शिवाजी महाराज सदृश दिखते थे। वे बड़े सयम शील थे। ब्रह्मचर्य व्रत से उनका बड़ा अनुराग था। उन्होनें १६ वष पर्यन्त एक ही बार भोजन तथा पानी लेनें के नियम का पालन किया था। उन जैसा धर्माराधना पूर्वक समाधिमरण मुनियो के लिए भी कठिन है।"

---

1 In this natural world with the help of Science man is turning the forces of nature into obedience; but in this moral world he has a harder task to accomplish. He has to turn his own passions and desires from tyranny into obedience." (Personality P. 60)

अपनी माता सत्यवती के विषय मे गुरुदेव ने कहा था, "हमारी माता बहुत धार्मिक थी। साधु सेवा, लोकोपकार, दयालुता तथा जिनेन्द्र भक्ति से उनका जीवन समलकृत था। उनके कारण हमारे घर मे सदा मुनियो आदि का आहार होता था। उन्होने हमारे पिता की तरह अत्यन्त शात भाव पूर्वक समाधिमरण किया था।

जब हम भोज ग्राम मे गए थे, तब एक वृद्धा ने माता सत्यवती के बारे में यह कहा था, "महाराज की माता सत्यवती बाई को मैं अच्छी तरह जानती थी। वे बहुत शान्त तथा सरल प्रकृति की थी। उनका स्वभाव बड़ा मधुर था। व्रताचरण, धर्म ध्यान, परोपकार उनके जीवन के मुख्य अंग थे। वास्तव मे वे देवता प्रकृति की थी। वे प्रेम मूर्ति थी।

आचार्य श्री के अनुज कुमगौडा पाटील के पुत्र श्री जनगौड़ा ने अपनी आजी माँ के बारे मे ये मनोरजक बात बताई थी, "बचपन मे मैं जब हठ करता था, तब करुणा मयी आजी माँ मनोवाछित पकवान खिला कर मुझे मनाया करती थी। वे सुबह शाम मुझे अपने साथ मन्दिर जी ले जाया करती थी। मुझसे कनडी भापा मे वे कहती थी, "बेटा, हमेशा भगवान का दर्शन करना चाहिए। इससे सब सुख मिलते हैं। उपद्रव करने पर यदि कोई मुझे डाटता था, तो वे कहती थी, 'बच्चे को प्रेम से समझाना चाहिए। उसे मारना पीटना नही चाहिए। और न उस पर क्रोध करना चाहिए।"

"दु.खी तथा निर्धन परिवार को वे संकट के समय सहायता प्रदान करती थी। अतिथि सत्कार मे उन्हे अपार हर्ष होता था। प्रभात मे मेरे पिता आदि सभी आजी मा को प्रणाम करते थे और उनका आशीर्वाद प्राप्त करते थे। वे अत्यन्त बुद्धिमती थी। अनेक महिलाएं उनके पास आती थी और सलाह लिया करती थी। घर मे आजी मा की बात को सब मानते थे। घर मे अखण्ड शान्ति रहती थी। आजी मां एक बार ही भोजन करती थी।"

माता सत्यवती भोज ग्राम से ४ मील पर स्थित येलगुल ग्राम मे अपने पितृगृह मे थी। हमने चिरंजीव सुदर्शन दिवाकर के साथ येलगुल जाकर वह घर देखा है। उसमे चन्दन का वृक्ष लगा देखकर हमे ऐसा लगा कि माता के गर्भ मे आने वाले बालक के ऊपर उसकी शीतल सुवास सम्पन्न छाया पड़ी। उसके जीवन की यह घटना उनके जीवन की महत्ता को स्पष्ट करती है।

उनका जीवन चन्दन सदृश शीतल समलकृत तथा संयम की सुवसा सम्पन्न रहा।

शुभ सूचना

आचार्य महाराज के ज्येष्ठ बन्धु देवगोडा पाटील थे। वे इनसे दस वर्ष बडे थे। उन्होनें भी दिगम्बर साधुराज का पद प्राप्त किया था। उन्हे वर्धमान सागर महाराज कहते थे, वे उच्च कोटि के साधक, चितक महामुनि थे। उनसे यह महत्व की बात ज्ञात हुई थी, कि जब आचार्य महाराज माता के गर्भ मे थे तब माता को यह इच्छा (दोहला) हुई थी, कि एक सौ आठ सहस्रदल कमलो के द्वारा जिनेन्द्र भगवान की पूजा करूं। उनकी इच्छा ज्ञात होनें पर बडे वैभव पूर्वक सुवास सपन्न एक सो आठ कमलो द्वारा भगवान को पूजा की गई थी। कमल अनासक्त जीवन का द्योतक है। मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना सरम्भ, समारभ, आरम्भ युक्त क्रोध, मान, माया, लोभ के द्वारा १०८ प्रकार से आत्मा मे कर्मो का बन्ध होता रहता है। महामुनि उन कर्म बन्धन के द्वारों का निरोध (सवर) करते है, इसलिए दिगम्बर मुनि को १०८ लिखा जाता है। शातिसागर महाराज की महनीय आत्मा की महत्ता का यह ज्ञापक था कि जननी के उदर मे रहते हुए वे १०८ अक युक्त थे, जो उनकी आगामी साधुराज पदवी को सूचित करते थे।

महापुराण मे लिखा है, कि चक्रवर्ती सम्राट् भरत जब माता यशस्वती के गर्भ में थे तब माता की इच्छा चमकदार तलवार मे अपनें मुख दर्शन की उत्पन्न हुई थी "साऽपश्यत् स्वमुखच्छाया वीरसूरसिदर्पणे"

जन्म

वर्धमान सागर महाराज ने बताया था "हमारे नाना के यहा येलगुल ग्राम मे आसाढ़ कृष्ण षष्ठी विक्रम (सं०) सन् १८७२ बुधवार को रात्रि के समय महाराज का जन्म हुआ था। महाराज के जन्म की वार्ता ज्ञात कर सब को बड़ा आनन्द हुआ था। ज्योतिषी से जन्म पत्रिका वनवाई गई। उसनें यह बताया था, कि यह बालक अत्यन्त धार्मिक होगा। जगत् भर में प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा तथा संसार के मायाजाल से दूर रहेगा।"

विशेष परिचय

उन्होने यह भी कहा था, "महाराज का शरीर अत्यन्त नीरोग था। कभी भी इनका मस्तक तक नही दुखता था। हाँ, एक बार तीन वर्ष की अवस्था मे ये बहुत बीमार हो गये थे। उस समय इनका जीवन रहता है या नही ऐसी चिंता पैदा हो गई थी, किन्तु एक बाई ने दवा दी जिससे ये अच्छे हो गये थे। इसके सिवाय और कोई रोग नही हुआ। उनका शरीर बाल्यकाल से ही असाधारण शान्ति सम्पन्न रहा है। चावल के लगभग चार मन के बोरो को सहज ही उठा लेते थे। उनका शरीर पत्थर की तरह कड़ा था। उनके समान कुश्ती खेलने वाला नहीं था।'

कोल्हापुर के हिन्द केसरी पहलवान श्रीपत खाँचनार ने हमे बताया था कि "शांतिसागर महाराज की अपार शक्ति की सब पहलवानो मे बड़ी धाक थी।" हिन्द केसरी पहलवान के जैन गुरु पहलवान भाऊ साहब लाटकर ने बताया था, "कि वे १९२९ मे महाराज के साथ शिखर जी पर्वत पर जाते थे उस समय वे महाराज के साथ चलते समय बहुत थक जाते थे।"

वर्धमान महाराज ने बताया था, "कुए से मोट द्वारा पानी खिचता था। महाराज मे इतना बल था कि वे बैलो को अलग कर स्वय अपने हाथो से मोट खेच लेते थे। वे दोनो पैर जोड़ कर बारह हाथ लम्बी जगह को लाँघ जाते थे। उनके अपार बल के कारण जनता उन्हे बहुत चाहती थी। वे बच्चो के साथ बाल क्रीड़ा नही करते थे। बच्चो के समान गदे खेलो मे उनका तनिक भी अनुराग न था। वे व्यर्थ की बात नही करते थे। पूछने पर सक्षेप में उत्तर देते थे। वे लौकिक आमोद प्रमोद से दूर रहते थे। धार्मिक उत्सवो मे जाते थे। घर मे बहिन कृष्णा बाई की शादी मे तथा छोटे भाई कुमगौड़ा की शादी मे शामिल नही हुए थे। वे वीतराग प्रवृत्ति वाले थे। उनकी स्मरण शक्ति सब को चकित करती थी। इनके अध्यापक इनकी बुद्धिमत्ता की सदा प्रशसा करते थे। बाल्य काल से ही वे शान्ति के सागर थे। वे खान पान मे बालको के समान स्वच्छन्द प्रवृत्ति वाले नही थे। बचपन मे बहुत घी-दूध खाते थे। पाव डेढ पाव घी वे सहज ही हजम कर लेते थे।"

"पिता जी ने उनका नाम सातगौड़ा रखा था। किन्तु सब लोग

उनको अप्पा (दादा) कहते थे। वे सादे वस्त्र पहिनते थे। हमारी माता सत्यवती सूत कातती थी। उससे बनी खादी का बना बारह बदी वाला अगरखा पहिनते थे। वे सादा फेटा बाँधते थे। वे तकिया से टिक कर नही बैठते थे।"

"वे अनेक विषयो मे अपूर्व ज्ञान रखते थे। अश्व आदि परीक्षा मे वे प्रथम कोटि के थे। वे अपनी निपुणता को किसी को बताते नही थे। वे बहुत दयालु थे। घर के गाय बैलो को खूब खिलाते थे और नौकरों को कहते थे कि इनको खिलाने मे कभी भी कमी नही करना चाहिए। वे सदा शास्त्र पढते हुए पाये जाते थे। ध्यान करने मे उनकी पहले ही रूचि थी। वेदाती लोग उनके पास आकर आत्मा और ब्रह्म की चर्चा करते थे। भोज ग्राम मे रुद्रप्पा नाम का वेदॉत प्रेमी उनका घनिष्ठ मित्र था। वह लिगायत धर्म पालता था। महाराज के कारण वह छान कर पानी पीता था तथा रात्रि को भोजन नही करता था। जब वह प्लेग में बीमार हुआ तब महाराज ने उसके पास जाकर अपने मित्र का समाधि मरण कराया था।"

"मुनियों पर उनकी बडी भक्ति थी। वे अपने कधे पर एक मुनिराज को बैठाकर वेदगगा तथा दूध गगा नदियो के सगम के पार ले जाते थे। वे कपडे की दुकान पर बैठते थे। मुख्य कार्य छोटा भाई करता था। जब लोग आकर पूछते थे कुमगौड़ा बैकुठे गेला" छोटा भाई कुमगौडा किधर गया है, तब वह कहते थे वह बाहर गया है। 'कपडा लेना है तो मन से चुन लो अपने हाथ से नाप कर कपड़ा फाडलो और बही मे लिख दो। इस प्रकार उनकी निस्पृहता थी। वे कुटुम्ब की झझटो मे नही पड़ते थे। उनका आत्म बल अद्भुत था। उन्होने माता और पिता की खूब सेवा की और समाधि मरण कराया। किन्तु उनके स्वर्गारोहण के उपरान्त उनके नेत्रो मे अश्रु नही थे। उनका मनोवल महान था। वे वैराग्य मूर्ति थे।

बाल ब्रह्मचारी

जब उनके विवाह का प्रसग आया तब उन्होने कहा "मी ब्रह्मचारी राहणार" ब्रह्मचारी रहूगा। उनके शब्दो को सुनते ही माता पिता के नेत्रो से अश्रु आ गये। पिता श्री ने कहा "माझा जन्म तुम्ही सार्थक केला"—वेटा

तुमने हमारा जन्म कृतार्थ कर दिया। उन्होने बताया "हमारी माता हम लोगो को धर्म और सदाचार का उपदेश दिया करती थी। पाप करू नका, चोरी करू नका" आदि कहा करती थी। हमारे पिता वडे न्यायवान थे। वे अन्याय पूर्वक किसी की सम्पत्ति नही लेते थे। अधिकारी वर्ग कहा करते थे कि ये सच्चे मनुष्य है—

"खरामाणुस आहे।"

"महाराज और हम सब अपने मामा के यहां थे। हम लोग विनोद पूर्वक बैठे थे। नारियल के वृक्ष मे लगे हुए नारियल को छेदने की चर्चा उठी। महाराज ने कभी भी बदूक हाथ मे नही ली। उस समय उन्होने प्रथम वार बदूक लेकर गोली द्वारा नारियल को छेद दिया। सब लोग चकित हो गये। महाराज के परिणाम छोटी अवस्था मे ही मुनि दीक्षा लेने के थे। माता पिता ने आग्रह किया वेटा जव तक हमारा जीवन है तव तक तुम दीक्षा न ले कर धर्म साधन करो। इसलिए वे घर मे रहे।"

"जब उन्होने साधु दीक्षा ली तव सब लोग कहते थे ये घर मे साधु सदृश थे। आज साक्षात् साधु बन गये। उनके दीक्षा लेने पर प्रायः सभी लोगो के नेत्रो मे अश्रु आ गये थे।

दया मूर्ति

महाराज की शूद्रो पर बडी दया रहती थी। जब अन्य लोग शूद्रो को कुए से पानी लेने मे धमकाते थे तव वे उन्हे समझाते थे उन गरीबो को पानी ले लेने दो। इनके सामने जो गरीव आता था उसको मुक्त-हस्त होकर अनाज दिया करते थे।"

एक वृद्ध मराठा ने हमे वताया था, "महाराज हम लोगो को प्रेम से अच्छी अच्छी वाते समझाया करते थे। भगवान के यहा से ही साधु वनकर आये थे। हमारे खेत से लगा महाराज का खेत था, उनके खेत मे पक्षी अनाज खाते थे, महाराज पक्षियो को नही भगाते थे। वे पक्षियो के लिए स्वय पानी मोट द्वारा खेच कर रख देते थे। उनके खेत मे वहुत फसल आती थी। मैं उनसे कहता था, "पाटील तुम ऐसा क्यो करते हो ? क्या वडे साधु वनोगे वे चुप रह जाते थे।" उस ग्रामीण ने यह भी वताया, "हमारे खेत मे एक दो गज लम्बा साप निकला, उसे मैंने मार डाला। पाटील ने मुझसे कहा, "तुमने

यह अच्छा नही किया यह कुलीन आदमी का काम नही है।" अपने जीवन मे केवल इतने ही कडे शब्द उनके मुख से सुने। इससे उन्हे इतना बुरा लगा कि वे अन्यत्र चले गये। वे अपने श्रीमंतपने के अभिमान से दूर थे। हम गरीबो के साथ समानता का व्यवहार करते थे।

संयमी जीवन

•
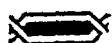
क्षुल्लक दीक्षा

महाराज का चित्त भोगो से विरक्त था ही, माता पिता के स्वर्गारोहण के पश्चात् ४१ वर्ष की अवस्था मे ये बाल ब्रह्मचारी दिगम्बर मुनि देवप्पा स्वामी के पास उत्तूर ग्राम मे पहुचे। उन्होने मुनि दीक्षा के लिए प्रार्थना की। गुरूदेव ने दिगम्बर मुनि की दीक्षा न देकर इनके कल्याणार्थ विक्रम सम्वत् १९७२ जेठ सुदी तेरस सन् १९१५ को इन्हे पहले क्षुल्लक दीक्षा दी।

हम सन् १९७० में उत्तूर ग्राम गये थे। वहाॅ एक सज्जन ने बताया "मेरे समक्ष दीक्षा का जुलूस निकला था। भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति का अभिषेक हुआ था, मेरे समक्ष ही दीक्षा दी गई थी। दीक्षा के समय देवप्पा स्वामी ने इनका नाम शातिसागर रखा था। इन्होने कोगनोली ग्राम में क्षुल्लक रूप में प्रथम चातुर्मास किया। उस समय ये तप साधना मे विशेष सलग्न थे।"

सर्पराजकृत उपसर्ग

आचार्य नेमिसागर महाराज ने बताया था, "महाराज कोगनोली में क्षुल्लक थे। वहाॅ वे मन्दिरजी में ध्यान हेतु बैठे थे, कि एक ६ हाथ लम्बा सर्पराज मदिर में घुसा और उसने यहा वहा घूमने के पश्चात् महाराज के शरीर पर चढना प्रारंभ किया और वह उनके शरीर पर लिपट गया। वहाँ मदिर में दीपक जलाने को उपाध्याय घुसा और उसकी निगाह सर्पराज पर पड़ी। वह घबडाकर भागा। उस समाचार को सुनकर बहुत लोग वहा एकत्रित हो गए। वे किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो रहे थे, क्योकि गड़बड़ी के कारण

सर्प कहीं काट देगा, तो अनर्थ हो जाएगा। बहुत समय के बाद सर्प धीरे-धीरे उतरा और बाहर चला गया।" प्रतीत होता है वह यमदूत महाराज की परीक्षा लेने आया था कि इनमे धैर्य, निर्भीकता तथा स्थिरता कितनी है। उस भीषण परीक्षा मे महाराज शुद्ध स्वर्ण निकले। इस समाचार के कारण धार्मिक जगत् मे महाराज की महिमा का प्रसार हो गया।

कष्टो का स्वागत

जान गथर (John Gunther) ने इनसाइड एशिया (Inside Asia) ग्रथ मे एक उल्लेखनीय बात कही है, "एकबार एक सर्प गाधी जी के पैर-पर गिरा। उन्होने पैरको सिकोड़ लिया और उस सर्प को झटकार दिया। इसके विषय मे गाधी जी के मन मे सदा पश्चात्ताप बना रहा, कारण यह इस बात को स्पष्ट करता है कि उनकी अहिसा की आराधना वास्तव मे अपूर्ण है।"

(Once a snake dropped on his ankle and involuntarily he twitched and shook it off. He had regretted this event since, because it showed that his devotion to non-violence was not really perfect (P. 386)

गांधीजी ने साप्ताहिक पत्र नव जीवन मे २८ सितम्बर १९२४ के अक मे लिखा था, "मैं जानता हू कि मेरे अन्दर बहुत प्रेम है। पर प्रेम की तो सीमा ही नही होती। मैं यह भी जानता हूं मेरा प्रेम असीम नही है। मैं साप के साथ कहा खेल सकता हू ? जो अहिसा मूर्ति है उसके सामने साप भी ठण्डा हो जाता है मुझे इस पर पूरा विश्वास है।"

(गाधी वाणी पृ २८५)

महाराज शान्ति सागर जी के जीवन मे अहिसा पूर्णतया प्राप्त हो चुकी थी, इस कारण भीषण पशु उनके प्रति वैर भाव नही रखते थे, इसका समर्थन योग दर्शन मे पाया जाता है। "अहिसा प्रतिष्ठाया तत्सन्निधौ वैरत्यागः "(२-३५) अहिसा के प्रतिष्ठित होने पर उसके समीप वैरभाव दूर हो जाता है। तुलसी दासजी ने अपनी रामायण मे वाल्मीकि आश्रमके अहिसा पूर्ण वातावरण का इन शब्दो मे चित्रण किया है

करि केहरि कपि कोल कुरंगा।
बिगत बैरि बिचरहिं सब संगा।।

क्षुल्लक (लघुमुनि) अवस्था में इन्हे अनेक कठिनाइयो ने घेरा था। जिस समय महाराज क्षुल्लक थे, उस समय मुनि का भी जीवन अनेक शिथिलताओ से परिपूर्ण था। मुनि आहार हेतु पूर्व निर्धारित गृह मे जाते थे। मार्ग मे एक चादर लपेट कर जाते थे। गृहस्थ के यहा जाकर स्नानके उपरान्त दिगम्बर हो आहार करते थे। उस समय घण्टा जोर से वजाया जाता था, ताकि अन्तराय का शब्द भी सुनाई न पडे और भोजन मे कोई विघ्न न आवे।

महाराज ने सोचा, क्षुल्लक को अनुद्दिष्ट आहार लेना चाहिए, इससे वे निमंत्रित घर में न जाकर चर्या को निकलते थे। लोगो को क्या पता कि महाराज के जाने का क्या भाव है ? कभी कभी आठ दिन पर्यन्त भोजन नही मिलने से उपवास हो जाता था। एक बार गॉव के जैन पाटील तथा श्रावको ने उपाध्याय को डाटकर पूछा कि ऐसा क्यो हो रहा है ? जब लोगो को पता चला, कि क्षुल्लक को आमत्रण स्वीकार न कर वहा आहार लेना चाहिए, जहा सुयोग प्राप्त हो, तब लोगो ने शास्त्रानुसार चौके लगाकर आहार की व्यवस्था की। उनके जीवन से मुनियो को भी प्रकाश प्राप्त हुआ साधु जीवन मे भयकर शिथिलता आ गई थी, वह दूर हुई। इस क्षुल्लक जीवन मे महाराज ने अवर्णनीय कष्टो को शात भाव से सहन किया।

ऐलक पद

समडोली ग्राम के श्रावको के साथ महाराज ने गिरनार की यात्रा की। नेमिनाथ भगवान की निर्वाण भूमि के दर्शन द्वारा इनकी आत्मा मे अद्भुत निर्मलता उत्पन्न हुई। इन्होने ऐलक दीक्षा ले ली। ये एक लगोटी मात्र धारण करते थे। इनके पास पिच्छी और कमण्डलु, क्षुल्लक अवस्था के समान थे। केशो का हाथो से केशलोच करते थे। दीक्षा लेते समय ही इन्होने जीवन भर के लिए घी, नमक दही तेल शक्कर इन पाच रसो का त्याग कर दिया था। महान बलिष्ठ शरीर की उन दिनो आहार मे केवल दूध चावल मिला करता था। इससे उनका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया था। जब लोगो को शुद्ध मर्यादा युक्त गेहू आदि धान्य देने की वात ज्ञात हुई, तब महाराज ने रोटी आदि पदार्थ लेना प्रारम्भ किया। ऐसी स्थिति मे उनकी तपस्या के कारण उनका आत्म बल तथा परिणाम, विशुद्धि बहुत वृद्धि को प्राप्त हो रही थी।

आगम भक्ति

गिरनार पर्वत की यात्रा करके महाराज ने मध्याह्न की सामायिक की। उसके पश्चात् वे आहार को निकले। एक धर्मात्मा गृहस्थ ने उनको विनय पूर्वक पडगाहा। वह मौसम जाडे का था। सूर्य शीघ्र अस्त होता है। सूर्य अस्त होने के दो मुहूर्त पूर्व आहार समाप्त हो जाना चाहिए था, अन्यथा रात्रि भोजन का दोष लगेगा। महाराज आहार के लिए उद्यत हुए ही थे कि उन्हे प्रतीत हुआ, कि आहार करते समय रात्रि का दोष लगेगा। वे आहार विना किए लौट आए। लोगो ने पूछा, महाराज क्या अन्तराय हो गया ? उन्होने कहा, अन्तराय नही हुआ, किन्तु आगम के अनुसार भोजन करना दोषयुक्त हो जाता अत. हमने आहार नही लिया। गिरनार की यात्रा करने से क्षुधा की कितनी वृद्धि एक महान वलिष्ठ व्यक्ति मे हुई होगी, यह सहज कल्पना की जा सकती है, किन्तु आगम प्राण महाराज ने क्षुधा की व्यथा की ओर ध्यान न दे अपने व्रत की रक्षा की। यथार्थ मे व्रत उनके प्राण थे।

यरनाल में दिगम्वर दीक्षा

गिरनार की यात्रा से आने के वाद निर्दोप ऐलक का जीवन व्यतीत हो रहा था। जव चातुर्मास का समय आया तव उन्होने ऐलक रूप मे ननलापुर मे अपना चातुर्मास व्यतीत किया। वहाँ से चल कर महाराज ऐनापुर ग्राम मे रहे। उस समय यरनाल मे जितेन्द्र पचकल्याण महोत्सव होने वाला था। अत वे उस महोत्सव मे पहुचे। वहाँ जिनेन्द्र भगवान की दीक्षा कल्याणक के दिन मुनि दीक्षा ली। अव ऐलक शान्ति सागर जी मुनि शान्तिसागर महाराज वन गए।

यरनाल मे दूपित ज्वर हो जाने से वीमारी फैल गई। अनेक साथी वीमार हो गए। महाराज को भी ज्वर आने लगा। एक माह तक ज्वर रहने से शरीर वहुत क्षीण हो गया। वहाँ से विहार कर इन्होने कोगनोली ग्राम मे चातुर्मास किया। ग्राम से लगभग आधा मील दूरी पर एक गुफा मे इनका निवास था।

पागल द्वारा उपसर्ग

यहाँ एक पागल ने इन पर भयकर उपसर्ग किया। वह इनकी गुफा

में रात्रि के समय पहुचा। उसने हल्ला मचाना शुरू किया। इनसे रोटी मागी। महाराज चुपचाप ध्यान मे मग्न थे। पश्चात् उस पागल ने पत्थर, ईंट उठाकर इन पर फेकना शुरू किया। उससे इनके शरीर को बहुत चोट आई, किन्तु शान्त भाव से इन्होंने उस उपसर्ग को सहन किया। इसके पश्चात् उपद्रवी पागल एक कुएँ मे कूद पडा और मर गया।

कोन्नूर में उपसर्ग

मुनि अवस्था मे महाराज का चौथा चातुर्मास विक्रम सवत् १९८० सन् १९२३ मे कोन्नूर ग्राम मे हुआ। कोन्नूर के प्राचीन जिन मदिर में एक मानस्तम्भ है। उस पर एक कानडी भाषा में शिलालेख है। उसमे लिखा है, कि एक राजा ने जैन साधुओ के लिए उष्णजल की व्यवस्था और उनकी परिचर्या के हेतु एक ग्राम का दान किया था। उस ग्राम के समीप मुनियो के निवास के लिए सात सौ गुफाए थी।

महाराज की उच्च तपस्या के कारण चतुर्दिक मे कीर्ति फैल रही थी। हजारो व्यक्ति दर्शन हेतु आया करते थे। इस स्थिति मे उनको ध्यान करने मे सहज ही बाधा आ जाया करती थी, अतः वे पर्वत पर की एक अपरिचित गुफा मे ध्यान करने चले जाते थे, इस गुफा के पास एक झाड़ी मे सर्प आदि जीवो का निवास था। आचार्य नेमिसागर महाराज ने बताया था, "कोन्नूर मे सात सौ से अधिक गुफाए है, किन्तु उनमे दो गुफा मुख्य है। महाराज प्रत्येक अष्टमी चौदस को उनमे जाकर ध्यान करते थे। उस दिन उनका मौन रहता था। महाराज गुफा मे घुसे ही थे, कि एक उड़ने वाले सर्प ने गुफा मे प्रवेश किया। उसने महाराज के शरीर पर तीन घटे तक बहुत उपद्रव किया। वह बड़ा चचल था। लोग खोज करते हुए जब दर्शन हेतु उस गुफा मे पहुचे, तो सर्प का उपद्रव देखा। जब लोग महाराज के पास पहुँचते थे, तब वह सर्प उनकी जघाओ के बीच मे छिप जाता था। लोगो के दूर होते ही वह इधर उधर फिर कर उपद्रव करता था, किन्तु महाराज ध्यान मे स्थिर थे। ऐसा लगता था, कि यह कोई मूर्ति ही हो।" उन्होने यह भी बताया, कि "यह मध्याह्न की बात थी। हमने देखा, कि वह सर्प वहा तीन घटे रहा। पश्चात् वह चला गया। लोग यदि उसे पकड़ने का साहस करते, तो इस बात का भय था कि कही वह क्रुद्ध होकर महाराज को काट न दे। इससे सब किंकर्तव्य विमूढ हो

जाते थे।" नेमिसागर महाराज उस समय गृहस्थ थे। उन्होने महाराज से पंच अणुव्रत लिए थे। उन्होने यह भी कहा था, "मै चातुर्मास के समय शास्त्र पढता था, महाराज कन्नड़ भाषा मे सब श्रावको को समझाया करते थे।"

मैने पूछा "आपने और कौन सा उपसर्ग महाराज पर होते देखा ?"

नेमिसागर महाराज ने बताया, "कोन्नूर के जगल मे महाराज धूप मे बैठकर सामायिक कर रहे थे। इतने मे एक बडा-मकोड़ा उनकी जाघो के भीतर घुस कर उनके पुरुष चिह्न को खाता था। रक्त बहता जाता था। और छोटे-छोटे मकोडे उस समय आते थे। उनको तो हम अलग करते थे, किन्तु महाराज के ध्यान मे विघ्न न आ जाय, इससे हम लोग बडे मकोडे को दूर न कर सके। रक्त बहता जाता था, किन्तु महाराज अपने अखण्ड ध्यान मे पूर्ण निमग्न थे। उनकी इस तपस्या और आत्म-निमग्नता का मेरे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। मेरे मन मे मुनि बनने की इच्छा जागृत हुई।"

नेमिसागर महाराज ने सर्प सम्बन्धी शेडवाल की घटना इस प्रकार बताई, "महाराज शेडवाल मे एक काठ के पट्टे पर ध्यान करने बैठे एक सर्प जो ५ फुट लम्बा था, पट्टे के नीचे घुस गया। वह वहा रात भर रहा सवेरे जब उस स्थान को झाडने हेतु एक जैनी आया, तब महाराज ने उससे कहा, "भीतर सम्हल कर जाना। वह व्यक्ति जब भीतर गया, तब उसकी दृष्टि सर्प पर पडी और उसने बाहर जाकर दूसरो को सर्प की चर्चा बताई।

अद्‌भुत आत्मबल

एक बार महाराज को बारामती नगर मे एकान्त मे बैठा देखकर मैं उनके पास पहुचा। उस दिन उनका उपवास था। उस समय मेरी प्रार्थना पर महाराज ने सर्प के उपसर्ग की घटना पर इस प्रकार प्रकाश डाला। उन्होने कहा, "हम जगल मे विद्यमान गुफा मे ध्यान कर रहे थे। इतने मे एक सात आठ हाथ लम्बा, लट्ठ सरीखा मोटा बड़ा सर्प हमारे पास आया। उसके शरीर पर बाल थे। उसके नेत्र ताम्र वर्ण के थे। उसने हमारे मुख के समक्ष खड़ा होकर अपना बडा फणा फैलाया। वह हमारे पर दृष्टि डालता था, और अपनी जीभ निकाल कर लपलप कर रहा था। उसके मुख से

अग्नि के कण निकलते थे। वह दो घटे तक हमारे मस्तक और नेत्रो के आगे खडा होकर हमारी ओर देखता था। हम भी उसे देखते थे।"

मैने पूछा, "महाराज आपके हृदय मे क्या तनिक भी भय का सचार नही हुआ ? महाराज ने कहा, "हमे कभी भी डर नही होता। हम उसे देखते थे, वह हमे देखता था।" सर्पराज शाति के सागर को देखता था और शाति के सागर उस यमराज को भी अपनी अहिसापूर्ण दृष्टि से देखते थे। यह अमृत और विष की भेट थी। मैने पूछा "महाराज ! उस समय आप क्या सोचते थे ?"

महाराज ने कहा "हम यही सोचते थे, यदि हमने इस जीव की पूर्व में कोई हानि की होगी, तो यह हमे बाधा पहुंचावेगा, नही तो यह चुपचाप चला जायगा।" महाराज की कल्पना सत्य निकली। वह सर्प महाराज को समता और धैर्य की मूर्तिरूप देखकर फण नीचा करके, मानो महामुनि के चरणो को प्रणाम करता हुआ धीरे-धीरे गुफा के बाहर न जाने कहा चला गया।

मैने पूछा, "ऐसा भीषण उपसर्ग और भी तो आया होगा ?"

चीटियो कृत उपसर्ग

महाराज ने कहा, "उस समय हम निद्रा विजय तप का पालन करते थे। हम जगल मे विद्यमान जिन मदिर के भीतर ध्यान करने बैठे। पुजारी वहा दीपक जलाने आया। दीपक मे तेल डालते समय कुछ तेल भूमि पर बह गया। वर्षा की ऋतु थी। दीपक जलाने के बाद पुजारी अपने स्थान पर वापस चला गया। हमने उस रात्रि को निद्रा न लेकरधर्मध्यान मे काल व्यतीत करने का नियम कर लिया था। पुजारी के जाने के बाद चीटियो ने शरीर पर चढ़ना आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे असंख्य चीटियो का समुदाय इकट्ठा हो गया और वे हमारे शरीर पर आकर फिरने लगी। कुछ काल के अन्तर उन्होने हमारे शरीर के अधोभाग नितव आदि को काटना आरम्भ कर दिया। हमारे शरीर से रक्त बहने लगा। चीटियाँ नोचकर हमारे शरीर को खाती जाती थी। रात्रि भर ऐसी ही अवस्था रही उस समय हम सिद्ध भगवान का ध्यान करते थे।" कभी एकाध चीटी शरीर मे चिपक जाती थी तव उसके काटने से महान पीडा होती थी। जव शरीर के कोमल अग गुह्य भाग को असख्य चीटियाँ खाती रही, तव उस पीड़ा की

सीमा नही रहती है। इस वेदना को महाराज ने समताभाव पूर्वक सहन किया। शरीर पर सर्पराज लिपटा था। उसने पीड़ा नही दी थी। किन्तु अपार पीडा देकर इन चीटियो ने सर्पराज को मात कर दिया। प्रभात में लोगो ने महाराज के शरीर को सूजा हुआ देखा। उससे रक्त भी वह रहा था तथा चीटियां शरीर को खाने के उद्योग मे पराक्रम दिखा रही थी। लोगो ने दूसरी जगह शक्कर डालकर धीरे-धीरे उनको अलग किया। यह दृश्य जिन्होंने देखा, उनके नेत्रो से अश्रुधारा वहने लगी। लोग कह उठे योगिराज आपको धन्य है। आप सदृश जितेन्द्रिय तपस्वी हमने नही देखा।"

महान शांति

अनेक संकटो के आने पर उनमे अद्‌भुत धैर्य और शाति रहती थी। एक समय एक गृहस्थ ने महाराज को आहार हेतु पड़गाहा। उस समय दूध उवल रहा था। उस गृहस्थ ने वर्तन को गर्म होने से कपड़े से पकड़कर उठाया। उसकी बुद्धि मे यह नही आया कि इस उवलते दूध के द्वारा महाराज की क्या स्थिति होगी ? दूध हाथ मे पडते ही महाराज मूर्छित होकर गिर पडे। उनके कान मे णमोकार मत्र सुनाया जाने लगा। कुछ मिनिटो के वाद मूर्छा दूर हुई वे सोचने लगे हम यहा कहां हैं। इसके पश्चात् वे खड़े हुए तथा विना आहार किये हुए शातभाव से चले गये। उनमे क्रोध का तनिक भी आवेश नही आया और वे पूर्ण शांत रहे आये।

महाराज मे अद्‌भुत स्थिरता थी। यथार्थ मे वे महान योगी थे।

दुष्टराज पर प्रेम

सन् १९३० मे महाराज आगरे के समीप धौलपुर राज्य के राजाखेड़ा ग्राम मे पधारे। वहां साधु जीवन से अकारण द्वेष करने वाला छिद्दी नाम के दुष्ट ने सैकड़ो आदमियो के साथ तलवार ले महाराज और उनके साथी साधुओ के प्राण लेने का प्रयत्न किया था। भयंकर विपत्ति थी। महाराज के अपूर्व तपोवल से वह दुष्ट मडली अपने प्रयत्न मे सफल न हो पाई। शीघ्र ही रियासत की पुलिस आ गई और उस महान दुष्ट को पकड़ लिया तथा महर्षि शांतिसागर महाराज के समक्ष उपस्थित किया।

पुलिस कप्तान ने कहा, "महाराज ! इस हत्यारे को क्या दण्ड दिया जाये ?"

महाराज ने कहा—"इसे छोड देना चाहिए। जब तक तुम इसे न छोडोगे, तब तक हमारे अन्न जल का त्याग है।" उस समय सबने देखा कि महामना मुनिराज वास्तव मे शाति के सागर है, जो अपने प्रेम के द्वारा प्राणघातक आततायी पर अपनी अनुकम्पा रूप अमृत की वर्षा करते है।

इस प्रसग मे हमे एक सिद्धप्पा स्वामी नाम के जैन मुनिराज का स्मरण आ जाता है। एक बार वे कोल्हापुर के समीपवर्ती ग्राम के बाहर गुफा मे ध्यान कर रहे थे। गाव के कुछ बदमाश लडको ने वहा जाकर पत्थर मारकर उनके शरीर को लहूलुहान कर दिया। वे शॉत रहे आये। प्रभात मे ग्राम के पाटील ने उन दुष्ट लडको को पकड लिया। उस समय परम शात परिणाम वाले सिद्धप्पा स्वामी ने पाटील को आदेश किया, कि लड़को को तुरन्त छोड दो और कहा ये बालक हमे वृक्ष समझते थे। पत्थर मारने से वृक्षो से फल प्राप्त होते थे, किन्तु यहा इन्हे कुछ नही मिला इस लिये उनको एक-एक टोपी कुर्ता दो। उनके आदेशानुसार पाटील को ऐसा करना पड़ा। अहिसा के श्रेष्ठ साधक महात्माओ की जीवन प्रवृत्ति लोकोत्तर होती है।

व्याघ्र पर प्रभाव

महाराज उत्तर प्रात में बिहार करते हुए जब द्रोणागिरि नाम के निर्वाण क्षेत्र पर सन् १९२९ मे पहुचे थे तब वे पर्वत पर ही रात्रि के समय रहा करते थे। रात्रि के समय एक शेर इनके पास आकर शातभाव से बैठ गया और वह रात भर पर्वत पर रहा आया। सबेरे महाराज पर्वत से देर से उतरे। लोगो ने विलम्ब का कारण पूछा। लोगो के आग्रह पर महाराज ने बताया कि "शेर रात भर हमारे पास बैठा था। अभी थोड़ी देर हुई वह हमारे पास से उठकर चला गया।" प्रतीत होता है कि वनपति यति-पति के दर्शनार्थ वहा आया था।

व्याघ्रराज इनके पास बहुत देर क्यों बैठा ? हमे प्रतीत होता है कि मृगपति ने नरपति को देखकर अपनी सद्भावना व्यक्त की होगी। किसी नरेश की दूसरे नरेश से भेट होने पर सहज सौजन्यवश 'मैत्री का व्यवहार किया जाता है। दूसरी बात, वह तो व्याघ्र था किन्तु ये थे नरसिंह। इन

नरसिंह के चरणो के समीप सादर शेर का वैठना उपयुक्त दिखता है।

महाराज वैतूल जिले के अन्तर्गत मुक्तागिरि जैन तीर्थ की वदनार्थ गए थे। वहा पर्वत पर शेर प्राय आया जाया करता था। महाराज पर्वत पर अधिक समय व्यतीत करते थे। डर क्या चीज है, वे नही जानते थे।

पशुओ की भक्ति

आचार्य वीरसागर जी ने वताया था, कि महाराज की आत्मा अद्भुत तेज युक्त थी। उनका पुण्य भी अद्भुत रहा है। एकवार सन् १९२९ मे हम शिखरजी से महाराज के साथ रीवा राज्य के समीप आ रहे थे। चार मस्त साड खूटा तोड़कर भागे। लोगो मे भय का सचार हुआ। वे साड महाराज के तरफ आये। उन्होने पैरो को टेक कर उनके चरणो के समीप होकर महाराज को प्रणाम किया। ऐसा महिमापूर्ण उनका व्यक्तित्व था।

उस यात्रा मे एक और विचित्र वात हुई। महाराज का सघ जहाँ प्रभात मे ठहरा वहा सैकडो वदरो का खेलकूद तथा उपद्रव जारी था। सघपति गेंदनमल जवेरी ववई ने महाराज से कहा, "यहा तो वदरो का बड़ा कष्ट है। हम लोग आहारादि की व्यवस्था किस प्रकार करे?"

महाराज ने मुस्कराते हुए कहा, "तुम लोग शीरा पूडी उडाते हो, वदरो को भी खिलाओ।" यह कहकर वे चुप हो गए। उनके मुखमडल पर स्मित की आभा थी। आहार तैयार हो जाने पर लोग चिन्तित थे, कि आज का आहार विना विघ्न के सपन्न होना कठिन है। वदर हाथ का ग्रास लेकर भाग गये, तो अन्तराय हो जायेगा। महाराज जैसे ही चर्या के लिए निकले, कि वन्दर समुदाय पूर्ण शात हो गया। वे आहार की विधि को देखते रहे। आहार निर्विघ्न हो गया। पश्चात् वानर वृन्द ने अपनी क्रीड़ा तथा उपद्रव पूर्ववत शुरू कर दिया। गृहस्थ वदरो को रोटी खाने को देते जाते और स्वयं भी भोजन करते जाते थे। यह स्थिति उन साधुराज के व्यक्तित्व की महत्ता पर प्रकाश डालती है। वे मूक पशु तक इन महापुरुष से प्रभावित होते थे।

दिव्यदृष्टि

स्वामी समन्तभद्र ने कहा है, कि महावीर भगवान को आत्मा से

सपूर्ण अष्ट कर्मो का क्षय हो गया था। अतः वह आत्मा समस्त पदार्थो के प्रतिबिम्बित होने के लिए दर्पण के सदृश निर्मल हो गई थी। "सालोकाना त्रिलोकाना यद्विद्या दर्पणायते।" हिन्दूधर्म के मान्य ग्रन्थ योग दर्शन मे कहा है, "अपरिग्रह स्थैर्ये जन्म कथता-सबोध." (२—३९) अपरिग्रह की स्थिरता होने पर जन्मान्तर की बातो का बोध होता है। इस प्रकाश मे हम योगिराज शान्तिसागर महाराज के जीवन की महत्ता का मूल्याकन कर सकते है। जैसे २ वे साधुराज ध्यान, तत्त्वचितन अहिसा पूर्ण जीवन आदि मे प्रगति करते जाते थे, वैसे २ उनमे अद्भुत आत्म शक्तियो का नव जागरण होता जाता था। बहिर्जगत् से कम सपर्क रख अतर्जगत् मे स्थिर रहने वाले इन महान आत्मा के ज्ञान मे भविष्य की अनेक घटनाओ का प्रतिबिम्व पूर्व से आ जाया करता था।

जब सन् १९४० मे द्वितीय महायुद्ध छिडा था, तब महाराज ने पूछा "यह युद्ध किसने आरभ किया?" उनको बताया गया, कि युद्ध की घोपणा सर्व प्रथम जर्मनी ने की है, तब उनके मुख से यह बात निकल पडी कि "इस युद्ध मे जर्मनी निश्चय ही पराजित होगा।" ऐसा ही हुआ।

गाधी जी की प्रतिष्ठा देश भर मे व्याप्त थी। उस समय महाराज बोले "गाधी अच्छा आदमी है, उससे अधिक पुण्यवान जवाहरलाल है। वह राजा बनने लायक है।" मैने पूछा महाराज! आप राजनीति की बातों से बहुत दूर रहते है, फिर आपने जवाहरलाल जी के बारे मे उक्त बात कैसे कह दी?" महाराज ने कहा, "हमारा हृदय जैसा बोलता है, वैसा हमने कह दिया। हम न गाधी को जानते है, न जवाहर को पहचानते है।"

महाराज अहमद नगर तरफ जा रहे थे। मार्ग मे राहुरी ग्राम पड़ा। सध्या के समय लोगो ने प्रार्थना की कि सघ के ठहरने योग्य यह स्थान है, किन्तु महाराज ने लोगो की एक नही सुनी और वे आगे वढ गए। इसके अनंतर ऐसी भीषण वर्षा हुई कि राहुरी के पास की नदी मे भीषण पूर आ गया। और सारा गॉव बह गया। यदि सघ वहा ठहरा होता तो कितना अनिप्ट हो जाता इसकी कल्पना भी नही की जा सकती। गाधीजी जिस इनर वाइसे (Inner Voice) अन्तरात्मा की ध्वनि को अपने लिए मार्ग दर्शक वताते थे, वही आत्मा महाराज को मार्ग दर्शन प्रदान करती थी। सत्पुरुष अन्तरात्मा की आवाज को महत्व दिया करते है। कालिदास ने कहा

है "सता हि सदेह पदेपु वृत्तिषु प्रमाणमन करण प्रवृत्तय." जव भारत स्वतन्त्र हुआ था उस समय निजामस्टेट मे रजाकार मुसलिम हिन्दू जनता को वहुत कष्ट दे रहे थे। वच्चो स्त्रियो तक पर उनका भयकर अत्याचार हो रहा था।

उस समय पर्यूपण के समय मैं फलटण मे था। मैंने महाराज से चर्चा की कि हिन्दुओ पर मुसलमान अवर्णनीय अत्याचार कर रहे है। सहसा उनके मुख से ये शब्द निकल पडे "कि दो तीन दिन के भीतर ही उन लोगो का पतन होगा।" तीसरे दिन ही रेडियो पर सुना कि सरदार पटेल के आदेश पर जनरल चौधरी ने हैदरावाद पर पुलिस कार्य-वाही (Police Action) रूप आक्रमण कर कव्जा कर लिया।

मैंने महाराज से कहा आपके कथन के अनुसार वात हो गई। ऐसा आपने किस आधार पर कहा था। उन्होने कहा, "हमारा हृदय जैसा वोला था वैसे हमने कह दिया था।"

भारत सन् १९४७ मे स्वतन्त्र हो गया था। जनवरी के अन्त मे एक दिन महाराज ने कहा, "वड़ा अनर्थ होगा। उन्होने उस दिन उपवास भी किया। दूसरे दिन ३० जनवरी को गोडसे ने गाधीजी की निर्मम हत्या कर दी। महाराज ने मेरे पूछने पर कहा, "हमारा हृदय कहता था, वड़ा भारी अनर्थ होगा, वैसा हमने तुम्हे कहा था"।

इस प्रकार उन सत शिरोमणि की आत्मा मे भविष्य की अनेक घटनाओ का पूर्व रूप प्रतिविम्वित हो जाया करता था।

मंगल तीर्थ यात्रा

महाराज तपोग्नि मे अपनी आत्मा को परिशुद्ध वना रहे थे। वे कुम्भोज वाहुवली मे सघ सहित विराजमान थे। उस समय उदीयमान पुण्य शाली सेठ पूनमचद घासीलालजी जवेरी वम्वई के मन मे इच्छा जगी कि यदि गुरुदेव शिखर जी की यात्रार्थ सघ सहित चले, तो हम सव प्रकार की आर्थिक व्यवस्था करेगे और सघ की सेवा भी करते रहेगे। उन्होने गुरु देव के समक्ष अपने मनोगत भाव व्यक्त किये। सुयोग की वात, महाराज ने प्रार्थना स्वीकार करली। जिसने यह समाचार सुना, उसने अपार आनद का अनुभव किया।

सन १९२७ के कार्तिक माह के अन्त मे अष्टान्हिका पर्व के वाद सघ

का बिहार हो गया। सघ की व्यवस्था श्रेष्ठ रीति से की गई थी। लगभग दो सौ व्यक्ति उस तीर्थयात्रा सघ मे थे।

आचार्य पद

जब सघ समडोली ग्राम मे आया, तब वहा नेमिसागर जी ऐलक नें मुनि दीक्षा ली। वीरसागरजी की भी मुनि दीक्षा सपन्न हुई। वहा ही समस्त सघ ने महाराज को आचार्य पद से समलकृत कर स्वय को कृतार्थ किया। अब मुनि शातिसागर जी आचार्य महाराज कहे जाने लगे।

सघ का पैदल बिहार होता था। जहा सूर्य अस्त हुआ वहा ही सघ रुक जाता था। आचार्य श्री आदि महाव्रती उच्च साधुगण अपनी-अपनी कुटियो मे बैठ जाते थे। प्रभात होते ही सामायिक होने के पश्चात् सघ का विहार हो जाता था। सघ जगलो से भी जाता था, तब वहा मगल मय वातावरण उत्पन्न हो जाता था। हजारो की सख्या मे आसपास के लोग इन महामुनियों के दशन हेतु एकत्रित हो जाते थे। ऐसा आनन्द आता था, कि उसका वर्णन नही किया जा सकता। ऐसा प्रतीत होता था, मानो समवशरण का बिहार हो रहा है। रास्ते मे अनेक रियासते पड़ी। उन रजवाडो के राजाओ ने बडे वैभव के साथ सघ का स्वागत कर अपने को कृतार्थ किया था। कभी-कभी मार्ग मे विघ्नो के वादल इकट्ठे होते थे, किन्तु बाल ब्रह्मचारी महान योगी आचार्य श्री के पुण्य प्रताप से विघ्न क्षण मात्र में दूर हो जाया करते थे।

अपूर्व प्रभावना करता हुआ, सघ सन १९२८ के फागुन मे शिखर जी पहुच गया। वहा अष्टाह्निका महा पर्व पचकल्याणक महा पूजा पूर्वक महान वैभव सहित सपन्न हुआ। लाखो की सख्या मे उत्तर भारत के जैनो ने एकत्रित होकर महान पुण्य सचय किया, जीवन को निर्मल वनाया और अपने को कृतार्थ अनुभव किया। उस समय शिखर जी ने एक विशाल धर्मपुरी का रूप धारण कर लिया था।

सघ ने समस्त उत्तर भारत मे विहार करके जीवो का अवर्णनीय कल्याण किया। जब सन १९३० मे सघ भारत की राजधानी दिल्ली पहुचा था, तव यह भय था कि दिगम्बर साधुओ के विहार मे बाधा आए बिना न रहेगी। अहिसात्मक साधना के हेतु स्वय को दिगम्बर बनाने वाले साधुओ को विहार मे विघ्न करना महान दुष्टता पूर्ण कार्य था। इतिहास

इस वात का साक्षी है, कि सदा से दिगम्बर मुनि-राज विहार करते हुए स्व तथा जगत् का कल्याण करते चले आ रहे है। आचार्य महाराज ने अपने शिष्यो को उस समय आदेश,दिया था, कि राजधानी के मुख्य-मुख्य स्थानो पर वे विहार करे। सघकी महिमा सर्वत्र व्याप्त होने मे कोई भी विघ्न नही आया।

मार्मिक शका

एक विचार शील अग्रेज अधिकारी ने महाराज से पूछा था, "आपने ससार को क्यो छोडा ? क्या ससार मे रहकर आप शान्ति नही प्राप्त कर सकते ?"

आचार्य श्री ने उसे समझाया, "धन, धान्य, वस्त्रादि सामग्री के पास रहने पर मन उनकी ओर जाया करता है। उनके निमित्त से राग द्वेष आदि विकार उत्पन्न होकर आत्मा की शाति मे वाधा उत्पन्न करते है। जैसे पवन के चलने पर सरोवर मे लहरे उत्पन्न होती हैं, पवन का संचार रुकने पर सरोवर का जल शान्त हो जाता है, इसी प्रकार वाह्य सामग्री आत्म शाति मे वाधक होती है। उसके परित्याग हो जाने पर मन स्थिर तथा शान्त हो जाता है। मनके शान्त होने पर आत्मा भी शांति का अनुभव करती है। निर्मल जीवन द्वारा मानसिक शाति (Mental Peace) आती है।"

"परिग्रह को रखते हुए पूर्ण अहिसा की साधना असभव है। आज तक जीव ने कितना नही खाया, पिया, सुख भोगा किन्तु तृष्णा शान्त नही हुई। विषयो की लालसा की वीमारी वढती ही जाती है। भोगो के जाल मे फसा यह जीव आत्मा की ओर उन्मुख न होकर जड़ पदार्थों की उलझनो मे उलझा रहता है। दूसरी वात, मरने के वाद सग्रह की गई सारी सामग्री यहां ही पड़ी रह जाती है। अतः वाहरी सामग्री से संवध न रखना शान्ति तथा कल्याण का उपाय है। सच्ची शाति की उपलव्धि का साधन दिगम्बर वृत्ति होने से हमने दिगम्बर मुद्रा धारण की है। इसके द्वारा जीव परमात्मा का पद (Godhood) प्राप्त करता है।" आचार्य महाराज की अनुभव पूर्ण तर्क सगत वातो को सुनकर वह अग्रेज हर्षित हुआ और उसने उनको प्रणाम किया।

आचार्य श्री की तेजोमय मुद्रा, उनकी दिव्य वाणी को सुन कर

अगणित लोगो ने सदाचार की ओर अपने जीवन को मोडा और सयम को यथा शक्ति स्वीकार किया था।

चारित्र चक्रवर्ती

जब सघ गजपथा (नासिक)आया, तब वहा आचार्य श्री ने चातुर्मास व्यतीत करने का निश्चय किया। चातुर्मास के पश्चात्, वहा पच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ। जिस महोत्सव मे आचार्य महाराज सदृश महान आत्मा विराजमान हो, वहा के आनद का क्या वर्णन किया जाय ? हमने लगभग बीस वर्ष तक महाराज के सपर्क मे आकर उनके महान आध्यात्मिक प्रभाव का चमत्कार देखा है। विशुद्ध श्रद्धा, महान ज्ञान और श्रेष्ठ सयम की समाराधना द्वारा उनकी आत्मा अपूर्व हो रही थी। वहा उपस्थित धार्मिक सघने महाराजको "चारित्र चक्रवर्ती" पद से अलकृत कर अपने को कृतार्थ माना।

उस समय महाराज ने अपने जीवन को लघु बताते हुए, उस पद की महत्ता पर प्रकाश डाला। समाज की प्रार्थना तथा भक्तो के अनुरोध होने पर वे चुप हो गए। यथार्थ मे सम्यक्चारित्र रूप चक्रका प्रवर्तन कर महाराज ने चारित्र चक्रवर्त्ती का ही तो काम किया था। जहॉ सामान्य व्रती गृहस्थ का दर्शन असभव माना जाता था, वहा पचमहा-व्रतो का पालन करने वाले अनेक बाल ब्रह्मचारी मुनियो आदि का दर्शन होने लगा, यह किसका प्रताप है ? आचार्य श्री के द्वारा प्रवाहित चारित्र की गगा मे स्नान करके अनेक भाग्यवानो ने स्वहित संपादन किया।

चारित्र

एक बार मैने कहा, "महाराज ! कुछ लोग चारित्र को व्यर्थ की वस्तु सोचकर सम्यग्दर्शन को ही सार रूप बताते है। मोक्ष का क्या उपाय है ?"

महाराज ने कहा, "सम्यक्त्व के होते हुए भी जीव मोक्ष नही पाता है। ज्ञान की स्थिति निराली है। वह तो, "गंगा गए गगा दास, जमुना गए जमुना दास' समान श्रद्धा के अनुसार अपना रग बदलता है। वही ज्ञान सम्यग्दर्शन सहित सम्यग्ज्ञान होता है और उसके अभाव मे मिथ्याज्ञान कहलाता है। इसलिए ज्ञान का भी मूल्य नही है।" मैने कहा, "तब फिर मूल्य किसका है ?"

महाराज ने कहा, "मूल्य है सम्यक् चारित्र का। सम्यक्चारित्र के होने पर निश्चय से मोक्ष होता है ।।

मैंने कहा, "आपका उत्तर बड़ा मार्मिक है। आपने सम्यक् शब्द युक्त चारित्र को पकड़कर सम्यक्त्व को भी बुला लिया और सम्यक्त्व के होने से उसका अभिन्न हृदय मित्र ज्ञान भी आ गया।"

महाराजने कहा, "सम्यक्त्व और चारित्र का घनिष्ठ सबध है, तब एक की ही प्रशसा क्यो की जाती है। सम्यक्त्वकी प्राप्ति दैव के आधीन है, चारित्र पुरुषार्थ के आधीन है।"

सयम यदि सम्यक्त्व सहित है तो वह मोक्ष का कारण है, तथा यदि वह सम्यक्त्व रहित है तो वह नरकादि दुर्गतियो से जीव को बचाता है। अत जब तक काल-लब्धि आदि साधन सामग्री नही प्राप्त हुई है, तब तक भी सयम का शरण लेना हितकारी है। सदाचरण रूप प्रवृत्ति कभी भी पतन का कारण नही होगी। व्रताचरण के द्वारा समलकृत जीव देव-गति मे जाकर महाविदेह मे विद्यमान सीमधर आदि तीर्थकरो के समवशरण मे पहुँच सकता है तथा उनकी दिव्य ध्वनि सुनकर मिथ्यात्व परिणति का त्याग करके वह सम्यक्त्व द्वारा आत्मा का उद्धार कर सकता है।

आगम मे कहा है, क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना तथा प्रायोग्य रूप लब्धि चतुष्टय के प्राप्त हो जाने पर भी जब तक करण लब्धि प्राप्ति नही होती, तब तक सम्यक्त्व की प्राप्ति असम्भव है। ग्यारह अग का ज्ञाता भी करण-लब्धि के अभाव मे सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त नही कर पाता।

सदाचार

महर्षि कुन्दकुन्द कहते हैं, "जब तक सम्यक्त्व की प्राप्ति नही होती तब तक यह उचित है कि सम्यक्त्व रहित अवस्था मे तू हिंसा आदि का त्याग करके अहिसा, ब्रह्मचर्य, सत्य आदि व्रतो के द्वारा अपना भविष्य उज्ज्वल बना। सम्यग्दर्शन के अभाव मे व्रतादि का परिपालन पशु-नरक आदि पर्यायो मे पतन मे जीव की रक्षा करता है। यदि व्रतादि को हानि-कारक मान जीव हिंसादि पापो मे प्रवृत्त होता है तो वह नरकादि मे दुःख भोगा करता है।" भगवान आदिनाथ के पुत्र चक्रवर्ती भरत के पुत्र मरीचि कुमार को सम्यक्त्व की प्राप्ति नही हो पायी थी, इनमे उस जीव को किंचित न्यून एक कोडा कोडी सागर प्रमाण काल पर्यन्त मिथ्यात्वी की

स्थिति में रह कर महान दुःख भोगना पडा था। विवेकी पुरुषो को यह बात गहराई से सोचने की है, कि श्रेष्ठ उपदेश आदि सामग्री मरीचि कुमार को प्राप्त थी, फिर भी करण-लब्धि के लाभ न होने से वह जीव सम्यक्त्वी न बन पाया। ऐसी स्थिति मे वर्तमान काल मे हमें सम्यक्त्व प्राप्त हो ही जायेगा, क्योकि हमने समयसार को खूब पढा है, सुना है, अध्यात्म वादियो का सत्संग किया है आदि सोचना उचित नही है। आज की परिस्थिति मे हमे तत्काल यथाशक्ति व्रतादि परिपालन रूप सदाचार के कार्य मे प्रवृत्त होना चाहिए। रइधू कवि की यह वाणी स्मरण योग्य है, "सयम विनु घडिय म इक्क जाहु—"सयम के बिना एक क्षण भी न जाने दो।"

यह शका उठती है कि सम्यक्त्व के बिना सयम से क्या लाभ होगा ? इसका समाधान यह है कि उसके अभाव मे सयम द्वारा कुगति पतन से जीव की रक्षा होगी।"

मोक्ष पाहुड मे कुन्दकुन्द स्वामी कहते है।

वरं वय-तवेहि सग्गो मादुक्ख होइ णिरय इयरेहि ॥२५॥

(वरं व्रततपोभिः स्वर्गः मा दुक्ख भवतु नरके इतरैः)

(सम्यक्त्व रहित) व्रत तथा तपो के द्वारा स्वर्ग जाना है। अव्रती हो तथा सयम रहित होकर नरक मे जाना हितकारी नही है।

अन्य सम्प्रदायो मे जैन धर्म की संयम और सदाचरण के लिए प्रसिद्धि है। हिन्दू सन्त विनोबा भावे ने कहा था, "बुद्ध ने करुणा, महावीर ने सयम और वेदान्त ने मुक्ति का उपदेश दिया। भक्ति और करुणा का अश लोगों मे है, किन्तु सयम नही है। आज की समस्यायो की जड मे असयम है। सयम बहुत जरूरी है।" जो व्यक्ति चारित्र से द्रोह कर असयम की विभूति सोचा करते है, वे इन्द्रियो की गुलामी को महत्ता प्रदान करते है। आचार्य शान्ति सागर महाराज चारित्र रूप धर्म-चक्र का प्रवर्तन करते हुए चारित्र चक्रवर्ती रूप मे सर्वत्र जयशील हुआ करते थे। अग्नि के ताप से सुवर्ण परिशुद्ध होता है तथा तपस्या रूप अग्नि द्वारा कर्मो का क्षय होकर आत्मा परम पद को प्राप्त होती है। भगवान धर्मनाथ तीर्थकर के स्तवन मे समन्त भद्र स्वामी ने कहा है—

"कर्मकक्ष मदहत्तपोग्निभि शर्मशाश्वतमवाप शंकर"

हे जिनेन्द्र ! अपने तपोग्नि द्वारा कर्म रूप वन को दग्ध करके अविनाशी सुख को प्राप्त किया और आप सुख के दाता शकर प्रसिद्ध हुए।

भ्रान्त कल्पना

कुछ व्यक्ति कहते है, हमे विषय भोगो को त्याग हेतु प्रतिज्ञा के चक्कर मे नही पडना चाहिए। जब भगवान सर्वज्ञ के ज्ञान में हमारी आत्मा का चारित्र रूप परिणमन झलका है, तब स्वयमेव हमारी आत्मा चारित्र रूपी अलकार रस से अलकृत हो जायेगी, क्योकि उनका विश्वास है :—

जो-जो देखी वीतराग ने सो-सो होसी वीरा रे।
अनहोनी कहुं होहै नाहीं, काहे होत अधीरा रे॥

ऐसे प्रमाद प्रचुर व्यक्ति को यह बात सोचने योग्य है—

क्या-क्या देखी वीतराग ने तू क्या जाने वीरा रे।
वीतराग की वाणी द्वारा दूर करो भव पीरा रे॥

इस शरीर तथा इन्द्रिय की आराधना मे निरतर निमग्न रहने वाले को सत्पुरुष कहते हैं—

मन तू सड़े शरीर मे क्या मानै सुख चैन।
जहां नगारे कूच के बजत रहत दिन रैन॥

स्वय सयम की श्रेष्ठ समाराधना करने वाले साधुराज की वाणी का अद्भुत प्रभाद पड़ा करता था। उनके निकट सपर्क मे आने वाले प्रायः सभी व्यक्तियो ने उच्च सदाचार द्वारा अपने जीवन को समलकृत किया था। जो कमजोर दिल वाले व्रताचरण से डरते थे, उन्हे महाराज कहा करते थे। "वावानो भीउ नका, सयम धारण करा' भाई ! डरो मत। संयम को धारण करो।

विशेषता

महाराज मे यह विशेषता थी, कि वे किसी पर दवाव डालकर व्रत नही देते थे, वे पात्र, अपात्र का गहरा विचार कर व्रत देते थे।

एक दिन किसी व्यक्ति ने उच्च व्रत दान के हेतु प्रार्थना की, किन्तु आचार्य श्री ने उसकी शक्ति का विचार कर उसके अनुकूल छोटा सयम दिया। मैंने कहा, "महाराज ! जब कोई व्यक्ति बडा व्रत माँगता है, तब उसे वह व्रत देने मे आप को क्या वाधा आती है ?

महाराज ने कहा, "यदि हम उसकी योग्यता का विचार न करके वडा व्रत दे, तो वह आगे भ्रष्ट होकर दुर्गति मे जायेगा और दु.ख भोगेगा, इसलिए जीव के हित को देखकर हम काम करते है।" उनसे व्रत प्राप्त

व्यक्तियो ने सयमी जगत् मे अपने गुरुदेव का मुख उज्ज्वल किया है। वर्तमान के साधुओ से प्रार्थना है कि वे आचार्य महाराज की गम्भीर दृष्टि को न भूले। इसमे स्व पर का हित गर्भित है। शक्ति से अधिक व्रत लेने वाला आगे जाकर धर्म को लॉछित करता है।

आचार्य श्री का प्राण जिनागम था। उसके विरुद्ध वे एक भी बात न कहते थे, और न करते थे। वे कहते थे, "यदि एक बालक भी आकर हमे आगम दिखाकर हमारी भूल बतावेगा तो हम अपनी भूल सुधारेंगे। हमारा सच्चा प्राण आगम है। समाज मे प्रचलित आगम विपरीत प्रवृत्तियो के विरुद्ध उपदेश देने मे आचार्य श्री को तनिक भी सकोच नही होता था। जन समुदाय के विरोध की उन्हे तनिक परवाह नही थी। आचार्य महाराज ने अपने तप पुनीत जीवन तथा उपदेशो द्वारा जन साधारण का जितना कल्याण किया. उतना हजारो उपदेशक तथा बडे-बडे राज्य शासन भी कानून द्वारा सम्पन्न नही कर सकते थे।

यशोलिप्सा से दूर

अग्रेजी कवि मिल्टन ने यशोलिप्सा को मानव हृदय की गहरी दुर्बलता (Last infirmity of noble mind) कहा है, किन्तु महाराज उस बीमारी से बहुत दूर थे। सन् १९५२ मे १४ जून को समस्त भारत के दि० जैन समाज के नेताओ का समुदाय फलटण मे आचार्य श्री की हीरक जयती समारोह मनाने को एकत्र हुआ था। सबने श्रद्धा के सुमन चढाए और साधु-राज के उच्च गुणो का गान किया।

उस समय गुरुदेव ने कहा था, "इस श्रद्धाञ्जलि-महोत्सव से हमें जरा भी हर्ष नही है। हमे अपनी स्तुति सुनकर राई बराबर भी हर्ष नही होता। इससे हमे स्वर्ग नही मिलता है। तुमने हमे श्रद्धाञ्जलि अर्पित की अथवा निन्दा की तो क्या हुआ। हमारी दृष्टि मे दोनो का मूल्य नही है। समस्त जगत् अनित्य है। जब बडे-बडे ऋद्धिधारी मुनीश्वर नही रहे, तब हम क्या चीज है?"

इस पर हमारे सबसे छोटे भाई सन्मति कुमार ने कहा, "महाराज आपका गुण गौरव करने से भव्य जीवो को पुण्य की प्राप्ति होती है इसलिए उसे आप निरुपयोगी क्यो कहते है?"

महाराज ने कहा, "हमारे लिए पुण्य और पाप दोनो समान है। वे

दोनो भी वेडी के समान है। श्रद्धाजलि से या निन्दा से हमे क्या है ? यह उत्सव तुम लोगो को वडे महत्व का दिखता है, किन्तु हमे कोई महत्व नहा दिखता। हम तो चाहते है कि लोगो के प्रगसा के शब्द तक हमारे कान पर न आवें। हम निन्दक और वन्दक दोनो को एक समान मानते है।"

मार्मिक देशना

महाराज ने हीरक जयती के अवसर पर कहा था "धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ है। इनमे मोक्ष श्रेष्ठ है। धर्म की आराधना द्वारा अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए धर्म पुरुषार्थ का महत्व है।"

"आचार्य उमास्वामी ने सम्यक् दर्शन, ज्ञान तथा चारित्र को मोक्ष का मार्ग कहा है। केवल सम्यक्त्व के बाद ही मोक्ष नही होता। जिनेन्द्र भगवान की वाणी पर श्रद्धान करने से सम्यक्त्व होता है। जिनेन्द्र की वाणी पूर्णतया सत्य है। भगवान की वाणी का एक वाक्य तक जब जीव का कल्याण करता है, तव सम्पूर्ण जिनागम का स्वाध्याय क्या नही करेगा ? इस पचम काल मे केवली भगवान नही है। उनकी वाणी के सिवाय अन्यत्र कल्याण नही है।"

"जिनेन्द्र का मदिर नही होगा तो श्रावको का धर्म भी नही रहेगा और श्रावको के अभाव मे मुनिधर्म कैसे रहेगा ? मुनि धर्म जब तक रहेगा तव तक जिन धर्म रहेगा। इसी दृष्टि से धर्म के आधार स्तम्भ जिनमदिरो की पवित्रता के रक्षण निमित्त हमे प्रयत्न करना पडा। यदि भगवान का स्थान नही रहा तो हम भी नही रहेगे। हमे भगवान की आज्ञा माननी चाहिये। भगवान की वाणी मे लिखा है कि अभी जिनधर्म का लोप नही होगा। अज्ञान के अधकार मे भटकने वाले जीवो को शास्त्र अजीव होते हुए भी मोक्ष का मार्ग वताता है। जो बात आदिनाथ भगवान ने कही थी, वही वात दूसरे तीर्थकरो ने बतायी। सागरो पर्यन्त काल वीतने पर भी जिनेन्द्र की वाणी मे कोई अतर नही पडा है। इस वात पर दृढ श्रद्धा रखनी चाहिए।"

"शास्त्र मे लिखा है, हिसा झूठ चोरी कुशील और परिग्रह के त्याग से जीव हीन गतियो मे नही जाता है। व्रती जीव देवगति मे जाता है। इसलिए पच पापो के त्याग रूप व्रत को ग्रहण करना चाहिए। सम्यक् दर्शन

तो देखने में नही आता है; किंतु व्रत धारण किया है यह बात प्रत्येक के देखने मे आती है इसलिये सब लोगो को हिसा आदि पापो का त्याग कर आत्म कल्याण हेतु व्रती बनना चाहिये।"

महाराज ने अपने मार्मिक उपदेश मे कहा था "अढ़ाई द्वीप में विद्यमान समस्त मुनियो मे हमारा अतिम स्थान है। हम उत्सव को तो रोक रहे थे, किन्तु लोग सुनते नही है।"

संकट निवारण का उपाय

उन्होनें कहा था "आज धन-धान्य का कष्ट है। प्रजा के सकटो की सीमा नही है। इसका क्या कारण है ? यदि लोग धर्म के मूल दया का रक्षण करे, तो वह धर्म तुम्हारे सकटो को दूर करेगा। जिनेन्द्र की वाणी दीपक के समान है। मोह के अधकार मे फसे हुए जीवो को जिनवाणी रूप दीपक को नही भूलना चाहिए। जिनेन्द्र की वाणी के मंत्र को पाकर कुत्त के जीव ने देव पद पाया था। भगवान की वाणी का साक्षात जिनेन्द्र के समान आदर करना चाहिये। जिनेन्द्र की वाणी मे अपार शक्ति है। उसमे हमारा विश्वास नही है, इसलिए हम असफल होते है।" उन्होने कहा था, "भगवान की वाणी और्षधि के समान है और पापो का त्याग करना उस औषधि ग्रहण के लिए पथ्य के समान है। यह स्मरण रखो कि अभी पचमकाल का बाल्यकाल है। अभी सत्य धर्म का लोप नही होगा।

अहिंसा का रहस्य

अहिसा के विषय मे उन्होनें कहा "जैन धर्म मे सर्वदा सकल्पी हिसा (Intentional Injury) न करने की आज्ञा है। गृहस्थ विरोधी हिसा नही छोड सकता है। गृहस्थ के घर मे चोर घुस गया है अथवा आक्रमणकारी आ गये है, क्या तब वह उन्हे नही मारेगा ? वह निरपराधी जीव की हिसा नही करेगा। वह मास नही खायेगा। वह शिकार नही खेलेगा। वह निरपराधी जीव की रक्षा करते हुए सकल्पी हिसा का त्याग करेगा। इस प्रकार के आचरण द्वारा जैन नरेश अहिसा धर्म को पालते रहे है।"

महाराज ने कहा, "श्रावको के अष्टमूल गुणो मे यही अहिसा का भाव है। मुनियो के ८४ लाख उत्तर गुणो मे भी यही अहिसा का भाव है। जीव और पुद्गल रूप कर्म सब अलग अलग है। इस वात का श्रद्धान

करना चाहिये। तत्त्व श्रद्धान रूप सम्यग्दर्शन की पहिचान प्रशम, सवेग, अनुकम्पा तथा आस्तिक्य भाव द्वारा होती है। यदि तुम्हे कल्याण करना है तो जिनवाणी तथा आत्मा पर विश्वास रखो।" आचार्य महाराज आस्तिक्य गुण को महत्वपूर्ण मानते थे। जिनेन्द्र भगवान के आगम मे पक्का विश्वास आस्तिक भाव है। आगम की श्रद्धा शून्य व्यक्ति कभी भी सम्यक्त्वी नही कहा जा सकता है।

मार्ग दर्शन

उपदेश के अ त मे आचार्य महाराज ने कहा "जगत के सभी पदार्थ विनाशीक है। अभी राम नही है, कृष्ण नही है, भरत नही है। इसी प्रकार दूसरे भी नही रहेगे। हम भी नही रहेगे। इस शरीर को छोड़ कर दूसरी देह को धारण करना पड़ेगा इसलिए आगे के मकान की व्यवस्था क्यो नही करते। हमारा यही कहना है कि अहिसा धर्म के मार्ग पर लगो। इसके द्वारा तुम्हारा और ससार का कल्याण होगा।"

आचार्य महाराज के श्रेष्ठ व्यक्तित्व के कारण उनके मार्मिक शब्द हृदय के अन्तस्तल मे प्रवेश करते थे। राजनीतिज्ञो के भाषणो मे लाखो लोग एकत्रित होते है, उनके उपदेश ऊसर भूमि मे मूसलधार वर्षा सदृश होते है। आचार्य जी की वाणी द्वारा अगणित आत्माओ ने जीवन शोधन कर सच्चे कल्याण का पथ पकडा था।

आचार्य श्री की अन्तर्मुखता, जैसे जैसे वृद्धि को प्राप्त होती थी, वैसे वैसे उनकी वाणी और सान्निध्य का अद्भुत प्रभाव दिखाई पड़ता था। जैसे मछली को पानी मे फिरते समय कोई कष्ट नही होता, उसी प्रकार चित्त को स्थिर कर आत्मा का ध्यान करने मे महाराज को कोई कठिनाई नही प्रतीत होती थी।

एकाग्रता

एकबार मैंने पूछा "आपका शास्त्र स्वाध्याय का कार्यक्रम सतत चालू रहता है, क्या इसका लक्ष्य मन रूपी बदर की चचलता पर नियत्रण लगाना है?"

महाराज बोले, "हमारा बंदर चचल नही है। हमारे पास चचलता के कारण नही है। जिनके पास परिग्रह की उपाधि रहती है, उनका मन

स्थिर न होकर चचल रूप बनता है। देखो! एक तोता जहाज के मस्तूल के शिखर पर बैठ गया। जहाज चलकर समुद्र के मध्य मे चला गया। उस समय वह तोता उडकर जाना चाहे, तो वह बाहर कहा जायगा? उसको ठहरने का स्थान भी तो चाहिए। इस कारण वह एक ही जगह पर बैठा रहता है। जैसे उस तोते का आश्रय जहाज ही रहता है, उसी प्रकार घर, परिवार आदि का त्याग करने के कारण हमारा मन चचल होकर जायगा कहा? यह उन्होने कहा हमारा मन अन्यत्र आश्रय न होने से अपने आप आत्मा की ओर आकर टिकता है।"

एक बार ध्यान के विषय मे हमने महाराज से चर्चा चलाई, तब महाराज बोले हमारे चित्त मे गडबडी या किसी प्रकार की चिन्ता नही है। हमे मोक्ष की भी चिन्ता नही है। अनादि काल से ससार में रहे, तो जल्दी किस बात की है? दो चार भवो मे चले जावेगे। हमे शास्त्र की भी चिन्ता नही है। उसे पढना सुनना आवश्यक है, इससे पढते है, सुनते है। पढना ही चाहिए ऐसी बात नही है।" उन्होने अपनी दृष्टि को स्पष्ट करते हुए कहा, "मुख्य रहस्य जब समझ मे आगया, तब दस बार पढने मे या एक बार पढने मे क्या बात है?"

संस्कारित योगी

आचार्य श्री जन्म जन्मान्तर के श्रेष्ठ सस्कारो से सस्कारित महान योगी थी। वे आर्तध्यान रौद्रध्यान रूप दुर्ध्यानो से दूर थे। वे स्वय कहते थे हमे आर्तध्यान, रौद्रध्यान कभी नही होता। उनकी आत्मा सदा धर्म ध्यान या धर्म भावना की ओर प्रवृत्ति करती थी। अध्यात्म विद्या के विषय मे उनकी श्रेष्ठ स्थिति थी। बौद्धिक स्तर पर आत्मा की चर्चा करने वाले बहुत मिलेगे, किन्तु अनुभव के आधार पर उस अतीन्द्रिय स्पर्श, रस, गध तथा वर्णातीत आत्मा के विषय मे वे अद्वितीय प्रकाश प्रदाता थे। उन्होने कहा था, "आत्मध्यान मे हमे शरीर का भी पता नही चलता है, तब अन्य बातो का क्या पता चलेगा? आत्मा के ध्यान मे स्थिर होने पर इद्रियों का सुख दु ख प्रतिभासित नही होता। वहा तो आत्मा का ही आनन्द है।"

इद्रियो से प्राप्त भोग जनित सुखो के बारे मे महर्षि कहते थे, वह अज्ञानी का आनन्द तो पागल का सुख है। यथार्थ मे स्वरूप को भूलने वाला पागल के समान फिरने वाली आत्मा सुख शून्य बाह्य पदार्थो मे सुख को खोजा करती है और मानती है कि मैने सुख पा लिया है। मिथ्यात्व के

कारण उन्मत्त बना प्राणी इंद्रियजनित सुखाभास को सुख मानता है। राम कृष्ण परमहस कहते थे विषयी मन गोबर के कीडे के समान गोबर समान विषयो मे आनन्द मानता है।

आचार्य श्री ने एक दिन बडी गहरी तथा मार्मिक बात कही थी, "अरे! जब छह मास के अभ्यास से आत्मा का परिचय हो जाता है, तो उसमे सारा जीवन लगा देनेपर वह क्यो नही होगा? हम बाजार मे भी ध्यान कर सकते है। बताओ हमारे आत्म ध्यान मे बाजार क्या करेगा?" उन्होने अपने अनुभव के आधार पर यह बताया, "ध्यान के आरम्भ मे कठिनाई मालूम पड़ती है, पश्चात् वह अभ्यास द्वारा सरल हो जाता है। ध्यान करते समय कितने मिनिट ध्यान मे गए, इसका ध्यान ही नही रहता है।" यही बात महामुनि वर्धमान सागर महाराज ने भी अपने ध्यान के बारे मे कही थी।

उपवास का रहस्य

अभ्यास से सब काम सरल हो जाता है। मार्ग से चलने पर सफलता मिलती है। मार्ग छोडकर चाहे प्राण भी दो, चाहे उपवास करो, परमार्थ की प्राप्ति नही होगी। उपवासमे आत्मा नही है। ऐसा आचार्य श्री ने खुलासा किया। मैने पूछा, यदि उपवास मे आत्मा नही है, तो क्या व्रत उपवास व्यर्थ है? आप क्यो उपवासादि कठोर तप करते है? आपने सिह-विक्रीडित आदि महान तप क्यो किये?

महाराज ने कहा, "अल्प आहार या उपवास से प्रमाद कम होकर विचारशक्ति बढती है। जब हम लम्बे उपवास करते हैं, तब तत्त्वचितन मे चित्त बहुत लगता है।"

मैंने पूछा, "लम्बे उपवासो के करते हुए आपकी निद्रा का क्या हाल रहता है?"

महाराज, "ऐसे समय मे नीद नाम मात्र को आती है।"

प्रश्न, "उस समय आप क्या सोचते है?

महाराज, "उस समय हम आत्मा का ही विचार करते है। बाहरी पदार्थो की ओर चित्त स्वय नही जाता। आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान उत्पन्न न होवे, इसकी हम पूर्ण सावधानी रखते है।"

वास्तव मे बहिरात्मा शरीर पोषण के सिवाय उपवास आदि की महत्ता का मूल्याकन नही कर पाते, किन्तु सत्पुरुष उसे आत्मोपलब्धि

तथा चित्त की एकाग्रता का साधन मानते हुए इद्रियो को वश मे करने का महान साधन स्वीकार करते है।

गाधी जी ने उपवास के विषय मे जो अनुभव प्राप्त किया उसके प्रकाश मे उन्होने ये महत्वपूर्ण शब्द लिखे थे, "जब पूर्ण आत्म प्रकाश के हेतु उपवास किया जाता है तथा जब शरीर पर आत्मा का प्रभुत्व स्थापित करने के हेतु उपवास काम मे लाया जाता है तब उसका मनुष्य की प्रगति मे अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग हो जाता है।"

उपवास व्रत आदि के द्वारा आत्मा मे सचित कर्मो की राशि का क्षय होता है। यह बात अवश्य है कि अपनी शक्ति के अनुसार उपवास आदि कल्याणकारी है। वृषभदेव आदि तीर्थकरो ने घोर तपश्चर्या का आश्रय ले कर्मो का नाश किया था। उपवास को जो व्यर्थ मानते है और आत्म शुद्धि की रट लगाते है उन्हे भगवान आदिनाथ प्रभु के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिये। महान तत्त्व वेत्ता मति श्रुत अवधि तथा मन: पर्ययज्ञान से अलकृत होते हुए भी उन्होने छह माह का लम्बा उपवास लिया था। और पश्चात् आहार की अनुकूलता न मिलने पर एक वर्ष से अधिक समय व्यतीत होने पर उन्होने आहार ग्रहण किया था।

भ्रांति

कोई कोई व्यक्ति शरीर के प्रति गहरी ममता युक्त हो इंद्रियो के दास बनते हुए कहा करते है, हम तो व्रत-तप आदि के चक्कर मे न फस कर भरतेश्वर के समान अतर्मुहूर्त काल मे केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। उन्हे महापुराण मे प्रतिपादित भरत महाराज के जीवन के वृत्तात से यह ज्ञात होगा, कि गृहस्थ अवस्था मे चक्रवर्ती अष्टमी चतुर्दशी को उपवास करते हुए अपना सारा समय धर्मध्यान मे लगाया करते थे। सिह की पर्याय मे उस जीव ने अठारह दिन का उपवास पूर्वक समाधि मरण किया था। इसलिए सयम के मार्ग मे दोष लगाकर अपने पाप प्रचुर जीवन का समर्थन नही करना चाहिये।

तपश्चर्या

आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा—

धुव सिद्धि तित्थयरो चउणाणजुदो करेइ तवयरणं
णाऊण धुव कुज्जा तवयरण णाण जुत्तो वि ॥६०॥

और अनुभवी आचार्य थे।[1] मुण्डकोपनिषद मे अपरा तथा परा नाम से विद्या के दो प्रकार माने गए है। वेद चतुष्टय शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त, छद, ज्योतिष का ज्ञान अपरा विद्या है। जिनके द्वारा अविनाशी ब्रह्म का परिज्ञान होता है, वह परा विद्या है। इस दृष्टि से वैदिक शास्त्र की भाषा मे वे परा विद्या (श्रेष्ठ ज्ञान) के विशेषज्ञ थे। अध्यात्म शास्त्र की कैसी भी गहन कठिनाई हो, उसका उनमे सम्यक् प्रकार से सरल शब्दो मे समाधान प्राप्त होता था। आचार्य वीरसागर जी, आचार्य चन्द्रसागर जी, क्षु० सुमतिसागर जी ने बताया था, कि गृहस्थावस्था मे वे अनेक अध्यात्म विद्या के पडितो से मिले थे, किन्तु उनके हृदय को पूर्ण समाधान वहा नही मिला, किन्तु आचार्य शातिसागर महाराज के पास उनकी समस्त शकाओ का पूर्ण समाधान प्राप्त हुआ था। जब तक साधक उच्च चरित्र युक्त तथा ध्यान करने मे समर्थ नही होगा, तब तक सच्ची आत्म विद्या की उपलब्धि न होगी। तोता के समान ग्रन्थो के रटे वाक्यो को अक्षर पण्डित बता सकेगा, किन्तु अनुभव के स्तर पर तो अनुभव पडित ही कर सकेगा। तत्त्वानुशासन मे मुनि नागसेन कहते हैं—

सगत्याग कषायाणा निग्रह व्रतधारणम्।
मनोक्षाणा जयश्चेति सामग्री ध्यान जन्मनः ॥७५॥

समस्त परिग्रह का त्याग कर दिगम्बर होना, क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषायो का निग्रह करना, अहिसा आदि महाव्रतो को धारण करना, मन तथा इन्द्रियो को वश मे करना ध्यान हेतु यह सामग्री आवश्यक है।

ज्ञान वैराग्य रज्जूभ्यां नित्यमुत्पथ वर्तिन।
जितचित्तेन शक्यन्ते धर्तुमिन्द्रिय वाजिन. ॥७७॥

जिस सत्पुरुष ने मन पर विजय प्राप्त कर ली है, वह सदा कुपथ गामी इन्द्रिय रूपी घोडो को ज्ञान और वैराग्य रूपी रस्सियो द्वारा वश मे करता है।

ज्ञान, वैराग्य सपन्न परिग्रह परित्यागी, कषायो का निग्रह करने वाले, अहिसादि महाव्रतो के श्रेष्ठ समाराधक एव इन्द्रिय-मनोविजेता

१ द्वे विद्ये वेदितव्ये परार्चैवापरा च तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्ववेद शिक्षाकल्पो व्याकरण निरुक्त छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षर मधि गम्यते।(मुण्डकोपनिषद् अ० १,सूत्र ५)

आचार्य श्री अध्यात्म विद्या के सिधु सदृश लगते थे।

सिद्धान्त शास्त्र संरक्षण

उनका समय तत्त्व चिंतन और आत्म ध्यान मे व्यतीत होता था, शेष समय का बहुत भाग शास्त्र स्वाध्याय मे बीतता था। वे शास्त्र ज्ञाता विद्वानो का बहुत सन्मान करते थे। धार्मिक विद्वान् का समागम प्राप्त कर उनके चित्त मे अपार आनन्द होता था। सदाचार शून्य अथवा दुष्ट प्रकृति के शास्त्र ज्ञाता का उनकी दृष्टि मे मूल्य नही था। धवल, जय धवल रूप सिद्धान्त के महाशास्त्रो का उन्होने अनेक बार गहन अभ्यास किया था।

मूडबिद्री के जैन शास्त्र भण्डार से महाबध ग्रन्थ राज को हमे प्राप्त करने का सोभाग्य मिला था। बडे-बडे जैन नेताओ तथा अखिल भारतीय मान्य जैन सभाओ को भी यह ग्रन्थ नही मिल सका था। मूडबिद्री के पचों ने हमें ग्रन्थ देकर अपार प्रेम भाव प्रदर्शित किया था। यह समाचार जब आचार्य शातिसागर महाराज ने सुना, तब उन्हे बडी खुशी हुई। उस समय उन्होंने ब्र० फतेचन्दजी परवार भूषण नागपुर के द्वारा हमारे पास पत्र भिजवाया, कि ग्रन्थ के मूल सूत्रो की नकल करके आचार्य महाराज के स्वाध्याय हेतु हम भेज दे। उस पत्र के उत्तर मे हमने लिखा था, कि चालिस हजार श्लोक प्रमाण समस्त महाबध (महा धवल) सूत्र रूप ही है। उसमे चार पाच हजार श्लोक प्रमाण ग्रन्थ कीडो के खाए जाने से सदा के लिए विलुप्त हो गया। ग्रन्थ के बहुमूल्य अश के विनष्ट हो जाने के समाचार से आचार्य श्री के जिनवाणी भक्त हृदय मे गहरी व्यथा उत्पन्न कर दी।

वे सोचने लगे, यदि शेष ग्रन्थ को ताम्र पत्र मे उत्कीर्ण न किया जाएगा, तो भगवान महावीर की वाणी का कुछ काल वाद लोप हो जायगा। महाराज ने मुझ से कहा था, "तुम्हारे पत्र को पाकर हमे रात्रि भर नीद नही आई। जिस प्रकार आचार्य धरसेन स्वामी को श्रुत के विलोप की चिन्ता हुई थी और उन्होने पुष्पदन्त भूतवलि शिष्य युगल को महाकम्मपयडिपाहुड की देशना देकर उस परमागम की रक्षा की थी, उसी प्रकार की चिन्ता हमारे मन मे हुई। उस समय हम कुँथल गिरि मे थे। उस समय वहा विद्यमान समथ श्रावको के समक्ष हमने अपना भाव व्यक्त किया, कि धवल, महाधवल, जयधवल रूप महान शास्त्रो को ताम्रपत्र मे खुदवा कर रखना चाहिए, जिससे महावीर भगवान की वाणी

नष्ट होने से बचे। समस्त ग्रन्थ एक लाख सत्तर हजार श्लोक प्रमाण है।"

उस समय बम्बई के महादानी सेठ गेंदनमल जी संघपति ने कहा, "महाराज! आप की आज्ञानुसार इस कार्य मे जितना द्रव्य लगेगा, उतना खर्च करने को मैं तैयार हूँ"

महाराज ने कहा "यह काम एक व्यक्ति के बदले मे समस्त समाज के द्वारा सम्पन्न होना चाहिए।" यह कह कर आचार्य श्री मध्याह्न की सामायिक के लिए चले गए।

सामायिक से उठने के उपरान्त महाराज को समाचार दिया गया, कि आप की पवित्र इच्छा पूर्ति निमित्त हम लोगो ने चन्दा कर लिया है। आप इस विषय मे निश्चिन्त हो जाए। इससे जिनवाणी भक्त महाराज के हृदय को बहुत सन्तोष हुआ।

तत्काल "१०८ आचार्य शांतिसागर दिगम्बर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक" संस्था की स्थापना (सन् १९४४ मे पर्यूषण पर्व) हो गई। इसके मन्त्री श्री बालचन्द देवचन्द शहा सोलापुर बनाए गए। और कुछ वर्षो मे मन्त्री जी के सत्प्रयत्न से उपरोक्त आगम ताम्र पत्र मे उत्कीर्ण हो गए। तीनो सिद्धान्त ग्रन्थो के २६६४ ताम्र पत्रो का वजन लगभग ५० मन है। वे ग्रन्थ फलटण के जिन मन्दिर मे रखे गए है। उनमे जय धवला टीका के साठ हजार श्लोक प्रमाण ताम्रपत्र मुम्बई के कालवा देवी रोड पर स्थापित संघपति पूनम चन्द घासीलाल द्वारा निर्मापित अनुपम तथा दिव्य श्री पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर मे विराजमान किए गए।

बिना मूल्य शास्त्र वितरण

आचार्य महाराज की आज्ञानुसार महाबंध का, जो चालिस हजार श्लोक प्रमाण है, संपादन करके मुद्रण का कार्य हमारे द्वारा सम्पन्न हुआ। आचार्य श्री की इच्छानुसार कषाय पाहुड रूप मूल सूत्रो का हमने हिन्दी भाषा मे अनुवाद किया, जो उपरोक्त जिन वाणी जीर्णोद्धारक संस्था द्वारा प्रकाशित हुआ है। वह ग्रन्थ तथा संस्था के अन्य प्रकाशन जिन मन्दिरो को बिना मूल्य स्वरूप दिए गए तथा दिए जाते है। आचार्य महाराज की दृष्टि यह रही है, कि शास्त्र द्वारा सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है, गरीब आदि लोग आर्थिक परिस्थिति वश शास्त्रो का मूल्य देकर उन्हे खरीदने मे कठिनाई का अनुभव करते है, अत. समर्थ व्यक्तियों को बिना मूल्य

ग्रन्थ मन्दिरो को देना चाहिए, जहा सार्वजनिक रूप से सब लाभ ले सकते है।

शोचनीय प्रवृत्ति

आचार्य श्री की धारणा के प्रतिकूल दु.ख है अनेक सम्पन्न श्रीमानों द्वारा स्थापित ग्रन्थ प्रकाशिनी समितियो द्वारा ग्रन्थ प्रकाशन को आमदनी का साधन बनाया जा रहा है, लागत मूल्य से दूनी कीमत तक में ग्रन्थ बेचे जा रहे है, इस प्रवृत्ति से ज्ञानावरण कर्म का आस्रव होता है, जिसके फलस्वरूप आगामी भव मे जीव ज्ञान शून्य होता है, ऐसा अकलक स्वामी नें राजवार्तिक मे कहा है।

शास्त्र दान

सम्यग्ज्ञान के प्रचार हेतु आचार्य महाराज कहा करते थे, "शास्त्र-दान करो। इसमे बडी शक्ति है। शास्त्र दान से सर्वज्ञ केवली होता है। शास्त्र के व्यापार से ज्ञानावरण का बध होता है। शास्त्र के शब्द अन्जन चोर के कान मे पडे थे, इससे उसकी सद्गति हुई। शास्त्र के द्वारा सब जीवो का हित होता है।" कुथलगिरि मे महाराज ने सम्यग्ज्ञान की चर्चा करते हुए कहा था, "स्वाध्याय करो। यह स्वाध्याय परम तप है। शास्त्र के स्वाध्याय द्वारा आत्मा का कल्याण होता है। भगवान की वाणी के द्वारा सम्यग्दर्शन का लाभ होता है। गरीब लोग शास्त्र नही खरीद सकते। उनको शास्त्रो का दान करो। शास्त्र दान महान पुण्य है।"

हीन कृत्य

जैसे दूध मे विष मिला देने से वह दुग्ध पान शक्तिवर्धक न हो प्राण घातक हो जाता है ऐसी स्थिति आजकल कुछ व्यक्तियो ने शास्त्रो की कर दी है। आचार्य परम्परा के प्रतिकूल अपने स्वच्छन्दता के विचारो की पोषक बाते शास्त्रो मे मिला दी जाती हैं, इससे धार्मिको को विचार पूर्वक यह देखना चाहिए कि आर्ष परम्परा का सरक्षण जिस शास्त्र मे हुआ हो, उसे पढा जाय। कुछ लोगो ने शास्त्रो मे से सदाचार पोषक अशो को दूर कर अपना मन माना विचार उसमे जोड़कर महान अनर्थ किया है। दुर्भाग्य की बात है कि कुछ द्रव्य लोलुपी पडितो ने इस काम मे सह-योग दिया। उन्होने यह नही सोचा कि इसका परिणाम हमारे लिए और

संस्कृति के लिए क्या होता है। राजा वसु ने शास्त्र का पाप पोपक अर्थ कर के दुर्गति प्राप्त की यह वात हमारे वधु भूल जाते हैं। अत. यह वात ध्यान मे रहनी चाहिए कि हम आर्प विरुद्ध ग्रन्थो के पठन-पाठन द्वारा अपना अहित न करे। तत्वानुशासन का यह श्लोक महत्वपूर्ण है—

स्वाध्यायः परमस्ता वज्जप. पंचनमस्कृते.
पठनंवा जिनेन्द्रोक्तशास्त्रस्येकाग्रचेतसा ॥

पचनमस्कार मंत्रका जाप स्वाध्याय कहा गया है अथवा एकचित्त होकर जिनेन्द्र प्रतिपादित शास्त्र का पठन स्वाध्याय है।

दूषित दृष्टि

आजकल भ्रम उत्पादक तथा एकान्त वाद पोपक सामग्री को पढने से मनुष्य आत्म हित से विमुख हो, अपने को अध्यात्मवेत्ता माना करता है। वह सदाचार से डरता है। पाप प्रवृत्तियो से नही डरते हैं। उससे यदि कहा जाता है, कि आपको प्रतिदिन दर्शन हेतु मन्दिर मे आना चाहिए तो वह अपने स्वाध्याय मे विकृत मनोभावों के आधार पर कहता है, मेरा आत्मा कर्तृत्व से अलग है। मैं ज्ञातामात्र हू। जव भगवान के ज्ञान मे मेरो मन्दिर आने रूप पर्याय झलकी है, तव ही मेरा मन्दिर पहुचना होगा।

जब हिंसादि पापो तथा व्यसनो के त्याग को कहा जाता है, तो वह उत्तर देता है मेरा आत्मा सदा शुद्ध बुद्ध है, वह पर भाव को ग्रहण नही करता है, अत. त्याग की विडम्वना मे कौन पड़े? क्रोध, मान, माया आदि कपायो के त्याग से अपने को वचाने के लिए कहते हैं, मैं तो ज्ञातामात्र हूं। अगर मैं छोड़ता हू यह स्वीकार करू, तो मुझ पर कर्तृत्व का दोप आ जायगा। जव परिग्रह परिमाण हेतु उपदेश दिया जाता है, तव यह उत्तर दिया जाता है कि पर पदार्थ मात्र मेरा नही है। जव मैंने अमूर्त स्वभाव होने से पर का ग्रहण किया ही नही तव उसके परित्याग की वात ता विचित्र सी लगती है। मैं ज्ञाता द्रष्टा हू, इससे खोटे परिणाम मेरे नही हैं, उनका क्यो त्याग करू? शरीर आत्मा से भिन्न है, दान पूजा, व्रत, उपवास अचेतन शरीर से सम्वन्ध रखते हैं, अत. मैं सिद्ध स्वरूप आत्मा इन व्यर्थ की वातों में क्यों पडू। इस प्रकार की वुद्धि एकात वादी अध्यात्म रचनाओं के पठन पाठन से उत्पन्न हुआ करती है। ये अपना तर्क विपय सेवन के दोष दर्शन मे नही लगाते। वे त्याग धर्म को छोड़ कर अन्य

पाप प्रवृत्तियो के त्याग करने वालो को अपनी निन्दा का निशाना बनाते है।

विषयी सुख का लालची सुन अध्यातम वाद।
त्याग धर्म को त्यागकर करै साधु अपवाद ।।

हित की बात

भोग को अमृत पान और त्याग को जहर मानने वाले इन व्यक्तियों के हितार्थ महात्मा गाधी की यह वाणी ध्यान देने योग्य है, "सयम हीन स्त्री या पुरुष को गया बीता समझिए। इन्द्रियो को निरकुश छोड देने वाले का जीवन कर्ण धार हीन नौका सदृश है, जो नियम से पहली चट्टान से ही टकराकर चूर चूर हो जायगी। आत्मदर्शन की इच्छा रखने वालो को प्रथम पाठ यम-नियम पालन करने का बताया है। सिवाय संयम के मेरे, तुम्हारे या अन्य किसी के पास कोई दूसरा मार्ग नही है। ज्ञान और इच्छा पूर्वक हुए इन्द्रिय दमन से आत्मा का लाभ होता है, हानि नही। इन्द्रिय दमन धर्म है। इस युग में विकारो की महिमा इतनी बढ गई है, कि अधर्म को ही लोग धर्म मानने लग गये है। विकार रोके नही जा सकते अथवा उन्हे रोकने मे हानि है यह कथन ही अत्यन्त अहित कर है।" (नवजीवन)

सयम, त्याग, सदाचार आदि को अध्यात्मवाद की ओट मे बुरा बताने वाले आगे चलकर वाममार्ग के कुचक्र मे फसे बिना नही रहेगे। समन्तभद्र स्वामी ने शास्त्र को 'कापथ घट्टनम', कुपथ का विनाशक कहा है। जो ग्रन्थ कुपथ की ओर व्यक्ति को प्रेरित करते है वे तो शस्त्र है। आचार्य श्री के उपदेश में सच्चे कल्याणकारी ऋषि प्रणीत ग्रन्थो के स्वाध्याय को प्रेरणा दी जाती थी।

आगम पथ

अनेकात दृष्टि से शास्त्रो को देखने वाला संसारी आत्मा को कथंचित् मूर्तिमान मानता हुआ बाह्य त्याग की उपयोगिता का उचित मूल्यांकन करता है। कुन्दकुन्द स्वामी ने भाव पाहुड मे कहा है—

भावविसुद्धि णिमित्तं बाहिरगंथस्स कोरए चाओ ।।३।।

भावो की निर्मलता का कारण होने से वाह्य परिग्रह आदि का त्याग किया जाता है। वाह्य परिग्रह के रहते हुए आत्मा इतनी विशुद्धि नही प्राप्त करता है कि वह समस्त कर्मो का क्षय कर सके। परिग्रहधारी

ऐलक भी पाँचवे गुणस्थान से आगे नही जाता है। वाह्य परिग्रह त्याग करके ही समर्थ निकट ससारी जीव महाव्रती बन कर कर्म क्षय करता है। सूत्र पाहुड मे कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है—

णवि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे जइवि होइ तित्थयरो।
णग्गो वि मोक्ख मग्गो ऐसा उम्मग्गया सव्वे ॥२३॥

वस्त्र धारी तीर्थकर भी मोक्ष नही जाते, ऐसा जिनागम मे कहा है। दिगम्वर पना मोक्ष का मार्ग है। शेप सर्व विपरीत मार्ग है।

अनेकान्त दृष्टि वाह्य दिगम्वर मुद्रा के साथ आतरिक निर्मलता को निर्वाण प्रद मानती है। भाव पाहुड मे कुन्दकुन्द स्वामी ने भाव का एकान्त या द्रव्य का एकान्त निराकरण करते हुए कहा है—

कम्म पयडीण णियरं णासइ भावेण दव्वेण ॥५४॥

कर्म प्रकृतियो का समुदाय द्रव्य लिग युक्त भाव लिग से विनाशको प्राप्त होता है। जो वाह्य त्याग को जड की क्रिया कहकर अन्तरग निर्मलताका स्वप्न देखते है, वे सोचें कि ऐसी स्थिति मे वे अपने को क्यो दिगम्वर जैन कहते है और क्यो दिगम्वर मूर्तियो के प्रति विनय भाव व्यक्त करते है।

परिग्रह त्याग

शास्त्र पढने का यह अर्थ नही है कि रागी मोही विषयासक्त की रचित टीका को पढा जाय और अपने मलिन जीवन का पोषण किया जाय। आज शास्त्र के नाम पर विकृत सामग्री का इतना ढेर इकट्ठा हो रहा, कि सामान्य व्यक्ति को सहज ही दिग्भ्रम हो जाना वडी बात नही है। आचार्य श्री ने कहा था, "परिग्रह धारण करने वाले गृहस्थ के जीवन मे कर्म वध का वोझा वढता ही जाता है। कर्मों की निर्जरा करते हुए मोक्ष प्राप्ति के लिए दिगम्वर मुनिपद धारण करना आवश्यक है। मुनि जीवन का ध्येय कर्मों की निर्जरा करना है। जो यह सोचते है कि पेट भरने के लिए मुनि वृत्ति धारण की जाती है, वे उस के मर्म को नही जानते। परिग्रह का त्याग करके दिगम्वर वृत्ति धारण करना इसलिए आवश्यक है, कि परिग्रह के कारण आरम्भ होता है और आरम्भ के द्वारा जीवो का घात हाता है इससे पूर्णतया अहिसा का रक्षण नही होता अत समस्त परिग्रह का त्याग करना आवश्यक है। पर पदार्थ के प्रति यदि हृदय से ममत्व नही है, तव उसे धारण क्यो करते है ? पर पदार्थों के ममत्व का त्याग दिगम्वरत्व-के विना

नही होता । नग्नता बालक के समान निर्विकार होनी चाहिए ।"

उन्होने यह भी कहा, "हमने खूब देखा है, इस दुनिया मे कोई भी सुखी नही है। कोट्याधीशो को देखा है। राजा रक को देखा है । हमने सभी को दु खी पाया है । यथार्थ मे दु ख देने वाला कर्म है । उसकी निर्जरा द्वारा सुख मिलता है । निर्ग्रन्थ अवस्था मे वह आनन्द प्राप्त होता है ।" कहा भी है—

चाह घटी चिन्ता हटी मनुआ वे परवाह ।
जिन्हें कछू नहि चाहिए वे शाहन पति शाह ।।

अपने विषय मे महाराज ने कहा, "हमे अपनी आत्मा के सिवाय किसी भी पर पदार्थ की चिता नही है। हम तो हनुमान सरीखे है, जिनका मन्दिर गाँव के बाहर रहता है। गाव के जलने से हनुमान का क्या बिगड़ता है । इसी प्रकार ससार मे कुछ भी हो, हमे उसका क्या डर है ? हम किसी से नही डरते । केवल जिनेन्द्र भगवान की वाणी को डरते है। यह जिनवाणी हमारा प्राण है । हम उसकी आज्ञा के अनुसार चलते है ।"

ध्येय

उन्होने यह भी कहा, "हम सयम पालन हेतु इसलिए उपदेश देते है, कि इससे इन्द्रिय और मन पर आत्मा का प्रभुत्व स्थापित होता है। आत्मा इंद्रियो और मन का गुलाम नही रहता। सयम का ध्येय चिर सचित कर्मो को धक्का मारकर निकालना है। सयमी, तपस्वी, पुरुषार्थी बनता है । वह दैवकी छाती पर सवार होकर कर्म क्षय करता है। तपस्या कर्म क्षय की दवाई है।"

मैने कहा, "महाराज ! यह औषधि तो बडी कडवी है।"

महाराज ने कहा, "अच्छी औषधि कड़वी ही लगती है। रोगी को घी-शक्कर की दवाई नही दी जाती। उसे दी जाती है कटु औषधि जिससे शरीर में घुसा हुआ रोग दूर होता है। इसी प्रकार जन्म मरण सकुल इस ससार मे परिभ्रमण का रोग दूर करने के लिए तप कारण है ।

मिथ्यात्वी भी उस तप के द्वारा ग्रैवेयक तक जाता है। सम्यक्त्वी उस तप के द्वारा मोक्ष प्राप्त करता है। कोई कोई कहते है, मुनि व्रत धारणकर अनन्त बार ग्रैवेयक मिला है, अत साधु जीवन से मोक्ष नही मिलता उनको अपने हृदय से यह पूछना चाहिए—

ग्रैवेयक के श्रेष्ठ सुख भोगे अगनित वार।
तब क्यो रीझत अल्प सुख मनुज्ज होय दुःख कार॥

तप के वारे में आचार्य श्री ने वडी अनुभव पूर्ण वात कही थी, "शरीर पर एक दम वोझा डाल दिया जाय, तो वह उसे नही सभाल पाता है, किन्तु धीरे-धीरे वोझा वढाया जाय, तो वह सहन हो जाता है। इसी प्रकार थोडा थोडा व्रत तथा उपवास का भार उठाने से आत्मा को पीडा नही होती और धीरे-धीरे उसकी शक्ति वढती जाती है।" उन्होने कहा था, "यह तुमने अपने अनुभव की वात कही है।"

आचार्य महाराज का यह कथन त्यागियो के ध्यान मे रहना चाहिए "जव तक धर्म ध्यान रहे, तव तक उपवास करना चाहिए। आर्त ध्यान रौद्र ध्यान उत्पन्न होने पर उपवास करना हित प्रद नही है।" तत्त्वार्थ सूत्र मे सोलह कारण भावनाओ मे शक्तितस्त्याग तपसी" पद देकर यह स्पष्ट किया है कि यथाशक्ति तप और त्याग करना चाहिए।

मुनि निंदको को सुझाव

कुछ समालोचना के शौकीन लेखक तथा पत्र सपादक अपनी लोह लेखनी के आक्रमण का केन्द्र साधुओ को वनाते हुए यह नही विचारते कि महापापो और व्यसनो मे लिप्त व्यक्ति के प्रति वे महान प्रेम प्रदर्शित करते हैं और साधुओ के प्रति स्थिति करण, उपगूहन को भुलाकर विष वमन करते हैं। वर्तमान विषमय वातावरण और कठिन परिस्थितियों मे गुजरते हुए असिधाराव्रत से भी भीतिप्रद दिगम्वर मुनि का जीवन विताते है और प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान आदि द्वारा सदा जीवन के शोधन मे लगे रहते हैं। आजकल तो साधुनिन्दा का व्रत लिए हुए हीन चरित्र व्यक्तियो का एक वर्ग तैयार हो गया है। दुष्ट लोग तो सच्चे साधु को भी वुरा वताते है। छिद्रो से पूर्ण चलनी सुई के छिद्र को वताया करती है। मैंने आचार्य महाराज से पूछा "कई साधु शिथिलाचरण वाले हो जाते है। उनके प्रति समाज या समझदार व्यक्ति को किस प्रकार का व्यवहार रखना चाहिए ?"

महाराज ने कहा था, "ऐसे साधु को एकान्त मे समझाना चाहिए। उसका स्थिति करण करना चाहिए। शान्त भाव से प्रेम पूर्वक समझाने पर व्यक्ति अपनी भूल सुधार लेता है, मैंने पूछा, "समझाने पर भी उसकी

प्रवृत्ति न बदले, तव धर्मात्मा तथा आगम भक्त व्यक्ति का क्या कर्तव्य हो जाता है ?, अखबारो मे क्या समाचार छापना चाहिए या नही ?" महाराज ने कहा, "समझाने से काम न चले, तो उसकी उपेक्षा करो, उपगूहन अग का पालन करो। पत्रो मे चर्चा चलने से धर्म की हसी होने के साथ-साथ अन्य मार्गस्थ साधुओ के लिए भी अज्ञानी या दुष्ट लोगो के द्वारा बाधा उपस्थिति की जाती है। पापी लोग पतित साधु की ओट मे धर्म मे स्थित सच्चे साधुओ को निन्दा का वातावरण निर्माण कर दिया करते है।"

महाराज ने यह भी कहा था, कि "मुनि अत्यन्त निरपराधी है। उसकी निन्दा होने पर वह उसका निराकरण करने नही जाता। मुनि के विरुद्ध दोष लगाने पर बड़ा भयकर परिणाम होता है। निरपराध मुनि के गले मे श्रेणिक ने मरा सर्प डाला था, इससे श्रेणिक को नरकायु का बन्ध हुआ था। सम्यग्दृष्टि श्रावक विवेक पूर्वक स्थितिकरण, उपगूहन तथा वात्सल्य अङ्ग का विशेष ध्यान कर सार्वजनिक पत्रो मे चर्चा नही चलायेगा।

पत्रो में साधुओ के विरुद्ध लिखने वाले यह नही सोचते कि उससे सच्चे साधुओ को महान कष्ट होता है। मिथ्यादृष्टि विधर्मी भी साधु की निन्दा पर उतर आते है।"

हम सन १९६४ मे देहली गये थे। वहा आचार्य रत्न १०८ देश-भूषण महाराज का चातुर्मास था। वहाँ हमने एक महान दु'खी जैन व्यक्ति को देखा। एक जैन बन्धु ने बताया, यह व्यक्ति वडा साहित्यकार प्रसिद्ध लेखक रहा है। जब आचार्य शाति सागर महाराज दिल्ली पधारे थे, तब यह साधु निन्दा के कार्य मे निरन्तर लगा रहता था, उस महा पाप के फल रूप इसी जन्म मे यह अपार कष्ट भोग रहा है। अत. आचार्य महाराज का यह कथन ध्यान मे रखना हितकारी होगा, कि शिथिलाचारी साधु के विषय को सार्वजनिक चर्चा का विपय न वना कर योग्य चिकित्सा करनी चाहिए।

एक बार सिवनी में प्रथम वार ऐसे साधु आए थे, जो अपनी चर्चा द्वारा लोगोके आकर्पण का केन्द्र वने थे, किन्तु उनका भीतर का जीवन साधु पद के प्रतिकूल था। इस विषय मे उनके हीना चरण का प्रमाणरूप पत्र हमारे परम धार्मिक तथा महान शास्त्रज्ञाता पिता (श्रीसिंधई कुवरसेनजो) के हाथ मे

आ गया हमारे पिता जी ने इन्दौर रावराजा सर सेठ हुकम चन्द जी को उनके बारे मे पत्र लिख कर उनके दोष का उपगूहन कर स्थितिकरण का कार्य किया था। उन्होने मेरे सिवाय किसी दूसरे से उसकी चर्चा भी न की थी।

मैंने आचार्य महाराज से कहा था, "महाराज, एक धनी किन्तु विवेक शून्य सेठ जी मेरे पीछे लग गए, कि एक मुनि राज उनको अच्छे नही लगते थे। उनके विरुद्ध पत्रो मे आन्दोलन करो, तब मैंने उनसे कहा था, कि दिगम्बर मुनि का जीवन सामान्य वस्तु नही है। उसके साथ खिलवाड नही किया जाना चाहिए। उनकी एकात मे कड़ी टीका करना ठीक होगा।"

मैंने यह भी कहा था, "शरीर पर फोडा होने पर चिकित्सक चाकू चला कर विकार को दूर करने मे संकोच नही करता, किन्तु सर्व साधारण समाज रूपी मक्खी उस पर न वैठे और उस घाव को न बढ़ावे, इसी कारण उस पर पट्टी बाध कर उपगूहन की दृष्टि रखी जाती है। उस पर महाराज ने कहा, "ठीक है, सम्यग्दृष्टि श्रावक ऐसा ही कार्य करेगा।"

साधु वर्ग के लिए विचारणीय

इस प्रसग मे यह वात भी ध्यान देने की है, कि आज की कठिनाई वढाने मे धार्मिक नेताओ का भी हाथ है। आचार्य शाति सागर महाराज ने मुनिदीक्षा लेने के पूर्व ब्रह्मचारी, क्षुल्लक तथा ऐलक रहकर अपने जीवन को महाव्रती योग्य वनाया था। वर्धमान सागर महाराज को तत्काल दीक्षा न देकर उन्हे क्षुल्लक, ऐलक जीवन व्यतीत करने को कहा था। आचार्य श्री की दृष्टि यह रहती थी, कि यदि हमने अपात्र को ऊची दीक्षा दी, तो वह जीव उस महान पदवी के विरुद्ध आचरण करके दु खी होगा।

आज की स्थिति इसके विपरीत हो गई है। हमे सत्समागम का वहुधा सुयोग मिलता है। यह लिखते दु ख होता है, कि बिना जीवन मे तैयारी के एकदम मुनि दीक्षा दी जाती है, इसके पश्चात् उस व्यक्ति का जीवन असमर्थता वश अपने पद के अनुरूप आचरण युक्त नही रहता है। हमारी सभी साधुओ से प्रार्थना है, कि वे आचार्य शाति सागर महाराज की कार्य पद्धति को ध्यान मे रख कर कार्य करें। एक गृहस्थ पाक्षिक के व्रत पालने मे कठिनाई का अनुभव करता है, किन्तु हमारे कोई-कोई

गुरुदेव उसे मुनि दीक्षा देकर मुनि निन्दको के लिए पर्याप्त अवसर तथा सामग्री प्रदान करते है। आगम के अभ्यास से यह बात स्पष्ट हो जाती है, कि शास्त्र के विरुद्ध स्वच्छन्द आचरण करने वाले व्यक्ति को अपने हीनाचरण का फल आगे भोगना पडेगा। अतएव गृहस्थो को यदि साधु निन्दा से बचना उचित है, तो हमारे परम पूज्य साधुओ को भी ऐसी परिस्थिति का निर्माण नही करना चाहिए, कि धर्मात्माओ का मस्तक भी नीचा हो जाय और वे इस कलिकाल की महिमा को स्मरण कर हार्दिक वेदना का अनुभव करे। जहा आगम श्रावको को साधु सेवार्थ प्रेरणा करता है, वहा वह आगम साधुओ को भी अपने २८ मूलगुणो का पालन करते हुए साधुत्व के रक्षण के लिए आदेश देता है। वे स्वतन्त्र नही है।

वेष धारण

परमागम मे कहा है कि जो साधु का रूप धारण करके स्वच्छन्द आचरण करते है, वे दुर्गति के पात्र होते रहे है। कुन्दकुन्द स्वामी ने लिंग पाहुड मे लिखा है—

धम्मेण हवइलिंगं ण लिग मत्तेण धम्मसपत्ती।
जाणेहि भावलिंगं किं ते लिंगेण कायव्वो ॥२॥

मुनि धर्म का पालन करने से मुनि का वेष सार्थक होता है। मुनि मुद्रा के धारण करने मात्र से धर्म की प्राप्ति नही होती है। वेष के अनुरूप भावरूप लिग को जानना चाहिए। केवल वेष मात्र धारण करने से क्या लाभ होगा?

यह कथन पूर्णतया आगम सम्मत है कि मुनि निदक नरक जाता है, तथा यह भी सत्य है कि मुनि पद के विरुद्ध आचरण करने वाला भी नरक गामी होता है, ऐसा कुन्द-कुन्दस्वामी ने इस गाथा मे कहते है—

दंसण-णाण-चरित्ते तव-सजम-णियम-णिच्चकम्माणि।
पीडयदि वट्टमाणो पावदि लिंगी णरयवासं ॥११॥

जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र के पालन में तप, सयम, नियम आदि नित्य के कार्यो को करता हुआ पीडा का अनुभव करता है, अर्थात् जिसका हृदय उन कर्तव्यो को भार रूप अनुभव करता है, वह मुनि नरक वास (णरय वास पावदि) को प्राप्त करता है।

अतः गृहस्थ और साधु वर्ग को अपना कर्तव्य पालन करना हितकारी है। आगम सम्मत जीवन व्यतीत करने वाला सद्गति का पात्र होता है। साधु को आगम-प्राण होना चाहिए।

साधु वर्ग पर वात्सल्य

आचार्य श्री साधु परमेष्ठी को अपने सयम को निर्दोप रीति से पालन को कहा करते थे, वे स्वय मूलाचार मे प्रति पादित सयम का साव-धानी पूर्वक परिपालन करते थे। आचार्य रत्न देश भूषण महाराज के गुरु जय कीर्ति महाराज, पाय सागर महाराज के शिष्य थे और पाय सागर महाराज आचार्य शाति सागर महाराज के शिष्य थे। सयम दृष्टि से आचार्य श्री देश भूषण महाराज ने कहा,"मैं नव दीक्षित छोटी अवस्था का मुनि था। नाद्रे ग्राम मे मैं आचार्य महाराज के पास गया। मैंने उनकी वदना की। उन्होने दयाकर मेरी वदना को स्वीकार कर प्रति वदना की। वडे प्रेम से उन्होने कहा, "तुम हमारे भाई हो। सदा आगम के अनुकूल चलना। किसी के वहकावे मे मत आना। तुम्हारी उमर छोटी है। सभालकर काम करना। तुम क्षत्रिय वश के हो। घराने को धव्वा लगे, ऐसा काम कभी नही करना। तुम भ्रम उत्पन्न करने वाले भूतो से वचना। धर्म की खूब प्रभावना करना"।

उन्होने हमारी पढाई की वात न पूछ कर हमारे सयम का हाल पूछा, तुमने कितना प्रतिक्रमण किया है? दैवसिक, पाक्षिक, मासिक, वार्पिक आदि कितने किए है। किन्ही विपयो मे गडवडी ज्ञात कर वे पूछने लगे, "खाने के कारण तो गड़वड़ी नही हुई है?" हमने कहा "महाराज! आपके चरणो मे आत्म निर्मलता हेतु हम आए है। आपकी आज्ञा को शिरो धार्य करते है।" महाराज ने लोगो से कहा, "हमारा भाई आया है। उसका उपदेश होगा"। मेरा उपदेश सुनकर वे सन्तुष्ट हुए।

मुनियो के लिए शिक्षा

उन्होने कहा था, "प्रायश्चित्त शास्त्र पढना। दूसरो को पढकर उसे नही सुनाना। प्रथमानुयोग का मनन करना। अपनी शाति हेतु एकान्त मे समयसार पढ़ना। सार्वजनिक रूप मे उसे नही पढना। लोग झगड़ा मोल लेते है। तुम ऐसा नही करना शत्रु पर भी गुस्सा नही करना। अकेले भ्रमण नही करना"। आचार्य महाराज सदा कहा करते थे, कि साधु को अकेले नही भ्रमण करना चाहिए।

अकेले भ्रमण करने से क्या हानि होती है, यह विचार शील, गृहस्थों के अनुभव गोचर है अकेला भ्रमण करने वाला निर्ग्रन्थ साधु के कर्तव्यो के पालन मे महान प्रमादी वन जाता है। खेद है कि आचार्य श्री की देशना

को न मानने वाले साधुओ का सद्भाव पाया जाता है। स्वच्छद विचरण करना अपना हित चाहने वाले साधु का कर्तव्य नही है। यह बात पूज्य मुनिराजोके लिए ध्यान देने योग्य है।

गंभीरता

आचार्य महाराज प्रतिभा सम्पन्न साधुराज थे। गुणभद्र स्वामी नें आत्मानुशासन ग्रथ मे आचार्य का एक गुण "प्रश्न सह." दिया है। मूर्खता पूर्ण प्रश्न का भी उत्तेजना रहित हो उत्तर देना आचार्य की विशेषता रहनी चाहिए। एक बार एक दुष्ट जैन धर्म विद्वेषी ने पूछा "आप बदर की तरह नग्न क्यो है ?"

महाराज ने कहा, "भाई ! जीव को समस्त कार्यो मे लगानें वाला मन बदर की तरह अत्यन्त चचल है। उस मन-मर्कट को वश मे करने के हेतु हमने उसकी मुद्रा ली है। उसकी मुद्रा लेने से वह वश मे हो जाता है।' इस उत्तर को सुन कर वह प्रश्न कर्ता चुप हो गया।

आगम पथी

मैंने पूछा आप तेरह पथी है या बीस पथी है ?

महाराज, नें कहा हम न तेरह पथी है, न बीस पथी है। हम आगम पन्थी है। आगम मे किसी पथ का वर्णन नही है। आगम मे गुरु परपरा से जो बात कही गई है, उसके अनुसार प्रवृत्ति करनी चाहिए।" यथार्थ में उत्तर प्रात मे उक्त पन्थ भेद की कल्पना की गई है। दक्षिण भारत के लोग क्या तेरह पन्थ है, क्या बीस पन्थ है, यह नही जानते। आर्ष ग्रथ मे यह भेद नही पाया जाता है।

एक दिन महाराज से पूछा गया, "आप श्रीमन्तो के महाराज है या गरीबो के ?"

महाराज नें कहा, "हमारी दृष्टि मे श्रीमन्त और गरीब का भेद नही है। आप लोग अर्थ के सद्भाव मे श्रीमन्तपने की कल्पना करते हो, अकिचन की दृष्टि मे धन के सद्भाव असद्भाव मे अन्तर नही रहता।"

धनिको पर दया

एक दिन अनेक लखपति, करोड़पति धनिक आचार्य श्री के समीप

आशीर्वाद हेतु एकत्रित हुए थे। आचार्य महाराज ने उन सबसे कहा था, "तुम लोगो ने पूर्व पुण्य के उदय से महान् सम्पत्ति, ऐश्वर्य, वैभव प्राप्त किया। तुमको देखकर हमारे मनमे दया पैदा होती है कि तुम पूर्व की कमाई को खाकर आगे की जरा भी फिकर न कर भोगो मे फसे हुए रहते हो। यह तुम्हारी सम्पत्ति आगे भव मे साथ नही देगी। यदि तुमने दान पूजा व्रतादि के द्वारा धर्म रूप सम्पत्ति का सग्रह न किया, तो तुम्हारा क्या हाल होगा, यह सोचकर हमारे मनमें दया आती है।"

दान-पूजादि धर्म क्यो हैं ?

इस प्रसग मे यह प्रश्न उत्पन्न होता है, कि क्या दान, पूजा व्रतादि को धर्म मानना उचित है ? इसका समाधान आचार्य कुन्द-कुन्द के अष्ट पाहुड मे प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय धर्म है। सम्यक्चारित्र रूप धर्म का असमर्थ श्रावको की अपेक्षा दर्शन व्रत आदि एकादश प्रतिमा रूप कथन किया गया है। व्रत प्रतिमा के द्वादश व्रतो में अतिथि सविभाग व्रत है जिसमे सत्पात्र दानादि गर्भित हैं। दान पूजा आदि श्रावक के देश चारित्र धर्म के अन्तर्गत होने से उन्हे धर्म मानना शास्त्र सम्मत बात है।

धर्म के विविध रूप

विविध अपेक्षाओ को लेकर आगम मे धर्म का स्वरूप समझाया गया है। वस्तु स्वभाव को धर्म कहा है, उत्तम क्षमादि को धर्म बताया है, रत्न त्रय स्वरूप धर्म कहा है, जीवो की रक्षा को भी, चारित्र रूप धर्म का अग होने से धर्म कहा है। एकान्त दृष्टि वाला उलझन मे पड़कर विपरीत धारणा बनाकर धर्म को अधर्म मानकर विपरीत श्रद्धा बनाकर मिथ्या भाव को धारण करता है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा मे कहा है—

धम्मो वत्थु सहावो खमादि भावोय दह विहो धम्मो।
रयणत्तय च धम्मो जीवाण रक्खणं धम्मो॥

वस्तु का स्वभाव धर्म है, उत्तम क्षमादि भाव रूप दश विधि धर्म है, रत्नत्रय रूप धर्म है जीवो का रक्षण धर्म है। आगम मे सम्यक्त्व को धर्म का मूल कहा है, इसी प्रकार दया को भी धर्म का मूल कहा है। 'धम्मस्स मूलं दया।"

अहिंसा धर्म

सम्पूर्ण आचार्यो के शिरोमणि गौतम गणधर रचित प्रतिक्रमण ग्रन्थ त्रयी मे इस बात को बताया है कि 'केवलि पण्णत्तो धम्मो मगल' मे केवली प्रणीत धर्म का क्या स्वरूप है। "इमस्स धम्मस्स णिग्गथस्स पावयणस्स, अणुत्तरस्स, केवलिपण्णत्तास्स अहिंसा लक्खणस्स सच्चाहिट्ठियस्स विणय-मूलस्स खमावलस्स" (१०७ पृष्ठ)—धर्म के ये विशेषण दिये गए है, "निर्ग्रन्थ लिग रूप, परमागम मे प्रतिपादित, सर्वोत्कृष्ट केवली प्रणीत अहिंसा लक्षण युक्त, सत्य में अधिष्ठान युक्त, विनय मूल युक्त, क्षमा के द्वारा बलशाली "। 'मगल भगवान वीरो, मगल गौतमो गणो' कहकर भगवान महावीरके पश्चात्, जिन गौतम गणधर को मगल रूप माना जाता है, उन्होने केवली प्रणीत धर्म का लक्षण अहिंसा कहा है। प्रवचनसार मे कुन्दकुन्द स्वामी ने चारित्र को धर्म कहा है। रयणसार ग्रन्थ मे उन्होने कहा है, 'दयाविणाधम्म णिप्फल जाण" (८४) दया के बिना धर्म विफल है। जय-धवलाटीका मे कहा है। "श्रावक का धर्म दान, पूजा, शील तथा उपवास रूप चार प्रकार है। इस प्रकार विविध रूप से धर्म का स्वरूप आगमोक्त होने से सम्यक्त्वी को मान्य होना चाहिए। इसको मिथ्या मानने वाले एकान्त वादी को धार्मिक पुरुष सम्यक्त्वी नही कहेगे। जिस प्रकार अग्नि को उष्णता धर्म युक्त कहते हुए, भासुरत्व, पाचकत्व, दाहकत्व आदि गुणो से समन्वित कहा जाता है तथा यथायोग्य अवसर पर किसी धर्म को मुख्य मानकर अग्नि का वर्णन किया जाता है, उसी प्रकार पात्र की अपेक्षा भिन्न-भिन्न दृष्टियो से प्रतिपादित धर्मो मे विशेष अवसर पर विवक्षा-नुसार धर्म का स्वरूप कहा जाता है। गृहस्थ की अपेक्षा दान पूजा मुख्य धर्म है, श्रमण की अपेक्षा झाणज्झयण ध्यान और अध्ययन मुख्य धर्म है ऐसा रयणसार मे कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है। अमृतचन्द सूरि ने कहा है 'धर्म अहिंसारूप (पुरुषार्थ सि०)।' एकान्तवाद रूपी विषधर द्वारा डसे गये व्यक्ति आगम का तिरस्कार कर स्वच्छन्द मान्यताओ की अभिवन्दना करते है। पचपरमेष्ठी, शास्त्र, तीर्थ, तीर्थकर की पूजा को बुरा मानकर कोई व्यक्ति सिद्धो की पूजा को ही ठीक मानते है। अनेकान्त दृष्टि वाला सिद्ध पूजा के सिवाय अन्य पूजाओ को भी जो आदर प्रदान करता है। वह एकान्तवाद मिथ्यात्व है।

पचामृत अभिषेक

आचार्य महाराज के दैनिक कार्यक्रम मे जिनेन्द्र भगवान का घी, दूध, दही आदि द्वारा पचामृत अभिषेक का दर्शन सम्मिलित था। जिन्हे पंचामृत अभिषेक पसन्द नही है, उन्हे वे आग्रह नही करते थे। कुथल गिरि मे यम सल्लेखना के श्रेष्ठ काल मे भी वे भगवान अभिषेक दर्शनार्थ मन्दिर मे जा रहे थे। इससे यह स्पष्ट है कि उन लोकोत्तर श्रेष्ठ साधुराज की दृष्टि मे जिनेन्द्राभिषेक का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था।

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि यदि वह अभिषेक आगम के प्रतिकूल होता, तो वे आगम की आज्ञा को शिरोधार्य कर उसका विरोध किये बिना न रहते। आगम की आज्ञा के पालनार्थ ही तो उन्होने समाधि मरण का आश्रय लिया था। यह तत्त्व आचार्य भक्त मण्डल के लिए गभीरता पूर्वक विचारणीय है।

एक समय मै बारामती मे महाराज के पास प्रथम बार पहुचा। उस समय ठाट के साथ वाद्य ध्वनि पूर्वक भगवान का अभिषेक हो रहा था।

महाराज ने मुझसे पूछा, "तुम अभिषेक क्यो नही करते ?" मैंने कहा, 'महाराज, ! हम तेरापन्थी है। हमारी पद्धति मे पचामृत अभिषेक नही होता।"

महाराज—"तुम शास्त्र की आज्ञा को तो मानोगे ?"

मैंने कहा—आगम की आज्ञा को अवश्य शिरोधार्य करूगा।

इसके पश्चात्, धर्मवीर, भद्र परिणामी सेठ राव जी सखाराम दोसी ने हरिवश पुराण, पद्म पुराण आदि अनेक दिगम्बर आचार्यो के ग्रन्थ लाकर अभिषेक का समर्थन शास्त्राधार पूर्वक उपस्थित कर दिया। मैंने ध्यान पूर्वक उस विषय का मनन किया। मैंने आचार्य श्री से कहा, आगम की आज्ञा शिरसा मान्य है।" इसके अनन्तर मैंने दूध का पूर्ण कलश लेकर भगवान का अभिषेक किया।

उस समय महाराज के मुख मडल पर स्मित शोभायमान हो रहा था उस समय की प्रसन्न मुद्रा आज भी मेरे मानस मे अकित है। पूर्ण अभिषेक के बाद महाराज ने कहा, "आज पडित जी हमारे पक्ष मे हो गए।"

मैंने कहा, "मैं आप के पक्ष मे नही हुआ। आप ने आगम के प्रमाण दिखाए, इससे मैं आगम के पक्ष का हो गया।"

महाराज ने कहा ठीक कहते हो, पन्थ का मोह छोडकर आगम की

आज्ञा को मानना हितकारी है।" इस चर्चा के माध्यम से पचामृत अभिषेक के विषय में आचार्य महाराज का मनोगत पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है।

मिथ्या परिकल्पना

आज की स्थिति अद्भुत है, आगम को अपनी स्वतत्र कल्पना के अनुरूप बनाने की कोई कोई चेष्टा करते है। आगमानुसार अपने विचारो को बनाने में कोई कोई महान शास्त्रज्ञ भी कठिनाई तथा अप्रतिष्ठा का अनुभव करते है। एक शास्त्रज्ञ भाई जल से भी भगवान के अभिषेक को अनुचित कहते हुए मूर्ति का प्रक्षाल मात्र ठीक मानते हुए उसका प्रचार करते है। इस विपय मे आगम का आदेश मानना चाहिए।

त्रिलोक सार में लिखा है, कि जब कोई व्यक्ति स्वर्ग मे जन्म धारण करता है, तब शरीर की अन्तर्मुहूर्त में पूर्णता होने के पश्चात् वह देव सरोवर में स्नान करके जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करता है। वैमानिक अधिकार में नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने इस प्रकार कथन किया है—

धम्मं पससिइण ण्हादूण दहेभिसेयलंकारं।
लद्धा जिणाभिसेय पूज कुव्वति सिद्दिट्ठी ॥५५२॥
धर्मं प्रशंस्य स्नात्वा हृदे अभिषेकालकारं।
लब्ध्वा जिनाभिषेक पूजां कुर्वन्ति सद्दृष्टयः ॥

सम्यक्त्वी देव धर्म की महिमा का कथन करता हुआ सरोवर में स्नान करता है। अलकार धारण करके वे सम्यक्त्वी देव जिन भगवान का अभिषेक करते है। ऐसा ही कथन तिलोयपण्णत्ति मे आया है।

कुन्दकुन्द स्वामी रचित नदीश्वर भक्ति मे यह पाठ आया है, कि अष्टाह्निका महा-पर्व मे देवगण नन्दीश्वर द्वीप की अकृत्रिम प्रतिमाओ को सपरिवार दिव्यगध, दिव्य पुष्प, दिव्य धूप, दिव्य चूर्ण, दिव्य वस्त्र, चन्दोवा आदि दिव्य स्नान के द्वारा पूजा करते है। पाठ इस प्रकार है—

चउविहा देवा सरिवारा दिव्वेहि गधेहि, दिव्वेहि पुप्फेहि दिव्वेहि धुव्वेहि, दिव्वेहि चुण्णेहि, दिव्वेहि वासेहि, दिव्वेहि ण्हाणेहि आसाढ-कत्तिय फागुण मासाण अट्ठामिमाइं काउण जाव पण्णिमति णिच्चकालं अच्चन्ति, पूजन्ति वन्दन्ति, णमसति णदीसर महाकल्लाण करन्ति · ·।"

ऐसी आगम की वाणी को अवगत करके भी वे विद्वान् अपनी आगम विरुद्ध कल्पना का परिमार्जन नही करते है। यह शोचनीय बात है।

मार्मिक बात

इस प्रसग मे एक शका उत्पन्न होती है, कि भगवान का देव लोग दिव्य स्नान करते है यह बात मानते है, किन्तु क्षीर आदि से स्नान करते है यह बात हमे मान्य नही है।

ऐसे सत्पुरुषो से कोई पूछ सकता है श्रीमान् जी आप लोग गोम्मट स्वामी भगवान बाहुवली का घी दूध आदि के द्वारा अभिषेक दर्शन हेतु क्यो विपुल द्रव्य व्यय कर उपस्थित होते है ? जल का अभिषेक ही आप को मान्य है, तो वर्षा ऋतु मे श्रमणवेलगोला जाकर मेघकृत जल वर्षा द्वारा अभिषेक को अनेक वार देख सकते है। वास्तविक बात यह है कि उक्त महाभिषेक को देखकर नेत्र सफल होते है, हृदय आनन्द का अनुभव करता है तथा जीवन सफल प्रतीत होता है किन्तु पक्ष मोह वश आगम के पुष्ट प्रमाणो के होते हुए भी एव आचार्य शान्ति सागर महाराज को सल्लेखना के श्रेष्ठ कला मे पंचामृत अभिषेक को देखने मे सलग्न होते हुए भी हमारे माननीय वन्धु अपनी धारणा को वदलने को नही तैयार होते है। रूढिवाद का हृदय पर अद्भुत स्थान होता है।

कोई-कोई यह कठिनाई उपस्थित करते है, कि तेरह पन्थी और वीस पन्थी मान्यताओ मे भिन्नता है। हमारी जैसी मान्यता है वैसा हम करते है।

इन वन्धुओ को आगम की मान्यता को श्रेष्ठ मानना चाहिए। किसी भी प्राचीन सस्कृत, प्राकृत, तमिल, कन्नड जैन ग्रन्थ में तेरह वीस का भेदी नाम मात्र भी नही है। दक्षिण भारत मे जाकर यदि वहा के जैनो से पूछो आप तो बीस पन्थी है तो वे कहते है "बावा तुम क्या वोलते हो हम नही समझते। हम वीस पन्थी क्या है यह नही जानते।" इस विषय को समझने के लिए यह कथन विचारणीय है।

काग्रेस मे हाल ही मे 'इडीकेट', सिडीकेट दो वर्ग हो गए। प्राचीन काग्रेस मे इनका नामोनिशान न था। लोकमान्य तिलक अथवा गाधी जी के जीवन काल मे ये वर्ग नही थे, इसी प्रकार मुगल साम्राज्य के पूर्व मे दिगम्वर जैनो मे तेरह पन्थ अथवा वीस पन्थ का विभाग नही था। शाहजहा के शासन काल मे जयपुर राज्य के तत्कालीन प्रभावशाली कुछ पुरुषो ने भट्टारको का विरोध करके भट्टारको के मानने वालो को वीस पन्थी और अपने समुदाय को तेरापन्थी कहना शुरू किया। उस समय हिन्दी भाषी

प्रान्त मे हस्तलिखित गन्थो की प्राप्ति हेतु प्राय जयपुर का अवलम्बन लिया जाता था, अतएव जयपुर राज्य मे जन्म प्राप्त भेद का प्रचार उत्तर भारत मे हो गया।

समन्वय दृष्टि

इस पथ भेद के बारे में पूज्य आचार्य वीर सागर महाराज ने जयपुर में एक मधुर बात सुनाई थी। "पाच समिति, तीन गुप्ति, पचमहाव्रत रूप तेरह प्रकार का चारित्र पालन करने से दिगम्बर मुनि तेरापथी है। अष्ट मूल गुण, तीन गुण व्रत, चार शिक्षा व्रत, पच अगुणव्रत रूप बीस प्रकार के श्रावक का चारित्र पालने वाला श्रावक बीस पथी है" उपरोक्त समाधान के प्रकाश मे उन्होने कहा था, "मोक्ष तेरह पथी (मुनिव्रती) को ही मिलेगा, बीस पथी (गृहस्थ) को नही। प्रारभ मे बीस पथी (व्रती श्रावक) बनना होगा, पश्चात् तेरह पथी (मुनि) की अवस्था प्राप्त होगी।" इस प्रकाश में पथ भेद की विभेदक रेखा को दूर कर भिन्नता की कल्पना को दूर करके आगम पन्थ को अपनाना कल्याणकारी रहेगा। आगम के विरुद्ध प्रवृत्ति हेतु पथ का मोह धर्मात्मा को त्यागना चाहिए।" आचार्य शान्ति सागर महाराज आगम पन्थ को प्रमाण मानते थे, और उसी आगम की आज्ञा का पालन करते हुए उन्होने दुर्धर समाधि मरण द्वारा अपनी मानव पर्याय को कृतार्थ किया था। आप्त आगम तथा निर्ग्रंथ गुरु का श्रद्धान करने वाला ही सम्यक्त्वी होता है। समतभद्र स्वामी ने रत्नकरड श्रावकाचार में आप्तागम – "तपोभृता श्रद्धान सम्यग्दर्शनम्" कहा है। आगम पर अश्रद्धान वाला सम्यग्दर्शन रहित होगा यह बात नही भूलना चाहिए।

जैनो की अल्प संख्या

कभी कभी यह प्रश्न उठा करता है कि जैन धर्म जिसे गाधीजी विश्व धर्म होने योग्य मानते थे, आज क्यो अल्प सख्यक धर्म है ?

इस विषय मे आचार्य महाराज कहते थे, "आजकल विषय कषायो के पोपण मे लोग लगे रहते है, उन्हे विपय भोग से विमुख करने वाली बात पसन्द नही आती है।" इस बात पर आचार्य महाराज के उत्तराधिकारी शिष्य वीर सागर महाराज से यह समाधान प्राप्त हुआ था।

"जौहरी की दुकान पर बहुत थोड़े ग्राहक जाते है, फिर भी उसको

अर्थ लाभ विपुल मात्रा मे होता है। सागभाजी वेचने वाले की दुकान पर वडी भीड लगी रहती है, फिर भी उसकी आमदनी वहुत थोडी होती है। इसी प्रकार वीतराग भगवान का धर्म है। विना निर्मल परिणाम हुए उसे पालने की लोगो की तवियत ही नही होती। इस विषय मे हिन्दू धर्म के मान्य सन्त विनोवा का कथन विशेष समाधान प्रद है। श्वे० साधु श्री तुलसी से विनोवा ने कहा था। मैंने आचाराग, उत्तराध्ययन, कुन्दकुन्द का समयसार आदि पढा है। छहढाला वहुत अच्छी पुस्तक है। छोटी होते हुए भी वह अच्छी है।"

"मुझसे पूछा जाता है, कि जैन कम क्यो है? मैं कहता हू कम होना वुद्धिमानी की वात है, शक्कर मीठा होता है, वह दूध से मिलकर उसमें अपना अस्तित्व समाहित कर देता है। दूध मे मिलने के वाद लोग कहते है, दूध मीठा है पर वास्तविक मिठास शक्कर का होता है। इसी प्रकार दूसरो मे मिलकर जैन लोग भी उन्हे गुपचुप मीठा वना देते है। आज जैन धर्म थोडा है किन्तु शक्कर की तरह अपना अस्तित्व दूसरो मे समाविष्ट करके भी वह अमिट है। केवल सख्या वढाना भूल है। यह तो गौण वात है" (विनोवा-व्यक्तित्व और विचार ग्रन्थ पृष्ठ २३०—पुराना प्रसग नये आयाम' निवध)

कोल्हापुर के राजा शाहू महाराज ने राज्य पडित निटवे शास्त्री जैन से यह प्रश्न किया था, कि जैन धर्म का उपदेश सुन्दर है सर्व जीवो का कल्याणकारी है, तव इसके मानने वाले थोडे क्यो है? शास्त्री जी ने कहा था "अच्छी चीज थोडी रहा करती है। पतिव्रता साध्वी स्त्रियो की सँख्या न्यून रहने मे उनका गौरव न्यून नही हो जाता है। राजा साहव चुप हो गए।

जैन सम्राट् चन्द्रगुप्त के शासन काल मे जैन धर्म समृद्ध स्थिति मे था, उस समय प्रजा महान सुखी तथा सदाचारी थी। मेगस्थनीज विदेशी यात्री ने राज्य की अच्छी स्थितिका वर्णन करते हुए दिखाया था, कि चोरी का अभाव रहने मे मकान मे ताले लगाने की भी जरुरत नही पडती थी। राष्ट्रकूट वश के जैन राजा अमोघ वर्ष के शासन मे प्रजा सुखी समृद्ध थी, ऐसा अरव के यात्री ने वर्णन किया है। विश्व के महान साहित्यिक, नाटक कार वर्नार्डशा भारत आए थे। उन्होंने जैनो का जीवन आदि देखकर लन्दन मे हिन्दुस्तान टाइम्स के प्रवन्धक सम्पादक श्री देवदासगाधो मे वार्ता-

लाप के प्रसग मे कहा था, "यदि मरने के बाद पुनर्जन्म होता है, तो मेरी आकाक्षा है कि मेरा जन्म जैन परिवार मे हो।"

विश्व कल्याण पर जैन दृष्टि

जैन धर्म की शिक्षा-दोक्षा से सम्बन्धित अहिसा तथा जीव दया को जीवन मे स्थान देने वाली जैन समाज के जीवन का भौतिक स्तर ऊचा माना गया है। इसे ध्यान मे रखकर सन १९४९ के लगभग राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने वक्तव्य द्वारा यह कहा था, जैन धर्म ने ससार को अहिमा की शिक्षा दी है। किसी दूसरे धर्म ने अहिसा की मर्यादा यहाँ तक नही पहुचाई। आज ससार को अहिसा की आवश्यकता महसूस हो रही है। जिन्होने अहिसा के मर्म को समझा है, वे ही इस अन्धकार मे कोई रास्ता निकाल सकते है। जैनियो का आज मनुष्य समाज के प्रति सबसे वडा कर्त्तव्य यह है, कि वे इस पर ध्यान दे और कोई रास्ता ढूढ निकाले।

इस सम्वन्ध में मैने आचार्य शातिसागर महाराज से जब चर्चा चलाई तब उन्होने कहा ' जगत् मे सुख और शाति की उपलब्धि पाप और पाप वुद्धि का त्याग करने से होगी। जिन्होने हिसा, झूठ, चोरी अधिक तृष्णा का त्याग किया है वे सुखी हुए है। जैन पुराणो मे वर्णित रामचन्द्र, पांडवो आदि का चरित्र यह बताता है कि किन-किन महापुरुषो ने धर्म की रक्षा की और न्याय पूर्वक प्रजा का पालन किया। उन्होने कहा, "सज्जनो का रक्षण करना और दुर्जनो को दण्डित करना राजनीति है। राजा को सच्चे धर्म का लोप नही करना चाहिये और मिथ्या मार्ग का पोषण नही करना चाहिये। शासक का कर्त्तव्य है कि निरपराधी जीवो की रक्षा करे। शिकार खेलना बन्द करावे। जीवहिसा को रोके। हिसा, झूठ, चोरी, पर-स्त्री सेवन इन पाच पापो को करने वाले दण्डनीय है। हिसा आदि पाप ही दु ख के कारण है। जितनी अहिसात्मक प्रवृत्तियो की वृद्धि होगी उतनी ही सुख और शाति बढेगी। जुआ, मास, शराब, वेश्या, शिकार, चोरी, परस्त्री सेवन से सात व्यसन महापाप है। इनकी प्रवृत्ति रोकना चाहिये। ये अनर्थ के काम समझाने से बन्द नही होगे। शासन के कानून से लोग डरते है। अत कानून के द्वारा पापो का प्रचार रोकना चाहिये। जीवो को सुमार्ग पर लगाना अत्याचार नही है। ऐसा करने से सर्वत्रशाति की स्थापना होगी।

धर्म मे सुधार

एक वार आचार्य जी से प्रार्थना की गई, कि वर्तमान देश, काल, परिस्थिति को ध्यान मे देकर उन्हे धर्म मे सुधार हेतु नयी व्यवस्था देनी चाहिए।

महाराज ने पूछा "पहले सूर्य किस दिशा मे उगता था और अस्त होता था ?"

मैंने कहा "पूर्व मे उदित होता था, पश्चिम मे डूवता था।"

महाराज—"अभी भी वह पूर्व मे उगता है, पश्चिम मे डूवता है तथा आगे भी ऐसा होगा।" महाराज ने फिर कहा "पहिले गाय दूध देती थी, देती है और आगे भी गाय देगी, वैल नही देगा। सारे विश्व मे प्रकृति के कार्य क्रम मे कोई रद्दोवदल नही हुआ। यह तुम्हारी वुद्धि का भ्रम है, जो तुम सोचते हो कि परिवर्तन हो गया है। हिसा आदि पापो का त्याग सुख का कारण है। यह शाश्वतिक सत्य है। जैन धर्म मे शाश्वत रहने वाले सत्यतत्त्व का कथन किया है। अष्ट मूलगुणो का पालन, सप्त व्यसन त्याग आदि उपदेशो के अनुसार आचरण करने मे कल्याण है। ऐसा नही है कि अव पाप प्रवृत्तियो की पुष्टि को धर्म कहा जाय। कभी भी कुगति के कारण पापाचार को जैन आगम धर्म नही मानेगा। जो धर्म सत्य को छोडकर स्वार्थ पर आश्रित है वह मनमानी आकर्षक व्याख्या करेगा, किन्तु स्वर्ण तुल्य सत्य धर्म रग नही वदलेगा। स्वार्थी व्यक्ति कहेगा—

जैसी चलै वयार पीठ पुन तैसी दीजै।
सूरज पूरव अस्त उदय पश्चिम कह दीजै॥

ऐसा कथन वहु जन समाज द्वारा होने पर भी सूर्य के उदय अस्त क्रम मे परिवर्तन नही होगा।

आत्मशोधन

आचार्य महाराज की समस्त क्रियाये वहुत विचार पूर्वक हुआ करती थी। एक घटना मुनि आदिसागर जी (शेडवाल) ने सुनाई थी। उस समय गृहस्थ अवस्था मे आदिसागर जी सरकारी कर्मचारी थे। उन्होने आचार्य महाराज से प्रार्थना की, कि रविवार को छुट्टी होने पर वे उनका दर्शन कर पाते हैं, यदि महाराज की फोटो खिचवाने की अनुज्ञा मिल जाय तो प्रतिदिन गुरु का दर्शन मिल सकेगा। अत्यन्त विनम्र भाव से की गई

प्रार्थना को स्वीकृति मिल गई। फोटोग्राफर अपना पुराने टाईप का कैमरा लेकर आ गया। उससे आज के कैमरा के समान शीघ्र फोटो नही निकलती थी। फोटोग्राफर के अनुसार महाराज को कई वार आगे पीछे हटना पडा। कभी वह कहता था, इधर देखो, कभी कहता था उधर देखो। इस प्रकार विशेष समय व्यतीत होने पर महाराज की फोटो खिची।

उसके पश्चात् वे विचार मे पड गए। फोटो खिचवाने की मजूरी देकर मैने पराधीनता मोल ले ली। फोटोग्राफर के आदेश के अनुसार मुझे काम करना पडता था। वचनबद्ध हो जाने से मुझे पराधीनता सहनी पडी। इसके अनतर महाराज ने चार पाच उपवास कर लिए। पूछने पर महाराज ने यह कारण बताया कि "हमने अपने मन को दण्ड दिया, कि आगामी फोटो खिचवाने के फदे मे मत फसना।" इस छोटी घटना से यह वात स्पष्ट होती है, कि महाराज स्वय के दोषो को सावधानी पूर्वक देखकर आत्म-शोधन के कार्य मे सतत जागृत रहते है। क्षत्र चूडामणि मे वादीभसिहसूरि ने कहा है—

अन्य दोषमिवात्मीयमपि दोष प्रपश्यता
कः समः खलु मुक्तोयं युक्तः कायेन चेऽपि ॥

दूसरो के दोषो को देखने के समान स्वय के दोषो को देखने के समान कौन होगा ? वह शरीर युक्त होते हुए भी जीवन्मुक्त वाले तुल्य है।

यह सूक्ति आचार्य महाराज के विषय मे चरितार्थ होती है।

इसी प्रकार की एक और घटना उल्लेखनीय है। दीक्षा लेते ही महाराज ने जीवन भर के लिए घी, नमक, शक्कर आदि रसो का परित्याग कर दिया था। एकवार आहार देने वाली एक ब्रह्मचारिणी वाई ने भूल से घी मिश्रित पदार्थ महाराज के ग्रास मे दे दिया। उसे खाते ही उन्हे घी का स्वाद आया। त्यक्त पदार्थ ग्रहण करने मे आ जाने से उन्होने पाच छह उपवास कर लिए। वह ब्रह्मचारिणी वाई दुःखी होकर महाराज के पास गई और वोली "स्वामिन् ! मेरी भूल पर आपने इतना कष्ट उठाया।" महाराज ने कहा- "वाई, तेरी भूल के कारण मुझे पाच छह उपवास का आनन्द मिला। उपवास से मुझे कष्ट नही हुआ। मेरी आत्मा को इससे सुख और शाति प्राप्त हुई।"

सोनगढ़ की वार्ता

एक वार महाराज ने वताया कि हम गिरनार जी की वन्दनार्थ गए थे। वापसी मे सोनगढ पडता था। उस समय कानजी हमारे पास आया। वडे आदरपूर्वक हमें सोनगढ ले गया। सामायिक के उपरान्त हमने कानजी से कहा, हमको इस वात की वहुत खुशी है कि तुमने दिगम्बर जैनधर्म को स्वीकार किया। तुम यह वताओ कि जिस धर्म को तुमने छोडा, उसमे क्या दोप तुमने देखे ? हमारे प्रश्न के उत्तर मे कानजी ने कुछ नही कहा। वहुत देर हो गई, तव हमने कहा हम तुम्हारा उपदेश सुनने नही आये हैं। इसके पश्चात् हम वहा से रवाना हो गए। आचार्य महाराज के साथ आचार्य धर्म सागर महाराज, दक्षिण व्र. जिनदासजी समडोलीकर भी थे। उन्होने महाराज के साथ हुई उपरोक्त वातचीत का समर्थन करते हुए वताया, कि हम सोनगढ एक दिन भी नही ठहरे थे।

उस समय कानजी दिगम्बर जैन समाज में प्रसिद्ध नही हुए थे। अव तो वे व्रत विहीन होते हुए भी सद्गुरुदेव, होनहार तीर्थंकर आदि शब्दों द्वारा सम्मानित किये जाने लगे हैं। सोनगढ ट्रस्ट द्वारा 'अपूर्व अवसर' पुस्तक मे कानजी स्वामी को 'सत्धर्म प्रवर्तक' लिखा गया है। इस काल की अपेक्षा भगवान ऋपभदेव को जैनधर्म प्रवर्तक कहते हैं, अन्य तीर्थंकरो को धर्म प्रवर्तक नही कहते हैं। भगवान महावीर जैनधर्म के प्रकाशक (Revivor) माने जाते हैं। कानजी स्वामी को सत्धर्म प्रवर्तक लिखा जाना यह स्पष्ट करता है, कि सोनगढ के स्वामी अव अपने को नए मत निर्माता मानते हैं, आचार्य शान्तिसागर महाराज ने अपने मार्मिक प्रश्न के द्वारा क्षण भर में कानजी के अन्तस्तल को टटोल लिया था, कि उनके हृदय मे दि. जैनधर्म का क्या स्थान है।

अपूर्व पुण्य

आचार्य महाराज का अपूर्व पुण्य रहा है। सघपति सेठ गेदनमल जी जवेरी ववई ने कहा था, महाराज का पुण्य वहुत जोरदार रहा है। हम महाराज के साथ हजारो मील पैदल फिरे हैं। कभी भी कोई उपद्रव नही हुआ। हम वागड प्रान्त मे रातभर गाडियो मे चलते थे, फिर भी विपत्ति नही आई, वागड प्रान्त के ग्रामीण ऐसे भयंकर रहते है, कि दस रुपये के लिये भी प्राण लेने मे उनको जरा भी सकोच या हिचकिचाहट नही होती

थी। अनेक भीषण स्थानो पर भी हम गए है, जहा से सुख शान्तिपूर्वक जाना असभव था, किन्तु महाराज के पुण्य प्रताप से कभी भी कोई कष्ट न देखा। वर्षा का भी अद्भुत तमाशा देखा है। वर्षा आगे होती थी, पोछे होती थी, किन्तु महाराज के साथ पानी ने कष्ट नही दिया। हमनें हर प्रकार की उनकी पुण्याई के दर्शन किए है। उनकी तपस्या के मन्दिर का कलश देखना और बाकी रहा था। वे कुथलगिरि के पहाड़ पर हजारो लो।ो को पवित्र दर्शन देते थे। सबको आशीर्वाद देते थे। वह दृश्य उनके समवशरण सदृश लगता था। वे कितने बडे थे, इसका हम वर्णन नही कर सकते।

घोर तप

आचार्यमहाराज ने सारे विश्व मे जो अपना स्थान बनाया था, उसमे मुख्य कारण उनका विशुद्ध चरित्र और अनुपम तपस्या थी। भयकर कष्टो और विपत्तियो को वे शान्तभाव पूर्वक सहन करते थे। सुवर्ण मे दीप्ति और चमक आती है, उसका कारण उसका भयकर अग्नि मे बार-बार तपाया जाना है। इसी प्रकार महाराज ने रत्नत्रय रूपी अग्नि मे अपनी आत्मा को विशुद्ध किया है। ग्रीष्मकाल की एक घटना है। महाराज एक गृहस्थ के यहा आहार को गए। दातार नें भक्ति पूर्वक आहार कराया, किन्तु वह जल देना भूल गया।

दूसरे दिन गुरुदेव आहार को निकले। एक दातार नें महाराज को भोजन कराया, किन्तु अन्तरायकर्म के उदयवश वह भी जल देना भूल गया। कुछ क्षण प्रतीक्षा के बाद महाराज बैठ गये। मुख शुद्धि मात्र को। जल नही पिया। खड़े होकर ही निर्ग्रन्थ मुनि का आहार पान होता है।

चुपचाप आकर वे सामायिक मे निमग्न हो गए। पिपासा के कष्ट की क्या सोमा है ? क्षणभर की गर्मी मे प्यासे को पानी न मिले, तो वह आकुलित हो उठता है, यहा तो दो दिन बीत गए। वे पिपासापरीपह को शात भाव से सहन करते रहे। मालूम पड़ता है, वे नरक के दु.खो का स्मरण कर अपने मन को समझाते होगे, कितने पराधीन होकर सागरो पर्यन्त कष्ट भोगा है, तब कर्मो की निर्जरा हेतु इस पिपासा की पीड़ा को क्यो नही सहन करता है ? उनका मन, उनकी इद्रिया उनके आधीन थी ही। आठ दिन तक जल न मिलने का क्रम रहा। नवमे दिन गर्मी मे

महाराज की छाती मे बहुत से फोडे निकल आये। शरीर की इस अवस्था मे भी वे अविचलित धैर्य युक्त थे। दसवे दिन अन्तराय का तीव्र उदयमन्द रूप हुआ। उस दिन शरीर की स्थिति देख दातार ने जल दिया। जल लेने के पश्चात्, महाराज ने कहा, "शरीर को पानी की जरूरत थी, तुम लोग दूध डालते थे। चलो ! अच्छा हुआ। कर्मो की निर्जरा हुई।" साधुओ का मूल्याकन करने वाले सज्जन सोचे, ऐसी तपस्या कहा है ? ऐसी स्थिति मे भी वे शान्ति के सागर हो रहे।

गम्भीर बात

एक वार एक शास्त्रज्ञ विद्वान महाराज के पास आए। उनकी मुनि पद के प्रति तनिक भी श्रद्धा नही थी। वे मुनि पद के विरुद्ध अनेक बातें कहने लगे। शान्त मूर्ति महाराज ने कहा, "पडितजी ! आप एक वर्ष के लिए मुनि की चर्या पाल लो। उसको पालने के वाद अनुभव के आधार पर जो आप कहेगे उसे हम पालने को तैयार रहेगे। उनके इस उत्तर को सुनकर वे शास्त्री जी अवाक हो गए।

आचार्य नेमिसागर महाराज आचार्य श्री के पास तीस चालीस वर्ष तक रहे। उन्होने वताया था, कि "आचार्य शातिसागर महाराज के पैरो मे ध्वजा का चिह्न था। उन्होने धर्म की ध्वजा फहराकर चिह्न की सार्थकता द्योतित की। महाराज के पाव मे चक्र भी था। उस कारण वे सदा भ्रमण करते रहे। उनके शरीर मे महापुरुष के योग्य अनेक शुभ चिह्न थे। सन् १९७० मे हमारे यहा सिवनी मे हमारे भाई अभिनन्दन कुमार दिवाकर एडवोकेट के पास पेरिस की एक फ्रेंच महिला आई। हमारे घर मे आचार्य महाराज की फोटो देखकर उसने उसके वारे मे कुछ प्रश्न किए। हमने चारित्र चक्रवर्ती ग्रथ मे छपे चित्र वताए। ग्रथ के चित्र मे महाराज के हाथ की रेखा देखकर उस महिला ने कहा, ये महात्मा दिव्य दृष्टि सपन्न होना चाहिए। इनमे भविष्य का दर्शन करने की क्षमता होनी चाहिए। उस महिला की इच्छा देखकर हमने वह ग्रन्थ उनको भेट किया। उन्होने कहा था, मै हिन्दी फ्रेंच भाषी विद्वान के द्वारा इस चरित्र का मनन करूगी।

जन कल्याण

नेमिसागर महाराज ने आचार्य श्री के सम्वन्ध मे कहा, "आचार्य

महाराज सदा कहा करते थे, मासाहार, जीव हिसा, अति लोभ, व्यभिचार वृद्धि, विलासिता के साधनो की प्रचुरता के द्वारा कभी भी आनन्द नही प्राप्त होगा। भारत शासन यदि प्रजा को सुखी देखना चाहता है, तो उसको पाप कार्यो से विमुख होना आवश्यक है। हरिण, बन्दर, मछली आदि जीवो की हत्या के कार्यो मे राज्य सत्ता द्वारा उद्योग किया जाना सब सकटो का बीज है। व्यक्तिगत पापाचारो को पूर्ण रूप से रोकना सहज नही है, किन्तु शासन-सत्ता सहज ही अपने पाप व्यवसायो का रोककर अहिसा पूर्ण प्रवृत्तियो को प्रश्रय प्रदान कर सकती है। यदि भारत के कर्णधारो ने अपना रग ढग न बदला, तो देश उत्तरोत्तर अधिक सकटग्रस्त होगा।" आचार्य शान्तिसागर महाराज ने जो कहा कि जितना अहिसा की ओर शासन का झुकाव होता जायेगा, उसी अनुपात से दु खो, सकटो की वृद्धि होगी। यह बात प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रही है।

अहिसा रसायन

भारत को स्वतत्र हुए २५ वर्प हो गए। उसने स्वतत्रता की रजत जयती का आनदोत्सव भी कर लिया, किन्तु जनता के जीवन को देखकर यह स्पष्ट होता है, कि आज स्वतत्रता की मनोहर स्थिति मे जन साधारण हर प्रकार की आपत्तियो और अभावो से व्यथित हो रहा है। भारतीय इतिहास के वे वर्प स्वर्ण अक्षरो मे लिखे जाने योग्य रहे है, जबकि देश मे अहिसा की गगा प्रवाहित होती थी। आज के जमाने मे जीव वध के नए २ उपाय सोचे जाते है। डाक्टर इकवाल ने यह मार्मिक बात कही थी, "जान लेने की हिकमत मे तरक्की देखी।"

आचार्य महाराज के अनुभव के अनुसार यदि अहिसा रूपी रसायन का सेवन न किया गया, तो राष्ट्र क्षीण होता जायेगा, इसमे तनिक भी सदेह का स्थान नही है। महा श्रमण सर्वज्ञ तीर्थकर महावीर प्रभुने कहा था, जितने दुःख है, उनकी उत्पत्ति हिसात्मक प्रवृत्तियॉ है "हिसा प्रसूतानि सर्व दु खानि।" जैन आचार्यो का अनुभव अद्भुत और सत्य समलकृत रहा है। इस विषय मे यह उदाहरण महत्वपूर्ण है। आचार्य पूज्यपाद ने कहा था, अभय दान देने से अभय पद प्राप्त होता है,"निर्भयोऽभयदानवत ।" भारत देश ने करोब एक करोड बगला देश के दु खी लोगो के प्राणो की रक्षा की, उनको स्थान भोजन दिया। इस अभय दान का ही यह महा फल था, जो

पाकिस्तान द्वारा दिसम्बर १९७१ के भारत पर हुए आक्रमण के समय भारत की अद्भुत विजय हुई और उसको सारे विश्व मे गौरव प्राप्त हुआ। अमितगति श्रावकाचार मे अमितगति आचार्य का यह कथन महत्वपूर्ण है।

तदस्ति न सुखं लोके न भूतं न भविष्यति।
यत्र सपद्यते सद्यो जन्तोरभयदानत. ॥११—१२॥

ऐसा जगत मे कोई सुख नही है, न हुआ है और न आगामी काल मे होवेगा, जो जीवो को अभयदान देने से शीघ्र न प्राप्त हो।

महावध

मैंने महावंध ग्रन्थ (महा धवल) के प्रकृति वध अधिकार का हिन्दी अनुवाद करके मुद्रित प्रति महाराज को समर्पण की. उस समय गुरुदेव ने मगल आशीर्वाद प्रदान करते हुए कहा था, "हमे पहले समयसार नही चाहिए, पहिले हमे महावध चाहिए। पहले हमे यह जानना चाहिए कि हमारी आत्मा किन कारणो से वधन मे पड़ी है। जो व्यक्ति वध की वात को समझकर वन्ध के कारणो से वचेगा, उसकी आत्मा दु.खो से दूर होगी।" आचार्य महाराज ने यह महत्वपूर्ण उदाहरण देकर इस विषय को खुलासा किया था, "एक राज पण्डित अपने पुत्र को विना पण्डित वनाए मर गया। विद्वान् न होने से उस पुत्रको आजीविका का कोई उपाय न सूझा। उसने चोरी हेतु राजमहल मे प्रवेश किया। वहा जाकर उसने हीरा, मोती आदि रत्नो तथा सोना, चांदी आदि की विपुल राशि को राजकोप मे देखा, किन्तु कुछ भी नही चुराया। अन्त मे महल के वाहर भूसे का ढेर देखकर एक वड़े टोकने भर भूसा लेकर वाहर आया।

प्रभात मे हल्ला मचा, कि राजमहल मे चोर घुसा था। पडितजी के सुपुत्र पकडे गए और राजा के समक्ष पेश हुए। राजा ने पूछा, "तुमने जवाहरात, सोना आदि कीमती पदार्थो को क्यो नही चुराया तथा भूसा की चोरी क्यो की ? राज पडित के पुत्र ने कहा, "मेरे पिता ने मुझे विद्या नही सिखाई, इससे मुझे जीविका हेतु चोरी का रास्ता अपनाना पडा। मेरे पिता ने मुझे यह सिखलाया था, कि हीरा, मोती, सोना आदि की चोरी करने वाला आदमी आगामी जन्म मे गधा ऊँट, आदि नीच पर्यायो मे जन्म धारण कर दु ख पाता है। भूसा की चोरी से आगामी जन्म मे क्या कष्ट मिलेगा, यह हमारे पिता ने नही वताया। इस कारण मैंने भूसा की चोरी की।'

रसायन शास्त्रज्ञ खदान के निकले मिट्टी आदि मलिनता पूर्ण स्वर्ण मे स्वर्ण का सद्भाव बताता है, किन्तु उस स्वर्ण को प्राप्त करने के हेतु उस मृत्तिका को क्षार द्रव्यो के साथ अग्नि मे बार-बार दग्ध होना पड़ेगा। इसी प्रकार ससारी आत्मा को कर्म जनित मलिनता से मुक्त होने के लिए ध्यानाग्नि द्वारा कर्म जनित कालिमा का नाश करना होगा। ऐसे भी अनत जीव है,' जो आज तक निगोद पर्याय छोड़कर त्रस रूप नही हुए और न आगे निगोद पर्याप्त का त्याग करेंगे। उनकी निगोद पर्याय अनादि और अनत कही गई है। आगम मे कहा है—

अत्थि अणंता जीवा जेहिं ण पत्तो तसाण परिणामो।
भावकलङ्क सुपउरा णिगोदवासं ण मुंचति॥

ऐसे अनत जीव हैं, जिन्होने त्रस पर्याय नही प्राप्त की है। परिणामो मे मलिनता की प्रचुरता रहने से जो निगोद वास का त्याग नही करते है।

ऐसे निगादिया जीव को निश्चय नय वादो सिद्ध भगवान् खुशो से कह सकता है, किंतु जहां तक जीवो के दु.ख का सम्बन्ध है, वहा तक व्यवहार नय की दृष्टि से उनको दु.ख के समुद्र मे डूबा पावेंगे। शक्ति और व्यक्ति (प्रगटपना) मे बहुत अन्तर है। जिस काष्ठासन पर आप बैठे हैं, उसमे शक्ति की अपेक्षा अग्नि है, व्यक्ति की अपेक्षा नही है। यदि यह भेद न माना जाय, तो काष्ठासन मे शक्ति रूप से विद्यमान अग्नि आपके शरीर मे दाह उत्पन्न किए बिना न रहेगी। इस चर्चा के प्रकाश मे ससारी जीव कर्मो को बधन मुक्त मानकर उस बधन के कारणो मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योग को स्वीकार करना होगा। आगम मे कहा है—

"मिथ्या दर्शनाविरति-प्रमाद-कषाय-योगाः बधहेतवः।"
(८,१ तत्त्वार्थ सूत्र)

मिथ्यात्व का अभाव होने पर सम्यग्दर्शन प्राप्त होगा, फिर भी अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योग ये बध के कारण जब तक दूर न होगे, तब तक मोक्ष नही प्राप्त होगा। अतः कुन्द-कुन्द स्वामी ने कहा है, कि बध के कारणो का त्याग करो। बंध के अभाव मे सवर होगा तथा पूर्व सचित कर्मो की निर्जरा होने पर मोक्ष होगा। उमास्वामी आचार्य ने तत्त्वार्थ सूत्र मे कहा है, "बध-हेत्वाभाव-निर्जराभ्या कृत्स्न-कर्म-विप्रमोक्षो मोक्ष."—(१०-२) बध के कारणो का अभाव और निर्जरा द्वारा समस्त कर्मो का क्षय होना मोक्ष है। आचार्य शान्ति सागर महाराज ने जो यह कहा था, पहिले महा-

बंध चाहिए समयसार नही। उसका रहस्य यही था, कि यदि तुमने समयसार बात की यह अपने विषय मे लगा करली कि—

णवि होदि अप्पमत्तो व पमत्तो जाणओ दु जो भावो ॥६॥

आत्मा न अप्रमत्त है और न प्रमत्त है, किन्तु ज्ञायक स्वभाव युक्त है, अत: कर्मक्षय हेतु विषय-कपायो के त्याग की आवश्यकता है, नही तो आत्मा का भयंकर अहित हो जाएगा। इसलिए धर्मात्मा पुरुष का कर्तव्य है, कि वह तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय छह मे कथित कर्मो के आगमन के कारणो को अपने ध्यान मे रखकर यथा शक्ति बंध के कारणो से बचने का उद्योग करे। प्रमादी व्यक्ति अध्यात्म शास्त्र को पढकर जीवन शोधन मे प्रमादी बनता हुआ कुपथ-गामी होता है। वह विषया सक्त व्यक्ति शास्त्र को पढकर विषय पोषण की कुयुक्तियाँ खोज करता है। अत. आचार्य महाराज ने यह महत्व पूर्ण बात कही थी, कि समयसार के अभ्यास के पूर्व बंध शास्त्र का परिशीलन उप-योगी रहेगा। वर्तमान काल मे अध्यात्म प्रेमी कहे जाने वाला वर्ग निरर्गल और निरकुश प्रलाप और प्रवृत्ति करने मे कुछ रुकेगा, यदि उसे यह ज्ञात हो जाय, कि एकान्त वादका आश्रय लेकर जीव सत्तर कोड़ा कोडी सागर की स्थिति वाला दर्शन मोहनीय कर्म का बंध करता है। तीर्थकरो की चौवीसी होने मे जितना काल जाता है, उतना काल दर्शनीय मोहके दुष्फल के भोगने मे व्यतीत होगा। गोम्मटसार कर्म काण्ड मे कहा है—

अरहत-सिद्ध-चेदिय-तव-सुद-गुरु-धम्म-पडिणीगो।
बंधदि दंसण मोहं अणंत ससारिओ जेण ॥८०२॥

जो जीव अरहत सिद्ध, जिन प्रतिमा, तपश्चर्या, आगम, दिगम्बर गुरु तथा वीतरागोक्त अहिसा धर्म के प्रतिकूल वृत्ति धारण करता है, वह दर्शन मोह कर्म का बंध करता है, जिससे वह अनन्त ससार मे भटकता फिरता है।

वर्तमान युग की विलासिता तथा असत्प्रवृत्तियो मे लगे व्यक्ति का भविष्य जैनागम इस प्रकार बताता है

मिच्छो हु महारंभो णिस्सीलो तिव्व-लोह-सजुत्तो।
णिरयाउग णिबंधइ पावमई रुद्द परिणामी ॥८०४॥

मिथ्यात्वी, महान आरम्भ वाला, व्रतशील रहित, तीव्रलोभ के चक्कर में फँसा आ, रौद्र परिणामी, तथा दुष्ट बुद्धि व्यक्ति नरकायु का बंध करता है।

उम्मग्गोदेसगो मग्गणासगो गूढहियय माइल्लो ।
सठसीलो य ससल्लो तिरियाउं बधदे जीवो ॥८०५॥

जो आगम की आज्ञा के विरुद्ध उपदेश देता है, सर्वज्ञ प्रणीत मार्ग का लोप करता है, जो अपने चित्त मे बातो को छुपाता हो, जो कपट प्रवृत्ति करता हो, जो दुष्टता युक्त स्वभाव वाला हो, माया आदि शल्य सहित हो, वह जीव तिर्यंच आयु का बन्ध करता है ।

इस प्रकार शास्त्रो के द्वारा कर्म बध के कारणो की बात को यदि कोई समझदार व्यक्ति समझ ले, तो उसका मन पाप प्रवृत्तियो से डरेगा ! इन बातो को जानते हुए भी यदि कोई अपनी आदत को नही सुधारता है, तो यह निश्चय करना होगा, कि उसकी होनहार शोचनीय है । अध्यात्मवादी वर्ग जिन कुन्दकुन्द महर्षि को प्रेरणा प्रदाता मानता है उसका यह पवित्र तथा न्यायोचित कर्तव्य हो जाता है, कि वह समयसार की मोक्ष अधिकार की गाथा के अनुसार सर्व प्रथम बध के कारणो का परिज्ञान प्राप्त करे, तत्पश्चात् आत्मस्वरूप को अवधारण करे और बध-प्रद सामग्री से अपने को बचाने का प्रयत्न करे ।

आचार्य शाँतिसागर महाराज ने कुथलगिरि के प्रकाश दाता उपदेश मे कहा था, "रोटी रोटी कहने से पेट नही भरेगा । उसे रोटी तैयार करनी होगी । पश्चात् उसको खाने पर पेट भरेगा ।" इसी प्रकार आत्मा आत्मा की रट लगाने से कार्य सिद्ध नही होगा । विकारी प्रवृत्तियो और दुष्टविचारो को दूर करने के उपरान्त अपरिग्रही मुनि हो आत्मा की निर्विकल्प समाधि मे लीन होने वाली आत्मा अपने स्वरूप की उपलब्धि की दिशा मे प्रगति कर सकेगी । यह बात ध्यान देने की है, कि पचनमस्कार मन्त्र मे अविरत सम्यक्त्वी का स्थान नही है । उस महामन्त्र मे रत्नत्रय समलकृत सयमी समुदाय को प्रणामाजलि अर्पित की गई है और उसे "सव्व पावप्पणासणो" सर्व पापो का विनाशक कहा गया है ।

महापुराणकार के शब्द मे आज का "पाप-पण्डित" व्यक्ति पाचो इन्द्रियो के पोषण हेतु उचित अनुचित कार्य का बिना विचार किए समस्त विश्व मे परिभ्रमण करता है तथा भयकर से भयकर सकटो से नही डरता है, किन्तु धर्म के हेतु वह पगु बनता है । भूधरदास ने अपने भजन मे कहा है—

अरे ! भगवत भजन क्यो भूला रे ।
स्वारथ साधे पांच पांवत् परमारथ को लूला रे ॥

वे पूछते है—

कहि कैसे सुख पै है प्राणी, काम करै दुःख मूला रे।
भगवंत भजन क्यों भूला रे ॥

अनादिकालीन मोह मदिरा के पान द्वारा उन्मत्त प्राणी परमार्थ के कार्यमें कलकरूंगा आगामी वर्ष करूगा आदि किया करता है, गौण कार्यो को प्राथमिकता (Top-priority) किया करता है।

पाप त्याग

इस सबम्न्ध मे आचार्य महाराज के ये शब्द अत्यन्त गम्भीर और मार्मिक है—भविष्य का क्या भरोसा। शीघ्र ही आत्मा के हित सपादनार्थ व्रत धारण करो। ससार के कामो मे तुम जितना कष्ट उठाते हो, उसकी तुलना मे व्रती बनने की तकलीफ नगण्य है, लेन देन व्यापार, व्यवसाय द्रव्यार्जन करने आदि मे तुम लोग कितना परिश्रम उठाते हो ! कितनी विपत्तियो को मोल लेते हो ! उसका फल स्वरूप थोडा सा सुख प्राप्त होता है। जब इतने वर्ष सुख को भोगते भोगते सन्तोष नही प्राप्त हो पाया, तो शेप जिदगी मे, जिसका कोई भरोसा नही है, और कितना सुख भोग लोगे ! अरे व्रती बनने मे मरण के उपरान्त तुम्हे देव पर्याय मे इतना सुख सुदीर्घ काल तक प्राप्त होगा, जिसकी तुम कल्पना तक नही कर सकते। देवो को दशाग कल्पवृक्षो से मनोवाछित सुख की सामग्री श्रेष्ठ रूप मे प्राप्त होती है। वहाँ निरन्तर सुख मिलता है। दिन और रात्रि का भेद नही रहता है। वहाँ बालपना, बुढापा न होकर सदा यौवन का सुख रहता है। वहा पाचवे, छठवे काल का सकट नही मिलेगा। वहा खाने पीने का कष्ट नही है। अपने समय पर कण्ठ मे अमृत का आहार प्राप्त होता है। आचार्य महाराज के कथन की पुष्टि रत्नकरड श्रावकाचार मे महान आचार्य समन्त भद्र की इस वाणी द्वारा होती है।

पचअणुव्रतनिधयो निरतिक्रमणा. फलन्ति सुरलोकम्,
यत्रावधिरष्टगुणा दिव्यशरीर च लभ्यन्ते ॥६३॥

निर्दोषरुप से पालन की गई अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य रुप अणुव्रत निधियाँ स्वर्ग लोक के फल प्रदान करती है। वहाँ अवधिज्ञान, अष्ट प्रकार की ऋद्धियाँ और सप्त धातु रहित दिव्य शरीर प्राप्त होता है।

पूज्यपाद जैसे महान आचार्य-व्रत धारण के फलस्वरूप प्राप्त स्वर्ग सुख का इस पद्य मे मार्मिक चित्रण करते हैं—

हृषीकजमनातक दीर्घकालोपलालितम्
नाके नाकौकसां सौख्यं नाके नाकौकसामिव ॥

स्वर्ग मे देवताओ का सुख इन्द्रियो से उत्पन्न, आतकरहित तथा सुदीर्घ काल पर्यन्त प्राप्त होता है। वह सुख स्वर्ग मे देवताओ के सुख के समान है, अर्थात् उसकी उपमा मे अन्य ससार का सुख नही है।

शंका—अध्यात्म प्रेमी पूछता है, हमे स्वर्ग मे कोई आध्यात्मिक लाभ भी होगा ?

उत्तर—इस शका के समाधान मे आचार्य महाराज ने कहा था, "स्वर्ग से तुम विदेह क्षेत्र मे पहुचकर वर्तमान तीर्थकर भगवान सीमधर स्वामी आदि के समवशरण मे जाकर उनकी दिव्यध्वनि को सुन सकोगे। उनकी वीतराग छवि का दर्शन, उनकी मनोज्ञ धर्म देशना द्वारा सम्यक्त्व का लाभ ले सकोगे। नन्दीश्वर के दिव्य जिन बिम्बो का दर्शन, पचमेरु आदि की रत्नमयी, सुवर्णमयी, रजतमयी मूर्तियो का भी दर्शन कर सकोगे, जिनके दर्शन से निकट ससारी जीव का मिथ्यात्व छिन्न भिन्न हो जाता है। वहाँ से विदेह क्षेत्र मे जल धारण कर वज्रवृषभ सहनन पाकर तुम मोक्ष पहुच सकते हो। अत. व्रत द्वारा जीवन को अलकृत करने का आत्म कल्याण की दृष्टि से बहुत बड़ा मूल्य है। उन्होने करुणाभाव से पूर्ण अन्तःकरण द्वारा ये मार्मिक शब्द कहे, थे "हम तुम्हारे कल्याण की बात कहते है। तुम्हारे लिए खोटा बोलने का हमे क्या कारण है ? तुम लोग हमारे समीप बार बार आते हो। हमारी भक्ति करते हो। तुम्हारा आगामी भविष्य सोचकर हमारे चित्त मे दया आती है। इससे हम तुमको कहते है, कि यहाँ सुख प्राप्ति के लिए क्यो दिनरात चक्कर काटा करते हो। व्रत धारण करके स्वर्ग मे अवर्णनीय महान सुख प्राप्त करोगे, श्रेष्ठ धर्म का सुयोग मिलेगा, पश्चात् मोक्ष प्राप्ति के अनुकूल सामग्री युक्त विदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर मोक्ष पुरुषार्थ को प्राप्त करोगे।"

प्रेरणा

लोगो के मन मे व्रत धारण करते समय यह दुर्बल भाव प्रायः पैदा होता है, कि भविष्य का हमे पता नही। पता नही कैसी परिस्थिति आती

है, इसलिए व्रत लेनें से मन में सकोच पैदा होता है। ऐसे व्यक्तियो को साहस और धर्म प्रदान करते हुए चारित्र-चक्रवर्ती साधुराज नें कहा था, **"व्रत केला पाहिजे, व्रत बरोबर टिकणार, बाबा नो, भीउ नका"** व्रत अवश्य धारण करो। वह बराबर टिकेगा। अरे भाई! डरो मत।"

व्रताचरण के विषय में एक व्यक्ति नें कहा, "महाराज! व्रतपालन में रुढिभक्त लोग विघ्न उपस्थित करते है, ऐसी परिस्थित मे क्या किया जाय?

महाराज ने कहा, "व्रतो के विषय मे शास्त्राज्ञा को लेकर चलो। रूढि को नही। शास्त्राज्ञा ही जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा है। लोक की आज्ञा रुढि है। धर्मात्मा जीव सर्वज्ञ जिनेन्द्र की आज्ञा का बताने वाले शास्त्र को अपना मार्ग दर्शक मानेगा? दूसरी वस्तुओ को मोक्ष मार्ग के लिए कैसे वह मार्ग दर्शक मानेगा। आगम भक्त ही आगम के अनुसार आचरण करने वाला जीव कल्याण को प्राप्त करता है।"

शास्त्र मे कहा है, "स्वाचारा प्रतिलोम्येन लोकाचार प्रमाणयेत्"— अपनें व्रताचरण के अप्रतिकूल लोकाचार को प्रमाण माने।"

विषयासक्त चित्त कल्याण से विमुख होने के लिए तरह तरह की कुतर्क उठाकर अपनें प्रिय जीवन के साथ खिलवाड करता है। प्राय हम कह दिया करते है, व्रत नियम आगे पालेगे, अभी क्या विगडता है। इस सम्बन्ध मे शास्त्र कहता है, एक क्षण का भी भरोसा नही करना चाहिए।

आचार्य महाराज नें सुनाया था, "एक ग्राम में हमे एक धर्मात्मा व्यक्ति ने आहार दिया था। उसके पश्चात् हम सामायिक को बैठे। सामायिक पूर्ण होनें पर हमें यह समाचार सुनाया गया कि आहार देने वाला व्यक्ति मर गया।" यह सुभापित स्मरण योग्य है—

मन! तू सड़े शरीर में क्या मानै सुख चैन।
जहां नगारे कूच के बजत रहत दिन रैन॥

श्रमण बेलगोला के महाभिषेक के समय लगभग सौ वर्ष पूर्व एक विचित्र घटना हुई थी। एक राज्यवश के जैन क्षत्रिय भगवान वाहुवली के ऊपर घी दूध का अभिषेक देखकर अपार आनन्द का अमृत पान कर रहे थे, कि प्राणो ने परलोक को प्रयाण कर दिया। इससे यह स्पष्ट होता है कि आत्म कल्याण के विषय मे क्षण भर भी प्रमाद हानिप्रद हो सकता है। पद्मपुराण मे एक मार्मिक प्रसग इस प्रकार वर्णित किया गया है—सीता के भाई भामडल यह सोचा करते थे, मैं यदि अभी जिन दीक्षा धारण करूंगा,

तो मेरी रानियो आदि को अपार पीड़ा होगी। अत. आगामी योग्य काल मे मैं ध्यानग्नि द्वारा कर्मों को भस्म करने के हेतु जिन दीक्षा लूगा। भामण्डल भूल गया, कि—सन्निहित च सदा मृत्यु" मेरे समीप ही मृत्यु ने डेरा डाल रखा है। भामण्डल अपने सात मंजिल महा प्रासाद मे वैठा था, कि विजली गिरी और भामण्डल मृत्यु की गोद मे सो गया। दीर्घ सूत्री व्यक्ति इस प्रकार अपना हित सम्पादन नही कर पाता है। सत्पुरुप कहते है कि ऐसा समझो, मृत्यु ने मेरी चोटी पकड़ ही ली है, अत· एक क्षण भी व्रताचरण विहीन मत जाने दो।" गुणभद्र स्वामी ने उत्तर पुराण मे लिखा है—

व्रत से लाभ

अभीष्ट फलमाप्नोति व्रत वान्पर जन्मनि।
न व्रतादपरो बन्धुर्ना व्रतादपरो रिपुः॥

व्रत धारण करने वाला प्राणी आगामी जन्म मे मनोवाँछित सुख को प्राप्त करता है। व्रत से वढकर जीव का कोई वन्धु नही है, तथा व्रत शून्य अव्रती की अवस्था से वढकर जीव का कोई शत्रु नही है।

इस पंचम काल मे सयम और सयमियो का शत्रु एक वर्ग उत्पन्न हो गया है, जिसका मुख्य धधा या आदत सयम तथा व्रत के विरुद्ध प्रलाप करते हुए लोगो को आत्मज्ञान के नाम पर व्रतो से विमुख कराना है। वे आगम की इस देशना को स्मरण करने का कष्ट नही उठाते, कि अनादि कालीन अज्ञान के कारण यह भ्रान्त जीव पुद्गल के कुचक्र मे फसा हुआ आत्मा को नही समझ रहा है। मोह कर्म के उदय वश यह पर पदार्थों को अपना मान भूताविष्ट की तरह चेष्टा करता है। मेरा आत्मा चैतन्य पुज है। दिव्य ज्ञानी ज्योति सम्पन्न है। मैं आनन्द का सिन्धु हूँ। पौद्गलिक पदार्थ मेरे नही है। इस प्रकार वाक् पटुता मिथ्यात्वी भी दिखाता है। जव एकादशॉग का ज्ञाता भी मिथ्यात्व के रोग से मुक्त नही होता है, तव गिने चुने शब्दो द्वारा आत्मा की स्तुति करने की या गीत करने की चतुरता वाला व्यक्ति मिथ्यात्वी नही रह सकता। चर्चा करना और अनुभव प्राप्त करना इनमे महान अन्तर है। चतुर तोता सिखाए जाने पर भेद विज्ञान, आत्म ज्योति की मधुर वाते सुना सकता है, फिर भी वह तोता भाव ज्ञान शून्य रहता है। वह उस कथन का रहस्य तनिक भी नही समझता। एक वात ध्यान देने की है, जैसे-जैसे तमो मण्डल मे उप: काल मे सूर्य समीप

व्रत के विषय में सावधान करने के साथ उसकी मानसिक शक्ति पर दृष्टि रखते थे, कि वह उसे कहाँ तक पाल सकेगा।

जस्टिस श्री तुकोल की धर्म पत्नी ने महाराज से रात्रि भोजन त्याग का व्रत मांगा। महाराज ने उससे कहा, "तुम्हारा पति बड़ा आदमी बनेगा, उस स्थिति में तुमसे व्रत का निर्वाह कैसे होगा?' इस स्पष्टीकरण के उपरान्त जब उसने कहा कि मैं व्रत को बराबर पालूंगी, तब महाराज ने व्रत दिया था। इस बात को जज महोदय ने इन शब्दों में प्रगट किया है 'He cautioned her and told her that I was going to be 'a big man' and she might not find it possible to keep up the vow. My wife submitted that she would keep up the vow whatever positions I might reach. She was given the vow and she has kept it up both in letter and spirit. his utterance was prophetic and I rose to the highest position in the Judiciary (सन्मति, मराठी मासिक, दीपावली विशेषांक पृष्ठ १२)

सदाचार के सूत्र

गणित शास्त्र का चतुर शिक्षक विद्यार्थी को कुछ गणित के गुर (करण सूत्र) बता देता है, उसके आधार पर वह छात्र बड़े-बड़े प्रश्नों को सरलता पूर्वक हल कर लिया करता है। इस प्रकार संयम की महा पाठशाला में प्रवेश पाने की लालसा वाला तथा अल्प शक्ति वाला विद्यार्थी बिना किसी कष्ट के सरलता से संयम की रसानुभूति कर अपना भविष्य उज्ज्वल बना सकता है। आचार्य कहते हैं प्रथम यह सूत्र हृदय में धारण करो, कि जब तक जो पदार्थ तुम्हारे द्वारा उपभोग में नहीं आते हैं, तब तक उनका तुम त्याग करो। कदाचित् व्रत युक्त स्थिति में मृत्यु हो जाती है, तो तुम्हारी देवगति होगी, कारण व्रती जीव नीच गति में नहीं जाता है। दूसरा सूत्र यह है "जो पदार्थ तुम्हारे स्वास्थ्य आदि को हानि प्रदान करता है, उसका त्याग कर दो।' इससे नीरोगता की भी प्राप्ति होगी। तीसरा सूत्र है तुम जगत् के अनन्त पदार्थों में से बहुत कम पदार्थों का उपयोग या उपभोग करते हो; अतः भोग और उपभोग की सामग्री का परिमाण कर लो। इससे तुम्हारा मन मर्यादा के बाहर के विषयों के प्रति आसक्ति नहीं धारण करेगा। चौथी यह है, कि तुम उपलब्ध सामग्री को सेवन

करते समय स्वय सोचो, कि अगणित बार तुमने इस पदार्थ का भोग किया है और तुम्हारा लालसा का रोग दूर नही हुआ है, अत. अपनी आत्मा को जागृत कर तुम कुछ काल के लिए उस सामग्री का त्याग कर सकते हो।

विवेकी व्यक्ति बडे पुरुषो के जीवन से भी अपने लिए मार्ग दर्शन प्राप्त करता है। क्षेमकर मुनिराज के उपदेश को प्राप्त कर वज्रजघ चक्रवर्ती का हृदय भोगो के प्रति विरक्ति पूर्ण हो गया। वे सोचते थे,

ज्यों ज्यों भोग संजोग मनोहर मनवाछित जन पावै।
तृष्णा नागिन त्यो त्यो डंके लहर जहर की आवे।।

जैसे-जैसे मनोहर भोगो का आश्रय लिया जाता है, वैसे-वैसे तृष्णा भाव बढता जाता है।

चक्रवर्ती का यह चितन मे अत्यन्त गभीर और यथार्थ है। इसके भीतर चिरन्तन सत्य के दर्शन होते है। सम्राट् सोच रहे थे।—

मै चक्रीपद पाप निरन्तर भोगे भोग घनेरे।
तौभी तनक भये नहि पूरन भोग मनोरथ मेरे।।
राज समाज महा अघकारन बैर बढ़ावन हार।
वेश्या सम लक्ष्मी अति चचल याका कौन पत्यारा।।

तत्त्व चितन द्वारा उन्होने उसी सत्य का दर्शन किया, जिसके कारण तीर्थकरो ने भी तपोवन को अपना आश्रय स्थल बनाया था। वह सत्य यही है, "मिथ्या वैषयिक सुखम्।" इस प्रकार द्वादश अनुप्रेक्षाओ की ओर दृष्टि डालने वाला जीव इन्द्रियो की गुलामी छोड़ कर आत्मा की ओर झुकता हुआ जन्म, जरा, मरण के कुचक्र से बच कर अमृतत्व के हेतु उद्यम करता है। विषयो की आराधना से विमुख मन आत्मा की ओर प्रवृत्ति करने योग्य परिस्थिति को प्राप्त करता है। इसलिए प्रथमानुयोग ग्रन्थो मे हम देखते है, कि भव्यात्मा के समीप आने पर महा ज्ञानी धर्म गुरु उसे व्रत स्वरूप औषधि देते है। प्रथमानुपयोग ग्रन्थो का कथन कल्पित कहानी है। स्वामी समन्तभद्र ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है "अर्थाख्यान प्रथमानुयोगम्"—प्रथमानुयोग मे सत्यार्थ वातो का प्रतिपादन है। गभीरता से विचारा जाय, तो महर्षि व्रत दान द्वारा उस जीव का मुख भोग और विषय से मोड़ कर आत्मोन्मुख करने का विवेक पूर्ण उद्योग आरम्भ कराते है। धीरे-धीरे वह व्रत स्वरूप वीज विकसित होकर रत्नत्रय स्वरूप महा

वट वृक्ष रूप मे परिणत हो जाता है, जिसके आश्रय को पाकर अगणित जीव-ससार के सन्ताप से बच जाते है। सम्यग्दर्शन सयुक्त जीव को सयम मुक्ति मन्दिर मे पहुँचाता है, तथा काल लब्धि आदि के अभाव वश सम्यक्त्व रहित जीव को सयम कुगति मे पतन से बचाता है। यथाशक्ति अगीकृत और प्रामाणिकता पूर्वक परिपालित संयम जीव को सदा सरक्षण प्रदान करता है। इसी कारण आचार्य शातिसागर महाराज अपने जीवन और वाणी द्वारा संयम का सौरभ चतुर्दिक विकीर्ण किया करते थे। जन साधारण मलिन आचार, विचार का त्याग कर सच्चरित्र मानव बना करते थे। महाराज के द्वारा अहिसा की अपार प्रतिष्ठा वृद्धिगत हुई। जिस प्रकार सूर्य प्रभात मे उदित हो अन्धकार का नाश करता हुआ दिन भर जगत् को प्रकाश प्रदान करता है; उसी प्रकार आचार्य महाराज रूप धर्म के सूर्य द्वारा मिथ्यात्व अज्ञान और असंयम के अन्धकार को दूर कर भव्यात्माओ को सम्यक्त्व, समीचीन ज्ञान तथा सदाचार का प्रकाश प्राप्त हुआ करता था। उनकी पावन स्मृति भी आज सत्पुरुषो के लिए अनमोल निधि है।

आत्म चिंतन

आचार्य महाराज की दृष्टि मे ध्यान का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। प्रतिक्रमण ग्रन्थ मे कहा है, कि गौतम गणधर ने भगवान महावीर प्रभु से पूछा था, कि समस्त जगत् के मध्य मे आपने "सारभूतानि व्रतानि" व्रतो को सार रूप कहा है, तब यह बताइये, कि उन व्रतो का सार क्या है? तब भगवान ने कहा था "सो सारो एस गोदम, सारम् झाणेत्ति णामेण' वह सार पदार्थ क्या है? हे गौतम वह सार पदार्थ ध्यान है। यह मेरा ही कथन नही है, "सव्व बुद्धे हिं देसिद,,—यह बात समस्त सर्व बुद्धो अर्थात् सर्वज्ञों ने बताई है।

आचार्य शांतिसागर महाराज ने अन्तिम सन्देश मे कहा 'सत्य अर्थात् आत्मदर्शन और अहिसा अर्थात् सदाचार के द्वारा विश्व का कल्याण होगा। आत्म स्वरूप का चिंतन करो तथा व्रतो का पालन करो, यह उनका पावन सन्देश था।

उत्तर खण्ड

योगि भक्ति

थोस्सामि गुण धराणं अणयाराणं गणेहिं तच्चेहिं ।
अंजलि - मउलियहत्थो अभिवंदंतो सविभवेण ।।१।।
स्तोष्यामि गुणधराणां अनगाराणां गुणैस्तत्त्वैः ।
अंजलि-मुकुलित हस्तो अभिवदमानः स्वविभवेन ।।

मै गुणों को धारण करनेवाले दिगम्बर मुनि राजो को हाथ जोडकर तथा मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हुए अपनी शक्ति के अनुसार वास्तविक गुणो के द्वारा उन मुनीन्द्रो का स्तवन करता हू ।

सम्मं चेव य भावे मिच्छाभावे तहेव बोधव्वा ।
चइऊण मिच्छभावं सम्मम्मि उवट्ठिदे वंदे ।।२।।
सम्यक्चैव च भावे मिथ्या भावे तथैव बोद्धव्यः ।
त्यक्त्वा मिथ्याभावं सम्यक्त्व उपस्थितान्वन्दे ।।

कोई सम्यक्त्व भाव युक्त होते है और कोई मिथ्या भाव सहित होते है । उन मुनीश्वरो को मैं प्रणाम करता हूँ; जिन्होने मिथ्यात्व का परित्याग कर सम्यक्त्व को प्राप्त किया है ।

दो-दोस-विप्पमुक्के तिदंडविरदे ति-सल्ल-परिसुद्धे ।
तिण्णिय-गारव रहिए तिरयण सुद्धे णमंसामि ।।३।।
द्विदोष-विप्रमुक्तास्त्रिदंडविरतान् त्रिशल्य परिशुद्धान् ।
त्रिगारव रहितान् त्रि - रत्न शुद्धान् नमस्यामि ।।

राग और द्वेष रूप दो दोषों से रहित, मन, वचन तथा काय इन तीनो को वश करने वाले, माया, मिथ्या तथा निदान रूप तीन शल्य रहित शब्द गारव, ऋद्धि गारव तथा रसास्वाद गारव रूप तीन दोष रहित व विशुद्ध रत्नत्रय युक्त मुनीश्वरो को मै नमस्कार करता हूँ ।

चउविह्-कसाय-महणा चउगइ ससार-गमण-भय-भीए ।
पचासव-पडिविरदे पंचेंदिय - णिज्जिदे वंदे ॥४॥
चतुर्विध कषायमथनान् चतुर्गति-ससारगमन-भय-भीतान्।
पंचास्त्रव-प्रति-विरतान् पंचेन्द्रिय-निर्जितान् वंदे ।

क्रोध, मान, माया तथा लोभ रूप चार कषायो का नाश करने वाले, चतुर्गति गमन रूप ससार मे परिभ्रमण से भय युक्त, मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग रूप पच विध आस्त्रवो से दूर रहनेवाले तथा स्पर्शन रसना, नासिका, नेत्र तथा कर्ण रूप पच इन्द्रियो के विजेता मुनीश्वरो को मैं प्रणाम करता हूँ ।

छज्जीवदयावण्णे छडायदणविवज्जिदे समिदभावे ॥
सत्तभय विप्प मुक्के सत्ताण शिवकरे वदे ॥५॥
षड्जीवदया पन्नान् षडायतन-विर्वजितान् समितिभावान् ।
सप्तभय-विप्रमुक्तान् सत्वानां शिवंकरान् वन्दे ॥

पच स्थावर तथा त्रसकाय रूप षटकाय जीवो के प्रति दयाभाव सहित मिथ्या दर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्या चारित्र, तथा इन तीनो को धारण करने वाले इन, मिथ्यात्व के छ आयतनो से रहित, पच समिति मे अपना लक्ष्य रखनेवाले, इह लोक, परलोक, वेदना, अत्राण, अगुप्ति, मृत्यु तथा आकस्मिक रूप सात प्रकार के भयो से विमुक्त तथा धर्मोपदेश द्वारा जीवो का कल्याण करनेवाले मुनीन्द्रो को मै प्रणाम करता हूँ ।

णट्ठ-ट्ठ-मय ट्ठाणे पणट्ठ-कम्मट्ठ-णट्ठ-संसारे ।
परमट्ठ-णिट्ठिय ट्ठे अट्ठगुणड्ढ-धीसरे वंदे ॥६॥
नष्टाष्ट-मद-स्थानान् प्रनष्ट-कर्माष्ट-नष्ट-संसारान् ।
परमार्थ - निष्ठितार्थान् अष्ट - गुण - र्धीश्वरान्वंदे ॥

जो जाति, लाभ, कुल, रूप, तप, बल, विद्या तथा सत्ता सवधी अष्ट प्रकार मद रहित है, जिन्होने अष्ट कर्मो तथा ससार का क्षय किया है, तथा जो मोक्षरूप परम पदार्थ को प्राप्त करनेवाले, अष्ट गुण रूप ऋद्धियो के स्वामी है उन मुनीश्वरो को मै प्रणाम करता हूँ ।

णव-बभचेर गुत्ते णव-णय-सब्भावजाणगे वंदे ।
दह-विहधम्मट्ठाई दस सजम-संजदे-वदे ॥७॥
नव-ब्रह्मचर्यगुप्तान् नव-नय-सद्भाव-ज्ञापकान् वन्दे ॥
दशविध धर्म-स्थायिन, दशसयम-संयतान्वन्दे ।

नव प्रकार से ब्रह्मचर्य का रक्षण करने वाले, नैगम, संग्रह, व्यवहार ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवभूत, द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक रूप नव प्रकार के नयो के रहस्य के ज्ञाता मुनियों को मै नमस्कार करता हूं।

उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिचन्य तथा ब्रह्मचर्य रूप दश विधि धर्मो मे स्थित, तथा पाच इद्रिय पर्यन्त जीवो का रक्षण रूप पच प्रकार प्राणी सयम तथा स्पर्शनादि पाच इंन्द्रियो को वश में करने रूप पच विधा इन्द्रिय सयम इस प्रकार दश सयम समलंकृत मुनीश्वरों की मैं वदना करता हू।

एयारस-सुदसायर-पारगे बारसंगसुदणिउणे।
बारह-विह-तवणिरदे तेरस किरिया दरे वंदे ॥८॥
एकादश-श्रुतसागर-पारगे द्वादशांग-श्रुतनिपुणे॥
द्वादश-विध-तपनिरते त्रयोदश-क्रियादरे वन्दे॥

ग्यारह अगरूप श्रुतज्ञान सागर के पारगामी, द्वादशाग शास्त्र में निपुण, अतरग बहिरग भेद युक्त द्वादश प्रकार के तपो मे तत्पर तथा पच समिति, तीन गुप्ति तथा पचमहाव्रत रूप तेरह प्रकार की क्रियाओ (चारित्र) मे आदर भाव धारण करने वाले मुनीश्वरो को हमारा प्रणाम है।

भूदेसुदया-वण्ण चउदस चउदससु गंथ परिसुद्धे।
चउदस-पुव्व-पगब्भे चउदस-मल-विवज्जिदे वन्दे ॥९॥
भूतेषु दया पन्नान् चतुर्दशसु चतुर्दश ग्रन्थ परिशुद्धान्।
चतुर्दश-पूर्व-प्रगल्भान् चतुर्दश-मल-विर्वाजतान् वन्दे॥

एकेन्द्रियादि चौदह भेदयुक्त जीवो के प्रति दयाभाव धारण करनेवाले, चौदह प्रकार के अन्तरग परिग्रह के त्याग द्वारा निर्मल, चौदह पूर्वो के पूर्णज्ञाता व आहार सम्बन्धी चौदह मल रहित मुनिराजो की मै वन्दना करता हूँ।

वन्दे चउत्थ-भत्तादि-जाव-छम्मास-खवण-पडिवण्णे।
वन्दे आदावते सूरस्स य अहिमुहदिट्ठदे सूरे ॥१०
वन्दे चतुर्थ-भक्तादि-यावत् षण्मास-क्षपण प्रतिपन्नान्।
वन्दे आदावन्तें सूर्यस्य च अभिमुख स्थितान्॥

जो एक दो आदि उपवासो से लेकर छह मास पर्यन्त उपवास करने की शक्ति धारण करते है उन्हे मै प्रणाम करता हूँ।

जो सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त सूर्य के अभिमुख हो तपश्चरण करते है, उन पराक्रमी मुनीश्वरो को मै नमस्कार करता हूँ।

बहुविह-पड़िम-ट्ठाई वाणिसिज्ज वीरासणेक्कवासीय ।
अणिट्ठीव-कडु वदीवे चत्तदेहे य वन्दामि ॥११॥
बहुविध प्रतिमा स्थायिनः निषद्या वीरासनैक पार्श्विनः ।
अनिष्ठीवन कन्डुवन व्रतिनः त्यक्तदेहांश्च वंदे ॥

अनेक प्रकार के प्रतिमा योग रूप तपश्चरण धारण करने वाले, पद्मासन से बैठकर, वीरासन से युक्त होकर, एक पार्श्व से शयन कर ध्यान करने वाले, नही थूकने की प्रतिज्ञा वाले, खुजली चलने पर नही खुजाने की प्रतिज्ञा धारी, तथा शरीर पर प्रेम त्याग करने वाले, कायोत्सर्ग करने वाले मुनीश्वरो को मै प्रणाम करता हूँ ।

ठाणी मोणवदीए अब्भोवासीय रुक्खमूली य ।
धुव-केस-मसु-लोमे-णिप्पडियम्मे य वन्दामि ॥१२॥
स्थानिन. मौनव्रतिनः अभ्रावकाशिन. वृक्षमूलिनश्च ।
धुत केश-श्मश्रु-लोमानः नि प्रतिकर्माणश्च वन्दे ॥

खड़े हाकर कायोत्सर्ग करने वाले, मौनव्रती, शीतकाल मे मैदान मे ध्यान करने वाले, वर्षाऋतु मे वृक्ष के नीचे स्थित हो ध्यान करने वाले, मस्तक, दाढ़ी तथा मूछ के केशो का लोच करने वाले तथा शरीर मे पीड़ा होने पर उनका निवारण करने के लिए प्रतीकार न करने वाले महामुनियों को मै प्रणाम करता हूँ ।

जल्ल-मल्ल लित्त -गत्ते वदे कम्म-मलकलुस-परिसुद्धे ।
दीह-णह-मसु लोमे तव-सिरि-भरिए णमंसामि ॥१३॥
जल्ल[1] मल्ल लिप्तगात्रान् वन्दे कर्म मूल कलुष परिशुद्धान् ।
दीर्घ नख श्मश्रु लोम्नः तपः श्रीभृतो नमस्यामि ॥

जिनका पूर्ण शरीर अथवा कोई अग मलिनता युक्त है तथा जिनकी आत्मा कर्म फल रूप पापो से परिशुद्ध है, उन मुनियो को मेरा प्रणाम है। जिनके नख बढ़ गए है, जिनकी ,दाढ़ी केश, तथा मूछे बढ़ी हुई है तथा जो तपो लक्ष्मी से शोभायमान हैं, ऐसे मुनीश्वरो को मेरा नमस्कार है ।

णाणोदया-हिसित्ते शील गुण विहूसिये तव सुगन्धे ।
ववगय-राय सुदड्ढे सिवगइ पह णायगे वन्दे ॥१४॥
ज्ञानोदका भिषिक्ताकान् शील गुण विभूषितान् तपः सुगन्धान् ।
व्यपगत राग श्रुताढ्यान् शिव गति पथ नायकान् वन्दे ॥

१. सर्वांगमलो जल्ल.

जो ज्ञान रूपी जल से स्नान करते है, शील और गुण से शोभायमान है, तप के कारण सुगन्धित शरीर युक्त है, जो राग रहित होते हुए द्वादशाग वाणी से शोभायमान है तथा मुक्ति पथ के मार्ग दर्शक है, उन मुनीश्वरो को मैं प्रणाम करता हूँ।

उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे य घोरतवे।
वंदामि तवमहन्ते तव संजमइड्ढिसंजुत्ते ॥१५॥
उग्रतपसो दीप्ततपसस्तप्ततपसो महातपसश्च घोरतपसः।
वन्दे तपो महतस्तपः सयमर्द्धि संयुक्तान् ॥

पचमी, अष्टमी, चौदस आदि का उपवास करने के पश्चात् दो तीन दिन आदि पर्यन्त आहार न मिलने पर भी खेद न करने वाले मुनीश्वर उग्र तपस्वी है। तप करने के कारण दीप्ति युक्त देह वाले दीप्त तप मुनि है। जिसके महान तप के कारण शरीर द्वारा गृहीत आहार उष्ण लोह पर पतित बिन्दु सदृश शुष्कता की प्राप्ति हो जाय और शौच की बाधा न हो, वे तप्त तपस्वी है। महिनो पर्यन्त भी उपवास करने की क्षमता वाले महा तपस्वी है। सिह आदि से व्याप्त अत्यन्त भीषण वन, पर्वत आदि मे निर्मल ध्यान करने वाले महर्षि घोर तपस्वी है। सयम की विशुद्धता सयुक्त तथा ऋद्धियो द्वारा अलकृत महान पराक्रमी मुनीश्वरो की मै वदना करता हूँ।

आमोसही य खेलोसही य जल्लोसहीय तव सिद्धे।
विप्पोसहीय सव्वोसहीय वन्दामि तिविहेन ॥१६॥
आमौषधीन्, क्ष्वेलौषधीन्, जल्लौषधीन् तपःसिद्धान्।
विप्रषौषधीन् सर्वौषधींश्च वन्दामि त्रिविधेन् ॥

मैं आमौषधि[1] क्ष्वेलौषधि[2], जल्लौषधि[3], विप्रुषौषधि[4], सर्वौषधि[5] ऋद्धि धारक महान तपस्वी मुनीश्वरो की मन, वचन तथा काय से वन्दना करता हूं।

---

१ आम शब्द अपक्व आहार का सूचक है।

२ क्ष्वेल शब्द निष्ठीवन (थूक) का वाचक है।

३ जल्ल शरीर के मल को कहते है।

४ जिनके शारीरिक मल को औषधिपना प्राप्त होता है, वे विडौषधि या विप्रषौषधि ऋषि हैं।

५ जिनका सर्वांग रोग निवारक होता है, वे सर्वोपधि ऋद्धिधारक हैं।

१ आमोऽपक्वाहार.। २ क्ष्वेलो निष्ठीवनम्। ३ जल्ल. सर्वागमलः।

अमिय-महु-खीर-सप्पिसवीय अक्खीण महाणसे वन्दे ।
मणबलि-वयणवलि कायवलिणो य वन्दामि तिविहेण ॥
अमृत, मधु-क्षीर सर्पि. स्रवेणाक्षीण महान सान वन्दे ।
मनोबलि वचोबलि कायबलिनश्च वन्दे त्रिविधेन ॥ १७ ॥

मैं मन, वचन काय से अमृतस्रवी, मधुस्रवी, क्षीरस्रवी, सर्पिस्रवी तथा अक्षीण महानस ऋद्धि युक्त महर्षियो को प्रणाम करता हू ।

मैं त्रियोग पूर्वक मनोवली, वचोवली तथा, कायवली मुनियो को प्रणाम करता हू ।

विशेषार्थ

जिनके कर तल मे रखा गया नीरस आहार अमृत रूप परिणमन को प्राप्त हो, मधु सदृश मधुर हो, क्षीर समान मधुरता को प्राप्त हो, तथा घृत रूप हो जाय उनको अमृतस्रवी, मधुस्रवी, क्षीरस्रवी तथा सर्पिस्रवी कहते है। जिन मुनीश्वर के आहार हो जाने पर दातार के घर का अन्न उस दिन अटूट रूपता को प्राप्त हो, वे अक्षीण महानस ऋद्धि धारी हैं। अन्तर्मुहूर्त मे समस्त द्वादशाग का चिन्तवन करने मे समर्थ मनोवली, उच्चारण पूर्वक पाठ करने मे समर्थ वचन वली और असाधारण शक्ति युक्त मुनीश्वर कायवली है ।

वरकुट्ठ वीयबुद्धो पदाणुसारीय भिण्णसोदारे ।
उग्गह ईह समत्थे सुत्तत्थ विसारदे वदे ॥१८॥
वरकोष्ठ बीजबुद्धी पदानुसारिणश्च भिन्नश्रोतृन् ।
अवग्रह ईहा समर्थान सूत्रार्थ विशारदान्वन्दें ॥

कोठे मे रखे गए धान्यादि के समान सुरक्षित और अमिश्रित रूप से जिनकी बुद्धि मे ग्रथ तथा अर्थ की अवस्थिति रहती है, वे श्रेष्ठ कोष्ठ बुद्धि युक्त मुनिराज है। एक वीज द्वारा अनेक फल प्राप्त होते है, उसी प्रकार-वीज रूप एक पद से महान अर्थो का अवधारण रूप वीज बुद्धि है। पदानु सारी बुद्धि मे आदि अन्त इत्यादि के कुछ पदो का अवधारण होने पर समस्त ग्रथ तथा अर्थ का अववोध होता है। संभिन्न श्रोतृ ऋद्धिधारी मुनि चक्रवर्ती की सैन्य के सम्मिलित शब्दो को भिन्न भिन्न रूप मे ग्रहण करते हैं। अवग्रह ईहाज्ञान युक्त अवग्रह ईहा बुद्धि हैं। सूत्रार्थ के ज्ञाता सूत्रार्थ विशारद हैं। इन महर्षियो को मैं प्रणाम करता हूं।

आभिणिवोहिय-सुद-ओहिणाणि-मणणाणि सव्वणाणीय ।
वंदे जगप्पदीवे पच्चक्ख परोक्खणाणी य ॥१९॥
आभिनिबोधिक-श्रुतावधिज्ञानिनो मनोज्ञानिनः सर्वज्ञानिनश्च ।
वंदे जगत्प्रदीपान्, प्रत्यक्ष परोक्षज्ञानिनः च ॥

मैं मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय तथा केवल ज्ञानी रुप प्रत्यक्ष परोक्षज्ञान धारी तथा जगतके प्रदीपरूप ऋषियों को प्रणाम करता हूँ ।

आकास-तन्तु-जल-सेढिचारणे जंघचारणे वंदे ।
विउवण-इड्ढिपहाणे विज्जाहर- पण्ण सवणेय ॥२०॥
आकाश तंतु जल-श्रेणिचारणान् जंघाचारणान्वन्दे ।
वैक्रियिक ऋद्धिप्रधाने विद्याधर-प्रज्ञाश्रमणे च ॥

तपस्या के प्रभाव से आकाश मे गमन करने वाले मुनिराज आकाश चारण है। जीवो की तनिक भी हानि न प्रदान करके तन्तुओ पर गमन करने वाले तन्तुचारण है। जल पर पैर रखकर चलते हुए जीवो की विराधना न करने वाले महर्षि जल चारण है। जिस ऋद्धि के प्रभाव से सरलता से पर्वत श्रेणी को पार किया जाता है, उस ऋद्धि वाले श्रेणी चारण है। जंघा चारण ऋद्धि वाले मुनीश्वर क्षण भर मे हजारो योजन चले जाते है और जीवो की विराधना नही होती है। अनेक प्रकार की विक्रियायुक्त विक्रिया ऋद्धि मुनीश्वर है। विद्याधर होते हुए तपस्या के प्रभाव से महान ज्ञान शक्ति को प्राप्त मुनिराज विद्याधर प्रज्ञा श्रमण है। मै इन सभी ऋद्धिधारी मुनीश्वरो को नमस्कार करता हू।

गइ चउरगुल गमणें तहेव फल फुल्ल चारणे वंदे ।
अणुवम-तवो-महते देवासुरवंदिदे वंदे ॥
गतौ चतुरगुल गमनान् तथैव फल फुल्ल चरणान्वन्दे ।
अनुपम तपो महतः देवासुरवन्दितान्वंदे ॥

जो मुनीश्वर भूतल से चार अगुल ऊँचे होकर गमन करते है तथा फल पुष्प पर पैर रखकर बिना जीव विराधना के चलते है, उनको मैं प्रणाम करता हू। अनुपम तपस्या के द्वारा महिमाशाली देव तथा असुरो के द्वारा वदित मुनीश्वरो को मै प्रणाम करता हू।

जियभय जियउवसग्गे जियइदिय परिसहे जियकसाए ।
जियराय-दोस-मोहे जिय-सुह-दुक्खे णमंसामि ॥२२॥

जितभयान् जितोपसर्गान् जितेन्द्रिय परीषहान् जितकषायान्।
जित-रागद्वेष-मोहान् जित नग दुःखान् नमस्यामि॥

INTRODUCTION TO THE AUTHOR

An Introductory Note on the Literature of Vidwatratna Sumeru Chandra Diwakar Nyayatirth, Shastry,
B.A , LL B , Seoni (M P)

The Author :

Born in the year 1905 at Seoni (M P.), Sri S C. Diwakar possesses inborn aptitude and devotion towards philosophic pursuits and life-elevating knowledge. A devout religionist as he has been, his special study of Jain Scripts brought out from his pious pen many a literary gem, praised and commended by eminent scholars. The catholic spirit behind all his works has added to their popularity.

Here is a summary account of some of the books edited or originally written by Sri Diwakar.

(1) **Mahabandh**—Originally in Kannad Script; Prakrit (Magdhi)—I Century B C —Written by Acharyas Pushpadant and Bhootbali ; comprises of 40,000 Slokas. The most ancient and exhaustive work on the Karma Philosophy of Jain Religion—Specially its Bandh aspect (Bondage of the Soul with the Non-soul matter).

The entire original edited books are published by Jinwani Jirnodhhar Samiti, Phaltan (Maharashtra).

Its first Volume comprising of Prakriti Bandh is translated in Hindi and is published by Bhartiya Jnanpith, Varanasi, with exhaustive Editorial about Karma Philosophy.

Its second edition has also been brought out last year.

(2) **Kashaya Pahud Sutta** Originally Kannad Script-Prakrit language comprises of 70,000 Slokas This work is abridged with Introduction (in Hindi and English) and translated It is published by Jinwani Jirnodhhar Prakaskan Samiti, Phalton (Maharashtra) in 1968. It deals with Kashaya i.e. Passions (Attachments & Aversions) which are the psychic causes of multifarious troubles of the mundane soul and resultant transmigration

(3) **Religion & Peace** This book in English (350 pages) is dedicated to "The Thinking Souls, sincerely endeavouring for bliss of beatitude, perennial peace and immortality It bears a foreward by Dr. Kalidas Nag, President, Bhartiya Sanskrit Parishad and former General Secretary Royal Asiatic Society of Bengal The book contains author's lectures delivered by him in Japan International Religious Conference (1956). It has been reviewed by The Times of India, A I R, Bharatratna Dr. Bhagwandas, Dr. Sir N B Niyogi, Dr Sir C P Ramaswami, Vedant Keshri etc The Vedant Keshri writes · "It is a universal text book of Religion and Peace It offers the prime essentials of a universal religion and code of ethics for all time to come It is less a treatise on Jain Religion and Philosophy than one which sets out most admirably the cardinal tenets of that great religion, which are of ever lasting value "

The book is published by All India Jain Sangh, Mathura (U P)

(4) **Glimpses of Jainism** —The book contains the basic principles of Jainism It also contains a paper read by the author in the Internation Congress of Orientialists assembled at Vigyan Bhawan, New Delhi in 1964 The Congress Bulletin made a a special appreciative reference of the paper The book also contains a paper which was sent to the World Theosophical Congress held and at Salzburg (Austria) for being read there.

The book is published by Jain Mitra Mandal, Delhi

(5) **Jain Shashan**—(Language Hindi—500 pages)—The book bears a foreward by Dr Sir N B Niyogi, ex-Vice Chancellor Nagpur University and Retd, Chief Justice of Nagpur High Court It was first published by Bhartiya Jnanpith, Varanasi (1947) Its second edition has also been brought out in 1950

The Modern Review, Calcutta has reviewed it as a praiseworthy publication in every respect Late Dr M S. Aney, Acharya Vinoba Bhave, Dr Vasudeo Saran Agrawal (President of all India Oriental Conference), Dr Hazari Prasad Dwivedi etc have paid high tributes to the author's "encyclopaedic erudition and deep study of compartaive religion and philosophy"

(6) **Maha Shraman Mahavir**—(Language Hindi—500, pages) —It has been published by Acharyaratna Deshbhushan Granthmala, Stavanidhi (Belgaum Dist) It gives a lucid and exhaustive account of Lord Mahaviras life and Philosophy The book has also been translated into Kannad with a foreward by Justice T K Tukol of Karnataka High Court, Bangalore The press has reviewed it as a remarkable contribution useful for lovers and aspirant of the Golden Gospel of Ahimsa

(7) **Charitra Chakravarti**

and

(8) **Adhatymik Jyoti**

These two books of 800 and 400 pages respectively deal with the life, experiences and teachings of the Nude Jain Saint Charitra Chakrawarti Shantisagarji, who passed awayat Kunthalgiri (Maharashtra) in 1955. The lovers of religion have praised it German Scholar Prof Luther Wendel (Pilani) loved the book so much that he was making a special study of Hindi, with a view to translate it into German

9 Tirthamkar—The book comprising of 350 pages in Hindi, explains exhaustively about Tirthamkar and the special auspicious events (Kalyanakas) of the life of the Great Guides

10 Miscellaneous books by the author

(a) Vishwatirth Shrawanbelgola, (b) Tatvik Chintan (c) Adhyatmavad-Ki-Maryada, (d) Jain Shasan Ka-Marma (e) Sammed Shikhar, (f) Champapuri;

(g) Istopadesha (h) Samadhi Shatak etc etc,

Shri S C Diwakar was the editor of Jain Gazette, the oldest Hindi Weekly organ of All India Jain Mahasabha for many years He had also founded a Gurukul at Ramtek.. He has been a student of B H U. and Nagpur University. It is from the later that he did his graduation in Arts & Laws

(P C. Shastry)
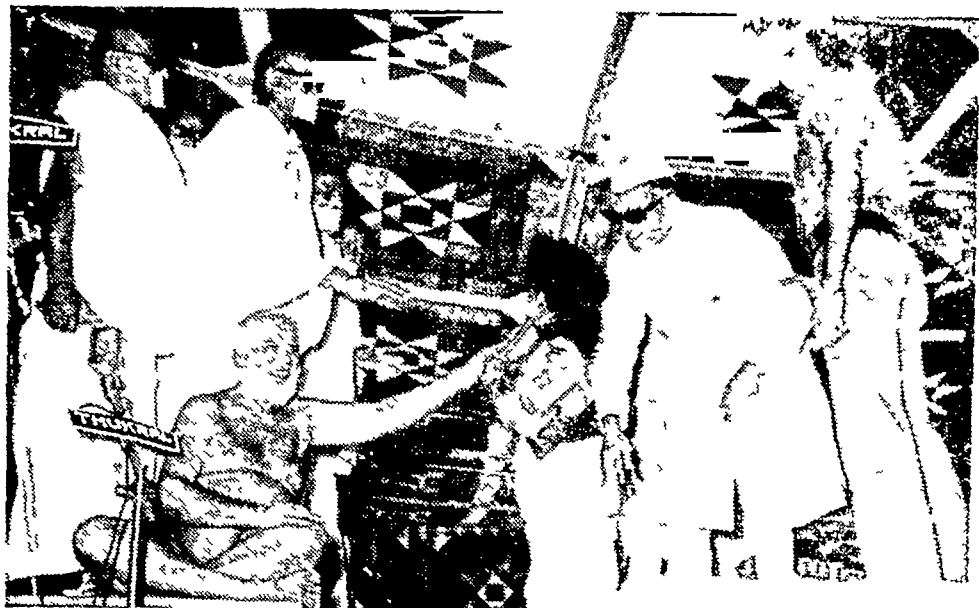
श्री फकरुद्दीन श्रली श्रहमद राष्ट्रपति भारत शासन को श्राशीर्वाद
देते हुये श्राचार्य श्री
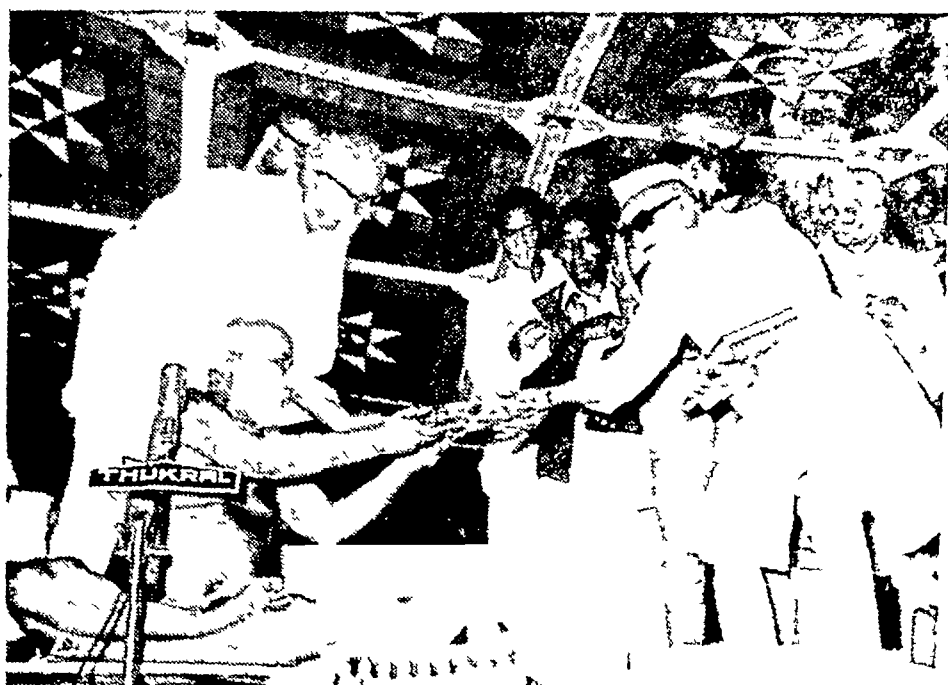
श्री फकरुद्दीन श्रली श्रहमद राष्ट्रपति भारत शासन, श्राचार्य श्री
द्वारा लिखित ग्रथ का विमोचन करते हुए

श्रीमती इलायची देवी सपरिवार आचार्य श्री, के साथ
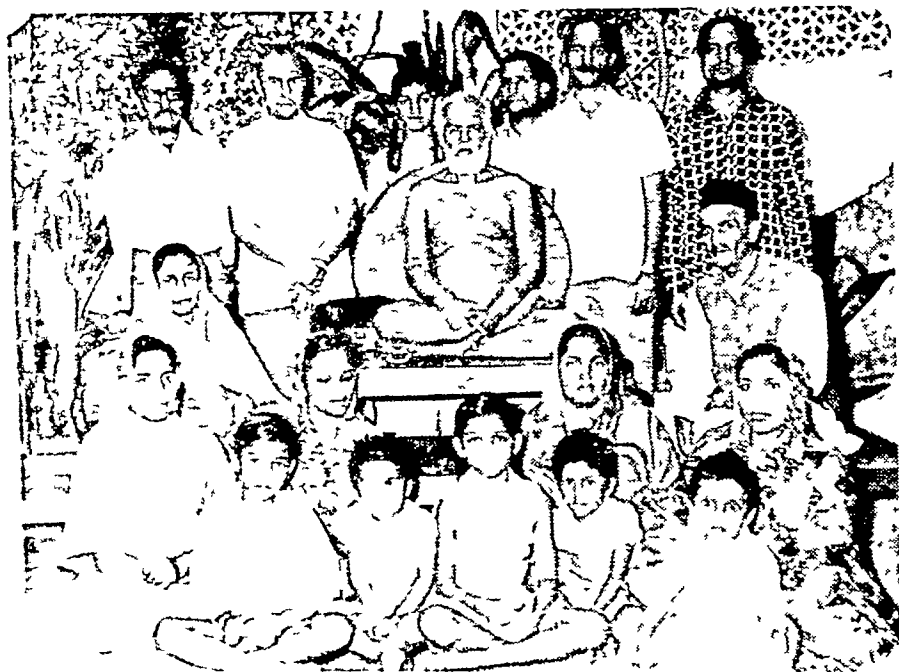
श्री अजित प्रसाद जैन जौहरी सपरिवार आचार्य श्री के साथ
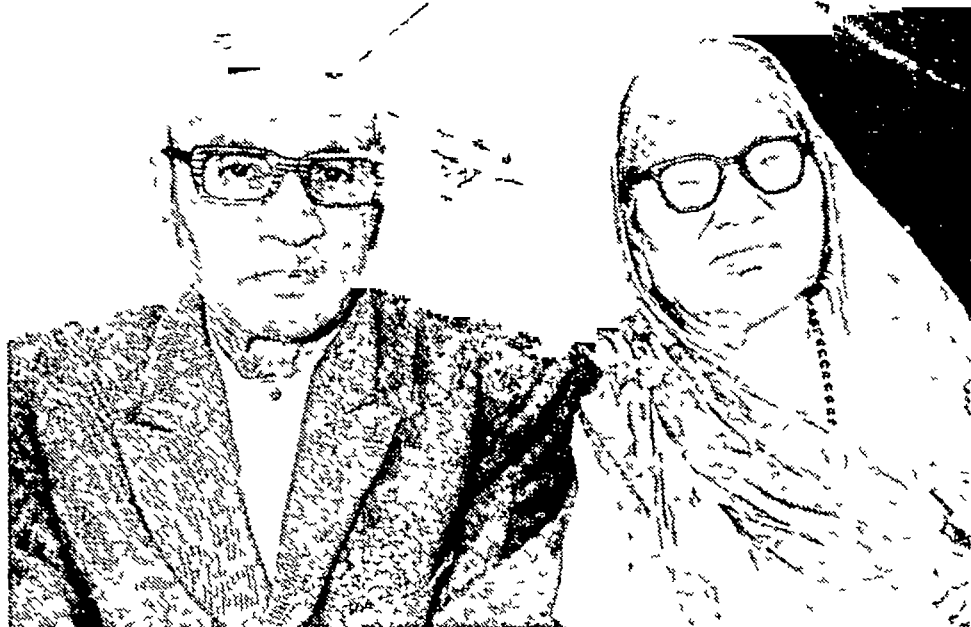
दानवीर श्री मति एव श्री लखमी चन्द जी जैन, सिरोहि

श्री बिमल कुमार जैन सुपुत्र श्री लखमी
चन्द जी जैन, सिरोहि

व्रह्मचारिणी मानक वाई और पद्मा वाई

राज माता गायत्री देवी जयपुर को आशीर्वाद
प्रदान करते हुए आचार्य श्री

आचार्य श्री द्वारा दीक्षित मुनि श्री सुबल सागर जी महाराज सघ सहित

आचार्य श्री सघ सहित श्री लाल मन्दिर जी मे, देहली
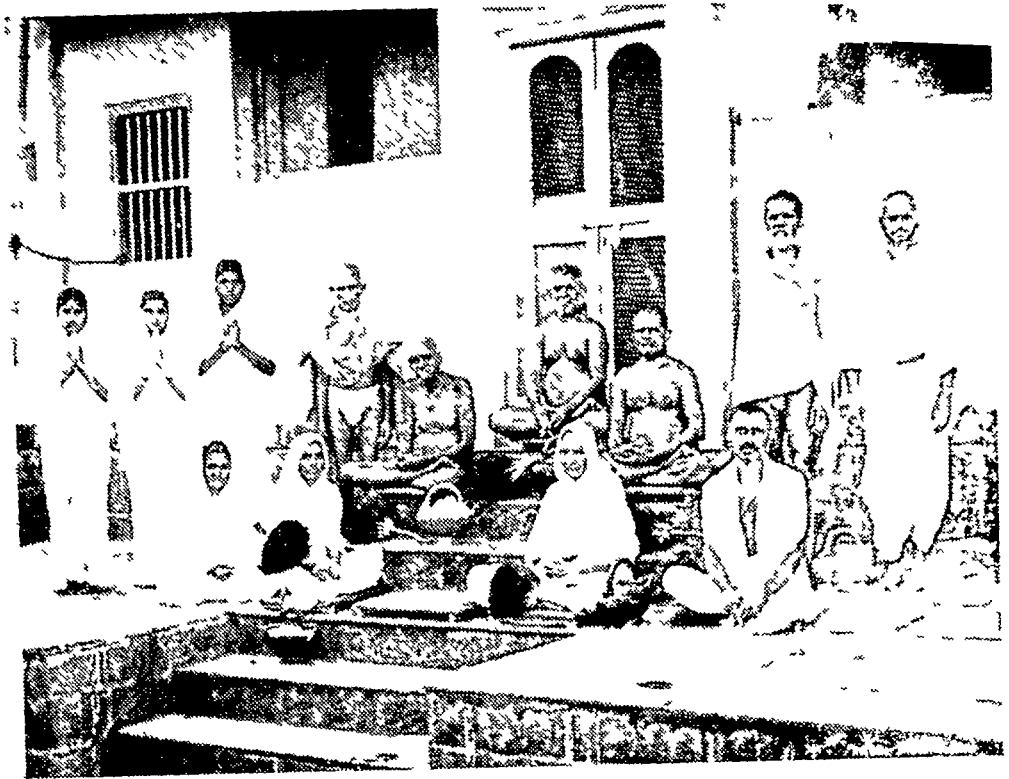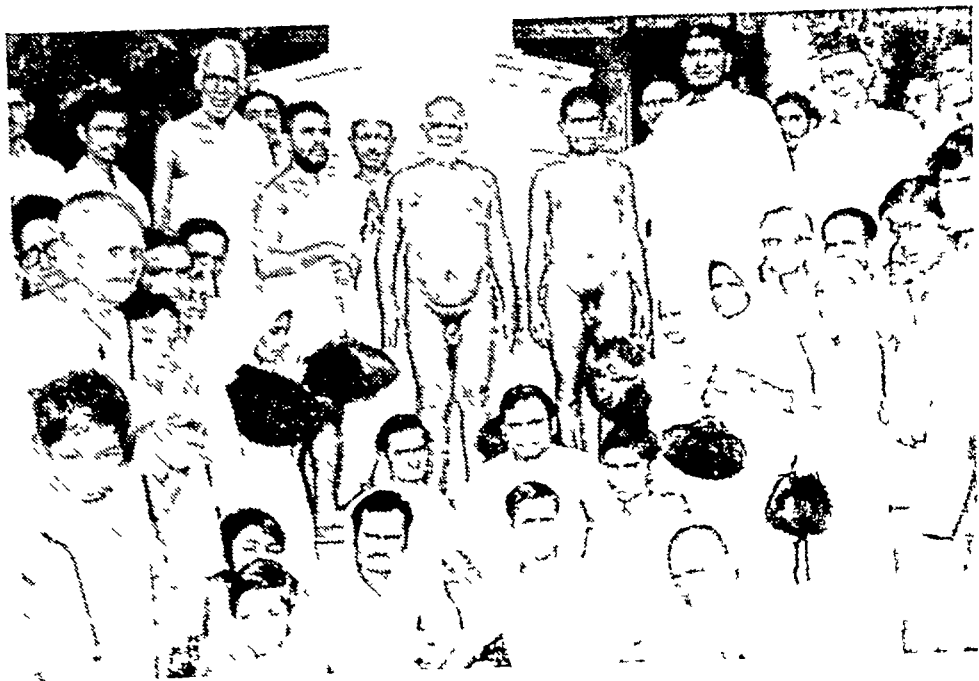
आचार्य श्री १०८ श्री शान्ति सागर जी महाराज के पूर्वस्था
के बड़े भाई मुनि श्री वर्धमान सागर जी

श्रीमती एवं श्री महताव सिंह जी श्री शान्तिगिरी, कोयली के मन्दिर की
नीव खोदते हुए

आचार्य श्री क्षु० कृष्णा मती जी को आर्यिका दीक्षा देते हुए

समाधिस्थ आर्यिका श्री कृष्ण मती माता जी
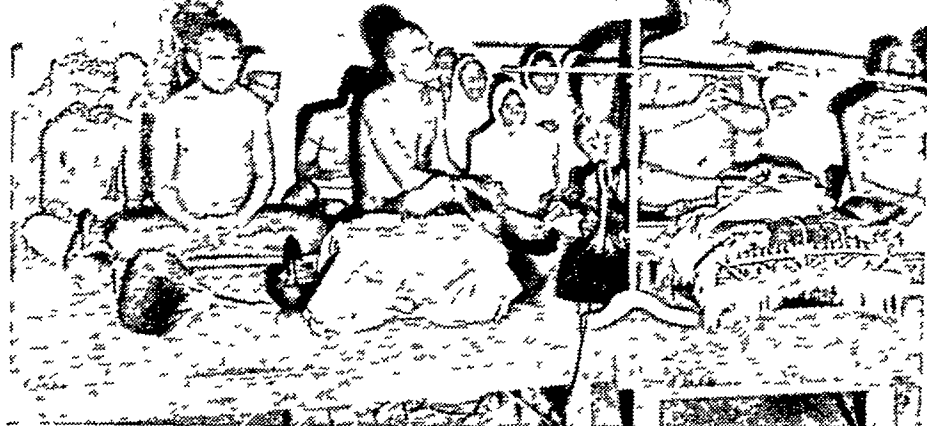
आचार्य श्री क्षमावणी पर्व पर उपदेश देते हुए

मैसूर के मुख्य मंत्री श्री निजलिंगप्पा को आचार्य श्री द्वारा ग्रथ भेंट

आचार्य श्री लाल किला देहली के समीप जाते हुए
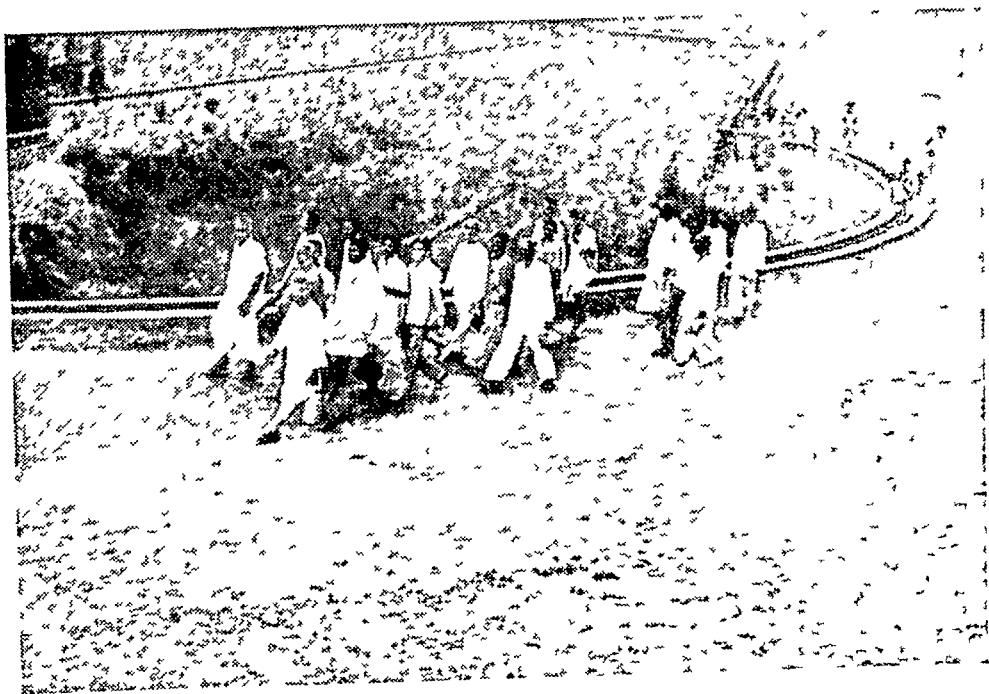
आचार्य श्री लाल किला देहली के सामने से आते हुए

१४-६-७२ को संसद भवन नई दिल्ली मे २५०० वें भगवान महावीर
निर्वाण महोत्सव की राष्ट्रीय समिति की मीटिंग मे
प्रधान मत्री तथा अन्य मंत्रियो के साथ
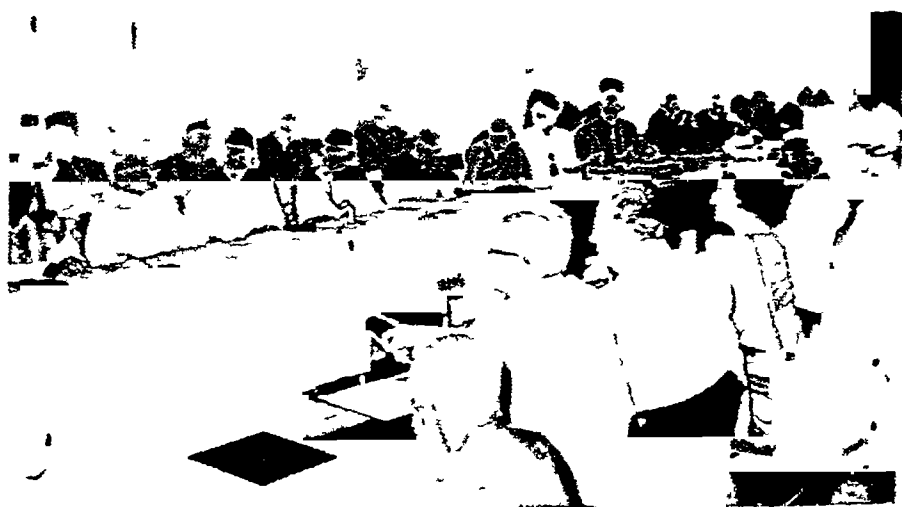
१४-६-७२ को संसद भवन नई दिल्ली मे २५०० वें भगवान महावीर
निर्वाण महोत्सव की राष्ट्रीय समिति की मीटिंग मे
प्रधान मत्री तथा अन्य मत्रियो के साथ

आचार्य श्री लेखक प० सुमेरु चन्द जी दिवाकर को आशीर्वाद प्रदान करते हुए
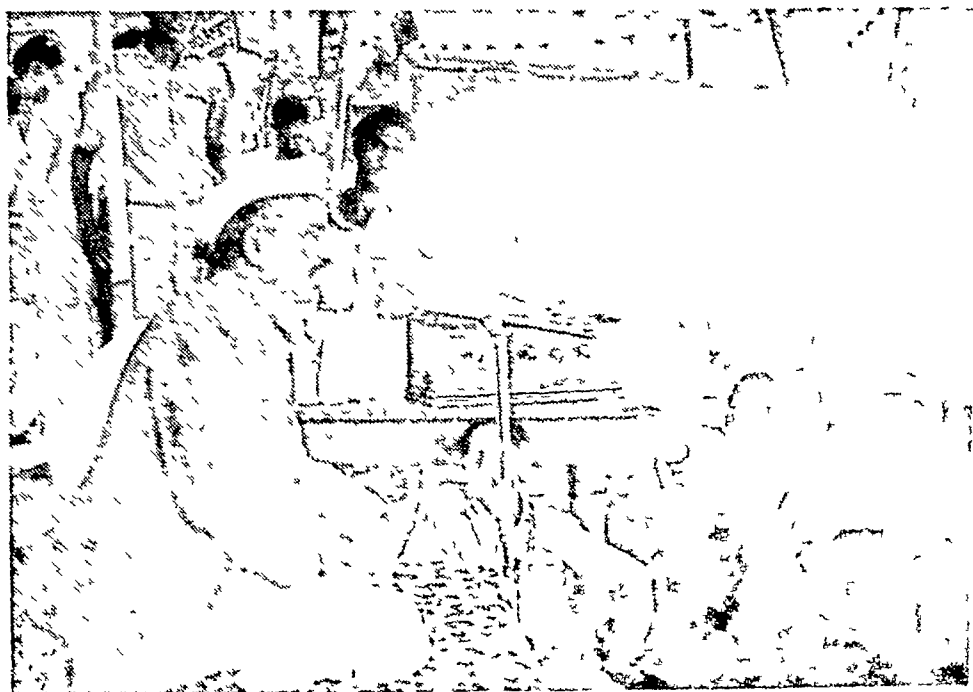
लेखक प० सुमेरु चन्द जी दिवाकर भाषण करते हुए
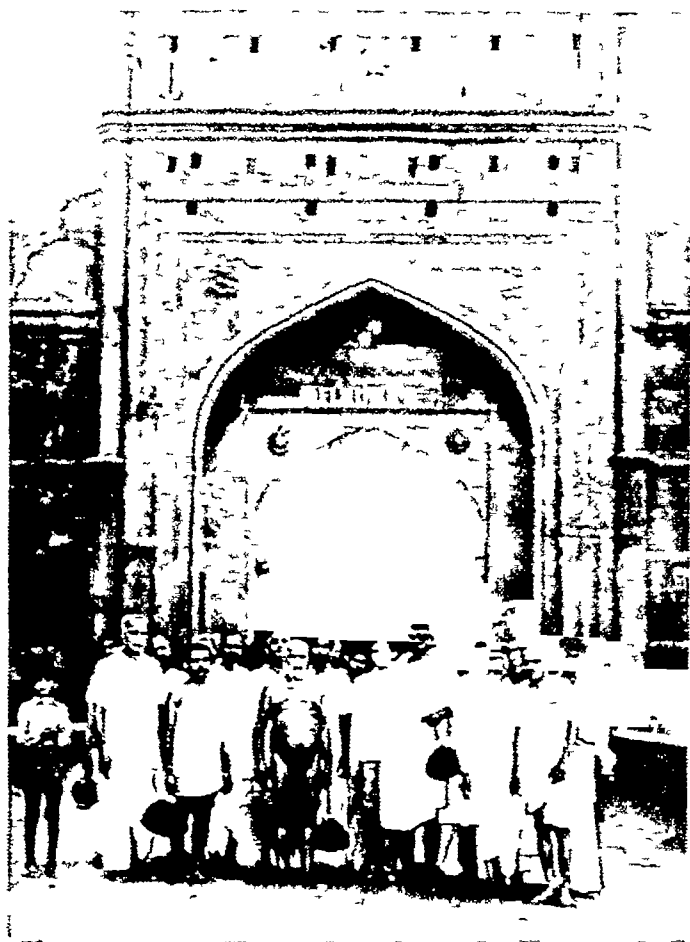
आचार्य श्री अपने शिष्य क्षु० वाहुवली आदि त्यागियो एवं
श्रावको के साथ लाल किले के द्वार पर

आचार्य श्री लाल किला देहली क सामने भक्त जनो के मध्य
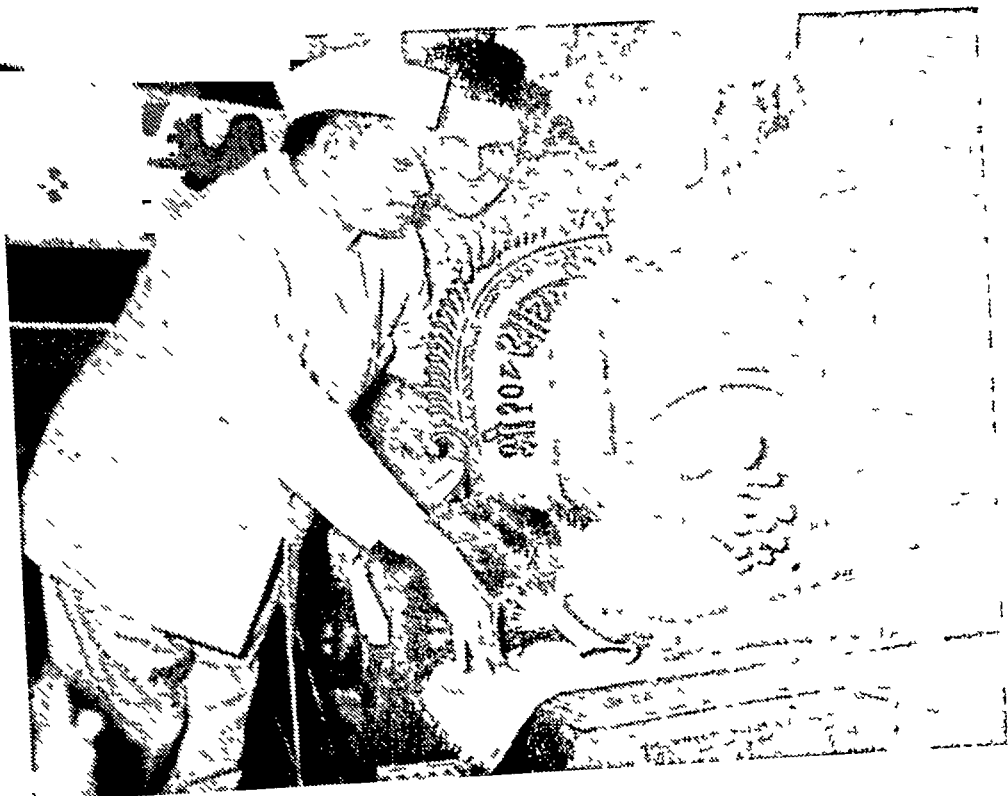
केन्द्रीय मत्री श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी आचार्य श्री के दर्शन करते हुए
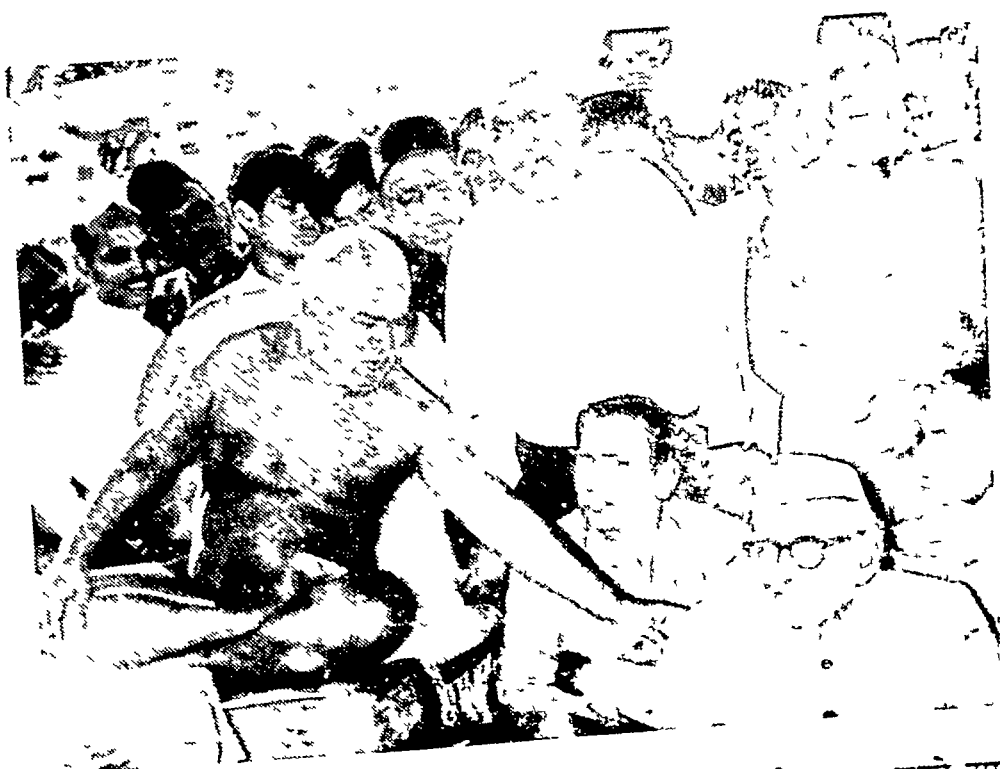
आचार्य श्री, श्रीसम्पूर्णानन्द राज्यपाल राजस्थान को आशीर्वाद प्रदान करते हुए

आचार्य श्री, लाल वहादुर शास्त्री प्रधानमत्री भारत शासन को
आर्शीवाद प्रदान करते हुए ।
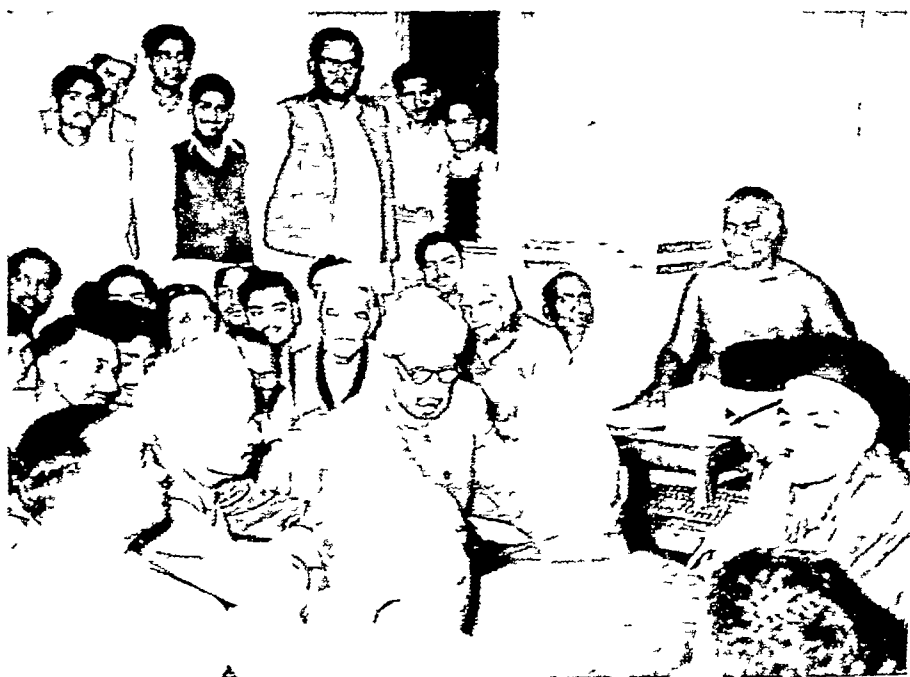
सेठ जुगल किशोर विरला एव माननीय जस्टिस वेंकटरमण अय्यर
जज सुप्रीम कोर्ट आचार्य श्री के दर्शन करते हुए
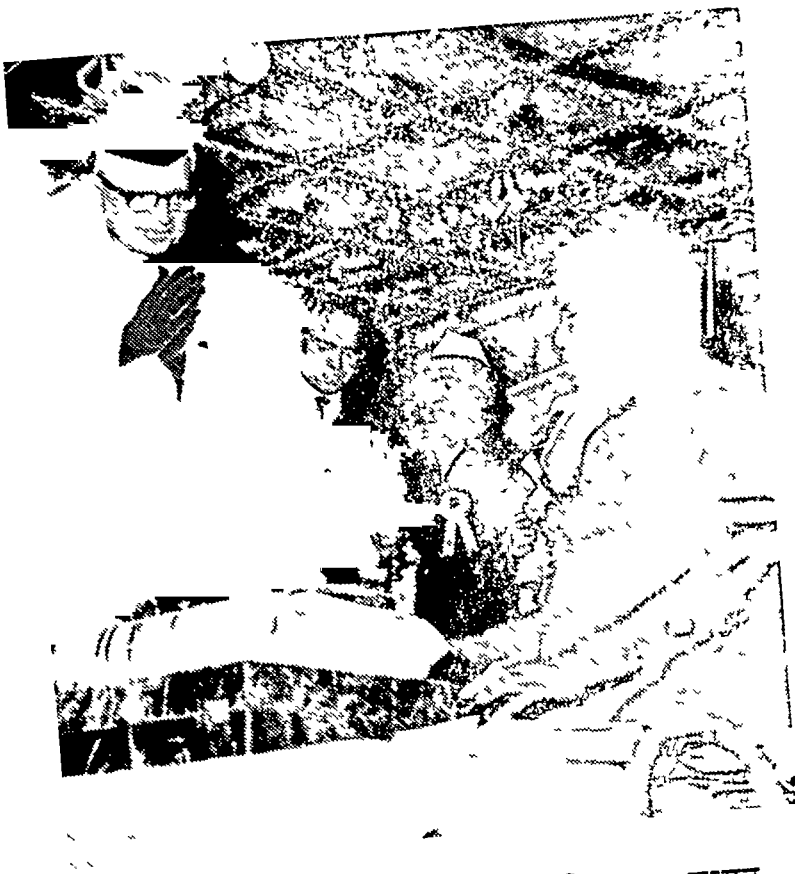
श्री गोपाल स्वरुप पाठक उप-राष्ट्रपति भारत शासन
आचार्य श्री को प्रणाम करते हुये

उपराष्ट्रपति श्री गोपाल स्वरूप पाठक आचार्य श्री द्वारा
लिखित ग्रथ का विमोचन करते हुए

श्री यू० एन० ढेबर आचार्य श्री के दर्शन करते हुए
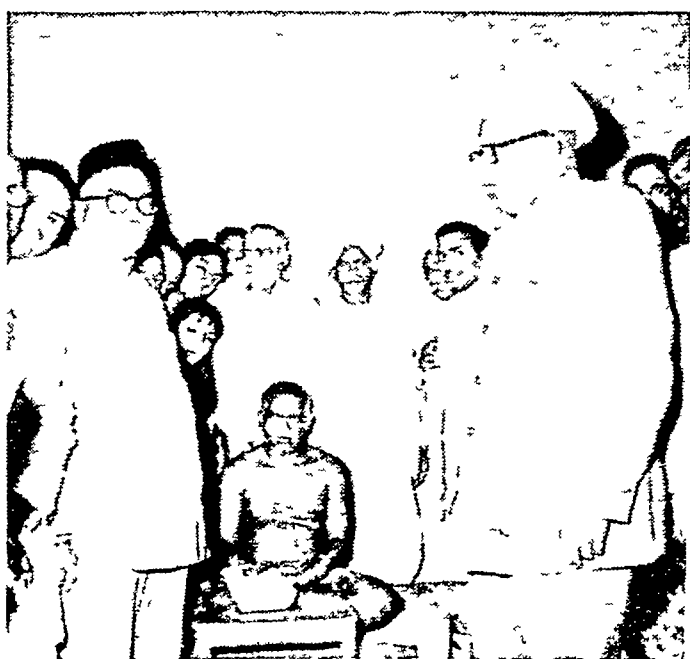
आचार्य श्री भक्तो एव माननीय जस्टिस वेकटरमण
अय्यर जज सुप्रीम कोर्ट के बीच
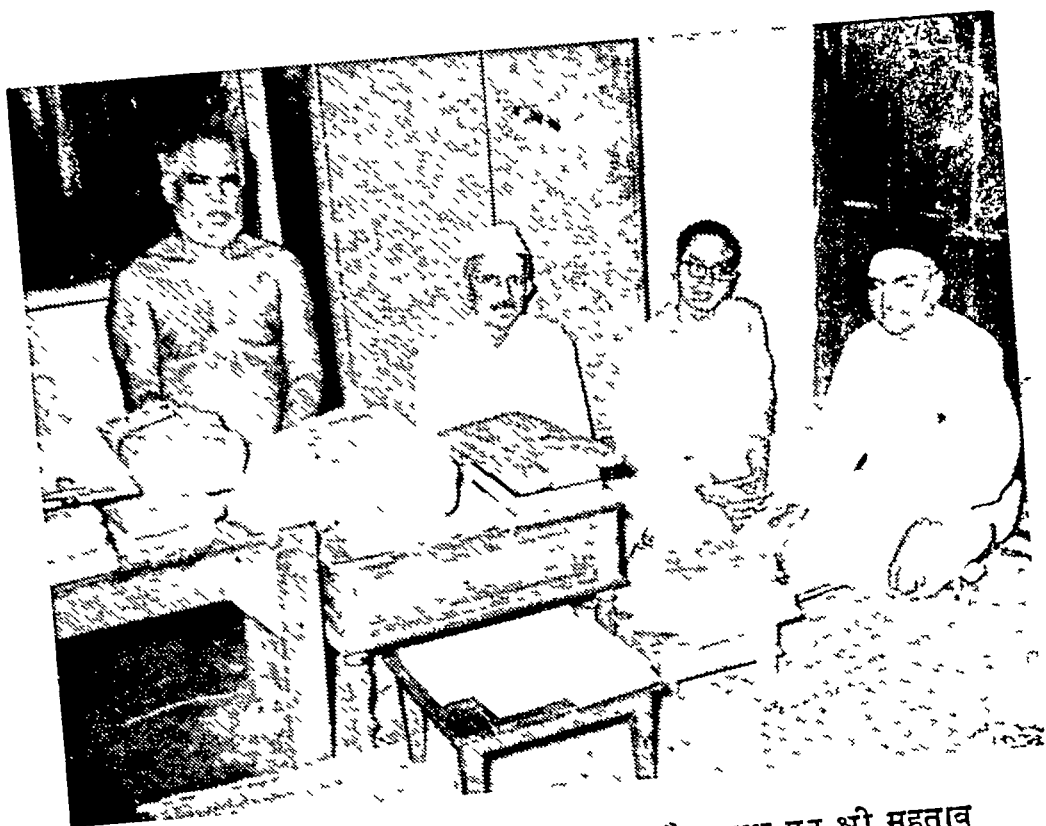
आचार्य श्री, प० सुमेरू चन्द जी दिवाकर, बौद्ध साधु एव श्री महताव सिह जैन जौहरी दिल्ली के मध्य धर्म चर्चा करते हुए

आचार्य श्री से प्रभावित विदेशी भक्त ाहासामर का त्याग करते एहु

आचार्य श्री विदेशी भक्तो को आशीर्वाद प्रदान करते हुए
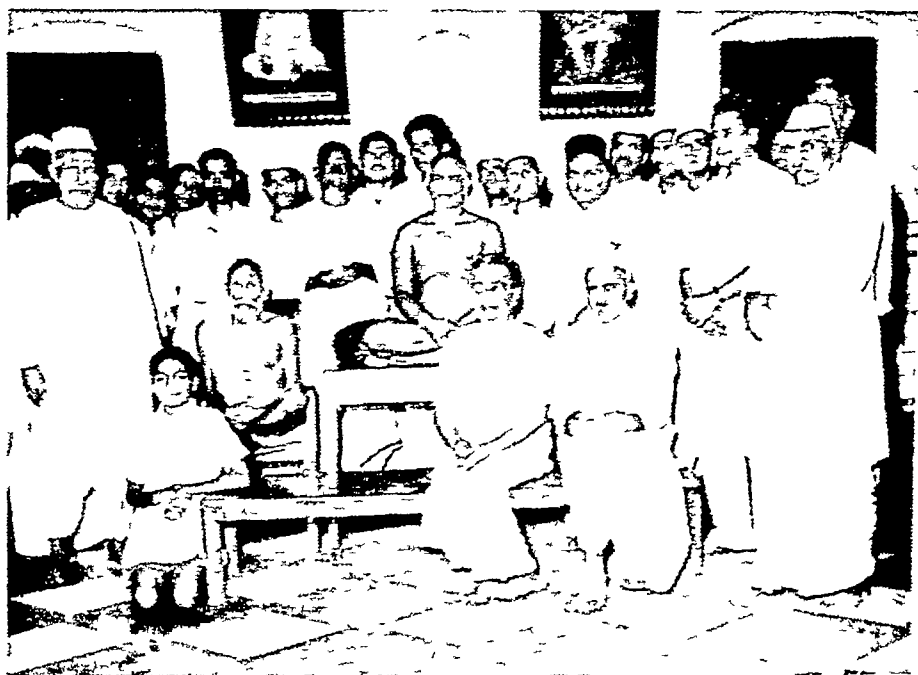
पं० एलप्पा शास्त्री एवं श्री यू० एन ढेवर अध्यक्ष अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस, आचार्य श्री के दर्शन करते हुए

आचार्य श्री साहू शान्ति प्रसाद जी एव श्रीमती रमा जैन

आचार्य श्री १९५६ चातुर्मास के समय श्री वशेशरनाथ एव
अन्य शिष्यो के साथ जीतगढ देहली के जगल मे

आचार्य श्री भक्तो के बीच
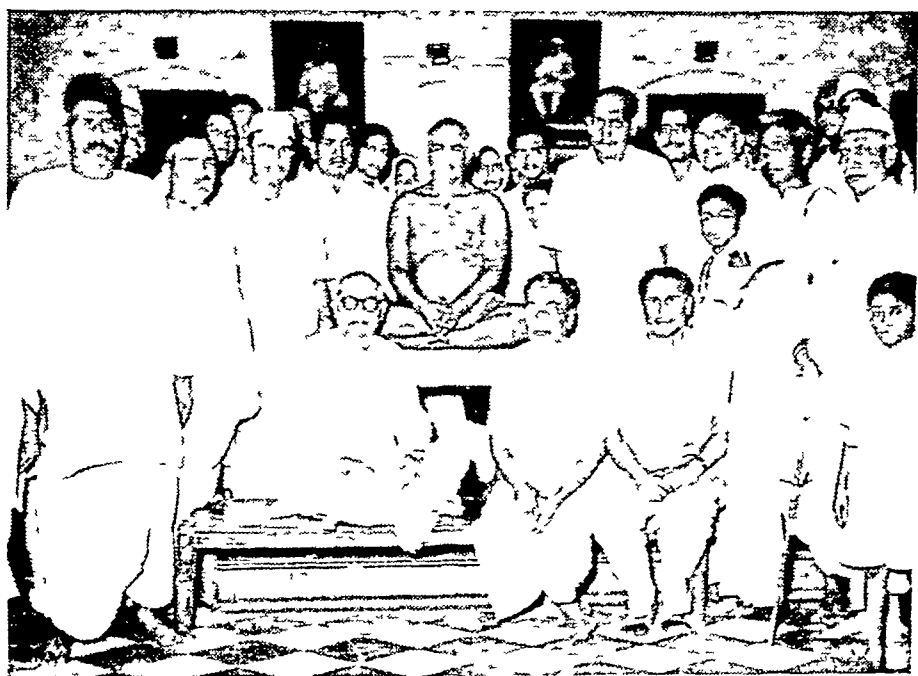
मैसूर के मुख्य मन्त्री श्री निजलिंगप्पा एव प० एलप्पा शास्त्री वैगलौर
आचार्य श्री के साथ

क्षमावाणी पर्व पहाडी धीरज के अवसर पर श्री जगन्नाथ पहाड़िया
उप मत्री भारत सरकार

विश्व धर्म सम्मेलन के अवसर पर श्री सत कृपाल सिंह जी आचार्य श्री
एवं मुनि सुशील कुमार जी

जर्मन गणतत्र के राजदूत भाषण करते हुए

विदेशी भक्त आचार्य श्री के दर्शन करते हुए

क्षमावाणी पर्व पर आचार्य श्री पहाडी धीरज पर

महावीर जयन्ती १९७३ के अवसर पर श्री राधा रमण जी मुख्य कार्यकारी पार्षद भाषण करते हुए

श्राचार्य श्री श्राहार के लिये देहली फ्लोर मिल के प्रागण मे जाते हुये
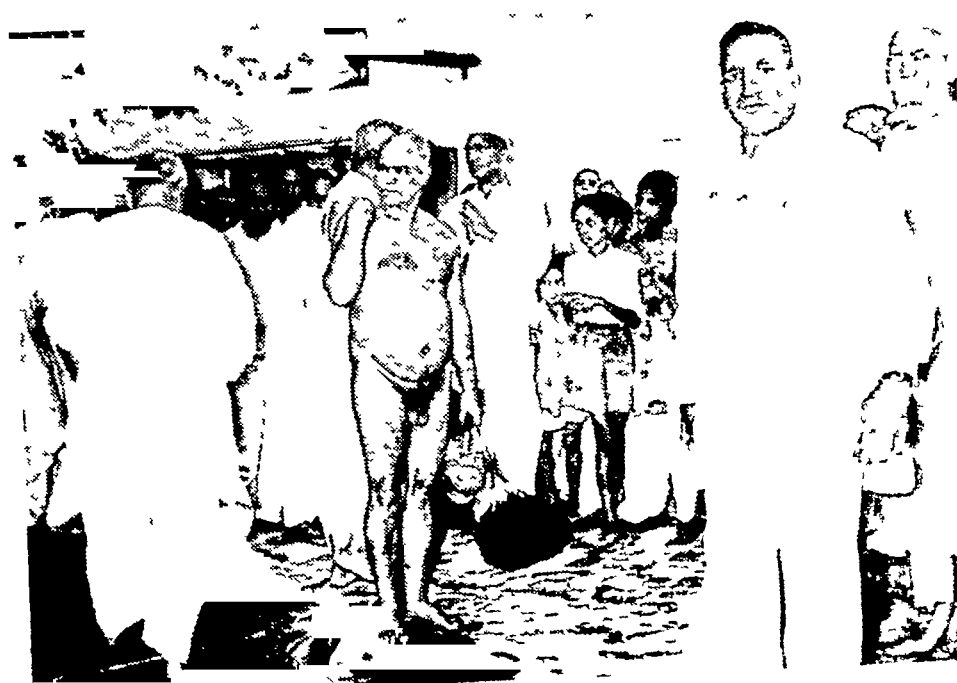
देहली फ्लोर मिल मे श्राचार्य श्री को साहू शान्ति प्रशाद जी श्री राजेन्द्र कुमार जी एव श्री बशेशर नाथ जी पडगाते हुए

आचार्य श्री को आहार देते हुए श्री साहु शान्ति प्रसाद, श्री राजेन्द्र कुमार एव श्रीमती जैन (धर्म पत्नी राजेन्द्र कुमार)

आचार्य श्री को पहाडी धीरज चतुर्मास के समय आहार देते हुए सुशिष्या श्रीमती प्रेमवती एव जय माला
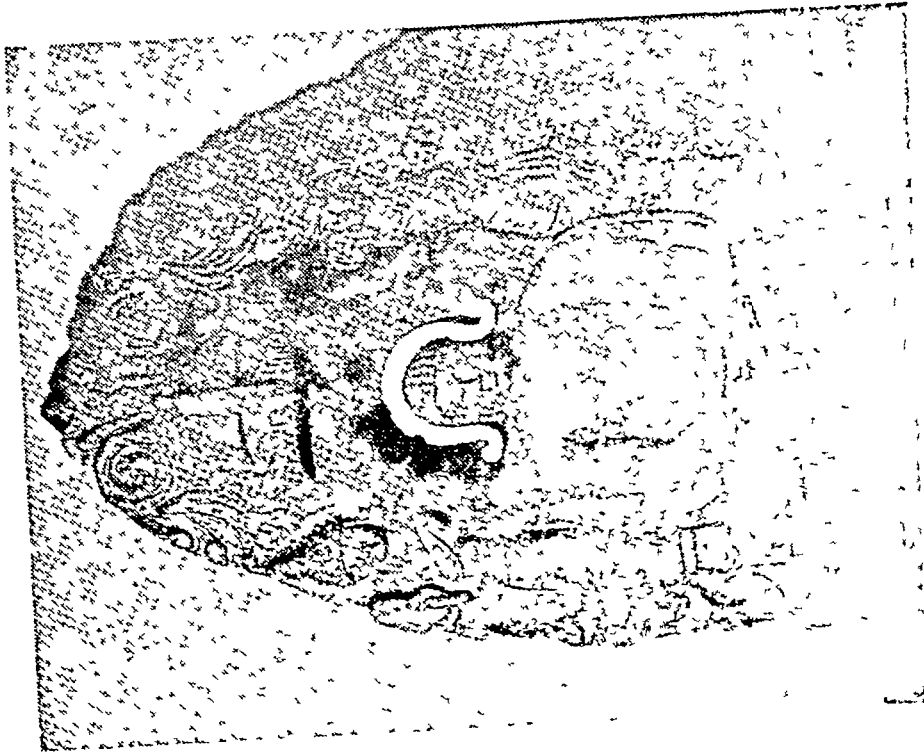
तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान, मैसूर
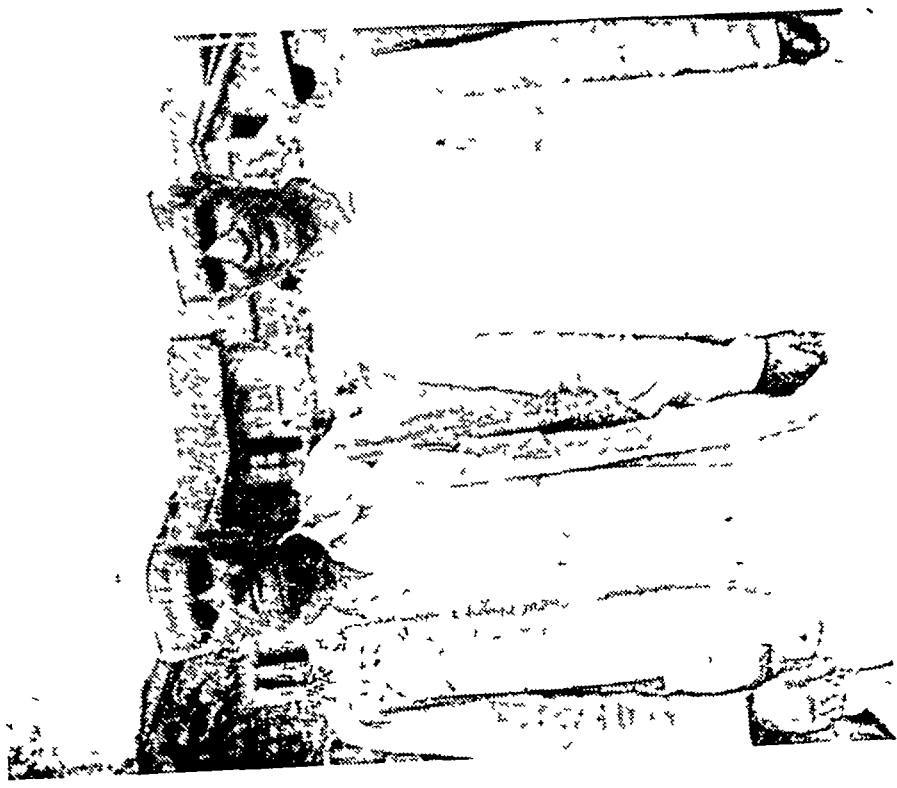
श्री दादोबा चौगले एव श्री देशभक्त रत्नप्पा कुम्हार
एम. एल. ए. सोल्हापुर

आचार्य श्री की जयन्ती महोत्सव पर इन्द्राणियो का जलूस

आचार्य श्री की जयन्ती महोत्सव पर इन्द्राणियो का जुलूस

आचार्य श्री जयपुर के जेल खाने मे उपदेश के लिए श्री जयकुमार जी तहसीलदार एव मुख्य जेल अधिकारी के साथ

१९५५-५६ के चातुर्मास के समय देहली भक्त जनो के बीच मे आचार्य श्री

श्री धर्मवीर जी भूतपूर्व राज्यपाल बगाल राज्य तथा आचार्य श्री
एव मुनि विद्यानन्द जी

आचार्य श्री महावीर जयन्ती १९७३ के अवसर पर पहाड़ी धीरज
पर अन्य शिष्यो के साथ
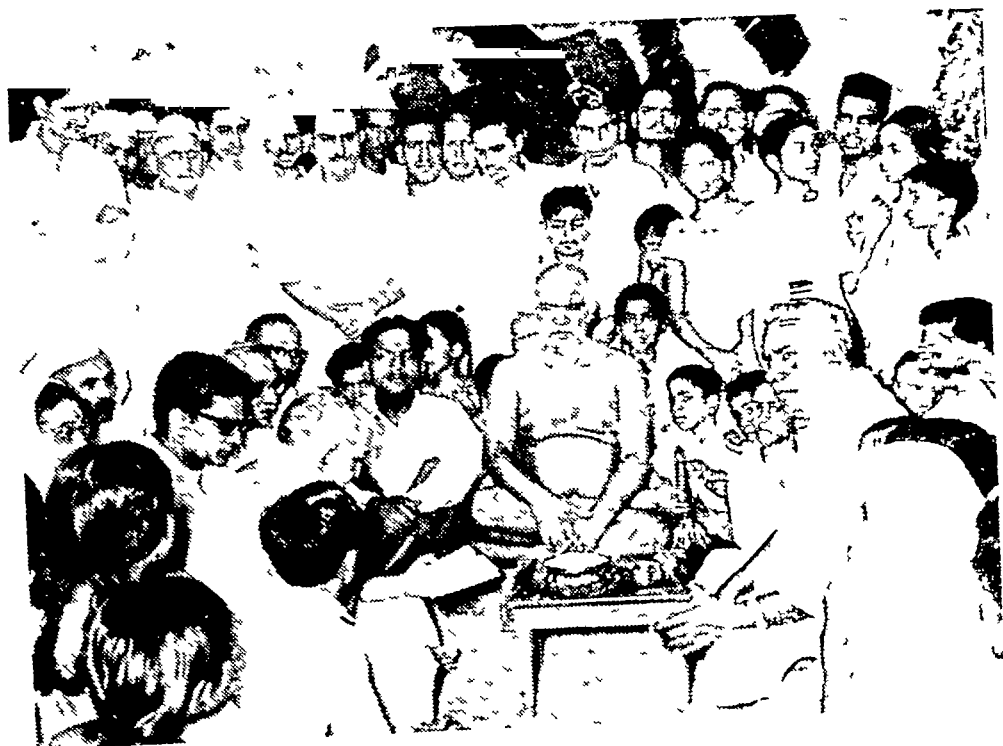
देहली फ्लोर मिल मे आचार्य श्री प्रवचन करते हुए

आचार्य श्री एव मुनि सुशील कुमार जी

बेलगछिया दि जैन मन्दिर कलकत्ता

आचार्य श्री देहली पिलोर मिल मे शिष्यो के बीच